गांधी वध
और
मैं

*

गोपाल गोडसे

*

वितस्ता प्रकाशन
पुणे ४ (महाराष्ट्र)

मूल्य १५)

प्रकाशक—
गोपाळ विनायक गोडसे
वितस्ता प्रकाशन
१२०६/१ ब, शिवाजीनगर, पुणे ४ (महाराष्ट्र)
*
शाखा :
११३/२४८, स्वरूप नगर, कानपूर २ (उत्तर प्रदेश)
*
बंबई के वितरक :
हिन्दी साहित्य सदन
हीराबाग, सी० पी० टैंक, बंबई-४ (महाराष्ट्र)
*
कलकत्ता मे प्राप्तिस्थान :
हिन्दी प्रचारक प्रतिष्ठान
१९५/१ महात्मा गाधी मार्ग, कलकत्ता-७
*
प्रथमावृत्ति (राष्ट्रभाषा मे) ४००० प्रति
© गोपाळ गोडसे
१२०६/१ ब, शिवाजी नगर, पुणे-४
*
अनुवाद सहायक
श्री धर्मेन्द्र शर्मा
विराटनगर, जयपुर (राजस्थान)
*
मूल्य १५/०० (२०३० वि० सं०)
*
- मुद्रक -
आर्यभूषण प्रेस
ब्रह्माघाट, वाराणसी-१

अन्वेषण

[मूल मराठी संस्करण की श्री ग. वा बेहेरे की प्रस्तावना]

मै राजनीतिज्ञ नही हूँ। किसी पक्षका सदस्य नही हूँ। किसी राजनीतिक तत्वज्ञानका प्रचारक नही हू इसलिये इस ग्रंथ प्रकाशनके पीछे कोई उद्देश्य न चिपकाये जायँ। व्यवसाय है जो हुआ है उसका अन्वयार्थ लगाना। और इसलिये, जो हुवा है उसका शब्दाकन करना मेरा कर्तव्य है। फिर भी, मेरे मित्रोने परामर्श दिया कि मै यह ग्रंथ प्रकाशित न करूँ। गडे मुर्दे उखाडने से क्या लाभ है ऐसा भी पूछा गया। मैने इतना ही कहा कि इतिहास का हेतु ही वही रहता है। इतिहास अप्रिय हो तो भी उसे बिना लिखे पर्याय नही है।

मुझे आशा नही थी कि यह पुस्तक कभी आपके हाथो पहुँच जायेगी। विषय उत्तेजक, राज्यकर्ता असहिष्णु, कुछ जन कुछ शब्दमात्र से ही भय खानेवाले। ऐसी अवस्था मे एक अपराधी की कहानी मुद्रित करने का दु साहस कौन करेगा ?

और वह अपराधी भी सामान्य श्रेणिका नही। महात्मा गाधीका वधक। महात्मा गाधी उन दिनोके श्रेष्ठ पुरुष। उनकी कीर्तिमे सतपनका प्रवाह मिला हुवा। ऐसे व्यक्तिका वध वह भी पूरे विचार विमर्श के साथ, षडयन्त्र रचकर किया गया। गोपाल गोडसे इस कहानीका निवेदक उस षडयन्त्र के अभियोग का एक प्रमुख अभियुक्त, जिसने वध किया उस नथूराम गोडसेका छोटा सगा भाई। यह अपराधी अपने अठारह वर्षो के कारावास के पश्चात अपनी कथा विशेपकर गाधी वध की कथा कहता है, कोई भी राजनीतिक उद्देश्य न रखकर।

गाधी का वधक यदि गँवार, स्वार्थी, अनाडी या भ्रमिष्ट सा होता तो गांधीजी के नामका व्यापार करनेवाले दुखी अवश्य होते फिर भी क्रुद्ध न होते। गाधीवादकी अथवा

गांधीकी प्रतिमा उससे कलंकित न होती। किंतु वधक, अर्थात वध करनेवाले, वधको प्रत्यक्ष साहाय्य करनेवाले अथवा इस घटनाकी ओर अनाकानी करनेवाले सबजन सुशिक्षित थे, सज्ञान थे, देशभक्त थे—!

जी हाँ ! वे देशभक्त तो थे ही। इस देशपर गांधीजीका जितना प्रेम था उतनाही इन सब जनोंका अपनी मातृभूमि-पर था। वरन् मातृभूमिपर उनका जो प्रेम था उसीने गांधी-वध जैसा कृत्य करनेको उन्हे उद्यत किया। उस कृत्यका उत्तरदायित्व पिछले पाच पचास वर्षो के राजनीतिक नेतृत्व पर, विशेषकर गांधीजीके मुसलमानोंके संबंध मे जो धारणाएँ थी, कि जिससे देशका विभाजन हुआ, सहस्रावधि सिंधी, पजाबी, बंगाली, भारतीयोका सर्वनाश हुआ, उसपर तथा उसीके समान कई कारणोपर निर्भर हो सकता है। गांधी-वध केवल एक हननका कृत्य, एक खून, इतनेही सीमित अर्थसे इस घटनाको देखना न्याय्य न होगा। वह एक राज-नीतिक वध था।

उस वधमे व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा सत्ताकी अभिलाषा न थी। अपितु अगतिकता थी। गलत मार्गसे यह रोकनेकी अनाडी-चेष्टा थी। वधकोंने यह नही सोचा कि वध मनुष्य का किया जा सकता है तत्वका नही। इसलिये गांधीजी मारे जा सके किंतु गांधीवाद जैसा का तैसाही रहा—बढती मात्रा मे।

आजके परिवर्तनशील समयमे हम कमसे कम इतना तो मुद्रित कर सकते हैं। आज गाधी तत्वज्ञान अंतिम साँसे ले लाहोरकी डेवढीपर रक्तसे लथपथ हो खड़ा है। अहिंसा सत्य की धज्जियाँ पूरे भारतभर बिखरी है। और उन्नीस बीस बरसोमे स्वातंत्र्य को नरक की अवस्था प्राप्त हुई है।

गांधीवध अब एक इतिहास मात्र है। इतिहास को सत्य के बिना अन्य पर्याय नही होता। इसलिये यह ग्रन्थ सत्य की खोज के मार्ग की एक विनम्र चेष्टा मात्र है। लेखक का अधिकार क्षेत्र मर्यादित है, उसका उसे और मुझको ज्ञान है।

विधि के बंधन गृहीत है इसलिए हमारी शक्ति को मर्यादा है। इस स्थिति को पाठक समझें।

वर्ष बीतेंगे। नथुराम गोडसे का विस्मरण हो जायगा। सावरकर विस्मृति मे जायेंगे। स्यात गाधी नेहरू ये आज के देवता विस्मृत होगे। भुलानेवाली परिस्थिति ही निर्माण होगी। किंतु यह भूभाग वैसे ही रहेगा। यहाँ मनुष्य रहेगे। इतिहास के पिछले पन्ने देखेंगे। इस वैभवशाली देश के टुकड़े क्यो हुए इसका इतिहास पढ़ेंगे। एक कायर राजनीति का वह कलंकित भाग, उसका रक्तरंजित गगा सिंधु नदियो के परिसर का इतिहास उनकी दृष्टि के सामने आयेगा। उस समय गांधी अवश्य ध्यान मे आयेंगे, नेहरू ध्यान मे आयेंगे सावरकरजी का स्मरण तो अवश्य होगा किंतु भिन्न भिन्न संदर्भों मे। ऐसे इतिहासकारो को नथुराम गोडसे का एक अत्यत तुच्छ मनुष्य का सरसरा स्मरण उस समय होगा।

मनुष्य जाति को उन्नति की ओर ले जानेवाले भोले तत्वज्ञान यदि त्रुटित स्थान पर प्रयोजित किये गये तो देश की भूमि रक्त से भीग जाती है इसका और एक पाठ मिलेगा। जैसे पृथ्वीराज को मिला जैसे देवगिरी के रामदेवराय को मिला।

और उस दिन के इतिहासकार इस देश का आज का इतिहास लिखेंगे जिसमे मृत बुद्धवाद के लिए लिखे गये पृष्ठों के समान ही मृत गाधीवाद की समालोचना करनेवाले कुछ पृष्ठ होगे।

समय को कोई रोक नही सकता। कोई वैसा चाहे तो भी वह असंभव है। देखते देखते बीस बरस बीत गए। इतिहास भिन्न सत्य कहने लगा, और कौन कह सकता है? कुछ वर्षो मे यहाँ पर भिन्न स्वप्न स्फुरेंगे।

कौन जाने उस दिन समय किसके पल्ले क्या न्याय बांधेगा।

१२. १०. १९६७ —ग. वा वेहेरे.

भूमिका

गाधी वध और मैं यह ग्रथ मराठी में 'गाधी हत्या आणि मी' नाम से १० अक्तूबर १९६७ को ४००० प्रतियो में प्रकाशित हुआ। उसके पूर्व लगभग डेढ वर्ष तक पुस्तक के प्रकरण लेखमात्र के रूप में 'पैजण' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुआ करते थे।

पुस्तक प्रकाशित होने के पश्चात् दिनाक ६ दिसंबर १९६७ को दिल्ली प्रशासन ने एक आज्ञापत्र द्वारा उस मराठी पुस्तक पर प्रतिवन्ध लगाया और पुस्तक की प्रतियो को समपहृत (जप्त) करने का आदेश दिया।

दिनाक २५-१-६८ को लेखक के घर से एक प्रति समपहृत हुई। तथा प्रकाशक श्री ग० वा० वेहेरे इनके अस्मिता प्रकाशन कार्यालय से भी दो प्रतियाँ दूसरे दिन समपहृत हुईं।

महाराष्ट्र राज्य के उच्च न्यायालय, वम्बई में लेखक और प्रकाशक ने याचिका प्रस्तुत की। उसका निर्णय दि० ९-८-१९६९ को हुआ। पुस्तक वंध-मुक्त हुई।

निर्णय पत्र २१७ पन्नो का है। अत में लेखक को २००० रुपया और प्रकाशक को १००० रुपया क्षतिपूर्ति रूप में शासन से प्राप्त करने का आदेश दिया गया।

प्रशासन का आक्षेप था कि इस पुस्तक से हिन्दुस्थान के मुसलमान और हिन्दू इनके बीच वैमनस्य निर्माण हो सकता है। परन्तु पुस्तक की पूर्ण छानवीन करने के उपरान्त न्यायमूर्तियो ने अपना अभिप्राय दिया कि पुस्तक में इस प्रकार का कोई लेखन नही है।

पुस्तक दुवारा छपी। वह ८००० हजार की सख्या में थी। अव तीसरा संस्करण भी प्रकाशित हो रहा है। आज उसी पुस्तक का हिन्दी सस्करण पाठको को प्रस्तुत किया जा रहा है।

*

क्रम	विषय			पृष्ठ

* * *



श्री गोपाल विनायक गोडसे (लेखक)

तथा

सौ० सिंधु गोपाल गोडसे (लेखक की पत्नी)

आमुख

पांच फरवरी १९४८। वम्बई-पूना सयान-पथ के (रेल पथके) कामशेत स्थानकसे दस मील दूर, उकसाण नामक अपने ग्राम में मै गया था। उसी दिन वहाँ वम्वई-आरक्षी दल (Police Force) का एक पथक आ पहुँचा। पथक प्रमुखने मुझे गाधीवध के 'पडयत्र' मे भाग लेने के आरोप में पकडकर वम्वई पहुँचा दिया।

दिल्ली के लाल किले में स्थित विशेप न्यायालय मे यह अभियोग चला। अभियोग लगाने के पश्चात् उसे सिद्ध करने का उत्तरदायित्व वादी अथवा अभियोजको का होता है। अभियुक्त मूक रहेगा अथवा आरोप अस्वीकार करेगा। मेरा कहना था कि मेरा उक्त पडयत्र से कोई सम्वन्ध नही है। मेरा कथन शपथपूर्वक नही था। अभियोजको (Prosecutors) ने मेरा उस पडयत्र में सम्मिलित होना सिद्ध कर दिया। दिनाक १० फरवरी १९४९ को मुझे आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। दिनाक १३ अक्तूवर १९६४ को मैं प्राचीरो के सीमित ससार से मुक्त हुआ।

गाधीजीका अत्याचार से अत यह घटना आधुनिक भारतीय इतिहास का एक पृष्ठ है। गाधी-चरित्र का वह अन्तिम अध्याय है। यदि उसे छोड दिया जाय तो गाधी चरित्र अपूर्ण रह जाता है और यदि उसे विकृतरूप से प्रस्तुत किया जाय तो गाधी चरित्र इतिहास की सज्ञा नही पा सकता।

न्यायालयीन निर्णय ने गाधी-वध मे मेरा सीधा सम्वन्ध जोड दिया था, भले ही मैंने उस आरोप को स्वीकार नही किया, किन्तु शासन के सशक्त तत्र ने मुझपर पूरे प्रमाणो के साथ आरोप भी सिद्ध किया, यह एक अमिट सत्य है।

न्यायालय में अभियोग अथवा अभियुक्तो से सम्वन्धित सभी तथ्य प्रकट होते हो, ऐसा नही है। अभियुक्त और अभियोजक, दोनो अपने-अपने हितो की

दृष्टि से, अपने पक्ष की अधिकाधिक पुष्टि के लिए अथवा पुष्टि में हानि न आवे इसलिये अनेक तथ्यो और घटनाओ को जानबूझकर छोड देते है। गाधी-वध से तथाकथित सम्बन्धित आजन्म कारावास का दड प्राप्त सभी अभियुक्त आज कारावास से मुक्त हो चुके है। उनमे से मैं एक हूँ। इस महत्वपूर्ण घटना के, भारतीय इतिहास के एक अप्रिय अध्याय के तथ्यो को, इतिहास-जिज्ञासु पाठको के लाभ की दृष्टि से भलीभाँति प्रकट करना मेरा उद्देश्य है।

इस अतिम चरण में गाधी-वध के परिणामो के सस्मरण भी समाविष्ट हैं। क्योकि गाधी-जीवन के अतिम कालखडसे उसके सूत्र घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

आज जब न गाधीजी जीवित है न नथूराम, न नाना आपटे ही विद्यमान हैं और तीनो आजीवन कारावास दडित भी अपनी दडावधि पूरी करने के पश्चात् मुक्त कर दिये गये है, तब 'मरणान्तानि वैराणि' के न्यायक्रम से गाधीजी के प्रति यदि उनके जीवनकाल में कोई दुर्भावना रही भी हो, तो भी, किसी प्रकार की दुर्भावना रखना उसे अब उचित प्रतीत नही होता। कारागृह में मैं गाधी जयती के आयोजन में सम्मिलित होता रहा हूँ। कई बार ऐसे आयोजनो की रूपरेखा भी मैंने ही बनायी हैं। यह सब स्वीकार करते हुए मुझे कोई सकोच नही होता। न तो किसी दबाव अथवा भय से मैं ऐसा करता था, न इस कारण मैं पथभ्रष्ट अथवा सिद्धातच्युत हुआ, ऐसा मैंने कभी अनुभव किया हैं। इसीप्रकार गाधीजी के वध का निश्चय पूर्ण करनेवालो अथवा उनसे सम्बन्धित जनो के प्रति भी किसी प्रकार का पूर्वग्रह या दुर्भावना नही रखी जानी चाहिये। इस सपूर्ण घटनाक्रम को इतिहास की दृष्टि से ही देखा जाना चाहिये और उसी दृष्टि से उसपर विचार होना चाहिये। यही मेरा निवेदन है, जिसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करना पाठको पर निर्भर है।

गोपाल विनायक गोडसे

दि २७ मार्च १९६६
१२०६/१ ब, शिवाजीनगर
पुणे ४

एक

क्या गांधी वध टाला नहीं जा सकता था ?

'जन्म से ही मनुष्य के ललाट पर उसका भविष्य अंकित रहता है', ऐसी कहावत है। इस पूर्वलिखित विधि-लेख को अक्षरश: पढकर अपने भविष्य को जानने का मनुष्य प्रयत्न करता रहा है, किन्तु उसकी जिज्ञासा शान्त नही हो पायी है। यदि वह अपना भविष्य पढने में सफल हो गया होता तो अपने जीवन की असफलताओ को टालना उसके लिए अत्यंत सरल हो जाता और उस दशा में 'भाग्य की अनिवार्यता' की कहावत निरर्थक हो जाती।

जीवन की परिणति मृत्यु है, यह सभी लोग भलीभांति जानते है। इस मृत्यु का समय, निमित्त और घटनाक्रम विधि-निर्धारित होता है। काल के इस कार्यक्रम से मनुष्य अनभिज्ञ रहता है।

भाग्य की अनिवार्यता के अनन्तर स्वभाव से ही मनुष्य प्रयत्नवादी है। "मृत्यु अटल है," उसके काल एव कार्यक्रम अज्ञात है, इसलिए उसके मार्ग को रोकने या समय को टालने की व्यर्थ चेष्टा क्यो की जाय ?" ऐसा सोच कर वह निष्क्रिय और निराश नही होता। प्रत्युत अनेक अप्रकट रहस्यो के उद्घाटन और सत्य के अन्वेषण जैसे कार्यो में वह जानबूझ कर अपने प्राणो पर सकट लेकर सघर्षपूर्ण शोध करता है और प्रत्येक दुर्घटना के कारणो का विश्लेषण करते हुए उसके कारणो पर विचार करके उसकी पुनरावृत्ति के निवारण के विविध उपाय ढूंढता रहता है।

मान लिया कि, दुर्घटना में आहत अथवा मृत व्यक्तियो को ऐसी उत्तरीय चिकित्सा से कुछ लाभ नही मिलता, फिर भी, मनुष्य की दृष्टि के सामने मानव जाति की सुरक्षितता का तथा उसके प्रगति का लक्ष्य रहता है। किसी विकार की

चिकित्सा परिपूर्ण रूप से न होने से उसकी मृत्यु होती है। उस रोग का कारण उसकी शव परीक्षा में दीख पड़ता है। इसीसे यह हमारा अनुभव है कि उसी प्रकार के अन्य विकारियो पर प्रभावी उपाययोजना की जा सकती है।

अपनी इसी वृत्ति के कारण लोगो ने गाधी-वध को एक पूर्व निर्धारित दैवी दुर्घटना नही माना है और गाधी-वध को टाला जा सकना असभव नही था, यह पश्चात्ताप उसे पुन पुन. उद्वेलित करता रहता है। इस दुर्घटना के निवा· रण की सम्भावना पर इन दिनो बड़ा वाद-विवाद चल रहा है। इस सम्बन्ध में उत्तरदायी अधिकारियो, मत्रियो और नेताओ के अनेक वक्तव्य और विचार यत्र तत्र प्रकाशित हुए है। सरकार द्वारा गाधीजी की रक्षा के लिए किये गये सुदृढ आरक्षी-प्रबन्ध में कहाँ और क्या त्रुटि रह गयी थी, यह जानने के लिए चर्चा-परिचर्चा चल रही है। पाठक जानते है कि इन्ही प्रश्नो पर विचार करने के लिये शासन ने हाल ही में एक आयोग भी नियुक्त किया था। गांधी जी की सुरक्षा से सम्बद्ध अधिकारियो की तत्कालीन मनोदशा और धारणा क्या थी, इस पर विचार विषय-विवेचन के माध्यम से करने की हमारी इच्छा है, ताकि भविष्य में इसप्रकार के घातपात रोके जा सकें तथा मनोविज्ञान के अध्येता इस विवेचन से स्यात् कुछ निष्कर्ष निकाल सकें।

प्रस्तुत विवेचन के दो पक्ष है। एक तान्त्रिक, दूसरा तात्विक। हम यहाँ पहले पक्ष पर विचार करेंगे। दिनाक २० जनवरी १९४८ की सन्ध्या को दिल्ली के बिड़ला भवन में गाधीजी के प्रार्थना सभा-स्थल के निकट बम-विस्फोट हुआ था। और मदनलाल पाहवा घटनास्थल पर पकड़ा गया था। मदनलाल ने अपने कृत्य की पूर्व सूचना कुछ ऐसे व्यक्तियो को दी थी जिनका कथित षडयन्त्र से कोई सम्बन्ध नही था। ऐसा प्रमाण गाधी-वध अभियोग के सिलसिले में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

लाल किले में श्री जगदीशचन्द्र जैन की गवाही दिनाक ४-८-४८ से ९-८-४८ तक हुई। श्री जैन काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के एम० ए० और बम्बई विश्व-विद्यालय के पी० एच० डी० हैं। वे उस समय माटुंगा (बम्बई) स्थित रामनारायण रुइया महाविद्यालय में अर्धमागधी और हिन्दी भाषाओ के प्राध्यापक थे। उन्होंने कतिपय पुस्तकें भी लिखी हैं। मदनलाल पाकिस्तान से आव्रजित शरणार्थी था। श्री जैन उसकी आर्थिक सहायता की दृष्टि से अपनी प्रकाशित पुस्तकें उसे २५ प्रतिशत छूट पर विक्रयार्थ देते थे। प्रा० जैन ने अपनी गवाही में कहा—"जनवरी (१९४८) के प्रथम सप्ताह के अन्तिम दिन के आसपास मदनलाल मुझसे मिला। उसके साथ एक सज्जन और थे। उनका नाम उसने करकरे बताया। दो-तीन दिन पश्चात् रात्रि के आठ बजे मदनलाल मुझसे

पुन मिला। उसने मुझसे कहा कि उसके दल ने एक बड़े नेता को मार डालने का निश्चय किया है। मैंने उससे उस नेता का नाम पूछा। पहले तो उसने यह कहकर नाम प्रकट करने मे आनाकानी की कि नाम वह नही जानता, किन्तु, मैंने जब यह सोचकर उससे अधिक आग्रह किया कि उसे उक्त नेता का नाम अवश्य ज्ञात होगा, तब उसने गाधीजी का नाम लिया। मुझे यह जानकर आघात सा लगा और मैंने उसे इसप्रकार की मूर्खता न करने की सलाह दी। बातो-बातो मे उसने यह भी कह दिया कि गाधीजी की प्रार्थना सभा में बम विस्फोट करने का काम उसे सौंपा गया है। उसने कहा कि इससे सभा में भगदड मच जायेगी और उपयुक्त अवसर पाकर उसके अन्य साथी गाधीजी को घेर लेगे। मैंने उसे समझाया कि वह पाकिस्तान से निष्कासित है। पजाब में हुए साम्प्रदायिक उपद्रवो में पहले ही उनकी पर्याप्त हानि हो चुकी है। अत इसप्रकार का कार्य उसे नही करना चाहिये। मैंने उसे उसके इस निश्चय से विरत करने के लिए उससे बहुत देर तक बातचीत की। पीछे जब वह चला गया तब मैंने उसकी बातो को अधिक महत्व नही दिया क्योंकि उन दिनो विभाजन के कारण विस्थापित (शरणार्थी) बहुत क्षुब्ध थे और वे बहुत कटु शब्दो मे गाधीजी और काग्रेस को कोसा करते थे।"

"दो-एक दिन पश्चात् मदनलाल फिर मेरे पास आया तो मैंने उससे पूछा कि उसने मेरी बातो पर विचार किया या नही? उसने उत्तर दिया कि वह मुझे पिता के समान समझता है और यदि उसने मेरी सम्मति को न माना तो उसका सर्वनाश हो सकता है। किन्तु दो दिन पश्चात् वह पुन. मेरे यहाँ आया, तब उसने सूचना दी कि वह दिल्ली जा रहा है।"

"मदनलाल के दिल्ली जाने के लगभग दो दिन पश्चात् सेंट झेवियर कॉलेज के प्रशाल (हाल) में श्री जयप्रकाश नारायण का भाषण हुआ। मैं वहाँ उपस्थित था। मैंने श्री जयप्रकाश नारायण से मिलने और उन्हें मदनलाल द्वारा बताये गये षडयन्त्र के आभास से अवगत कराने की चेष्टा की। श्री जयप्रकाश नारायण दिल्ली जाने वाले थे और दिल्ली के अधिकारियो को उनके द्वारा सचेत किये जाने से सभावित दुर्घटना के निवारण की मुझे आशा थी। किन्तु उनके आसपास बहुत भीड होने के कारण मैं उनसे भलीभाँति मिल नही सका तथापि दिल्ली में किसी षडयन्त्र की सभावना का सकेत मैंने उन्हें दे दिया।"

"गाधीजी की प्रार्थना सभा में मदनलाल द्वारा किये गये बम-विस्फोट और उसकी गिरफ्तारी के समाचार मैंने दिनाक ११-१-४८ को पढे और तभी दूरभाष पर सरदार वल्लभभाई पटेल से बातें करने का निश्चय किया किन्तु मेरा प्रयास असफल रहा। श्री स० का० पाटील से भेट करने का भी मैंने प्रयास किया

किन्तु उसमें भी सफलता नही मिली। तब दूरभाप पर भेंट निश्चित करके मैं माननीय मुख्यमन्त्री श्री बा. ग खेर से सचिवालय में दिन के ४ बजे मिला। वहाँ माननीय गृहमत्री श्री मोरारजी देसाई भी उपस्थित थे। मदनलाल के सम्बन्ध मे ज्ञात सभी बातें मैंने उन्हें बता दी।" (Criminal Appeals No: 66 to 72 of 1949, East Punjab High Court, Simla, Printed Record, Vol I. Pages 130-138.)

बम्बई राज्य के तत्कालीन गृहमत्री माननीय श्री मोरारजी देसाई की गवाही दि २३-८-४८ से २५-८-४८ तक हुई। उन्होने अपनी गवाही मे प्रा० जैन के वक्तव्य की पुष्टि करते हुए बताया—

"श्री जैन द्वारा बतलायी गयी बातो को सुनकर मैंने गुप्तचर विभाग के मुख्य अधिकारी श्री नगरवाला को बुलवाया। कार्य में व्यस्त होने के कारण वे तत्काल नही आ सके। तब मैंने उन्हें प्रत्येक स्थिति में बम्बई सयान स्थानकपर (रेलवे स्टेशन पर) मुझसे मिलने को कहलवाया। मुझे उसी दिन अहमदाबाद जाना था। वे मुझे रात्रि के सवा आठ बजे स्टेशन पर मिले। मैंने उन्हें वे सभी बातें जो श्री जैन द्वारा मुझे ज्ञात हुई थी, बतायी और उनसे उपयुक्त कार्यवाही करने के साथ साथ श्री करकरे को पकडने का निर्देश दिया।"

"दिनाक २३-१-४८ को प्रात. अहमदाबाद में सरदार पटेल से मिलने पर मैंने उन्हें श्री जैन से प्राप्त सूचनाएँ और इस सम्बन्ध में मेरे द्वारा की गयी कार्यवाही की जानकारी दी। (Printed Record Volume I, Pages 166 - 173)

दिनांक ५-१०-४८ से १८-१०-४८ तक हुई गवाही में श्री नगरवाला ने श्री मोरारजी भाई के कथन की पुष्टि की है। वे कहते हैं—

"दिल्ली पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट— श्री जसवन्तसिंह एक सब-इन्सपेक्टर के साथ दिल्ली से दिनाक २२-१-४८ को बम्बई आकर मुझसे मिले। वे दिल्ली में हुए बम विस्फोट के सिलसिले में करकरे एव अन्य किन्ही षडयन्त्रकारियो को पकडवाना चाहते थे। उनके दिल्ली लौट जाने पर मैंने करकरे और उसके अज्ञात साथियो की खोज का काम हाथ में लिया। बम्बई पुलिस को इसके पूर्व करकरे का कोई परिचय नही था। किन्तु उपलब्ध जानकारी के आधार पर दिनाक २४-१-४८ को मैंने श्री बडगे को पकड़ने का आदेश दिया।"(Printed Record Vol I, Pages 278-293,)

दिल्ली पुलिस के सब इन्स्पेक्टर श्री दसवन्दासिंह की गवाही दिनाक १४-९-४८ और १५-९-४८ को हुई।

वे केन्द्रीय शासन के गृह विभागगत गुप्तचर विभाग से सम्बद्ध थे और जनवरी ४८ में तुगलक मार्ग पुलिस स्टेशन के प्रमुख थे। बिडला भवन उन्ही की सेवा-सीमा में था। उन्होंने बताया कि घटना के दिन वे एक हेड कान्स्टेबल और चार सिपाहियों के साथ बिडला भवन के द्वार पर सन्नद्ध थे। (Printed Record Vol I, Pages 233-239)

डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट सरदार जसवन्तसिंह की गवाही १६-९-४८ से २०-९-४८ तक हुई। उनकी और श्री नगरवाला की गवाही सम्बद्ध अंशो से मिलती जुलती है। बिडला भवन की सुरक्षा व्यवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि दिसम्बर १९४७ से बिडला भवन पर पुलिस फोर्स रखा गया था। महात्मा गान्धी के बिडला भवन में आगमन के पश्चात् ही यह व्यवस्था की गयी। किसी प्रकार की अनुचित घटना की रोकथाम करना इस व्यवस्था का उद्देश्य था। बम विस्फोट की घटना के पश्चात् सतर्कता बढा दी गई। और सादी वर्दी में भी पुलिस अधिकारी एवं कर्मचारी वहाँ नियुक्त किये गये थे। (Printed Record Vol I, 239-247)

उपर्युक्त प्रमाणो से स्पष्ट है कि बम विस्फोट अथवा ऐसे किसी षड्यन्त्रका पूर्वाभास श्री जैन को था। और विस्फोट के पश्चात् तो किसी षड्यन्त्र की सम्भावना के और अधिक स्पष्ट संकेत सरदार पटेल, मोरारजी देसाई, पुलिस प्रमुख श्री नगरवाला और डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री जसवन्त सिंह जैसे वरिष्ठ व्यक्तियो को मिल चुके थे। मदनलाल उस समय बन्दीगृह में था। उसने एक विस्तृत वक्तव्य पुलिस को दिया था। उसके कथनानुसार दिल्ली में कथित षड्यन्त्र से सम्बन्धित व्यक्ति जहाँ - जहाँ हो सकते थे वहाँ - वहाँ पुलिस ने खोज-बीन भी की थी, ऐसा कहा गया है। मदनलाल द्वारा करकरे के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो का रूपरेखादि विवरण भी पुलिस को प्राप्त हो चुका था।

न्यायमूर्ति श्री आत्माचरण ने १०-९-४९ को दिये गये निर्णय में लिखा है—

"२० जनवरी १९४८ से ३० जनवरी १९४८ तक पुलिस द्वारा की गयी जाँच पडताल की शिथिलता मुझे केन्द्रीय शासन के ध्यान में लानी है। २०-१-४८ को मदनलाल के पकडे जाने पर उसका विस्तृत वक्तव्य दिल्ली पुलिस ने प्राप्त कर लिया था। उधर डॉ० जे सी जैन द्वारा गृहमंत्री को दी गयी सूचनाएँ भी बम्बई पुलिस को २१-१-४८ को मिल चुकी थी। इन दोनो वक्तव्यो को प्राप्त करने के पश्चात् दिल्ली और बम्बई के पुलिस अधिकारी परस्पर मिल भी चुके थे। इतना सब होने पर भी इन दो वक्तव्यो का लाभ उठाने में पुलिस असमर्थ रही यह अत्यंत दुःख की बात है। (Yet, the police miserably failed to derive any advantage from those two statements.) इस प्रकरण में

यदि तनिक भी तत्परता दिखायी गयी होती तो यह दु खद घटना कदाचित टाली जा सकती थी।" (Printed Record Vol. III, Page 109)

न्यायमूर्ति की यह धारणा उनके समक्ष प्रस्तुत किये गये प्रमाणो के आधार पर बनी। नथूराम और आपटे से पूना-पुलिस भलीभाँति परिचित थी। करकरे भी अहमदनगर पुलिस की जानकारी मे थे। अत यदि पूना अहमदनगर के कुछ कुशल पुलिस अधिकारियो को बिडला भवन की सुरक्षा-व्यवस्था में सम्मिलित कर लिया जाता तो दुर्घटना के पूर्व ही सम्बन्धित व्यक्तियो का पकडा जाना सम्भव था। सुरक्षा व्यवस्था और अन्वेषण की यह त्रुटि यदि दूर कर दी गयी होती तो आगे होनेवाली दुर्घटना को रोका जा सकता था। न्यायमूर्ति के अभिमत का यही अभिप्राय है। साथ ही, न्यायमूर्ति के कथन का यह अश कि यह दु खद घटना कदाचित टाली जा सकती थी, ध्यान देने योग्य है।

सतर्क जाँच एव कडी सुरक्षा व्यवस्था से सदिग्ध व्यक्तियो का पकडा जाना सभव था और यदि वे पकडे गये होते तो कम से कम उनके द्वारा ही किसी दुर्घटना के घटित न होने की निश्चिन्तता हो सकती थी। किन्तु इन सदिग्ध षडयन्त्र-कारियो के पकड लिये जाने पर भी इस बात का क्या भरोसा था कि अन्य किन्ही लोगो द्वारा उस प्रकार की घटना सम्भव नही होती। फिर सदिग्ध षड-यन्त्रकारियों को पकडने में पुलिस की सफलता भी निश्चित नही थी। सब प्रकार की सतर्कता से काम करने पर भी जब कोई व्यक्ति किसी अवैध कार्य को प्राणो की परवाह न करके भी पूरा करने का संकल्प या दुस्सकल्प कर लेता है, तब वह अपने कार्य में विधि और व्यवस्था के सरक्षको द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले प्रत्येक सभव व्यवधानो की पूर्वकल्पना कर लेता है और अपनी बुद्धि की पहुँच तक उन व्यवधानो के निराकरण के उपाय भी सोच लेता है। उसका प्रयत्न रहता है कि उसके दो नेत्र विधि तथा व्यवस्था सरक्षको के सहस्त्र नेत्रो से अधिक सक्रिय और सतर्क रहें। और जहाँ उसे अपने कार्य की सफलता के लिये प्रतिकूल-परिस्थिति अनुभव होती है वहाँ किंचित समय के लिये वह अपने बढते हुए चरण पीछे खीच लेता है। और अनुकूल समय मिलते ही अपनी मनीषा पूरी कर लेता है।

इतना सब कुछ होने पर भी अतिम रूप से अवसर और भाग्य की महत्ता सर्वोपरि है। असाधारण कार्य करने के लिये कृतसकल्प, दृढ निश्चयी योजना-शील व्यक्ति भी अपनी सतर्कता पर अतिम रूपसे निर्भर नही रहते। प्राय साव-धानी नही प्रत्युत भाग्य ही सफलता के अवसर प्रदान करता है। उदाहरण के लिए कल्पना की जा सकती है कि उस रात केवल बम्बई जानेवाली गाडियो की ही

जांच न करके अन्यत्र जानेवाली ट्रेनो में भी षडयन्त्र से सम्बद्ध व्यक्तियो की खोज की जाती तो ? मदनलाल तो साथ में था ही।

कानपुर जानेवाली ट्रेन में नथूराम और आपटे मिल जाते और ३० जनवरी वाली घटना इन दोनो के हाथो तो न होती और दिल्ली पुलिस को उसके निवारण का श्रेय मिलता। किन्तु विधि निर्धारित विधान पुलिस के अनुकूल न था।

पजाब उच्च न्यायालय ने निर्णय २२-६-४९ को दिया। निर्णायक थे श्री भडारी, श्री अच्छरूराम तथा श्री खोसला। उच्च न्यायालयके इस निर्णय मे तीनो न्यायाधीशो ने कहा कि वे न्यायाधीश श्री आत्माचरण के अभिमत से सहमत नही हैं। न्यायाधीश श्री भडारी लिखते हैं—

"नथूराम ने अपने मन मे निश्चय कर लिया था और गाधीजी का अन्त करने के लिये वह अपने प्राणो का मूल्य देने को तत्पर था। उसने पिस्तौल लेकर बिडला भवन मे प्रवेश करने का सकट स्वीकार किया। और गोलियाँ भी दागी। जन समुदाय ने उसे घेरा, बच निकलने का उसने विचार भी नही किया। (He did not care to run away) वह एक विशिष्ट उद्देश्य से वहाँ गया था और उसे पूरा करने के लिये प्रत्येक स्थिति में कटिबद्ध था। इस सन्दर्भ में किसी भी सकट को अपनाने और तज्जन्य अवश्यम्भावी परिणामो का सामना करने को वह तत्पर था। कोई अपरिचित अथवा कृत्रिम नाम धारण करके एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकनेवाले व्यक्ति को या परिणामो की परवाह न करके किसी अवैध कार्य को सम्पन्न करने को कटिबद्ध व्यक्ति को रोकना क्या पुलिस के लिए सम्भव था ? कही कुछ हो रहा है, पुलिस इतना ही जानती थी, किन्तु कब, कहाँ और किसके द्वारा आघात होने वाला है इसकी जानकारी उसे नही थी। वह अधेरे में अनुमान के आधार पर सभावित अपराध के सूत्रो को टटोलती भटक रही थी। उसे मार्ग नही मिल रहा था। जो कुछ हुआ उसे लोग जानते हैं और उस जानकारी के आधार पर ही, वह अमूल्य जीवन इस प्रकार बचाया जा सकता था, यह भी अब कह सकते हैं किन्तु घटना के हो जाने के उपरान्त उपाय सूझना सरल है।"

प्रस्तुत प्रमाणो के आधार पर मेरा मत है कि, (अ) ३० जनवरी के पूर्व नथूराम को पकडने में अथवा गाधीजी के प्राण बचाने में क्या क्या कठिनाइयाँ थी इसका स्पष्टीकरण करने का पुलिस को अवसर नही दिया गया। (ब) मदनलाल ने षडयन्त्रकारियो के नाम पुलिस को नही बताये। (क) यदि ये नाम बताये भी होते तो भी विविध नाम धारण कर विभिन्न स्थानो पर घूमनेवाले और अपने प्राणो का मूल्य देकर भी गाधीजी की हत्या करने को तुले हुए नथूराम

को पकडना असम्भव नही तो कठिन अवश्य होता।"

(टंकित निर्णय पत्र पृष्ठ १९५)

न्यायाधीश श्री अच्छरू राम ने लिखा है—"पुलिस ने दिनाक २० से ३० जनवरी १९४८ की अवधि में यदि जाँच पडताल में शिथिलता नही की होती तो गाधी हत्या की दुर्घटना टल सकती थी—ऐसा जो अभिमत विद्वान् न्यायाधीश (श्री आत्माचरण) ने प्रगट किया है, उसका, समापन करने से पूर्व, मुझे निराकरण करना है। उक्त अभिमत की पुष्टि में मुझे कुछ भी दिखाई नही दिया। और मेरे विचार में यह अभिमत पूर्णतया अवाछनीय (Wholly uncalled for) है।"

(टंकित निर्णय पत्र पृष्ट ५५९)

तृतीय न्यायधीश श्री खोसला ने अपने अनुमोदनात्मक निर्णयपत्र में सम्बन्धित प्रश्न पर उपरोक्त दोनो न्यायधीशो से सहमति व्यक्त की। इस परिकाल्पनिक प्रश्न के तान्त्रिक पक्ष पर विचार करने पर हत्या की अटलता और टाले जा सकने की सम्भावना, दोनो के पक्ष मे तर्क दिये जा सकते है। मान लीजिये कि, नथूराम की मृत्यु ३० जनवरी के पूर्व हो गई होती तो ? प्रस्तुत प्रमाणो से असम्बद्ध होने पर भी एक प्रासगिक घटना यहाँ उल्लेखनीय है—

२० जनवरी के कुछ समय पूर्व नथूराम और नाना आपटे मोटर साइकिल द्वारा बम्बई से पूना जा रहे थे। आपटे गाडी चला रहे थे। ठढक बहुत अधिक थी इसलिये आपटे ने उनका कनटोप पहन रखा था। घाटी में से जाते समय एक स्थान पर कनटोप सरककर आँखो पर आ गया और इसप्रकार उलझ गया कि उसे ऊपर सरकाना कठिन हो गया। गाडी अत्यन्त वेग में थी। अतः रोकते-रोकते भी बहुत दूर चली गई और नियन्त्रण खोकर एक ओर लुढक गई। नथूराम जो पीछे बैठे थे यह सब देख रहे थे। किन्तु उस स्थिति मे कुछ कर सकना उनके लिये सम्भव नही था। दोनो मित्र रास्ते के किनारे जा गिरे। जहाँ वे गिरे उसके कुछ ही इञ्च पश्चात् गहरी खाई थी। रास्ते के किनारे और गाडी के पहिये के बीच अन्तर नही के समान था। जीवन और मृत्यु की मानो वही सीमा रेखा थी।

गाडी यदि सडक की ओर न लुढक कर खाई की ओर गिरी होती तो ? तो कदाचित चार पाँच दिनो पश्चात् दोनो के सडे गले हुए शव किसी पथिक को दिखाई दिये होते, जिन्हें पहचानना भी तब सरल नही रहता।

मैं सोचता हूँ कि एक प्रयत्न निष्फल हो जाने पर उससे सम्बन्धित व्यक्तियो द्वारा ही गाधीजी के वध का पुन प्रयत्न किया जायेगा यह कल्पना पुलिस अधिकारियो के मस्तिष्क में नही थी। घटना हो चुकी है, एक व्यक्ति पकडा गया है, अब केवल अन्य सम्बन्धितो को पकडना ही शेष है। शासन के हाथ

बहुत लम्बे होते हैं, अत अन्य लोगों को पकड़ना अब कुछ ही दिनों का काम है, इस धारणा ने अधिकारियों को पर्याप्त सीमा तक निश्चिन्त कर दिया होगा। घटना से सम्बन्धित व्यक्तियों में स्वाभाविक भय उत्पन्न हो गया होगा। वे अपने बचाव के लिए इधर-उधर बिखर गये होंगे और कोई हलचल नहीं करेंगे यही उनकी धारणा रही होगी जो स्वाभाविक भी थी।

जैसा आरम्भ में कहा गया है, व्यक्ति की मृत्यु कैसे और कब होगी यह उसे ज्ञात नहीं होता। गांधी जी की मृत्यु यदि नथूराम और आपटे के हाथ करवाना विधि को अभीष्ट था तो किसी दुर्घटना से नहीं किन्तु फांसी के तख्ते पर चढ़कर मृत्यु को वरण करना नथूराम और आपटे का विधिनिर्दिष्ट था।

कालाय तस्मै नमः।

* * *

दो

षड्यंत्र कब रचा गया होगा ?

गाधी वध का षडयन्त्र निश्चित रूप में कब रचा गया इसका विवरण न्यायालयमें नही आया। षडयन्त्र (कॉन्स्पिरसी) को प्रमाणित करने के लिये वैसी निश्चित तिथि का अन्वेषण करना अभियोजको के लिये आवश्यक नही होता इसलिये —

"आपने अभियुक्त . ने दिनाक १ दिसम्बर १९४७ से ३० जनवरी १९४८ इन दिनो में मोहनदास करमचन्द गाधी जिन्हें सर्वसामान्य रूप से, महात्मा गाधी कहा जाता है, की हत्या करने के लिये परस्पर सहयोग किया और षडयन्त्र रचा " इस प्रकार का सदिग्ध आरोप पत्र अभियुक्तो को दिया (पन्जाब उच्च न्यायालय प्रिन्टेड रेकार्ड, भाग ३ पृष्ठ ११)। अभियोग के पश्चात् दिये गये निर्णयपत्र में न्यायमूर्ति श्री आत्माचरण ने कहा है कि जनवरी १९४८ के आरम्भ से यह षडयन्त्र अस्तित्व में था और ३० जनवरी १९४८ तक रहा यह बात सिद्ध हो गई है (भाग ३ पृष्ठ २७)। षडयन्त्र के आरम्भ की निश्चित तिथि लिखने की न्यायमूर्ति को कोई आवश्यकता नही थी।

गाधी वध के पूर्व सात आठ मास में नथूराम और आपटे ने अनेक शस्त्रास्त्र एकत्र किये थे और उनका विनिमय किया था। शस्त्रास्त्रो के यातायात में भी उनका हाथ था ऐसा विवरण अभियोग के सिलसिले में सामने आया है। प्रमाणो के आधार पर इन शस्त्रास्त्रो के व्यवहार की जांच की जाय तो ज्ञात होगा कि गाधी वधका उद्देश्य सामने रखकर अभियुक्तो का यह व्यवहार नही चल रहा था। इन गतिविधियो में से गाधी वधका षडयन्त्र कब प्रस्फुटित हुआ इस बातका बहुत कुछ अनुमान लगाना सम्भव है।

इस अभियोग में जिन प्रतिष्ठित व्यक्तियो की गवाहियाँ हुई उनमें गोस्वामी श्रीकृष्ण जीवन जी महाराज भी एक थे। उन्हे दादा महाराज कहा जाता है। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के वशज माने जाते हैं और इस पीठ के धर्मगुरु है। ९-८ ४८ से १०-८-४८ तक उनकी गवाही हुई थी। हैंदरावाद राज्य उससमय तक विलीन नही हुआ था। हिन्दुओ पर रजाकारो के अकल्पनीय अत्याचार होते थे। हैंदरावाद स्टेट काग्रेस मुक्ति आन्दोलन की योजनायें वनाया करती थी। रजाकारो के अत्याचारो के प्रतिकार की ओर सशस्त्र प्रत्याघात की रूपरेखा भी उनमे होती थी। श्री दादा महाराज की गवाही से ऐसा लगता है कि वे हैंदरावाद स्टेट काग्रेस को शस्त्रास्त्रो के सभरण की व्यवस्था करते थे। नाना आपटे और दादा महाराज का परस्पर घनिष्ट परिचय था। आपटे हैंदरा-वाद की मुक्ति के लिये होनेवाले प्रयत्नो में सम्मिलित थे और वे दादा महाराज की सहायता प्राप्त करने के प्रयत्न में थे।

पाकिस्तान के निर्माण के पश्चात् उसकी पहली सविधान सभा दिल्ली में आयोजित करना विचाराधीन था। आपटे चाहते थे कि यदि ऐसा हो तो उस सविधान सभा को उडवा देना चाहिये। यह बात दादा महाराज को महामना पडित मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र श्री गोविन्द मालवीय से ज्ञात हुई ऐसा उन्होंने अपनी गवाही मे कहा है। उन्होंने यह भी कहा कि उनकी आपटे से पूना मे भेट होने पर उन्होने आपटे से कहा कि कम से कम जिन्ना और लियाकत अली को उडवा दिया जाय। दो मार्टरो (morters) के लिये आपटे को चार सहस्त्र रुपयो की आवश्यकता थी। दिनाक १६-१०-४७ को शस्त्रास्त्रो की एक गाडी पाकिस्तान की ओर भेजी जा रही थी उसे आपटे उडवा देना चाहते थे। अग्नि-क्षेपक (Flame thrower) शस्त्र दिखाने के लिये वे दादा महाराज को बहुत स्थानो पर ले गये। इस प्रकार बहुत सा विवरण दादा महाराज ने अपनी गवाही मे दिया है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १३९-१४२)

दादा महाराज काग्रेस के सदस्य थे। फिर भी हिन्दुओ को आत्मरक्षा निर्भर और प्रतिकार के सक्षम बनाने के लिये प्रयत्नशील थे। सुहरावर्दी के नेतृत्व मे नोआखाली के हिन्दू-हत्याकाड के पश्चात् हुए सामूहिक भ्रष्टाचार के निराकरण के लिये दादा महाराज ने वहाँ शुद्धिकार्यक्रम आयोजित किये थे। हैंदरावाद का मुक्तिसग्राम हिन्दुओ को लाभदायक होनेवाला था इसलिये उक्त सग्राम मे उन्होने यथासभव सहयोग दिया था। गाधीजीके मुस्लिम तुष्टीकरण नीति के वे विरोधी थे इस प्रकार की स्वीकारोक्ति भी उन्होंने अपने बयान मे दी है। नथूराम और आपटे द्वारा सचालित दैनिक "हिन्दूराष्ट्र" के प्रकाशन के लिये वह अक्टूबर १९४६ में पूना आये थे। दादा महाराज के बधु गोस्वामी दीक्षितजी महाराज की गवाही

भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। आपटे और दीक्षितजी महाराज में शस्त्रास्त्रो का विनिमय होता था यह वात उनकी गवाही से प्रकट होती है। २०-८-४८ से २४-८-४८ तक सम्पन्न हुई उनकी गवाही का विवरण मुद्रित अभिलेख के पहले भाग के १५७ वें पृष्ठ से १७१ वें पृष्ठ तक है।

इन गवाहियो को पढकर यह अनुमान किया जा सकता है कि शस्त्रास्त्रो के उक्त विनिमय का गाधीवध से कोई सम्बन्ध नही था।

उपरोक्त शस्त्रास्त्र विनिमय से गाधीवध से सम्बद्ध व्यक्तियो का सम्बन्ध जोडनेवाला उपरिलिखित विवरण मौखिक था। अभियोग के सिलसिले में कुछ प्रत्यक्षदर्शी प्रमाण भी प्रस्तुत किये गये। श्री गणपत सभाजी खरात की गवाही इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।

श्री खरात विधान सभा के सदस्य थे। इस अभियोग के सन्दर्भ में पुलिस ने विभिन्न स्थानो पर तलाशी ली थी। उससमय श्री खरात के घर की भी तलाशी ली गई थी। ९-२-१९४८ को वहुत कुछ गोला वारूद प्राप्त हुआ। उसका पचनामा पी/२७९ क्रमाक से पजीवद्ध है। (मुद्रित अभिलेख भाग ४, पृष्ठ १४५-४६)

श्री खरात के अनुसार वडगे तीन चार सप्ताह पूर्व उनके यहाँ दो थैलियाँ लेकर गया। श्री खरात ने उनमें से एक थैली अपने एक मित्र श्री शेलार को और दूसरी श्री नागमोडे को दी। तलाशी के समय वे थैलियाँ श्री खरात के यहाँ नही मिली। वे पुलीस को श्री शेलार और श्री नागमोडे के यहाँ लेकर गये जहाँ दोनो थैलियाँ प्राप्त हुईं। उन्हें खोलने पर उनमें विस्फोटक अस्त्र और गोलियाँ प्राप्त हुईं। उस सामग्रीका विवरण इस प्रकार है —

दो भरे हुये हैण्डग्रेनेड, फ्यूजवाले दो पैकिट, पिस्तौल जैसे दीखनेवाले दो वडे वैरल जोडे हुए शस्त्र, उसी तरह का एक अन्य शस्त्र, गत्ते के एक वक्से में चौदह कारतूस, पाँच मैगजीन, प्रत्येक मे पाँच कारतूस (चार छुछे कारतूस) उन्नीस कारतूसो का एक डिब्बा, विभिन्न आकार वाले अडसठ कारतूसो का एक डिब्बा, एक सौ अट्ठासी कारतूसो का एक डिब्बा, (चार छुछे कारतूस)

श्री खरात की गवाही दिनाक २६-८-४८ को हुई। (मुद्रित अभिलेख १, पृष्ठ १७८-७९)।

दिनाक २०-९-४८ को श्री नामदेव तायप्पा नागमोडे और श्री होनाजी गणपत शेलार की गवाहियाँ हुईं। श्री खरात पुलिस को श्री नागमोडे के यहाँ दिनाक ८-२-१९४८ को ले गये थे। उनके यहाँ हुई तलाशी मे प्राप्त वस्तुएँ इस प्रकार थी —

एक डिब्बा, उस पर गन कॉटन वजन, स्लैब्ज पाइल्ड एलबी, मार्क १ नम्बर ४, ड्राईगन कॉटन पौंड ४–०, पानी ०–१३, "मेन्युफैक्चर्ड सी एफ डेट · १९४२ ग्रॉस वेट पौंड ··· डेट २–१२–४२ अंकित थे।"

एक पुडिया में हथगोले के ३४ टुकडे थे। उनमें से १३ टुकडो पर "पोलर एन एस गेलिग्नाइट" और २१ टुकड़ो पर "नोबल्स एक्स्प्लोजिव, अल्फ्रेड नोबल, ग्लासगो," अंकित था।

चार सफेद टुकडो पर जिनके बीच में डेढ इन्च के छिद्र थे, उस पर सी एफ ७५४४ ७८, ७५४४, १ पौंड १९४२, ४३, १९४२ अंकित था।

साढे तीन इन्च लम्बे दो कारतूस।

कुछ सफेद टुकडे जिनपर विभिन्न क्रमाक थे। फ्यूज वायर की चार कॉइल्स।

तांबे के रग की फ्यूज की कॉइल, तीन फ्यूज की कॉइल, एक पैकेट में एक काली फ्यूज वायर, चौदह डिटोनियर, उनमें से नौ बत्ती सहित, पाँच बिना बत्ती के तीन छोटे तांबे के टुकडे, एक तांबे की तार का बडल। (मुद्रित अभिलेख १, पृष्ठ २४७,२४८, २४९। पचनामा क्रमाक पी २५२। मुद्रित अभिलेख भाग ४, पृष्ठ १८९–१९१)।

नथूराम जिस कोठरी में रहते थे, उसकी तलाशी दिनाक ३१–१–४८ को हुई। उसके पचनामे का क्रमाक पी २२२ है। नथूराम के कमरे में एक पदार्थ मिला वह विस्फोटक था ऐसा श्री शापूर खुश्रो भावनगरी, इन्स्पेक्टर ऑफ एक्स्प्लोजिव्स्, वेस्ट सर्किल बम्बई, ने अपनी दिनाक ४–८–४८ की गवाही में कहा है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ २७५–७६)।

हम अभियुक्त बम्बई पुलिस-कार्यालय में पूछताछ के लिये रखे गये थे। उन दिनो फ्लेम थ्रोअर नामक अस्त्र हमे दिखाया गया था। उस अस्त्र का वर्णन मैंने पहले कभी नही पढा था। इस अस्त्र के द्वारा घनरूप पेट्रोल पर निशाना साधकर फेका जाता है। आग बनकर फेके गये उस अस्त्र से पेट्रोल पर निशाना लगते ही इतनी भीषण आग की लपटें निकलती है कि उसकी प्रचण्ड ऊष्णता से लोहा तक पिघल जाता है। शत्रु के टैको को नष्ट करनेवाला वह प्रभावशाली अस्त्र है।

इस प्रकार यह जो शस्त्रास्त्रसग्रह सामने लाया गया वह एक छोटे मोटे युद्ध के लिये पर्याप्त था। गाधी वध जैसे सीमित कार्य के लिये इतने शस्त्रास्त्रो का यह प्रपच अपने आप में असम्बद्ध और अस्वाभाविक था, किन्तु अभियोजको को यह सिद्ध करना था कि सम्बन्धित व्यक्ति शस्त्रास्त्रों के विनिमय और व्यवसाय में लिप्त थे। उसी सीमा तक इन प्रमाणो का लाभ उन्हें मिल गया। गाधी वध के लिये यह सब शस्त्रास्त्रसग्रह किया गया था यह

अभिप्राय उनका भी नही था। इस प्रकार उन शस्त्रास्त्रो के व्यवहार के पीछे उन दिनो नथूराम और आपटे का कोई अन्य उद्देश्य रहा होगा, यही तर्कसगत निष्कर्ष निकलता है। हाल ही में कुछ क्रातिकारी युवको ने नगरहवेली को मुक्त कराया है, उसी प्रकार हैदराबाद को प्राप्त करना नथूराम और आपटे को अभीष्ट होगा, अथवा श्रीकृष्णजी महाराज की गवाही के अनुसार दिल्ली में सभावित पाकिस्तान की प्रथम सविधान सभा को उडवा देने का उद्देश्य रहा होगा, या फिर पाकिस्तान को भेजी जानेवाली युद्ध सामग्री के मार्ग में बाधा उपस्थित करने की उनकी योजना रही होगी। कुछ भी हो उस समय कम से कम गाधी वध की रूपरेखा उनकी कल्पना में नही थी।

दिनाक १५-१-४८ को षडयन्त्र अस्तित्व में था ऐसा आभास देनेवाला एक विवरण सामने आया। वह है, श्री दीक्षितजी महाराज का वक्तव्य। "दिनाक १५-१-४९ को आपटे, वडगे, मदनलाल, नथूराम और करकरे मेरे पास आये थे" ऐसा उन्होंने कहा। षडयत्र के अभियुक्त के रूप मे जिन जिन व्यक्तियो पर अभियोग चलाया गया उनमे ये पाँचो व्यक्ति सम्मिलित थे।

दीक्षितजी महाराज कहते है, "मैं बाहर गया हुआ था पच्चीस, तीस मिनट पश्चात् लौटा तो वडगे अपने थैले में से कुछ वस्तुयें अन्य साथियो को दिखा रहा था। वे लोग परस्पर धीरे-धीरे बोल रहे थे। मेरी दृष्टि जिन वस्तुओ पर पडी वे थी दो सफेद ईंटें और दो हैण्डग्रेनेड। हैण्डग्रेनेड का उपयोग किस प्रकार करना चाहिये यह वडगे बता रहा था। मेरे विचार से वह गलत था। मैंने उन्हें सही तरीका बताया। तत्पश्चात् वे वस्तुयें थैले में रख दी गई। वे लोग जाने लगे। वडगे और आपटे पीछे रह गये थे। मैंने उनसे मेरे यहाँ आकर उन वस्तुओ का प्रदर्शन करने का कारण पूछा। उस समय तक मेरा उनका सम्बन्ध हैदराबाद मुक्ति अभियान तक ही सीमित था। मैंने सोचा कि उनका यह उपक्रम भी उसी सम्बन्ध मे होगा, इसलिये मैंने उनसे उनके आनेका कारण पूछा। उन्होंने बताया कि वे एक महत्वपूर्ण कार्य के लिये जा रहे है और उन्हें एक पिस्तौल या रिवाल्वर चाहिये। मैंने उनसे उस महत्वपूर्ण कार्य के विषय मे पूछा और कहा कि उस कार्य के विषय में जान लेने पर ही मैं उन्हे पिस्तौल अथवा रिवाल्वर देने पर विचार करूँगा, दोनो ने अपने कार्य के सम्बन्ध में—बतलाना स्वीकार नही किया। अब वे जाने लगे तो मैंने वडगे को रोका। वडगे ने थोडी देर में लौटकर आने का सकेत किया और वे दोनो चले गये। पद्रह, बीस मिनट पश्चात् जब वडगे आया तो मैंने उससे उस कार्य के सम्बन्ध में पूछा वडगे ने फिर आने और उस कार्य के विषय में बताने का आश्वासन दिया "

(मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १५८-१५९).

गवाहियो की असगति और अप्रामाणिकता देखने से तो स्पष्ट है कि उस समय बडगे को वह "महत्त्वपूर्ण" कार्य ज्ञात नही था। बडगे के अनुसार, "दीक्षितजी महाराज के घर से हम तीनो (आपटे, नथूराम, बडगे) आगन मे आये, वहाँ आपटे ने मुझसे दिल्ली जाने के सम्बन्ध में पूछा।" और बडगे के दिल्ली जाने का कारण पूछने पर उसे—गाधी वध की योजना ज्ञात हुई। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ ८४)। यह असगति छोड दी जाय तो दिनाक पन्द्रह को वह षडयन्त्र मे समाविष्ट हुआ ऐसा माना जा सकता है, क्योकि उसके अनुसार वह दिल्ली गया था।

डा० जगदीशचन्द्र जैन का कहना है कि मदनलाल ने उन्हे गाधी वध का पूर्वाभास दिया था। किन्तु समय के सम्बन्ध मे वे काफी अस्थिर है। वे कहते है कि जनवरी के पहले सप्ताह के अन्तिम दिनो के आसपास मदनलाल उनसे मिला था। दो-तीन दिन पश्चात् वह फिर उनसे मिला तब उसने उक्त सूचना डा० जैन को दी थी। इस सूचना के दो दिन पश्चात् वह फिर उनसे मिला और इसके पश्चात् एक दो दिन के बाद जब वह अन्तिम बार मिला तो वह दिल्ली जाने की तैय्यारी मे था। दिल्ली से लौटकर मदनलाल ने फिर उनसे मिलने की बात कही ऐसा डा० जैन का कहना है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १३१-३२)।

हम एक बडे नेता को मारने वाले है ऐसा सकेत मदनलाल ने जिस दिन डा० जैन को दिया उस दिन श्री अगदसिह नामक एक गृहस्थ भी वहाँ उपस्थित थे किन्तु ठीक उसी समय वहाँ से चले गये थे ऐसा डा० जैन ने कहा है। इन श्री अगदसिह की गवाही दिनाक १३-८-४८ से १६-८-४८ तक हुई। दिनाक और दिन के सम्बन्ध मे वे भी निश्चित नही है। उनके अनुमान के अनुसार वह दिन १० जनवरी का भी हो सकता है और ११ का भी। या तो वह शनिवार था या रविवार। (मुद्रित अभिलेख भाग १ पृष्ठ १४७)। डा०जैन के साथ श्री अगदसिह का जो सभाषण तत्पश्चात् हुआ होगा उसका कोई लिखित सबूत श्री अगदसिह ने नही रखा था।

श्री मोरारजी देसाई से डा० जैन की भेंट २१-१-४८ को हुई थी। मोरारजी भाई की गवाही के अनुसार, प्रा० जैन के विवरण में अगदसिह का उल्लेख नही आया था। (So for as I remember, Professor Jain while he was narrating his story to us, had referred to no Angad Singh। (मुद्रित अभिलेख ग्रथ १, पृष्ठ १६९)। उसके पश्चात् डॉ० जैन की श्री मुरारजी से भेंट दिनाक २४-१-४८ को हुई थी और उसके बाद ३ और ४ फरवरी १९४८ को हुई थी। (श्री मोरारजी की गवाही मुद्रित अभिलेख ग्रन्थ पृष्ठ १६७) डॉ० जैन के कथनानुसार, उन्होने उक्त समय उन्हे अपना लिखित निवेदन

कलमवन्द कर किसी को भी नही दिया था। (I did not give the facts of the case to any one in writing between the period from 21st January 1948 till 17th February 1948) [मुद्रित अभिलेख ग्रन्थ १ पृ० १३३]

श्री मोरारजी की गवाही के अनुसार-- "बम विस्फोट की घटना के तीन चार दिन पूर्व मदनलाल दिल्ली के लिये रवाना हुआ था, ऐसा उन्होने (डॉ० जैनने) वताया। दिन के सम्बन्ध मे मुझे निश्चित स्मरण नही। मदनलाल और उसके मित्रो ने एक वडे नेता को मारने का निश्चय किया है ऐसा मदनलाल ने दिल्ली रवाना होने के पूर्व मुझसे कहा था ऐसा डा० जैन ने कहा।" (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १६६)।

इस प्रकार डा० जैन का वक्तव्य दिनाक १७-२-४८ तक लिपिवद्ध नही हुआ था। जो लिपिवद्ध नही हुआ उसमें आगे पीछे किंचित परिवर्तन की सभावना रहती है। किसी एक सत्य सूत्र में, जिस पर पूरी घटना आधारित है, सोच समझ कर परिवर्धन किया जा सकता है। इस परिवर्तन के पीछे कोई उद्देश्य रहे ऐसा भी आवश्यक नही। कदाचित् इस प्रकार के हेर फेर के परिणामो का परिवर्तनकर्ता के लिये कोई महत्व भी नही होता।

प्रमाणो के अनुसार दिनाक १५ की रात को मदनलाल और करकरे दिल्ली के लिये रवाना हुए और १७ के प्रात.काल दिल्ली पहुँचे। मदनलाल और श्री जैन की उपरोक्त चर्चित भेंट इस प्रकार चौदह या पन्द्रह जनवरी को ही सभव हो सकती थी। श्री जैन आदि की गवाहियो के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि दिल्ली जाने के पूर्व मदनलाल षडयन्त्र का एक अग था परन्तु दिनाक सम्बन्धी किसी निश्चित वक्तव्य के अभाव मे षडयन्त्र की तिथि के अनुसधान का उद्देश्य पूरा नही होता।

दिनाक १३-१-४७ को नथूराम ने अपनी दो बीमा पॉलिसियो का उत्तराधिकार सौ० चम्पूताई आपटे (नाना आपटे की पत्नी) और सौ० सिन्धु गोडसे (गोपाल गोडसे की पत्नी) के नाम किया। ऐसी गवाही ओरिएन्टल गवर्नमेन्ट सिक्योरिटी लाइफ-इन्श्योरेन्स कम्पनी की ओर से दिनाक १०-२-४८ को हुई।
(मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १४४—१४५)।

बीमा के लिये उत्तराधिकारी की नियुक्ति दैनिक जीवन की एक सामान्य घटना है। सामान्यतया व्यक्ति के जीवन की स्थिरता या अस्थिरता की दृष्टि से वारिसदार पत्र लिखने के कुछ नियम होते है। वृद्धावस्था होने पर, रोगग्रस्त होने पर, अंग भंग होने पर, किसी दूरस्थ देश की यात्रा के पूर्व, किसी सङ्कटापन्न

कार्य के प्रारम्भ करने पर अथवा युद्ध क्षेत्र में जाने पर संभावित मृत्यु की अवस्था में बीमा के रुपये प्राप्त करने मे स्वजनो को कोई कठिनाई न हो इस उद्देश्य से उत्तराधिकार पत्र लिखे जाते है।

उपरोक्त स्थितियो के अतिरिक्त भी यदि कोई उत्तराधिकार पत्र लिखता है तो कोई तकनीकी आपत्ति नही होती। क्योकि किसी की मृत्यु कब होगी यह कोई नही कह सकता। इसलिए बीमा की योजना के साथ ही उत्तराधिकार पत्र की भी सुविधा सलग्न होती है। उत्तराधिकार पत्र लिखने में असामान्यता क्या है? किन्तु अभियोजको को नथूराम द्वारा निर्दिष्ट उत्तराधिकार असामान्य प्रतीत हुआ, केवल आगे घटी घटनाओ के कारण।

नथूराम द्वारा निर्दिष्ट उत्तराधिकार के महत्वपूर्ण होने के निम्न कारण है

दिनाक १३ और १४ जनवरी १९४८ के दो दिनो में नथूराम ने मन में कुछ निर्णय निश्चित किये थे। उत्तराधिकार पत्र के दिनाक इस वस्तुस्थिति के परिचायक थे, यह अभियोजक न्यायालय को दर्शाना चाहते थे।

अधिकार-पत्र की भाषा इस प्रकार थी (बीमा पत्र क्रमाक ११६६१०२, राशि रुपये ३०००/-)।

"यदि मेरी मृत्यु हो जाय तो इस बीमे के रुपये मेरे मित्र की पत्नी सौ० चम्पूताई नारायण आपटे, २२, बुधवार पेठ, पूना, आयु ३२ वर्ष को दिये जाँय। यह उत्तराधिकार पत्र मैं, नथूराम विनायक गोडसे, इस स्थान पर" करता हूँ। पूना दिनाक १३ जनवरी १९४८, हस्ताक्षर न वि. गोडसे।"

(बीमा पत्र क्रमाक ११६६१०१. राशि रुपये ३०००/-) "' इस बीमा के रुपये मेरे छोटे भाई की पत्नी सौ० सिन्धुताई गोपाल गोडसे, आयु २५ वर्ष, को दिये जाँय पूना दिनाक १४ जनवरी १९४८ "

(" I Nathuram Vinayak Godse, hereby nominate my friend's wife Mrs. Champutai Narayan Apte, 22, Budhwar Peth, poona, aged 32 years, to be the person to whom the moneys secured by the within Policy shall be paid in the event of my death. Dated at Poona the 13th day of January, 1948. Sd/—(N. V. Codse).''

('I hereby nominate my younger brother's wife Mrs. Sindhutai Gopal Godse ' Dated Poona the 14th day of January 1948. Sd/-(N. V. Godse)'

मुद्रित अभिलेख–प्रमाण क्रमाक पी. १२९, पी १२८, भाग ४, पृष्ठ ७६ से ८४ तक).

अपने मन में किये गये निश्चय के अनुसार नथूराम को अपनी मृत्यु सन्निकट दिखाई देती थी, यह इस लेख से प्रकट होता है। क्योकि बीमा मे उत्तराधिकार की सामान्य अवस्थाओ के अनुरूप नथूराम की अवस्था न थी।

नथूराम ने यह उत्तराधिकार आपटे और गोपाल के नाम नही, प्रत्युत उनकी पत्नियो के नाम पर किये अर्थात् अपने निश्चय के फलस्वरूप आपटे और गोपाल के जीवन पर भी सकट की सभावना इन्हें थी। यह सब न्यायालय के समक्ष प्रदर्शित करना अभियोजको को अभीष्ट था।

षडयन्त्र का अर्थ है एक से अधिक अर्थात् दो या उनसे अधिक व्यक्तियो के द्वारा किसी अवैध कार्य के लिये योजनाबद्ध रूपरेखा का निर्माण करना और उसके अनुसार कार्यवाही करना (भारतीय दण्ड विधान धारा १२० अ)। किन्तु यदि नथूराम अथवा किसी अन्य एक व्यक्ति के मन में कोई विचार उत्पन्न हो और वह स्वय सभी सभावित परिणामो का उत्तरदायी बन कर उसके क्रियान्वयन के लिये कोई दुस्साहसिक किंवा अवैध कार्य कर डाले तो उसे षडयन्त्र की सज्ञा नही दी जा सकती। किसी के नाम किसी अपराधी ने उत्तराधिकार पत्र लिख दिया, केवल इसी आधार पर वे व्यक्ति अपराधी नही माने जा सकते जिनका उत्तराधिकारी से कोई सम्बन्ध है। परन्तु इस अभियोग में गोपाल गोडसे के विरोध में एक प्रमाण प्रस्तुत किया गया १४–१–७२ का।

भारतीय सेना की खडकी परिवहन सामग्रीशाला (मोटर ट्रान्स्पोर्ट स्टोअर सब डिपो) में गोपाल गोडसे (लेखक स्वय) उस समय सामग्री आवेक्षक (स्टोअरकीपर) के रूप में कार्य करता था। सयोग से दिनाक १४-१-४८ को गोपाल ने एक आवेदन द्वारा अधिकारियो से १५-१-४८ से २१-१-४७ तक की एक सप्ताह की छुट्टी मागी थी। (प्रमाण क्रमाक पी० १३२, मुद्रित अभिलेख भाग ४, पृष्ठ ८६)। किन्तु दिनाक १६–१-४८ को उसे परामर्शदात्री समिति (Advisory Board) के समक्ष प्रस्तुत होना था इसलिये उसकी छुट्टी १७–१–४८ से स्वीकार की गई। इस प्रमाण को प्रस्तुत करते समय अभियोजको का ध्यान गोपाल द्वारा प्रस्तुत आवेदन के दिनाक १४–१–४८ पर केन्द्रित था क्योकि नथूराम ने गोपाल की पत्नी के नाम उत्तराधिकार पत्र १४-१–४८ को लिखा और उधर गोपाल ने उसी १४ १–४८ में एक सप्ताह की छुट्टी के लिये आवेदन दिया था। इसलिये इन दोनों घटनाओं का समान दिनाक के कारण सम्बन्ध जोडकर गोपाल गोडसे को १४–१–४८ को परिकल्पित षडयन्त्र का एक घटक मान लिया गया। आपटे के सम्बन्ध में भी यही तर्क प्रस्तुत किया गया। नथूराम और आपटे १४–१–४८

को दोपहर ३ ३० की ट्रेन द्वारा पूना से बम्बई गये थे ऐसा दिनाक ३-८-४८ को हुई एक गवाही मे कहा गया है। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ १२३ २४)। आपटे की पत्नी के नाम नथूराम के १३-१-४८ को लिखे गये उत्तराधिकार पत्र का आपटे का नथूराम के साथ बम्बई यात्रा का सम्बन्ध जोडकर आपटे की बाद की गतिविधियो को लक्ष्य करके तेरह या चौदह जनवरी को परिकल्पित षडयन्त्र में आपटे को लिप्त करना अभियोजको को अभीष्ट था।

इस प्रकार १३-१-४८ और १४-१-४८ के दिन अभियोजको की दृष्टि मे अ यन्त महत्व के हैं। १३-१-४८ को नथूराम ने पहला उत्तराधिकार पत्र लिखा। क्या उसी दिन उन्होने मन में कुछ निश्चय किया होगा? इसका समाधान करने के लिए भारतीय राजनीति पर प्रभाव डालने वाली उन दो, तीन दिनो मे राजधानी दिल्ली में घटी घटनाओ पर ध्यान देना आवश्यक है। सरदार वल्लभभाई पटेल उस समय भारत के उप-प्रधानमन्त्री थे। पाकिस्तान और हिन्दुस्थान के अनेक विवादास्पद एव ज्वलन्त प्रश्नो पर गत कुछ महीनो से उच्च स्तर पर समझौते चल रहे थे। हिन्दुस्थान के विभाजन के समय पाकिस्तान के हिस्से के पचपन करोड रुपये उसे देने का प्रश्न भी चर्चा और समझौते का एक मुख्य विषय था।

यो इस प्रश्न पर विवाद का वास्तव में कोई कारण नही था। भारत ने विभाजन के समय पाकिस्तानवाले प्रदेशो पर जो ऋण था उसे चुकाना और चार वर्षो के पश्चात् पाकिस्तान की सुविधानुसार यह राशि उसमे उदारतापूर्वक वसूल करना, स्वीकार किया था। इसलिये पाकिस्तान के हिस्से का धन भारत हडप लेगा यह कल्पना भी मूर्खता की बात थी। किन्तु प्रश्न यही तक सीमित नही था। पाकिस्तान द्वारा कश्मीर पर कबाइलियो से करवाये गये आक्रमण तथा उक्त आक्रमण को प्राप्त पाकिस्तान के प्रत्यक्ष समर्थन से उत्पन्न विस्फोटक स्थिति का पचपन करोड रुपयो की अदायगी से घनिष्ट सम्बन्ध था। सरदार पटेल ने १२-१-४८ को पत्रकारो के बीच जो वक्तव्य दिया था उसमे हिन्दुस्थान की भूमिका अत्यन्त स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त हुई है।

उन्होने कहा—'कश्मीर पर' आक्रमण के प्रतिरोध की प्रक्रिया के रूप में इस सन्धि की (आर्थिक व्यवहार की) कार्यवाही को सम्प्रति स्थगित करके हमने न्यायोचित कार्य किया है। हम इस सन्धि के प्रति निष्ठावान हैं, वचनबद्ध हैं यह हमने पाकिस्तान सरकार को एक बार नही अनेक बार कहा है। किन्तु इस सधि में रुपया देने की निश्चित अवधि जैसा कोई बन्धन हमारे ऊपर नहीं है। पाकिस्तान ने अपनी सेना की सहायता से हमसे सशस्त्र सघर्ष छेड रखा है और उसके और अधिक विस्तार की भयानक सभावना है। ऐसी अवस्था मे सधि या

विच्छेदपूर्ण सम्भव है, ऋण के उत्तरदायित्व को स्वीकार करना, और सम्पत्ति का बँटवारा करना जैसे सन्धि मे समाविष्ट अनुबन्धो पर भी उसका विपरीत परिणाम होगा। उस दशा में पाकिस्तान किसी भी बहाने से सन्धि की शेष राशि प्राप्त करने के लिये अपना वाद प्रस्तुत नही कर सकेगा। (Indian Information dated 22-2-1948) :

(We were therefore fully justified in providing against aggressive actions in regard to Kashmir by postponing the implementation of the agreement. We have made it clear to the Pakistan Government more than once that we stand by the agreement which we reached. The agreement does not bind the Government of India to any fixed date for payment and we cannot reasonably be asked to make a payment of cash balances to Pakistan when an armed conflict with its forces is in progress and threatens to assume even a more dangerous character, which would be likely to destroy the whole basis of the financial agreement and would endanger other parts of the agreement, such as agreements for taking over of debt, division of stores, etc.)'

सरदार पटेल ने यह भी कहा—'कश्मीर के प्रश्न का निर्णय हुये विना हम कोई रुपया देना स्वीकार नही करेंगे, ऐसा मैंने उस समय स्पष्ट किया था।' (I had made it quite clear then that we would not agree to any payment until the Kashmir affair was settled)

तत्कालीन अर्थमंत्री श्री षण्मुखम् चेट्टी ने अपनी क्षमता पर विचार करके भारत की ओर से पाकिस्तान को उत्तर दिया—"सभी प्रश्नो के समाधान होने के पूर्व अपने न्यायपूर्ण मार्ग से, पडोसी राष्ट्र के उत्तरदायी मन्त्रियो की दादागिरी या मिथ्या प्रचार से डरकर हम विचलित नही होंगे।" (Indian Information dated 2-2-1948.)

(Meanwhile we will not be deterred from what we consider to be the right path by a campain of hectoring, bullying and scandalising on the part of responsible Ministers of a neighbouring country.)

आग बुझाने के दो मार्ग है। एक है आग पर पानी डालना और दूसरा है

आग को फैलाने वाली वस्तुओ को आग तक न पहुचने देना । कश्मीर पर आक्रमण के समय हमारी सेनायें आक्रमणकारियो को रोकने और उन्हे परास्त करने के लिये प्राणपण से जुटी हुई थी। भारत सरकारद्वारा पाकिस्तान को दी जानेवाली-धनराशि को रोक लेने की नीति युद्ध की अग्नितक ईंधन को पहुचने से रोकने की दूरदर्शितापूर्ण योजना से प्रेरित थी। गतवर्ष पाकिस्तान के द्वारा कश्मीर पर हुये आक्रमण को विफल करने के लिये स्व० शास्त्री के प्रधानमन्त्रित्व की छाया मे भारतीय सेना द्वारा लाहौर तक पहुँचने की घटना जैसी समयोचित और अभिनन्दनीय थी उतना ही गौरवपूर्ण भारतीय शासन का यह निर्णय था । रक्तपात को तत्काल रोकने का, शाति स्थापित करने का वह एक दूरदर्शी उपाय था। कश्मीर पर आक्रमण की गम्भीर वस्तुस्थिति के अनन्तर भारत द्वारा पाकिस्तान के हिस्से की धनराशि दे देने जैसा सद्भाव और औदार्य दिखाये जाने पर पाकिस्तान का हृदय परिवर्तन हो जायगा और वह आक्रमण को लौटा लेगा यह मानने को भारत शासन तैयार नही था। पूर्व अनुभवो से उसके हाथ जल ही चुके थे इसलिए प्राणो को सकट में डालकर विप की पुन परीक्षा करने की उसकी इच्छा नही थी ।

गाधीजी उन दिनो दिल्ली में ही थे। शासन के उत्तरदायी नेता और उनकी भेंटें होती रहती थी। राजकीय विपयो पर भी चर्चा होती थी। भारतीय शासन का यह निर्णय गाधीजी को नही जँचा। भारत द्वारा पाकिस्तान को इस तरह घेरा जाना गाधीजी को अहिंसा के आदर्शो के विपरीत प्रतीत हुआ। शासन यह निर्णय वदलने के लिये वाध्य होवें ऐसे प्रयत्न उन्होने किये परन्तु वे सफल नही हो सके। गाधीजी के दिनाक १२-१-४८ के प्रार्थना प्रवचन से ऐसा आभास मिलता है। वे कहते हैं—

"· मगर ऐसा मौका भी आता है जव अहिंसा का पुजारी समाज के किसी अन्याय के सामने विरोध प्रकट करने के लिये उपवास करने पर मजबूर हो जाता है। वह ऐसा तभी करता है जव अहिंसा के पुजारी की हैसियत मे उसके सामने दूसरा कोई रास्ता खुला नही रह जाता। ऐसा मौका मेरे लिये आ गया है।" (दिल्ली डायरी, नवजीवन प्रकाशन मदिर, अहमदाबाद पृष्ठ ३४४)

गाधीजी की इस मनोदशा का मूल कारण सरदार वल्लभभाई पटेल की पचपन करोड रुपये सम्वन्धी दृढता ही थी। किन्तु गाधीजी के उपवास का निर्णय सरदार पटेल को पसन्द नही आया और वे दिल्ली छोडकर वम्बई चले गये। इस तथ्य की पुष्टि मौलाना अवुल कलाम आजाद ने अपनी पुस्तक में की है।

प्रार्थना सभा मे व्यक्त किये गये विचारो के अनुसार दूसरे दिन से गाधीजी ने

अपना दुर्भाग्यपूर्ण अनशन प्रारम्भ कर दिया। गाधी जी का यह अनशन पाकिस्तान को पचपन करोड रुपये न देने के भारत सरकार के निर्णय के विरुद्ध था। यह स्पष्ट करना राजनीति के विद्यार्थियों के लिए आवश्यक नही है। गाधीजी के उन दिनो के वक्तव्य जनता की आंखो के सामने थे। हिन्दुस्थान के हितो की हत्या करके भी नवनिर्मित राष्ट्र पाकिस्तान के सुख साधन के लिए उनकी आतुरता से जनता परिचित होती जा रही थी। द्वि-राष्ट्र का सिद्धान्त उनकी दृष्टि मे साम्प्रदायिक था किन्तु इसके विपरीत मुस्लिम सम्प्रदाय का साम्प्रदायिक राष्ट्र हिन्दुस्थान मे ही स्थापित हो चुका था। गाधीजी की मान्यता थी कि उस मुस्लिम राष्ट्र के विस्तार पथ में यदि राजनैतिक कार्यवाही के रूप में भी हमने कोई बाधा उपस्थित की तो हम ससार की दृष्टि मे असाम्प्रदायिक धर्म निरपेक्षता के सिद्धान्त से च्युत हो जायेंगे। व्यावहारिक रूप मे यदि शासन मेरी बात नही मानता तो अपने प्राणो की बाजी लगाकर मैं उसे अपनी बात मनवाने पर विवश कर दूंगा, इसी अभिप्राय से गाधी जी ने—अनशन का मार्ग अपनाया है, ऐसा अनुमान करना राजनीति के विद्वानो के लिए कठिन न था।

गाधीजी के अनशन के सन्दर्भ में भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की। गाधी जी के अनशन का ऊपरलिखित अर्थ लगानेवालो का अनुमान युक्तियुक्त था यह इस विज्ञप्ति से स्पष्ट हो गया था। विज्ञप्ति इस प्रकार थी—

"गाधीजी ने देश से जो अपील (Appeal) की है उसके अनुसार हिन्दुस्थान और पाकिस्तान दोनो देशो के बीच सन्देह और सघर्ष के एक कारण को दूर करने का भारत सरकार ने निश्चय किया है। राष्ट्रीय सम्मान और राष्ट्रीय हित की दृष्टि से ऐसा करना सरकार को उचित प्रतीत होता है और यह सरकार के अधिकार क्षेत्र में भी है।

"इस उत्स्फूर्त भावना की तह में शासन का यह उद्देश्य है कि इस कार्य की सद्भावना को समझा जाय और परस्पर प्रेम सम्बन्धो का वातारण निर्मित हो। इस स्नेह सम्बन्ध के लिए आज गाधीजी यज्ञवेदी पर अपनी देह को होम रहे हैं। इस सद्भावना से उनका अनशन समाप्त हो और देश को उनकी अमूल्य सेवाओ का प्रतिदान देने का अवसर मिले।"

"भारत सरकार ने बकाया राशि के भुगतान की कार्यवाही तुरन्त करने का निर्णय किया है "

"शासन का यह निर्णय देश की दैदीप्यमान परम्परा के अनुसार शान्ति और सद्भावना की रक्षा के लिए गाधीजी के अहिंसक और उदात्त प्रयत्नो को विनम्र भेंट है।" (Indian Information dated 2 2-1948)

"The Government have decided to implement immediately the financial agreement with Pakistan in regard to the cash balances."

"This decision is the Government's contribution, to the best of their ability, to the non-violent and noble effort made by Gandhiji, in accordance with the glorious traditions of this great country, for peace and goodwill.")

इस सरकार द्वारा प्रकाशित विज्ञप्ति में भी कहा गया है कि भारत सरकारने सावधानी से विचार करने और गांधीजी से बातचीत करने के पश्चात यह निर्णय लिया है। (Indian Information dated 2-2-1948)

(The Government's decision in regard to payment of the cash balances to Pakistan has been taken after the most careful thought and after consulation with Gandhiji)

किन्तु भारत की सद्भावना से ओत-प्रोत यह प्रेम प्रवाह भी पाकिस्तान का हृदय हिला नहीं सका। उसने आक्रमण नहीं रोका, अन्य सीमाओं पर भी अतिक्रमण करके भारत को त्रस्त करना नहीं छोड़ा। पाकिस्तान से शेष हिन्दुओं को भगाने का क्रम पूर्ववत था यह सब इतिवृत्त पाठकों को ज्ञात ही है। यहां केवल १३-१-४८ का महत्व ही चर्चा का विषय है।

नथूराम और आपटे दैनिक 'हिन्दुराष्ट्र' का संचालन करते थे। ऊपर प्रकाशित अग्रणी ही 'हिन्दुराष्ट्र' में रूपान्तरित किया गया था। साम्प्रदायिकता के आधार पर मुस्लिम राष्ट्र के निर्माण की सम्भावना के साथ-साथ, हिन्दूराष्ट्र के सम्पाद-

कीय लेख उत्तरोत्तर अधिक प्रखर और उग्र होते गये । अनेक सम्पादकीय लेखों को अभियोजको ने प्रमाण के रुप मे प्रस्तुत किया है। (मुद्रित अभिलेख, भाग ४ पृष्ठ ९२ से १२३)।'

इन समाचारपत्रो से अनेक बार प्रतिभूति (जमानत) मागी गई थी। पाकिस्तान प्रत्यक्ष मुस्लिम राष्ट्र है इसलिये वहा हिन्दुओ की प्रताडना स्वाभाविक है किन्तु भारत मे मुस्लिम अनुनय का विरोध करनेवाले हिन्दुत्व निष्ठो का दमन हो रहा है और यह सब गाधी जी की एक पक्षीय विशिष्ठ नीति के कारण हो रहा है ऐसी भावना 'हिन्दुराष्ट्र' के अनेक सम्पादकीय लेखो में ध्वनित होती थी। गाधी जी के विरुद्ध 'हिन्दुराष्ट्र' के संचालको की भावनायें दिन प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी। उनका मत था कि गाधीजी को राजनीति से निवृत्त हो जाना चाहिये। नथूराम और आपटे शस्त्रास्त्रो के व्यवहार मे लिप्त थे। तथापि उनके इन लेखों से गाधीजी के वध के उद्देश्य की कोई पहल उनके द्वारा होती दिखाई नही देती।

गाधीजी के अनशन का समाचार दिनाक १२ को दूर मुद्रक (टेली प्रिन्टर) पर पढने पर समवत नथूराम और आपटे ने अनुमान लगा लिया कि गाधीजी का यह अनशन भारत सरकार के ५५ करोड रुपये सम्बन्धी निर्णय को बदलवाने के उद्देश्य से ही हो रहा है।

यहाँ एक दो बातें स्पष्ट करना आवश्यक है। पडयन्त्र के एक सदस्य के रूप मे मुझपर आरोप लगाया गया था । वह प्रमाणित भी हुआ और उसके कारण मुझे दण्डित किया गया। इसलिये कोई भी यही मानेगा कि पडयन्त्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म जानकारी मुझे अवश्य होगी । किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नही है । हम सब अभियुक्त न्यायालयाधीन होकर लाल किले के बन्दीगृह में रखे गये थे। वहा हम स्वतन्त्रतापूर्वक परस्पर बातचीत किया करते थे। उस वार्तालाप मे अनेक अज्ञात तथ्य ज्ञात होते रहते थे । पडयन्त्र कब रचा गया यह निश्चित रूप से ज्ञात न होने पर भी प्रमाणो के आधार पर तर्क करने में कोई बाधा नही थी। दूसरी बात यह कि राजनैतिक पडयन्त्रो में अनेक घटनायें पीछे तक अन्धेरे मे ही रहती हैं।

स्वातन्त्र्यवीर सावरकर ने कहा है—"इतिहास का प्रथम पृष्ठ कभी देखने को नही मिलता। उसका आरम्भ प्राय दूसरे पृष्ठ से ही होता है।।"

किसी भी राजनैतिक पडयन्त्र के इतिहास के बीच बीच के पृष्ठ लुप्त हो जाते है और उनका प्रकाश मे आना कभी भी सम्भव नही होता। १९६४ के नवम्बर मे वर्धा में मैंने सरदार भगतसिंह के सम्बन्ध मे एक चलचित्र देखा था । प्राय स्मरणीय घटनायें हमे स्मरण रहती है और पूरी कथावस्तु को आधार प्रदान करने के लिये काल्पनिक अनुमान का आश्रय लेना पडता है। और उस प्रक्रिया मे हम वस्तुस्थिति से पर्याप्त दूर तक चले जाते है इसका आभास मुझे उस चित्र को

देते समय बार-बार होता था । Facts are at times stranger than fictions अर्थात् बहुधा वास्तविक घटनाये उपन्यास से भी विचित्र हुआ करती है, इस अंग्रेजी कहावत का मैंने अनुभव किया ।

"Nine hours to Rama" नामक अमेरिकन उपन्यास मे यही हुआ है । इसका कारण यह लगता है कि षडयन्त्र के निमित्त षडयन्त्रकारियो और अन्य अनेक व्यक्तियो के परस्पर सम्बन्धो के विषय मे कोई भी रहस्योद्घाटन दोनो ओर से नही होगा ऐसा परस्पर विश्वास रहा होगा । यह लिखते समय मुझे पश्चात्ताप होता है कि यदि किन्ही सन्दर्भों में कुछ सूत्र में नथूराम या आपटे से पूछ लेता तो आज उनके विषय में बहुत कुछ लिख सकता था, किन्तु उनके द्वारा गोपनीय रखे गये तथ्य उनके साथ जो गये सो चले ही गये ।

शस्त्रास्त्रो के बीच विचरण करनेवाले नथूराम और आपटे की दृष्टि में और भी कई योजनायें आई होगी ऐसा प्रमाण में प्रस्तुत किये गये शस्त्रसभार से ही दिखाई देता है । किन्तु स्यात् किसी निश्चित योजना के कार्यान्वयन की स्थिति तक वे नही पहुँचे होगे इसलिये अपने जीवन के सम्बन्ध में सामान्यतया निश्चितता की स्थिति उस समय तक उनकी थी । दिनाक १३ के प्रमाण से ही ऐसा प्रतीत होता है कि वैसी निश्चितता उसके अनतर नथूराम के मन में नही रही ।

अपने दैनदिन व्यवहार में हम अनुभव करते है कि किसी विशिष्ठ कार्य के लिये रखी हुई राशि अनेक बार सहसा प्रस्तुत हुये किसी अन्य आवश्यक कार्य में व्यय करनी पडती है । किराये के लिये अथवा दूकानदार को चुकाने के लिये रखे गये पैसे, अथवा पैसो का एक बडा भाग अपने क्षतिग्रस्त वाहन या अपने आहत हाथ या पैरो की चिकित्सा के आकस्मिक कार्य में खर्च करने पडते है । गाधीजी के अन-शन का समाचार पढते ही अपनी अन्य योजनाओ को दूर रखकर भारत शासन की लोकतात्रिक कार्यपद्धति में गाधीजी के अवाछनीय हस्तक्षेप को रोकने के लिये अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी गाधी वधका कार्य सर्वप्रथम हाथ में लेने का नथूराम ने निश्चय किया होगा क्योकि उनके मतानुसार यह राष्ट्र के जीवन मरण का प्रश्न था । किन्तु उस एक व्यक्ति के मन में उत्पन्न हुआ विचार षडयन्त्र की सज्ञा से अभिहित नही किया जा सकता ।

दिनाक १२ की संध्या मे १३ के प्रात तक किसी समय नथूराम ने अपना विचार नाना को बताया होगा । नाना ने सहमति व्यक्त की होगी अथवा स्वय भी नथूराम की योजना मे भाग लेने का उत्साह दिखाया होगा । और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये दोनो ने परस्पर मिलकर आगे की योजना बनाई होगी । तथा-कथित षडयन्त्र का वही उद्गम हुआ । यही था वह अभागा क्षण । * * *

तीन

नथूराम की मन:स्थिति

गांधीजी द्वारा जनजागृति के लिये किये गये प्रयत्नो से नथूराम अपरिचित नही थे। उनका महत्व वे जानते थे। ऐसी स्थिति में गाधी वध का निर्णय करते समय उनकी मन स्थिति कैसी रही होगी यह देखना आवश्यक है।

दिनाक २४-११-६४ को कारागार से मेरी मुक्ति के चालीस दिनो पश्चात् ही भारत रक्षा अधिनियम के अनुसार मुझे फिर कारावास हो गया। चार मास के उपरान्त दिनाक २९-३-१९६५ को मैंने महाराष्ट्र के गृहमंत्री माननीय बाळा-राव देसाई को उस समय के चर्चित विषय पर एक पत्र लिखा था। उस पत्र में मैंने उपरोक्त विषय की किंचित चर्चा की है। जनमानस पर गांधी जी का प्रभाव किस प्रकार का था इसका वर्णन निम्न भागो में किया गया (परिच्छेदो के पूर्व क्रमाक मूल पत्र के अनुरूप हैं।)

३९ क्या गाधी वध पिस्तौल हाथमें लेने और गोली मार देने जैसी सामान्य घटना थी ? यदि कोई उसे इतनी सहज सामान्य घटना मानता है तो वह अज्ञानी है। उसे अनुभव नही है। कोई भी वध इतने सहज नही होता। फिर गाधी वध तो कदापि नही था।

४०. अन्तिम घटनाओ के सम्बन्ध मे गाधीजी से कितना भी मतभेद क्यो न हो, अन्ततोगत्वा गाधीजी के पीछे एक महान् जीवन का इतिहास खड़ा था।

४१ सत्याग्रह सिद्धान्त के सम्बन्ध में किसी का कुछ भी मत क्यो न हो, लोकमान्य के पश्चात् उत्पन्न हुई रिक्तता में गाधीजी ने सत्याग्रह के माध्यम से सामान्य जनता तक देशप्रेम की भावना और पराधीनता के दोषो की अनुभूति को पहुंचाया।

४३. सत्याग्रह के माध्यम से गाधीजी ने सामान्य जन के मन से बन्दीगृह के भय को नष्ट कर दिया।

४४. गाधीजी ने महात्मा की उपाधि स्वय धारण नही की। प्रत्युत जनता ने उन्हें यह आदर प्रदान किया था।

४५ देश की नई पीढी स्वतन्त्रता के गीतो की लय पर चरण रखती हुई आगे बढ रही थी। मुझे स्मरण है, उस समय नथूराम १७–१८ वर्ष के थे और मैं ७–८ वर्ष का (१९२७–२८)। गीत लिखने का नथूराम को शौक था। नये गीत वे मुझे कण्ठस्थ करा देते थे। "हो—परवशता झणि सोडी, तोडी पारतन्त्र्य-बेडी' (यह परवशता तुरन्त छोड दो और दास्यता की शृखला तोड दो।) इस प्रकार की कुछ पक्तिया मुझे अभी तक स्मरण है। उस समय उनका अर्थ मेरी समझ में नही आता था। एक दो वर्ष पश्चात् गणेश उत्सव के एक मेले मे मैंने उनका रचित एक गीत गाया था जिसका भावार्थ था—"हे विघ्नहर्ता। हमारी पराधीनता दूर करो। शत्रुओ का सहार करने की हमें शक्ति दो।" अभिप्राय यह है कि उस समय युवा पीढी स्वतत्रता की कल्पना से उत्स्फूर्त थी और यौवन की ओर अग्रसर होनेवाली पीढी इस कल्पना के सस्कार ग्रहण कर रही थी। गाधीजी के प्रयत्नो से यह सब हो रहा था।

४६ "महात्मा गाधी की जय" उस समय का रणघोष था और गाधी टोपी रणवेश। विद्यार्थियो में यह उत्साह इतना बढा चढा था मानो वह युद्ध ही लड रहे हो। उसी आवेश से यह रणवेश धारण करते थे और गगनभेदी गर्जना के साथ रणघोष करते थे। रणघोष करते थे और बेंत की मार खाते थे। जरी की टोपियां लुप्त हो रही थी और विदेशी वस्त्रो एव वेशभूषा के प्रति जनसामान्य में तीव्र घृणा का सचार हो रहा था।

४७ उस वय मे गाधी कौन है, कहाँ के है, अथवा अग्रेज कौन है, और कहाँ के है यह सोचने समझने की बुद्धि की क्षमता ही नही थी। उसी आयु मे "साबरमती सत जेलमा छे।" अथवा "जालिम सरकार नही रखना" जैसे गीत अर्थ न समझ में आने पर भी बालको के होठो पर रहते थे।

४८ सशस्त्र क्राति गाधीजी का सिद्धान्त नही था। किन्तु जनता में स्वराज्य चेतना का उत्साह इतने उत्कर्ष पर था कि लोग 'सरदार भगत सिह की जय' का उद्घोष करते समय स्वय को भी भूल जाते थे। भगतसिह की मनोदशा पर लिखा गया किसी का गीत—"भेटेन नऊ महिन्यानी" (नौ महिनो के बाद फिर मिलूँगा) घर घर गाया जाता था।

४९ साराश मे, गाधीजी उस समय उस पीढी के हृदय में, सामान्य जनता के हृदय में, कूटकूट कर समा गये थे। एक व्यापक चरित्र गाधीजी के पीछे था।

इस चरित्र से पूर्ण परिचित होने के कारण गाधीजी के इस चरित्र को पूर्ण विराम देने का निर्णय करने के पूर्व नथूराम की मन स्थिति क्या रही होगी इसका उल्लेख भी मैंने उसी पत्र में किया है। सम्वन्वित अश इस प्रकार हैं

५० साम्प्रदायिक समस्या के सम्वन्ध में गांधीजी की नीति अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हुई है, अव वे राजनीति से निवृत्त हो और राष्ट्र के निर्णयो में हस्तक्षेप न करें ऐसा अनेक काग्रेसी नेताओ का मत था यह सत्य है। किन्तु ऐसा मत रखना पृथक बात है और गाधीजी के जीने का अधिकार जो परमात्मा ने उनके भाग में दिया होगा, छीन लेना पृथक बात है।

५१ सरदार पटेल का गाधीजी की नीति के सम्वन्ध में मत और गाधीजी द्वारा "पटेल अव मुझसे नही पूछते और मेरी ओर आनाकानी करते हैं" जैसे विचार व्यक्त करना इस पृष्ठभूमि पर गाधी वध के पीछे सरदार पटेल का हाथ था ऐसा सदेह व्यक्त किया जाता है। किन्तु ऐसा सन्देह पटेल के प्रति अन्याय है। अधिक से अधिक पटेल त्याग-पत्र दे देते। मैंने सुना है, यदि ३० जनवरी अथवा उसके आस पास गाधी वध न होता तो सरदार पटेल के त्यागपत्र का समाचार हमें पत्रो में पढने को मिलता। मुझे लगता है कि श्री एच व्ही आर अय्यगार इस सम्वन्ध में अधिक प्रकाश डाल सकते है।

५२ पाकिस्तान से आये निर्वासितो की भावनायें उन दिनो वहुत क्षुब्ध थी। यह कैसा स्वराज्य मिला है ? बिना भूकम्प के ही उनके पैरो के नीचे की धरती खिसक गई। ऐसी उनकी अवस्था हो गई थी। रक्तरजित जनसमूह वेगवती नदी के प्रवाहसा चला आ रहा था।

शेक्सपीयर ने एक स्थान पर एक अलकारिक वाक्य लिखा है—"यदि घावो के पास जिव्हा होती तो वे अपनी पीडा चीख-चीख कर व्यक्त करते।" यहाँ तो प्रत्येक निर्वासित अपने आप में एक चलता फिरता घाव था और उसके पास जिव्हा भी थी। चाहने पर भी समाचार पत्र जिस क्षोभ को व्यक्त नही कर सकते थे उसे निर्वासितो के विराट समूह की लक्ष लक्ष जिह्वाओ से निकलने वाले उद्गार उच्छ्वास, सम्पूर्ण वायुमडल में भर रहे थे। अणु विस्फोट के होनेवाले विष-विस्तार के समान देश का वातावरण क्षुब्ध होता जा रहा था।

५३ शोक के उद्वेग से मानव अन्त करण शाप देता है। गाधीजी को मर जाना चाहिए, गाधी मरता है तो मरने दो, उसके कारण हमारा सर्वस्व लुट गया है, इस प्रकार के उद्गार सार्वजनिक स्थानो पर असंख्य कण्ठो से वरवस निकल पडते थे।

५४ फिर भी शाप देना पृथक वात है और गाधीजी को मार डालना पृथक।

५५ यदि अमुक को न मारा गया तो वह हमें मार डालेगा यह आशका भी हत्या करने पर विवश करती है। किन्तु नथूराम गाधीजी को न मारते तो गाधीजी नथूराम को मार डालते ऐसी भी कोई सभावना इस प्रकरण में नही थी।

५६ आत्म समर्पण के उदाहरण भी कभी कभी मिलते है। हत्या करके रक्त-रजित शस्त्र के साथ आरक्षी या न्यायालय के सम्मुख जाकर हत्यारे के द्वारा अपना अपराध स्वीकार करने जैसी घटनायें, पढी जाती है। "मुझे अधिकार नही था फिर भी मैंने विधिको अथवा कानून को अपने हाथ में लिया और अमुक को मार डाला। आत्मरक्षा के लिये नही प्रत्युत अमुक कारणो से मैंने ऐसा किया है। मैं विधिको तोडना नही चाहता इसलिये मुझे यथाविधि दण्ड दिया जाय।" ऐसा कहकर स्वय फासी को निमन्त्रण देना आत्मसमर्पण का मार्मिक उदाहरण है। किन्तु यहां तो ऐसी स्थिति थी कि मूलत. हत्या ही आत्मसमर्पण की अपेक्षा अत्यन्त कटु हो।

५७. एक प्रकार से वह हालाहल-पान था। आप कल्पना कर सकते है। गाधीजी ने एक सम्पूर्ण पीढी को प्रेरित और कार्य प्रवृत्त किया था। नथूराम भी उसी पीढी के थे। कालान्तर में प्रवाह के पलट जाने पर भी प्रारभ में मन पर पडे प्रभाव का सर्वथा मिट जाना सभव नही है। देश में गाधीजी के श्रद्धालु असख्य थे। गाधी हत्या का अर्थ था श्रद्धालुजनो की भावनाओ को ठेस पहुँचाना। नथुराम न ही पाकिस्तान से निष्क्रमित विस्थापित थे न उनका गाधीजी से कोई व्यक्तिगत वैर ही था। मानव जीवन का महत्व न समझनेवाले निष्ठुर लोगो में वे नही थे। इस पृष्ठभूमि पर गाधीजी की हत्या का कठोर कर्तव्य निश्चित करते समय उनके मन में भावनाओ का सघर्ष नही हुआ होगा यह कैसे सभव है। अपने गुरुजन को युद्धभूमि मे अपने सम्मुख खडे देखकर महाभारत में 'गाडीव स्रसते हस्तात्' ऐसी अर्जुन की स्थिति हुई थी। उसे आंखो के सामने रखकर नथूराम की मनोदशा का अनुमान किया जा सकता है।

५८ मूलत रक्तपात धर्म नही है। गीता में भी रक्तपात को धर्म बताकर उसका समर्थन नही किया गया। युद्ध दोपलिप्त कर्म है, और कर्म मनुष्य का अनिवार्य धर्म है, इसलिये युद्ध करो, गीता का यह अभिप्राय है। मनुष्य का सहज स्वभाव शाति है। वही स्वाभाविक धर्म है। रक्तपात तो दुर्घटना ही है।

५९. यह रक्तपात युद्ध नही था। द्वद्व भी नही था। इस प्रकार के रक्तपात की एक विशेपता है। हत्या के पूर्व मारे जाने वाले के प्रति जन भावनाएं कितनी भी तीव्र और क्षुब्ध क्यो न हो, हत्या के पश्चात् उसके समस्त दोप उसके रक्त मे धुल जाते है। उसके चरित्र का कृष्ण पक्ष दब जाता है और उज्वल पक्ष और

चार

गांधी वध का वह दिन

"डॉक्टर! मेरे शरीर की परीक्षा कीजिये। मेरा हृदय, मेरी नाडी आदि व्यवस्थित है या नही, देखकर बताइये।"

गांधी हत्या की घटना के कुछ ही समय पश्चात् नथूराम की शारीरिक परीक्षा के लिये बुलाये गये डॉक्टर से नथूराम ने कहा। नथूराम के अनुरोध पर डॉक्टर ने उनके हृदय और नाडी की परीक्षा की और सब कुछ पूर्णतया सामान्य और सुव्यवस्थित होने की घोषणा की।

लालकिले के विशेष वंदीगृह में निवास करनेवाले हम न्यायाधीन वन्दी परस्पर बातचीत किया करते थे। जैसा मैं पहले लिख चुका हूं, वास्तव में, इस अभियोग के सभी अभियुक्तो को गाधी वध के पूर्व किसी योजना या षडयन्त्र का पूरा पूरा ज्ञान न था। जिन घटनाओ का ज्ञान नही हो ऐसी घटनायें सभी के लिये कुतूहल का विषय था। हमारी बातचीत का मुख्य केन्द्र विन्दु यही था।

न्यायालय में प्रतिदिन होने वाली गवाहियो की सत्यता के संबध मे और उनमें छोडे गये तथ्यो और जोडे गये प्रसगो के सम्बन्ध में भी हम परस्पर चर्चा करते थे। गवाहो की प्रश्न-परीक्षा के लिये कौन से प्रश्न अपने अभिभाषक को हमें सुझाने चाहिए, इनका निश्चय भी इसी बातचीत में होता था।

गवाह के वक्तव्य की भी सत्यासत्यता हम वास्तविक घटना के आधार पर परखते थे। बहुधा ऐसा भी होता था कि गवाह सच्चा अथवा वास्तविक, पर असली बातो मे कुछ बातें असत्य होती थी। प्रश्न परीक्षण मे यह असत्यांश न्यायाधीश पर प्रकट हो जाता था और न्यायाधीश भी इसे गवाही के उस भाग

को अस्वीकार करते थे। किंतु कभी-कभी प्रश्नपरीक्षण में भी असत्य का खण्डन कठिन हो जाता था। उस स्थिति में वह असत्य ही अभिलेखो में सत्य बनकर प्रतिष्ठित हो जाता था।

कभी-कभी किसी घटना का दूसरी घटना से सम्बन्ध जोडने के लिए किसी गवाह को खडा कर दिया जाता था और सम्बन्धित घटनाएँ तो सच्ची होती थी किन्तु गवाह नकली एवं झूठा होता था। हमारी चर्चा का यह भी एक मनोरंजक विषय था। बहुत सावधानी और सतर्कता से खडे किये गये ऐसे गवाहो की झूठी गवाही को अप्रामाणिक सिद्ध करना असभव हो जाता था।

यहाँ मेरा यह अभिप्राय नही है कि शासन ने अभियुक्तो पर झूठा अभियोग चलाया अथवा असत्य आरोप लगाये। अभियोग की पुनर्रचना अथवा प्राप्त दण्ड का निराकरण अब समयातीत विषय हो गये है और न्यायाधिकरण पद्धति से परे हैं। इसलिये अभियोग की असत्यता का सकेत असगत भी है अनावश्यक और और तर्कसगत भी नही है। आशय यह है, कि गाधी वध सम्बन्धी सत्य को जानने के लिये न्यायालयीन अभिलेख का अध्ययन पर्याप्त नही है। बंदीगृह के प्राचीरो के भीतर की चर्चा का कुछ अंश आपकी जानकारी में आने पर ही आप न्यायालयीन अभिलेखो की सहायता से सत्य के निकट पहुँच सकते हैं। सत्यान्वेषण की दृष्टि से मेरी यह चर्चा शासन के लिये भी उपयोगी हो सकती है, ऐसी मेरी धारणा है।

पर्दे के पीछे, सीकचों के भीतर नथूराम और आपटे की परस्पर चर्चाएँ आज भी मेरे स्मृतिपटल पर चमक रही हैं। उनका कोई अश धूमिल नही पडा है। प्रथम दिन नथूराम के मुख से सुनी बातें तो स्मृति में तैरती रहती हैं।

अपने हाथो होने वाले गाधी वध के पश्चात् लोगो द्वारा अपना नाम किन-किन विशेषणो से संयुक्त किया जायेगा इसकी नथूराम को पूर्व कल्पना थी।

" लोग मुझे सिरफिरा या पागल बतायेंगे, कही मैं सचमुच पागल न मान लिया जाऊँ। उस दशा में, मानसिक विकृति की दशा में वध के आधार पर शासन को मुझ पर अपनी दया लादने का अवसर मिल जायगा अथवा बचाव पक्ष ही मुझे मनोविकारग्रस्त घोषित करके मेरे लिये दया की याचना करेगा।" नथूराम इस स्थिति के लिये कदापि तत्पर न थे। इसीलिये उन्होंने डॉक्टर से अपनी शारीरिक परीक्षा करने का अनुरोध किया था। डॉक्टर के अनुसार उनकी श्वास प्रक्रिया सामान्य और नाडी की गति उत्तेजनारहित थी।

कुछ भी हो, नथूराम द्वारा यह अवैध कृत्य मन की एक विशिष्ट दशा में सम्पन्न हुआ था, यह कोई भी स्वीकार करेगा। स्वय नथूराम भी यह मानते थे

कि उस दुष्कृत्य के पक्ष मे कोई वैधानिक तर्क नही दिया जा सकता। फासी ही इस कार्य का उपयुक्त दण्ड है, ऐसी उनकी भी धारणा थी।

मन की इस अवस्था के अनन्तर मानव मन की अन्य प्रवृत्तियो से वे शून्य नही थे। अपने असाधारण कृत्य से मैं गाधी-परिवार पर एक असह्य आघात करने जा रहा हूँ, इसकी उन्हें कल्पना थी। इस विषय में खेद प्रकट करने का अवसर उन्हें गाधी वध से थोडी देर पीछे ही मिल गया था।

पकडे जानेके अर्थात् गिरफ्तारी के कुछ समय पश्चात् नथूराम को पहले तुगलक रोड और पीछे पार्लमेंट स्ट्रीट के आरक्षी केन्द्र की कोठरी (हवालात) मे रखा गया था। अधिकारियो के साथ अनेक लोग उन्हे देखने के लिये आया करते थे। कोठरी का प्रहरी बीच-बीच में सीकचो के सामने खडा हो जाया करता था।

सीकचो के बाहर आकर खडे एक पुरुष से नथूराम की नजर मिली।

"मैं समझता हूँ, आप श्रीयुत देवदास गाधी है?" "हाँ! आप कैसे पहचानते है?" उस पुरुष ने प्रतिप्रश्न किया। मैं किसी विद्रूप, असंस्कृत और असभ्य व्यक्ति को अपने पिता के हत्यारे के रूप में देखूगा यह श्री देवदास की कल्पना रही होगी। नथूराम का सौम्य और स्पष्ट भाषण उनके लिये अकल्पनीय था।

"हम एक पत्रकार परिषद के सदर्भ मे एकत्र हुए थे। आप 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक के नाते वहाँ आये थे।" नथूराम ने कहा।

"और आप।"

"मैं नथूराम विनायक गोडसे, दैनिक 'हिन्दुराष्ट्र' का सम्पादक। मैं भी वही था। आप आज पितृहीन हो चुके है। मैं इसका कारण बना हूँ। आप पर और आपके परिवार पर जो वज्रपात हुआ है, उसका मुझे खेद है। आप विश्वास करें कि किसी वैयक्तिक शत्रुता या द्वेष से अथवा आपका अनिष्ट करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर मैंने यह कार्य नही किया।"

जिसके 'हत्याकारी' हाथो का रक्त अभी सूखा न हो, वह मनुष्य इतनी शाति से, सतुलित और सयत स्थितप्रज्ञ की भाँति वार्तालाप कर रहा है, यह देखकर श्री देवदास का कुतूहल जाग उठा। अपने पिता का अत करने वाले व्यक्ति से उन्हें घृणा होती तो उसमें कुछ भी अस्वाभाविक न होता। यदि वैसी घृणा का अनुभव उन्हें हुआ भी हो तो उन्होने उसपर नियत्रण रखा। पितृवियोग के क्षोभ को नियन्त्रित करके उन्होने पूछा—"तब आपने ऐसा क्यो किया?"

"कारण राजनैतिक और केवल राजनैतिक ही है।" नथूराम ने उत्तर दिया "क्या आप आधा पौन घटा सुन सकते है? अधिकारियो से पूछिये। आप सम्पादक है, पृष्ठभूमि आपकी समझ मे आ जायेगी।"

"बात मत कीजिये, आप आ जाइये।" समीप खड़े अधिकारी ने श्री देवदास से अनुरोध किया। गांधीजी के पुत्र होने के कारण श्री देवदास को नथूराम से दो-तीन मिनिट वार्ता की छूट दी गयी थी। अपने अपूर्ण कुतूहल के साथ श्री देवदास वहाँ से हट गये।

इस अभियोग का प्रमाण क्रमांक पी० ८० एक गोली के खोखे के सम्बन्ध में है। "महात्मा गांधी के पुत्र श्री देवदास गांधी ने पिस्तौल की गोली का खोखा हाथ में दिया। उस पर GECO/19 M M K अंकित है। उसे उस लेख के आधार पर बरामद किया, पुड़िया बनायी, राजमुद्रा अंकित की। हस्ताक्षर जसवन्त सिंह डी० एस० पी० नयी दिल्ली, समक्ष श्री देवदास गांधी, श्री गुरन लवरदार, दि ३१-१-४८ (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ ३७)।"

उपर्युक्त प्रमाण की पुष्टि के लिये श्री देवदास गांधी की गवाही प्रस्तुत नहीं की गयी। इस प्रसंग में श्री गुरनसिंह लवरदार की गवाही १९-७-४८ को हुई। (मुद्रित अभिलेख भाग १, पृष्ठ ७४)। यदि श्री देवदास को न्यायालय में बुलाया जाता तो नथूराम से हुआ उनका सभाषण उनकी गवाही में ही उद्धृत किया जा सकता था। तथापि गांधीजी के द्वितीय पुत्र श्री रामदास गांधी को लिखे गये पहले पत्र में ही नथूराम ने श्री देवदास के समक्ष व्यक्त किये गये अपने विचार दोहराये हैं। पूना के पास स्थित पानशेत का बाँध टूटने से बाढ आ गयी जिसमें आधा नगर प्रभावित हुआ था। उसी पानशेत की बाढ में सम्बन्धित साहित्य के भीग जाने पर भी सम्बन्धित पत्र पढे जाने योग्य रह गया इसलिए यह सन्दर्भ देना सभव हो सका है।

मई, जून १९४९ में शिमला के उच्च न्यायालय में अभियोग के पुनर्न्याय के आवेदन की सुनवाई चल रही थी। नथूराम को अम्बाला जेल से वहाँ लाया गया था। एक दिन बन्दिपाल ने उन्हें एक पत्र दिया। पत्र खोलने का कष्ट अधिकारी ही उठाते थे। उससे जिज्ञासा पूर्ति में विलम्ब नही होता था।

वह श्री रामदास गांधी का नागपूर से प्रेषित दिनांक १७-५-४९ का पत्र था। 'प्रिय नथूराम गोडसे' इस सम्बोधन के साथ श्री रामदास ने सर्वप्रथम अपना परिचय ही दिया है।—"जिनकी हत्या करने पर आपको विलक्षण अभिमान अनुभव होता होगा, प्रस्तुत पत्र का लेखक उन्ही का पुत्र है।" (The writer of this is the son of one you seem to take great pride in having assassinated)

पत्र भावपूर्ण है। आत्मीयता से परिपूर्ण। किंचित् विषयान्तर करके भी वह पत्र यहाँ देना चाहता हूँ। पत्र का भावानुवाद इस प्रकार है— 'मेरे पिताजी के नाशवान देह का ही आपने अंत किया है, और कुछ नही, इसका ज्ञान आपको

एक दिन होगा ऐसा मेरा विश्वास है। क्योंकि एक मुझ पर ही नही प्रत्युत सम्पूर्ण ससार के लाखो लोगो के हृदयो पर मेरे पिताजी के तत्वो का प्रभाव अभी तक विद्यमान है। सम्पूर्ण ससार के लोगो ने राष्ट्रो ने, मेरे पिताजी को जो श्रद्धाजलियाँ समर्पित की है उनसे यह सिद्ध हो चुका है।

" ससार का प्रत्येक व्यक्ति शाति के लिये अत्यत आतुर है यह आप जानते है। आण्विक शक्ती नही, प्रत्युत परस्पर की सहानुभूति (Mutual understanding) और एक दूसरे के प्रति आदर की भावना ही ससार में शाति ला सकती है। जो ऐसा कहते है और जिनकी यह मान्यता है उनमे वर्तमान युग के बड़े बड़े युद्ध प्रवर्तक (War lords) भी हैं। यह देखकर आपको विस्मय हुआ होगा। इस देश के लाखो लोग सत्य और अहिंसा इन सरल और सार्थक शब्दो में उस भावना का अनुभव करते हैं।

आपके मन को और दृष्टि को जिस कुहरे ने और भ्रात धारणा ने ढँक दिया है उस कोहरे और भ्रात धारणा के निराकरण में उपर्युक्त वस्तुस्थिति आपकी सहायता करेंगी ऐसी मुझे आशा है। इस भ्रात धारणा का निराकरण होते ही आप पछतायेंगे और आपने जो कृत्य किया वह सर्वथा अकरणीय और त्याज्य है उस सत्य का साक्षात्कार आपको हो जायगा। इसमें मुझे रच सदेह नही है चाहे वह कृत्य किसी धर्म सिद्धि के लिये हो अथवा राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो अथवा किसी और कारण से प्रेरित। आप शास्त्र समत और तर्कसिद्ध विचार पद्धति के समर्थक है। (You are a man of reason and logic)। समाचार पत्रो के अनुसार ऐसी अपने सम्बन्ध मे आपकी मान्यता है। इसलिये आप मेरे हृदय के व्रण की कल्पना कीजिये, ऐसा मेरा आपसे आग्रह है। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपने यह कृत्य करके अपना भी कोई बहुत प्रिय कार्य नही किया है यह आपको प्रत्यक्ष ज्ञात पडेगा।

आपका सत्यैषी,
आर. एम्. गाधी.

"पुनश्च—दि १-५-४९ को मैंने हिन्दुस्थान के महाशासक (Governor General) को पत्र भेजा है यह आपको सूचित कर रहा हूँ। आपके विरुद्ध अभियोग चलानेवाले विशेष न्यायालय ने आपको जो दण्ड दिया है वह आपको क्यो नही भोगने देना चाहिए इसका कारण मैंने इस पत्र मे दिया है।

आर् एम् गाधी

इस पत्र के मिलने पर दूसरे ही दिन अर्थात् ३ जून १९४९ को नथूराम ने उत्तर लिखा और नियमानुसार शिमला के डिप्टी कमिश्नर के मार्फत भिजवा

दिया। 'प्रियबन्धु' के विशेषण से श्री रामदास गाधी को सम्बोधित करके उन्होने इस पत्र में अपनी मनोव्यथा व्यक्त की है। वे लिखते है—"मेरे हाथो से आपके परम पूजनीय पिता का दु खद अन्त हुआ उससे आपको और आपके सम्बन्धियो को जो मानसिक आघात पहुँचा है उसके विषय में एक मानव के नाते अपनी भावनायें व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नही है।" पत्र के अन्त में नथूराम पुन' लिखते है—"आपके पिता का मेरे हाथो से हुए निधन से आपको जो पीडा हुई है उसके लिए मैं पुन गहरा खेद व्यक्त करता हूँ।"

श्री रामदास गाधी के पत्र के शेष भाग के सम्बन्ध में भी उन्होने उसी पत्र में लिखा है। इस प्रसग में उसकी भी किंचित चर्चा करना अप्रासगिक न होगा।

गाधीजी के कुछ सिद्धान्तो और उन के लिये उनके द्वारा आविष्कृत जीवन पद्धति के स्थायित्व की ऊपर चर्चा हुई है। गाधीजी के भक्त गाधीजीवन पद्धति के उपासक होते है। श्री रामदास गाधी के अनुसार उस समय तक जन मन पर गाधीजी के तत्वो का पूर्ण प्रभाव था। इस दशा में सहानुभूति नही तो कमसे कम नथूराम के मत परिवर्तन के लिये ही सही गाधी भक्तो के असख्य पत्र नथूराम को मिलने चाहिये थे। गाधीजी ही तो मरे थे, उनके तत्व तो जनमानस में विद्यमान थे। श्री रामदास की यही मान्यता थी। गाधीजी के तत्वो में सबसे प्रमुख है हृदय-परिवर्तन। यदि गाधीजी के हत्यारे का हृदय-परिवर्तन हो जाता तो यह गाधीवाद की कितनी बडी विजय होती। गाधी-दर्शन के अनुयायियो को स्वाभाविक रूप मे इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए था किन्तु ऐसा प्रयत्न केवल एक ने किया, और वह एक थे श्री रामदास गाधी।

मत परिवर्तन न्यायालय का कार्य नही है। किसी के विधि-विरोधी कृत्य का विवेचन करके उसे उसके अनुरूप दण्ड का निर्देश मात्र न्यायालय की कर्तव्य-सीमा है। नथूराम चाहते थे कि न्यायालयेतर कोई व्यक्ति उनके मत के परिवर्तन का प्रयत्न करे। सशस्त्र क्राति पर विश्वास करनेवालो किंवा हिंसा में विश्वास करने वालो का हृदय-परिवर्तन गाधीवादी विचारपद्धति का मुख्य आधार है और भारत मे सहस्रो सच्चे गाधीवादी है ऐसी सर्वत्र मान्यता थी। नथूराम तत्वचिंतन न कर सकते हो अथवा वाद-विवाद करने की सामर्थ्य उनमें न थी, ऐसी बात नही थी। उनका मानसिक सतुलन अन्त तक सुस्थिर था यहाँ तक कि फाँसी के दण्ड के प्रति तनिक भी आतकित न होते हुए एक स्थितप्रज्ञ पुरुष के समान उन्होने उच्च न्यायालय में नौ दिन तक अपने पक्ष का युक्तियुक्त और तर्कपूर्ण प्रतिपादन (वकालत) स्वय किया था। उन्होने किसी महाविद्यालय की उपाधि प्राप्त नही की थी यह सत्य है किन्तु फिर भी अध्यवसाय और चिंतन ने उनकी मेधा को अकल्पनीय विस्तार प्रदान किया था। स्वयं न्यायमूर्ति को उनकी तर्कतीक्ष्ण बुद्धि और

भाषा पर अद्भुत अधिकार की सराहना करनी पड़ी थी। अपने निर्णय में उन्होंने कहा है—

"उसे मेट्रिकुलेशन का प्रमाण पत्र लेने का भी यश नही मिला है तथापि उसका पठन अत्यत प्राजल है। इस न्यायालय में अपने पक्ष का प्रतिपादन करते समय उसने अग्रेजी भाषा पर अपने उच्चतम अधिकार का और प्रशसनीय सुस्पष्ट विचारक्षमता का परिचय दिया है।" (चक्री टकित निर्णय पत्र पृष्ट २०६)

अस्तु, नथूराम की इच्छा थी गाधीजी की हृदय परिवर्तन पद्धति का अनुभव कोई उन्हें कराये और नही तो कमसे कम दूसरे को समझने की सुविधा ही इस बहाने प्राप्त हो।

जब किसी विशिष्ट उद्देश्य से प्रेरित होकर कोई व्यक्ति उससे तद्रूप हो जाता है और मानसिक एकाग्रता की अतिम अवस्था तक पहुँच जाता है तो वह व्यक्ति भयातीत और प्रलोभनातीत हो जाता है। नथूराम जिस अवस्था तक जा पहुंचे थे उसके कार्य-कारण सम्बन्धो की ध्येयनिष्ठता की चर्चा यहाँ करना मेरा अभिप्राय नही है। विशेष न्यायमूर्ति द्वारा दिनाक १०-२-४९ को फासी का दड सुनाये जाने के पश्चात् नथूराम और उसकी मृत्यु आमने सामने थे। फासी की डोरी का आतक या शासको की दया का प्रलोभन उनके मनमे पश्चात्ताप उत्पन्न करने में असमर्थ थे। मन को उद्दीपित अवस्था में कोई कृत्य कर डालने के पश्चात् जब उत्तेजना शात होती है तब प्राय अपराधी का मन उसे इस विचार से कुरेदता रहता है कि वह उत्तेजित क्यो हुआ था ? इसी स्थिति को पश्चात्ताप की स्थिति कहा जाता है, किन्तु मन की उस उद्दीपित अवस्था का यदि कोई वैचारिक आधार है तो उस आधार की भ्रान्ति अपराधी को तर्कपूर्वक समझाने पर ही उसे अपने कार्य का अनौचित्य अनुभव होगा एवं मैंने नैतिक दृष्टि से कोई अपराध किया है, यह बोध होगा। यह अपराध बोध ही पश्चात्ताप की पूर्वपीठिका है।

पश्चात्ताप की भावना भी तत्वत निर्लिप्त और निरपेक्ष -होनी चाहिए। "मुझे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप है मुझ पर दया कीजिए।' इस प्रार्थना मे ध्वनित पश्चात्ताप निरपेक्ष नही हो सकता। उसके पीछे तो प्राणरक्षा की अपेक्षा निहित है। अपने उद्देश्य के प्रति पूरी निष्ठा के साथ खूब सोचने विचारने के पश्चात् नथूराम ने गाधीजी का वध किया था। फिर भी वे पश्चात्ताप करने को तत्पर थे यदि कोई उन्हें उनके विचारो की भ्रान्ति प्रमाणित करके समझा सकता। इस प्रकार के पश्चात्ताप से मेरे द्वारा किये गये अवैध कृत्य का परिमार्जन हो जायेगा, ऐसी नथूराम की मान्यता न थी। यदि कोई उन्हे पश्चात्ताप करा सकता तो भी उस पश्चात्ताप के आधार पर वे दण्ड से त्राण नही पाना चाहते थे। यदि किसी ने मेरे विचारो की भ्रान्ति और कृत्य का अनौचित्य प्रमाणित कर दिया तो तज्जन्य

पश्चात्ताप की भावना को सार्वजनिक रूप में भलीभांति व्यक्त करके मैं अपने कृत्य का विधिसम्मत फल प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँ, नथूराम की यही इच्छा थी।

अपने कार्य से गाधी-परिवार पर क्या बीतेगी, इसकी कल्पना नथूराम ने पहले ही की थी, इसलिए अवसर मिलने पर गाधीजी के आत्मीयो के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करने में उन्होंने सकोच नही किया किन्तु मन के किसी कोने में वे इतने निश्चल और निरुद्विग्न थे मानो उनकी अन्तरात्मा उन्हें कहती थी—'कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात् करिष्यस्यवशोऽपितत्', स्थितप्रज्ञता की इस आधारपीठिका पर आरूढ होने के कारण ही श्री रामदास गाधी के पत्र मे ध्वनित क्षमा दान जन्य प्राण रक्षा की सभावना की सीढी द्वारा फासी के तख्ते से उतर आने का प्रलोभन भी उन्हें विचलित नही कर सका। वे विचार विनिमय अवश्य चाहते थे किन्तु वह भी गाधीजी के ऐसे पट्ट शिष्यो के साथ जो राजनीति अथवा सत्ता से निर्लिप्त हो क्योंकि, ऐसे व्यक्तियो से विचार-विनिमय क्षमादान की अपेक्षा के कलंक से लाछित नही हो सकता था। उनके द्वारा श्री रामदास को भेजे गये पत्र का अविकल अनुवाद इस प्रकार है—

शिमला, दि० ३ जून १९४९

प्रिय बंधो श्री रामदास गाधी,

आपका १७ मई १९४९ का दयापूर्ण पत्र कल मिला। मेरे हाथो से आपके परमपूजनीय पिताजी का दु खद अत हुआ उससे आपको एव आपके सम्बन्धियो को जो मानसिक आघात पहुँचा है उसके लिये एक मानव के नाते अपनी भावना व्यक्त करने योग्य शब्द मेरे पास नही है, किन्तु इसके समान एक दूसरा पक्ष भी ध्यान देने योग्य है ऐसा मेरा मत है। अपने समस्त विचार कागज पर उतारने की परिस्थिति में मैं नही हूँ न ही आपसे प्रत्यक्ष भेंट करने की स्थिति में ही मैं स्वय को पाता हूँ किन्तु मेरी फासी के पूर्व मुझसे वदिगृह में मिलने मे आप अवश्य समर्थ है।

मैं एक तार्किक और शास्त्रसमत विचारोवाला मनुष्य हूँ, यह आपने सुना है, ऐसा आप लिखते है, किन्तु मैं प्रखर सवेदनाशील भी हूँ यह जानकर आपको विस्मय होगा। मेरी उन प्रखर सवेदनाओ में मातृभूमि की भक्ति मेरी सवेदना है।

आप कहते है कि मेरे मन से मेरे भ्रात विचार दूर होते ही एक दिन मुझे अपने कृत्य पर अवश्य ही पश्चात्ताप होगा और अपना अपराध मेरी समझ में आयेगा।

बन्धो! मेरा मस्तिष्क विचार ग्रहण के लिये खुला है, (I am an open minded man) और अपनी धारणा की भ्राति सुधारने के लिये सदैव तत्पर हूँ। परन्तु यदि मेरी कोई मान्यता गलत है तो उसे दूर करके मुझमें पश्चात्ताप

जाग्रत करने का मार्ग कौन सा है? निश्चित ही फासी का तख्ता नही, दया प्रदर्शन भी नही और मेरे दण्ड में छूट (Commutation) भी नही। इसका एक मात्र मार्ग है मुझसे मिलना और मेरी भ्रांति का मुझे ज्ञान करा देना। इस समय तक तो मुझे ऐसा कोई दिखाई नही दिया जो मुझे पश्चाताप करने पर विवश कर दे।

कुछ प्रमुख क्रिश्चियन धर्म प्रचारको ने मुझे बहुत से पत्र भेजे हैं। उनकी श्रद्धा के अनुसार और 'पवित्र' बाइबल की शिक्षाओ के अनुसार उन्होंने मुझे कुछ उपदेश देने का प्रयत्न किया है। उनकी यह भूमिका अर्थपूर्वक समझने योग्य है, किन्तु आपका ही पत्र पहला पत्र है जो आपके पिताजी की सुविदित अथवा सर्वविदित जीवनपद्धति के तत्वो से कुछ सीमा तक मिलता जुलता है। सचमुच यह विस्मयजनक है। मेरे पास गाली गलोच से भरे हुए अनेक पत्र आते है वे आपके पिताजी के किन्ही शिष्यो ने लिखे होगे ऐसा मैं नही समझता। कुछ भी हो मुझे आपसे अनुरोध करना है कि आप मुझसे मिलें। यथासभव अपने पिताजी के किन्ही प्रमुख शिष्यो के साथ मिलें। विशेषकर ऐसा शिष्य राजसत्ता से निर्लिप्त होना चाहिये। उस भेट में आप मुझे मेरी भ्रांति दिखा दीजिए अन्यथा दया का यह प्रदर्शन और कुछ न होकर धूल झोकना (Eyewash) मात्र है ऐसा मुझे सदा लगेगा।

यदि आप मुझसे प्रत्यक्ष मिलें और मेरे साथ आपका विचार विनिमय हो, चाहे वह भावनात्मक स्तर पर हो अथवा शास्त्रसम्मत विवाद के स्तर पर, तो कौन कह सकता है कि आप मेरे विचारो में परिवर्तन करा लेंगे और मुझ मे पश्चात्ताप जागृत कर सकेंगे अथवा मैं ही आपका मत-परिवर्तन करा लूगा और अपनी भूमिका का औचित्य आपसे मनवा लूगा।

आपको केवल सत्यतापूर्वक बोलना होगा केवल यही एक शर्त हमारे सम्भाषण के लिये होनी चाहिये।

आपके पिता के मेरे हाथो से हुये निधन से आपको जो पीडा हुई है उसके लिए मैं पुन आन्तरिक खेद व्यक्त करता हूँ।

आपका सद्भावी—

नथूराम विनायक गोडसे

पुनश्च—

यदि आपको उचित प्रतीत हो तो आप इस पत्र की प्रति भारत के महाशासक को भेज दें।

उपरि निर्दिष्ट दो पत्रो के पश्चात् और पत्र व्यवहार भी हुआ था। आवश्यक

होने पर उसे यथा स्थान उद्धृत किया जायेगा । साराश यह है कि आचार्य विनोबा भावे और श्री किशोरीलाल मश्रूवाला इन दो व्यक्तियो के साथ नथूराम से मिलने का श्री रामदास गाधी का प्रयत्न था। किन्तु उनका वह यत्न सफल नही हुआ। कारणो का विवेचन मैं नही करूँगा । यह भेंट नही हो सकी यह अच्छा नही हुआ। क्योकि ऐसी भेंट से स्यात् नथूराम का फाँसी के पूर्व हृदय परिवर्तन हो जाता और गाधीवाद एक तर्कसम्मत व्यावहारिक दर्शन हैं इसका प्रत्यक्ष उदाहरण आज की पीढी के समक्ष रखा जा सकता था।

अस्तु, श्री रामदास गाधी के पत्र से यदि नथूराम का कुछ समाधान हुआ होगा तो वह यह कि मानसिक विकृति के कारण मनुष्य जैसे पागल समझा जाता है वैसे वे नही समझे गये थे प्रत्युत वे एक विचारशील व्यक्ति हैं इसका यत्किंचित आभास बाह्य विश्व को हो गया है।

दिनाक ३० जनवरी की घटना के सम्बन्ध में जिन गवाहो को प्रस्तुत किया जायगा उनकी प्रतिपरीक्षा नही करनी है यह नथूराम ने पहले ही निश्चय कर लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन गवाहो के वक्तव्य अतिशयोक्ति और आत्म प्रवचना पूर्ण एव असत्य थे उनकी प्रामाणिकता का परीक्षण नही हो सका। ३० जनवरी की घटना के लिए एकमात्र मैं उत्तरदायी हूँ और न्यायालय का कोई लाभ नही होगा, अपनी इस धारणा के कारण नथूराम ने उन गवाहो के वक्तव्य ज्यो के त्यो रहने दिये।

गांधी हत्या का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर स्वीकार करके नथूराम ने स्वेच्छापूर्वक फाँसी स्वीकार की किन्तु गाधीवध के पूर्व और पश्चात के रोमाचकारी क्षण कैसे थे यह हमे यहाँ देखना है।

उन तीन गोलियो के छूटने की प्रक्रिया रुक रुक कर अथवा धीरे चल रही थी ऐसा हमें अनेक गवाहो के अनुसार प्रकट होता है। अनेक गवाहो का कहना है कि उन्होने त्वरित तत्परता और कुशलता से नथूराम को पकडा। सबसे पहले हमने ही नथूराम को पकडा यह तो प्राय सभी कहते है। नथूराम के पास ६०६८२४ क्रमाक वाली एक स्वचालित पिस्तौल थी उनमें सात गोलियाँ थी। रिवाल्वर में प्राय ६ गोलियो की व्यवस्था होती है। प्रत्येक गोली छोडने के लिये घोडे को बार बार दबाना पडता है किन्तु स्वचालित का घोडा दबाते ही सभी गोलियाँ लगातार एक के पश्चात् एक करके छूटने लगती है। यह कार्य बहुत तेजी से होता है। घोडे को दबाकर तत्काल छोड देने पर भी स्वचालित पिस्तौल मे एक ही गोली छूटना असंभव है। उतने समय में भी कम से कम दो गोलियाँ छूट जाती है।

नथूराम ने एक ही वार घोडा दवाकर तत्काल छोड दिया था। उनकी कल्पना थी कि इतनी अल्प अवधि में दो गोलियाँ छूटी होगी। किन्तु गोलिया दो नही, तीन छूटी थी यह उन्हें पीछे ज्ञात हुआ। अतिशीघ्रता से छूटने पर भी प्रत्येक गोली के छूटने की ध्वनि पृथक् पृथक् होगी। इसमें कोई सदेह नही। एक गोली की आवाज से दूसरी गोली की आवाज का अन्तर भी केवल मन मे ही गिनना सभव है। जीभ द्वारा शीघ्र उच्चारण से भी उससे व्यक्त नही किया जा सकता क्योकि उच्चारण का वेग वहुत वढाने पर भी वह गोलियो के छूटने के वेग से वहुत मद होगा। इसमें सन्देह हो तो अधिकारी व्यक्ति इस वस्तुस्थिति का अनुभव कर सकते है।

पुलिस सव इन्सपेक्टर श्री अमरनाथ की गवाही विशेप न्यायालय मे दिनाक ९-८-४८ को हुई। विडला भवन में गाधीजी की रक्षा के लिये नियुक्त आरक्षी दल के वे नायक थे। उन्होने कहा " मैं उस समय गाधीजी से अढाई, तीन पग के अन्तर पर वाईं ओर था। मैंने गोली की एक आवाज सुनी और साथ ही साथ उसका धूआँ देखा। कोई गोली चला रहा है ऐसा मुझे लगा। तव मैंने आगे घुसकर गोली चलाने वाले व्यक्ति को पकड लिया तव तक तीन गोलियाँ चलाई जा चुकी थी। वे गोलियाँ गाधीजी को लग चुकी थी। भीड मे से सार्जेन्ट, देवराजसिह आगे आगया था। उसने मारनेवाले की गर्दन पकडी और हाथ मे रिवाल्वर छीन लिया। रिवाल्वर में से धुआँ निकल रहा था। मारने वाला गाधीजी से ढाई पग की दूरी पर था "

३० जनवरी की घटना के सम्वन्ध में यह पहली गवाही थी। गवाही हो जानेपर नथूराम के वकील श्री वी वी ओक ने प्रति-परीक्षण के अभिप्राय मे नथूराम की ओर देखा। उनके द्वारा नथूराम ने न्यायालय को वता दिया कि ३० जनवरी की घटना के सम्वन्ध में अभियोजक जो भी गवाह प्रस्तुत करेंगे उनका प्रति-परीक्षण कराने की उनकी इच्छा नहीं है। न्यायालय के पूछे जाने पर भी पीछे उनके द्वारा यह आक्षेप तो नही किया जायेगा कि उन्हे अपने वचाव का अवसर नही दिया गया, नथूराम ने अपना निश्चय दोहरा दिया।

दिल्ली के एक व्यापारी श्री नन्दलाल मेथा की गवाही दिनाक ९-७-४८ को हुई। वे उस दिन विडला भवन मे उपस्थित थे। उन्होंने कहा — ". . गाधीजी अपने कक्ष से प्रार्थना स्थल की ओर चले तो उनके साथ दस-वारह व्यक्तियो का समूह था जिसमें मै भी सम्मिलित था। सहसा मैंने दो-तीन गोलियो की आवाज सुनी। मैंने आगे की ओर छलाग मारी। मेरे हाथ वधिक पर पडे उनके हाथ मे पिस्तौल थी। थोडी देर वाद ही तीन-चार लोगो ने वधिक को पकड लिया "

श्री मेथा ने अंत मे अपनी गवाही में संशोधन कर लिया। "... ..मेरा हाथ

हत्यारे पर पडने तक तीन-चार लोगो ने उसे पकड लिया था।" प्रति-परीक्षण नही हुआ।

पुलिस कॉंस्टेबल श्री रतनसिंह की गवाही भी उसी दिन हुई। बिडला भवन में जो सिपाही रखे गये थे उनमें वह भी एक थे। आपका कहना है—"मैंने एकाएक दो तीन गोलियो की आवाज सुनी तो मैं उस दिशा में दौडा जिससे आवाज आयी थी। श्री अमरनाथ और श्री धर्मसिंह ने हत्यारे को पकड रखा था यह मैंने देखा।"

न्यायालय के यह पूछे जाने पर कि क्या वे हत्यारे को पहचान सकते है श्री रतनसिंह ने नथूराम और आपटे की ओर इंगित करके उत्तर दिया कि उन दोनो में से किसी एक को ३० जनवरी के दिन घटना स्थल पर पकडा गया था। निश्चित रूप से दोनो में से किसे पकड़ा गया था, इसकी स्मृति उन्हें नही है।

दिनाक ९-७-४८ को हुई गवाही मे हेड कास्टेबल श्री धर्मसिंह (क्रमाक १६७६) ने कहा—"... मैं उस दिन प्रार्थनास्थल पर नियुक्त था। मैंने गोली की एक आवाज सुनी तो खुली जगह में होकर आगे बढा। इसी बीच दो और गोलियो की आवाज हुई। पिस्तौलधारी पुरुप को मैंने देखा। मैंने उसका दाहिना हाथ ऊपर उठाया। इतने में एक अन्य सैनिक ने आकर उसके हाथ से पिस्तौल छीन ली। हत्यारा गाधीजी से डेढ फुट की दूरी पर था।"

बिडला भवन के माली श्री रघुनाथ नाईक की गवाही २०-८-४८ को हुई। श्री रघुनाथ का कहना है: "मैं उस समय गाधीजी की दाहिनी ओर पाँच-दस कदमो की दूरी पर था। हत्यारा गाधीजी के सामने उसी समय आया था। वह किस ओर से आया, यह मैं नही कह सकता। पिस्तौल की आवाज सुनकर मैंने हत्यारे की ओर छलाग मारी। बीच में मैंने तीन गोलियो की आवाज सुनी। मैंने अपने हाथ के खुरपे से हत्यारे पर पीछे से दो प्रहार किये। खुरपा सात आठ इंच लम्बा रहा होगा। पीछे से ही मैंने हत्यारे को पकडा। उसे दो सिपाहियो और एक सैनिक ने भी पकड रखा था। सिपाहियो ने उसके हाथ की पिस्तौल ले ली थी।"

दिल्ली के एक अन्य व्यापारी श्री गुरुवचनसिंह केन्द्रीय निर्वासित समिति के सदस्य थे और कम्बलो एव शालो के निर्माण का कार्य करते थे। गाधीजी के पास उनका बहुत आना जाना था। उस दिन वे दिन के तीन बजे से ही बिडला भवन में थे। उन्होंने दि० ३०-८-४८ को अपनी गवाही में कहा—"लगभग पाँच बजे मैंने गाधीजी को प्रार्थना सभा के समय की स्मृति दिलाने के लिये आँखो से संकेत किया। प्रार्थना स्थल की ओर जाते हुए मैं मार्ग में एक दो व्यक्तियो से बातचीत में लगा रहा। गाधीजी के आगे एक-दो रास्ता बनाने के लिये चलते थे।

एक-दो व्यक्ति उनके पीछे होते थे अन्यथा मैं उनके आगे या पीछे रहता था। उस दिन गाधीजी के नियमित सेवको में से कोई भी उनके आगे नही था। श्री नदलाल वायी और और श्री वृजकृष्ण पीछे थे। प्रार्थनास्थल पर एक वडा समुदाय गाधीजी की प्रतीक्षा मे था। मैंने गाधीजी के आगे हो जाने का प्रयत्न किया, किन्तु आगे कुछ लडकियो और महिलाओ के होने के कारण वैसा न कर सका। तव मैंने उनके दूसरे पार्श्व से होकर उनके आगे जाने की चेष्टा की। इतने मे ही मैंने एक गोली की आवाज सुनी। वह आवाज किधर से आई यह मैं नही समझ सका। गाधीजी के आगे होने के लिए मैं प्रयत्नशील था। मैंने गोली की एक और आवाज सुनी। गोलियाँ चलानेवाले व्यक्ति को मैंने अपने सामने ही खडे देखा। उसके हाथो पर मेरे झपाटा मारने के पूर्व ही उसने तीसरी गोली भी दाग दी थी। तुरंत ही वहुत से लोगो ने हत्यारे को पकड लिया और मैंने अपना ध्यान गाधीजी की ओर मोड दिया...... "

इस आशय के वक्तव्य गवाहो ने दिये। सभी गवाहियाँ प्रस्तुत करने की यहाँ आवश्यकता नही थी, इसलिये उन्हें मैंने नही दिया है। उनके सम्पूर्ण सदर्भ मुद्रित अभिलेख के पहले भाग के पृष्ठ क्रमाक ५० से ५४, १५६, १७९, १८० पर पढे जा सकते है।

हम घटना के प्रत्यक्षदर्शी नही थे इसलिये वास्तविक घटनाक्रम को जानने की हम लोगो को जिज्ञासा हुआ करती थी। किसी गवाह के सम्वन्ध मे सदेह होने पर हम परस्पर चर्चा किया करते थे। पिस्तौल का धूआ देखने सम्वन्धी गवाह के विषय मे पूछने पर नथूराम ने कहा—"मेरे अनुमान से तो धुआँ निकला ही नही सूक्ष्म महक मात्र आयी थी।"

"तव शस्त्र विशेषज्ञ से ही क्यो न पूछ लें? उसकी गवाही तो अभीतक नही हुई है।" डॉ० श्री डी एन गोयल का वयान आगे चलकर २-८-४८ को हुआ। वे साइटिफिक लेवोरेटरीज के डायरेक्टर थे और शास्त्रो के विशेषज्ञ थे।

(भाग १ पृष्ठ ११८)।

किन्तु नथूराम ने कहा—"मान लो पिस्तौल से धुआँ न निकलना भी प्रमाणित हो गया तो अधिक से अधिक यही सिद्ध होगा न कि अमरनाथ ने अतिरजित और कल्पनापूर्ण वयान दिया है। किन्तु जव मुझे कोई वहाना खोजना ही नही है तो इस प्रति-परीक्षण का प्रपच क्यो? अपनी साक्षी तर्क सम्मत है या नही यह देखना अभियोजक का काम है।"

दिल्ली के इरविन हास्पिटल के प्रमुख डॉ. कर्नल वी. एल. तनेजा ने अपने वयान मे गाधीजी के शरीर पर पांच घावो का विवरण दिया। मृत्यु पिस्तौल की गोलियो से हुई यह अपना अभिमत भी उन्होने व्यक्त किया। जो कुछ डा० तनेजा

को कहना था उसकी प्रतिलिपि बचाव पक्ष को पहले ही दे दी गई थी इसलिए वकीलो में उस पर तर्क हो रहा था। गाधीजी की शव परीक्षा (पोस्ट मार्टम) नही हुई थी फिर कुछ विशेषज्ञो के अनुसार श्री तनेजा द्वारा देखे गये और उनकी रिपोर्ट में लिखे घाव पिस्तौल की गोली से होनेवाले घावो से साम्य नही रखते थे।

श्री तनेजा द्वारा गाधीजी की मृत्यु के कारण के सम्बन्ध में दिया गया मत ग्राह्य नही है, गाधीजी की मृत्यु गोलियो से नही हुई और यदि वह गोलियो से हुई भी है तो भी नथूराम के पिस्तौल की गोलियो से नही हुई और यदि उसी की पिस्तौल की गोलियो से हुई तो नथूराम ने उस पिस्तौल का उपयोग नही किया जो उसके हाथो से छीनी गयी क्योकि जो पिस्तौल छीनी गयी उससे शस्त्र विशेषज्ञ के अनुसार धुआँ नही निकल सकता और प्रत्यक्षदर्शियो ने गोलियो के साथ पिस्तौल से धुआँ निकलता देखा था। इस प्रकार अभियोग को एक पृथक मोड देने की बचाव पक्ष के वकीलो की इच्छा थी किन्तु नथूराम ने न्यायालय में स्पष्ट शब्दो में यह कहने का निश्चय किया था कि उनके द्वारा उपयोग किये गये पिस्तौल की गोलियो के घावो से ही गाधीजी का देहान्त हुआ। इसी कारण श्री तनेजा की गवाही के पश्चात् नथूराम ने अपने वकील को उनसे एक भी प्रतिप्रश्न नही करने दिया। दिनाक १२-७-४८ को हुई श्री तनेजा की गवाही पर न्यायमूर्ति की यह टिप्पणी ध्यान देने योग्य है—"प्रति-परीक्षण नही (Cross Examination Nil)," (भाग १ पृष्ठ ५५)। अतएव आज नथूराम की स्वीकारोक्ति की मृत्यु के कारणो के विषय में यदि कोई मुख्य सम्पुष्टि (Corroboration) है तो वह श्री तनेजा की रिपोर्ट ही है।

श्री तनेजा का प्रतिपरीक्षण नही होगा यह कल्पना अभियोजको ने भी नही की थी। श्री दफ्तरी ने आश्चर्य व्यक्त किया क्योकि उससमय प्रमुख अभियोजक वही थे। गवाही कुछ ही देर में समाप्त हो गई थी। परिणामत उसी शृङ्खला के जो अन्य गवाह उन्होने तैयार कर रखे थे उनके भी बयान सम्पन्न हो चुके थे।

गाधी वध के दिन नथूराम के सिर पर दो, तीन आघात हुए थे जिनके कारण घावो से रक्त बह रहा था। रघुनाथ माली ने अपने खुरपे से नथूराम पर प्रहार करने की अपने बयान में चर्चा की थी किन्तु नथूराम ने बताया—"माली बिल्कुल झूठ बोल गया है। हाथ में रखी जानेवाली छडी के दो-चार आघात मेरे सिरपर लगे थे किन्तु तत्काल नही, घटना के चार-पाँच मिनट पश्चात् डाक्टर ने मेरी चिकित्सा की। तबतक रक्त जम गया था। मेरे घावो का विवरण भी डॉ॰ ने लिखा है। उसमें घावो को मामूली (All apparent Simple) बताकर उन्हें ठोस शस्त्र प्रहारजन्य (Blunt) लिखा है।"

(सर्व प्रतिवृत्त भाग ४ पृष्ठ १८७ प्रमाण क्रमाक पी. २४९ पर)

नथूराम को पकड़ने में अपनी तत्परता का लगभग सभी गवाहों ने उल्लेख किया है, इस सम्बन्ध में नथूराम ने हमें बताया था कि, "मेरे हाथ में पिस्तौल थी, गोलियाँ मैं दाग चुका था, और गोलियाँ मैं नही दागूँगा यह विश्वास किसी को नही था। यदि किसी सशस्त्र आरक्षक ने उस समय मुझपर गोली चलाई होती तो वह नि सन्देह सफल होता। किन्तु हुआ यह कि एकाएक दागी गई उन गोलियो से सभी किंकर्तव्य विमूढ और आतंकित हो गये थे। बहुत पास के लोगो ने मेरे हाथ में रिवाल्वर देखा था। इस दशा में प्रत्येक व्यक्ति को अपने ऊपर भी गोली चलाये जाने की आशंका थी इसलिए सभी लोग तत्काल पाँच-सात पग पीछे हट गये। गाधीजी के आगमन के लिये जो मार्ग छोड़ा गया था और जिसपर मैं खडा था वह मार्ग और चौड़ा हो गया। चार पग के अन्तर पर ही गांधीजी मरकर गिरे हुये थे। मेरे चारो ओर एक बडा-सा घेरा बन गया था। मेरा सशस्त्र हाथ ऊपर उठा हुआ देखकर लोग स्यात् और पीछे नही हटे।

"गोलियाँ छोडते ही पिस्तौल वाला हाथ ऊपर उठाकर मैं 'पुलिस! पुलिस!!' चिल्लाया किन्तु आधा मिनट बीतने पर भी कोई पास में नही आया। उससमय प्रत्येक क्षण मेरे मन के ऊपर तनाव बढाता जा रहा था। मैं बहुत अस्वस्थता अनुभव कर रहा था। मुझे लगा कि मैं उत्तेजित हो रहा हूँ।"

"आपके मन पर तनाव और उत्तेजना बढने का क्या कारण था? उस समय तो किसी ने आपको मारने के लिए हाथ नही उठाया था।" मैंने बीच में ही नथूराम को टोका।

"कोई मुझे मारेगा और यदि मारेगा तो उसका प्रतिकार मुझे कैसे करना है यह कल्पना उस समय मेरे मन में बिल्कुल न थी। उस समय की अपनी मन-स्थिति को आज मैं प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता हूँ। गाधी वध के किसी भी परिणाम को भोगने के लिए मैं तत्पर था किन्तु मैं तीन आरोपो से बचना चाहता था। मैंने भाग जाने का प्रयत्न किया, ऐसा सकेत भी किसी के द्वारा हो यह मैं नही चाहता था। आधे मिनट के पश्चात् मैंने फिर पुलिस को पुकारा। अपने सामने पूरे गणवेष में खडे सिपाही को मैं देख रहा था किन्तु वह मुझे पकडने का साहस नही जुटा पा रहा था। यदि मैं पिस्तोल फेंक देता तो उसका अर्थ यह लगाया जाता कि मैंने भ्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न किया। यह आरोप भी मुझे स्वीकार नहीं था। मैं अपने शस्त्र के साथ स्वय को पुलिस के हाथो सौंपना चाहता हूँ यह विश्वास सामने खडे पुलिस कर्मचारियों को मैं कैसे दिलाऊँ? यह मुझे समझ में नही आ रहा था।"

"और कौन सा आरोप आप नही चाहते थे?"

"वही जिसके भय से २० जनवरी कार्यान्वित नही हो सकी।"

"अर्थात् ?"

"मैं भूल से भी किसी और को आघात नही पहुँचाना चाहता था इसीलिए पिस्तौलवाला हाथ ऊपर उठाकर मैं पुलिस की प्रतीक्षा कर रहा था। अनजाने में भी पिस्तौल यदि मैं नीचे रखता तो नथूराम ने हमारी ओर पिस्तौल तानी थी, ऐसे भी कोई बयान देता।"

"फिर आपको कैसे पकड़ा गया ?"

"अपनी दृष्टि चारो ओर घुमाने लगा इतने मे अमरनाथ की अथवा जिस सैनिक ने मुझे पकड़ने की बात कही है उसकी दृष्टि से मेरी दृष्टि मिली। आँखो ही आँखो में मैंने उसे निकट आने का सकेत किया। मेरी दृष्टि का आत्म विश्वास स्यात् उसने परख लिया। वह मेरे पास आया और मेरी कलाई को उसने ऊपर ही ऊपर पकड़ लिया। मैं प्रतिकार नही कर रहा हूँ यह उसने जान लिया, उसी समय मेरे मन का बोझ मानो उतर गया। मैंने मुक्ति का श्वास लिया। इसके पश्चात् दूसरा मनुष्य आया और उसने मेरे पिस्तौल पर हाथ रखा। मैंने उसे उसके हाथो में छोड़ दिया।

"उसके बाद तो अनेक लोगो ने मुझे घेर लिया। कई लोगो ने मुझे पीटा भी। पुलिस भी कितनी मूर्ख थी कि वह पिस्तौल लोगो के कुतूहल की वस्तु बना एक हाथ से दूसरे हाथ घूमाती फिर रही थी। एक उत्तेजित व्यक्ति ने पिस्तौल को मेरे सामने करते हुए मुझ से कहा—"मैं तुम्हे इसी पिस्तौल से मार डालूँगा।" मैंने उसे शात और स्पष्ट शब्दो में कहा—'बड़ी खुशी से, किन्तु पिस्तौल को छूने का ज्ञान तुम्हें प्रतीत नही होता उसका सेफटी कैंच खुला है। तनिक सा धक्का लग जाने पर भी तुम्हारे हाथ से दूसरा कोई मर जायगा। उसमें और भी गोलियाँ है यह ध्यान में रखो।' फिर मैंने पास खड़े पुलिस अधिकारी से कहा—पहले तुम वह पिस्तौल अपने कब्जे में ले लो, उसका सेफटी कैंच खुला ही रह गया दीखता है, उसे बन्द करो अन्यथा यह भला मानुप मेरे बजाय किसी और को मार बैठेगा।' बात उस अधिकारी के समझ में आ गई और उसने तुरन्त पिस्तौल अपने हाथ में लेकर उसका सेफटीकैंच बंद करके उसे जेब में डाल लिया। यह हल्ला कोई पाँच मिनट तक चलता रहा। उस समय तक और एक-दो सिपाहियो ने मुझे आ पकड़ा था। बाहर निकलते समय मुझपर छड़ियो से कुछ वार किये गये थे, जिनके घावो से रक्त बहने लगा था।

"मुख्य घटना के सम्बन्ध में तो आपने कुछ कहा नही।" मैंने उन्हें फिर टोका।

सध्या चार बजकर पचास मिनट पर मैं बिड़ला भवन के द्वार पर पहुँचा।

द्वार के रक्षक प्रार्थना सभा मे जाने वालो का निरीक्षण कर रहे थे। इस निरीक्षण का ही मुझे सबसे अधिक भय था। इसलिए चार-पाँच व्यक्तियो के एक झुण्ड के साथ होकर सावधानी पूर्वक मैं अन्दर पहुँचा। वहाँ खुली जगह थी और मुझे कुछ समय तक ऐसा लगा कि इधर उधर घूमने वाले सिपाहियो की दृष्टि मानो मुझपर ही है। तब आस पास के लोगो मे मैं शीघ्रता से जाकर मिल गया।

"पाँच बजकर दस मिनिट हो चुके थे। कुछ लोगो के साथ मैंने गाधीजी को अपने कमरे से निकलकर प्रार्थना स्थल की ओर आते देखा। उनके मार्ग मे आगन की सीढियो के निकट खडे लोगो मे मिलकर मै खडा था।

"गाधीजी सीढियाँ चढ़कर दो-चार पग आगे आये। उनके हाथ दो बालिकाओ के कधो पर थे।"

"जेब में हाथ डालकर मैंने पिस्तौल का सेफटी कैच खोला। समूह से घिरे गाधीजी के निकटतम होने की सुविधा मुझे कहाँ मिलती है, यह मैंने देख लिया था।"

"मुझे अब केवल तीन क्षणो का समय चाहिये था। दो चरण आगे बढकर गाधीजी के सामने जाकर, पिस्तौल बाहर निकालने और गाधीजी ने अपने जीवन में जो देश सेवा की थी, जो त्याग किया था उसके प्रति उनका अभिवादन करने के लिये।

उन दो लडकियो में से एक गाधीजी के अत्यन्त समीप थी। मेरी गोलियो से वह आहत होगी ऐसा मुझे भय था। मैं आगे बढा—'नमस्ते' कह कर पिस्तौल सहित हाथो से गाधीजी का अभिवादन किया। एक डग और आगे बढकर उस लडकी को बायें हाथ से दूर किया।

"आगे के क्षण अनेक अशो मे विभाजित हो गये। उन क्षणाशो के पूर्वार्ध समय में पहले से ही कृश गाधीजी 'अ' इस बहुत अस्पष्ट. जैसे भीतर ही भीतर निकले उद्‌गार हो, के साथ अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पडे।

"गाधीजी की अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, अशोष्य आत्मा अतर्धान हो रही थी और मैं अपनी जीवित समाधि में प्रविष्ट हो रहा था।"

* * *

पाँच

नथूराम ! हे राम !

"नष्टो मोह. स्मृतिर्लब्धा तत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देह करिष्ये वचन तव ॥

" तब तक आप आत्म निरीक्षण कीजिये। उसके फलस्वरूप हमारी प्रस्तावित भेंट के अत में आप हमारे साथ गीता के इस श्लोक के रूप में अपनी मन स्थिति व्यक्त करने में समर्थ होंगे।"

यह था श्री रामदास गाधी द्वारा नथूराम के उत्तर के प्रत्युत्तर में लिखे गये पत्र का अतिम अश। श्री रामदास ने यह पत्र १३-६-४९ को लिखा था जो अम्बाला बदिशाला मे नथूराम को २३-६-४९ को प्राप्त हुआ।

जो अपना अभिप्राय सरल और सुस्पष्ट शब्दो में अपने पाठक के मस्तिष्क में सहजता के साथ उतार सके उसी को कुशल लेखक माना जाता हैं। यदि किसी सामग्री का अर्थ पाठक के दिमाग पर असर न करे तो दोष पाठक का नही, सम्बन्धित लेखक का माना जाना चाहिए। उपर्युक्त श्लोक का शब्दार्थ सस्कृत के किसी भी प्राथमिक विद्यार्थी की समझ में आ जायेगा। किन्तु गीता का महत्व उसके शब्दार्थ के नही, भावार्थ के कारण हैं। इसलिए गीता का अभिप्राय स्पष्ट करने के लिये जगद्गुरु शंकराचार्य से लोकमान्य तिलक तक असख्य विद्वानो द्वारा प्रचुर साहित्य लिखा गया हैं। आगे भी लिखा जाता रहेगा।

जिस सदर्भ में श्री रामदास गाधी ने ऊपर का श्लोक उद्धृत किया उस सदर्भ में उसका वाछित अभिप्राय नथूराम समझेंगे यह उनका अनुमान था। नथूराम के सम्बन्ध में उन्होंने यत्र-तत्र जो कुछ सुना या पढा था उससे उनके मन

मे नथूराम के प्रति जो धारणा बनी थी वह नथूराम द्वारा दिये गये पत्रोत्तर से पुष्ट हो गयी थी। फाँसी की डोर जिसके सिर पर लटक रही हो उसके द्वारा अत्यत निश्चित और निर्विकार भाषा में लिखा गया पत्र उनके सामने था। उस दशा में भी नथूराम का मन निरुद्विग्न और मस्तिष्क निर्मल एव विचारशक्ति पूर्णतया सक्षम थी। इसलिये उद्धृत श्लोक के पीछे निहित आशय, उसका लक्ष्य, उद्देश्य और प्रसग नथूराम को सविस्तार लिखने की श्री रामदास ने आवश्यकता नही समझी।

उपरिनिर्दिष्ट पत्र और उसके प्रत्युत्तर का आशय समझने के पूर्व नथूराम के तात्विक ज्ञान की पृष्ठभूमि को समझना समयोचित होगा। भारत की राजनीति पर गान्धीजी का उनकी मृत्यु पूर्व के ३५ वर्षों में कितना प्रभाव था इसे प्राय सभी जानते है। ऐसे महान और प्रभावशाली व्यक्ति के देहान्त के लिये नथूराम निमित्त बने थे। इसलिये उनके पूर्ववृत्त का किंचित अवलोकन अप्रासगिक नही है।

संकट से घिर जाने पर ही मनुष्य दार्शनिक हो जाता है, ऐसी बात नही है। ईश्वर प्रदत्त बुद्धि पर वातावरणजन्य सस्कारो के द्वारा व्यक्ति का मानसिक स्तर निर्मित होता है। परपराजन्य विचारो, रीतियो और रहन-सहन का जीवन पर बाल्यावस्था से ही अव्याहत प्रभाव पडता है। उस प्रभाव का अश भी मानसिक विकास का कारणभूत है। हम अनुभव करते है कि बुद्धि का वितरण व्यक्ति व्यक्ति में समसमान नही है। हो सकता है, निसर्ग ने अभीतक साम्यवाद को अंगीकार न किया हो यही उसका कारण है। प्राय इसलिये अन्य तत्वो के समान होते हुए प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक सरचना और ग्रहणशीलता पृथक्-पृथक् होती है। नीचे उद्धृत इस श्लोक में यह वस्तुस्थिति सोदाहरण समझायी गयी है

वितरति गुरु प्राज्ञे विद्या यथैव तथा जडे।
न तु खलु तयोर्ज्ञाने वृद्धि करोत्यपहन्ति वा॥
भवतिच पुनर्भूयान्भेद फल प्रति तद्यथा।
प्रभवति शुचिर्बिंबग्रहे मणिर्न मृदाचय॥

किसी व्यक्ति की तत्वचिंतन क्षमता के विकास का क्रम उसके पूर्वचरित्र के माध्यम से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। किसी के मर्मस्पर्शी व्यवहार का साम्य भी हम उसके पूर्वचरित्र में पा ही जायें यह आवश्यक नही है। चाहे वह व्यवहार शास्त्रीय शोध से सम्बन्धित हो, या अपने प्राणो पर सकट झेल कर दूसरे की प्राणरक्षा करने का हो अथवा किसी के सहार का हो। मेरे मत मे इस प्रकार के अप्रत्याशित व्यवहार के पीछे सम्बन्धित व्यक्ति की मानसिक सरचना में सहायक वे तत्व है जो अज्ञात रह जाते ह और ऊपरी निरीक्षण से जिनका ज्ञान नही हो पाता।

नरहत्या स्वय मे एक अप्रिय कृत्य है। नथूराम को भी गाधी वध के पूर्व और पश्चात् वह अप्रिय ही प्रतीत हुआ था। क्या नथूराम ऐसा अप्रिय कृत्य कर सकते है जैसे तर्क करने पर समय व्यतीत करने की आवश्यकता नही है। उन्होने यह अप्रिय कृत्य किया था यह वस्तुस्थिति है। उनके इस कृत्य का उनके पूर्व-चरित्र की ज्ञात घटनाओ से कही कोई साम्य हो तो पाठक स्वय देख लें।

मानव मन के अध्ययन के लिए एक और बात का सोचना उद्बोधक होगा। भारत की स्वाधीनता के उद्देश्य से असख्य क्रातिकारियो और सत्याग्रहियो ने प्रसन्नता से प्राण विसर्जित किये यह हम जानते है। किन्तु मृत्यु का आवाहन करने की उनमें से अनेक की रीति विलक्षण थी। एक उदाहरण के स्वरूप में ऊपर से एक साधारण श्रमिक प्रतीत होनेवाले बम्बई के हुतात्मा बाबू गेनू ने जिस प्रकार मृत्यु का वरण किया उसकी स्मृति से उनके हौतात्म्य के इतने वर्षो के पश्चात् आज भी शरीर रोमांचित हो उठा है। जिस निष्ठुर अग्रेज सैनिक ने अपने सामने लेटे बाबू गेनू पर निर्दयतापूर्वक गाडी चला दी थी उसने भी तत्काल नीचे उतर कर मृत हुतात्मा की वीरता, स्थिरता और मृत्यु के प्रति निर्भयता के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिये अपना शिरस्त्राण उतार कर उनका अभिवादन किया था। वह गोरा सैनिक बाबू गेनू का साक्षात् काल था किन्तु वह काल भी उस अलौकिक धैर्य को देखकर सिहर उठा था।

तू मुझे डराता है या मैं तुझे? इस प्रतिस्पर्धा के साथ मृत्यु से आँखें मिलाकर उससे दो हाथ करके उस पर विजय प्राप्त करके अमर हो जाने वाले अनेक क्रातिवीरो के वृत्त हमने पढे है। मृत्यु की छाया में कालकोठरियो में वे किस प्रकार रहते होगे, उनकी दिनचर्या कैसी रही होगी, उनकी स्थिरता किस प्रकार बनी रही होगी, इसका कुतूहल हमें हो तो वह स्वाभाविक है। मेरा विश्वास है कि नथूराम के उदाहरण से उन क्रान्तिवीरो की मन स्थिति की कल्पना की जा सकती है। यह तुलना केवल उसी सीमा तक होनी चाहिये। नथूराम की घटना स्वाधीनता के पश्चात् हुई थी, इसलिये वह स्वातन्त्र्यार्थ किये गये प्रयत्नो की श्रेणी मे नही आती। मानव मन के अध्ययन के लिये नथूराम के उदाहरण की सहायता से केवल यह देखना है कि मृत्यु की छाया में मनुष्य किस प्रकार स्थिरचित्त रह सकता है। क्या उसके पूर्व चरित्र से उस स्थैर्य का कोई सम्बन्ध है?

मुझे नही लगता कि नथूराम की स्थितप्रज्ञता के लिये अब तक के लेखो मे दिये गये अधिकृत प्रमाणो के अतिरिक्त किसी और प्रमाण की आवश्यकता है। केवल दो-चार क्षणो का यह प्रश्न नही था। प्रत्युत मृत्युपाश के अदृश्य स्पर्श को गर्दन पर अनुभव करते हुए, क्षणो से बननेवाले घटो और घटो से बननेवाले दिनो और दिनो से बननेवाले कई महिनो तक, कोई कैसे मन और मस्तिष्क से

स्थिर रह सकता है यह एक तर्कातीत स्थिति है, किन्तु अनेक लोग इस प्रकार रहे है यह एक तथ्य है। गाधी वध से फाँसी तक साढे इक्कीस महीने अथवा छ सौ पचपन दिन और यदि मृत्युदण्ड का निर्णय सुनने के वाद से गिनें तो भी पूरे दो सौ सतहत्तर दिन नथूराम ने फांसी की प्रतीक्षा करते हुए व्यतीत किये थे। इन सम्पूर्ण दिनो में नथूराम की आन्हिक दिनचर्या अपरिर्वातित, पूर्ववत और पूर्ण व्यवस्थित रूप मे चलती रही। उन्हें न तो खान पान से विरक्ति हुई थी न उनकी निद्रा का ही ह्रास हुआ था। इतना ही नही प्रत्युत इस अवधि मे उन्हें ज्वर, खाँसी, प्रतिशाय और मस्तक पीडा जैसी व्याधियाँ भी नही हुई। हो सकता है खानपान की अविच्छिन्न नियमवद्धता ही उसका कारण हो। अन्यथा कभी-कभी मस्तिष्क पीडा हो जाना नथूराम की एक स्थायी व्याधि थी। सिर एक वार दुखने लगता तो सध्यातक वे कोई काम नही कर पाते थे। दिन भर पडे-पडे विताना पडता था। एक दिन एक गवाही के समय मे न्यायालय को भी इसका ज्ञान हुआ था।

क्षमा आश्वासित साक्षीदाता वडगे ने कहा है कि २० जनवरी को नथूराम का सिर दुख रहा था। इसी कारण नथूराम अपने साथियो के साथ, जिनमें वडगे भी था विडला भवन नही जा सके थे। इस सम्वन्ध में आपटे का कहना था कि २० जनवरी को विडला भवन जाने का उद्देश्य गाधीजी के समक्ष उनकी हिन्दूद्रोही नीतियो के विरुद्ध प्रदर्शन करना था। नथूराम ने इस विषय में उच्च न्यायालय मे इस प्रकार अपना पक्ष प्रस्तुत किया—"वडगे के कथनानुसार मेरा सिर दुख रहा था। उसी के कथनानुसार मैं उसके अथवा आपटे के साथ विडला भवन की ओर नही निकला। इसलिये न्यायमूर्तिको यह मान लेना चाहिए कि मैं उस दिन वहाँ गया ही नही।"

सिर दुख रहा होगा यह मानने में न्यायमूर्ति को कोई आपत्ति न थी किन्तु नथूराम की उपरोक्त युक्ति के सम्वन्ध में अपने निर्णय में वे कहते हैं—'पांच सप्ताह से यह याचिका हमारे सामने चल रही थी और विशेपतया उन आठ नौ दिनो की अवधि में, जव नथूराम ने अपनी याचिका का स्वयं सचालन किया, हमने उसे वहुत कुछ देखा-समझा है। उस आधार पर मैं कल्पना भी नही कर सकता कि उस कोटी का मनुष्य अपने पीछे रह जाने का विचार भी मन में ला सकता है।

("We have seen quite enough of Nathuram during the period of more than five weeks while we were hearing these appeals and particularly during the eight or nine days while he was arguing his own case, and I cannot imagine

that a man of his calibre could have even entertained the idea" : Cyclostyled Judgement, Page 439)

नथूराम का स्वास्थ्य और उनकी चित्तवृत्ति इतनी उत्तम थी कि घटना के पूर्व सिर का दर्द जैसी कोई व्याधि उन्हे हो सकती है जिससे वे कार्य करने में असमर्थ हो जाये, ऐसा न्यायमूर्ति को विश्वास नही हुआ।

नथूराम का लेखन और अध्ययन अन्त तक चलता रहा। फाँसी के केवल एक दिन पूर्व ही उन्होने श्री ग त्र्य माडखोलकर के लिए एक लम्बा पत्र लिखा था। और भी कई पत्र उन्होने उसी दिन लिखे थे। फाँसी के दिन भी अधिकारियो से अनुमति लेकर अनेक लोगो ने उनके हस्ताक्षर लिये थे।

नाना आपटे ने 'प्रशासन' (Administration) के विषय पर फाँसी की छाया मे रहते हुए एक विस्तृत निबन्ध लिखा था। सम्प्रति वह शासन के नियन्त्रण मे है।

समय तो वही रहता है। घडी और पलो से इनकी लम्बाई न घटती है न बढती है। दिन बडा है या छोटा, इस परिभाषा का प्रयोग हम पृथ्वी की परिक्रमा को दृष्टि मे रखकर नही, प्रत्युत उस पूरी परिक्रमा के प्रकाश के पक्ष के आधार पर करते है। अन्यथा समय के दीर्घ या लघु होने की संज्ञा पूर्णतया तुलनात्मक है। उन सज्ञाओ पर अपने मन की समय-समय की भावना आरोपित होती है। सापेक्षवाद (Theory of Relativity) के तत्वो की समीक्षा करते हुए आइस्टाइन ने एक मनोरजक उदाहरण दिया है। प्रेयसी की प्रतिक्षा में बीते पाँच मिनिट हमें पाँच घण्टो जैसे प्रतीत होते है किन्तु इसके विपरीत उसके सम्पर्क में बिताये गये पाँच घण्टे पांच मिनिटो के समान तत्काल बीत जाते है। इस प्रकार मन की विशिष्ट अवस्था के कारण सापेक्षता का निर्माण होता है।

मरुप्रदेश की प्राणदाहक ऊष्णता मे बिताये गये समय और वातानुकूलित सुविधा सम्पन्न विलासगृह मे व्यतीत किये गये उतने ही समय की अनुभूति में कितना अन्तर होता है ? एक को किसी प्रकार काट पाना भी कठिन हो जाता है जब कि दूसरे के शीघ्रता से समाप्त होने का आभास तक नही होता। समय की मियाद तो उतनी ही होती है किन्तु सुख-दु खादि अनुभूति के कारण इसका मान बढता या घटता मालूम होता है।

युद्ध के वातावरण का तनावपूर्ण समय सक्रिय युद्ध के क्रियाशील समय से अधिक बोझिल और उबा देने वाला होता है, ऐसा सैनिको का प्रत्यक्ष अनुभव है।

फाँसी के दण्ड का क्रियान्वयन, दण्ड की भयानकता की पराकाष्ठा नही है। प्रत्युत यह तो यातना मे त्राण देने वाली एक अत्यत साधारण घटना है। मृत्युदड

का सवसे अधिक त्रासदायक अश है फाँसी की प्रतीक्षा में विताया जाने वाला वह समय जो प्राय पहाड वन जाता है और काटे नही कटता ।

फाँसी के दण्डप्राप्त वदी और साधारण वन्दियो की स्थिति और मनोदशा में वडा अन्तर है । अन्य वहुत से वन्दी भी कारागार की प्राचीरो के भीतर होते है, किन्तु वे समूहवद्ध रखे जाते है। किसी अत्यत उद्दड या अनुशासनहीन वन्दी के लिये जो सवसे कठोर दण्ड कारागार के विधान में माना जाता है वह है एकान्त-वास जिसे सामान्य भाषा में 'तनहाई' कहा जाता है। किसी भी मनुष्याकृति को देखने के लिए 'तनहाई' का वन्दी तरस जाता है। इसी प्रकार फाँसी की कोठरी में फाँसी की प्रतीक्षा करते हुए वदी का यदि कोई गवाही होता है तो वह होता है उसका मन। फाँसी की कोठरी में यही समूह है। दिनभर फाँसी की कोठरी के वन्दी को इसी मर्यादा मे रखा जाता है।

वास्तव में फाँसी के दण्ड से वदिगृह-वास का कोई सम्वन्ध नही है। अपराधी को दण्ड फाँसी का दिया गया है, कारावास का नही। किन्तु यदि उसे कारावास भी करना पडता है तो केवल अपरिहार्य सुरक्षा की दृष्टि से। मृत्युदड प्राप्त अपराधी कही भाग न जाय, इस भय से उस पर कठोर प्रतिवध रखा जाना अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार फाँसी के पूर्व का कारावास भोगना ही पडता है। ऐसा कारावास सव प्रकारके कारावासो से अधिक क ठन, अधिक कष्टदायक होता है।

फाँसी कोठरी के वन्दी को नित्यकर्म के लिये प्रात दस-पन्द्रह मिनिटो के लिये वाहर निकाला जाता है। यदि और कभी उसे वाहर निकालना पडे तो भी उसकी एक निश्चित विधि होती है। वदी कोठरी के सीकचो से अपना हाथ वाहर निकालता है। जिसमें वाहर खडा प्रहरी हथकडी पहना देता है। तदनतर द्वार खोलकर उमे वाहर निकाला जाता है। हथकडी में वधे हाथो मे ही वन्दी को हाथ पैर मुँह आदि धोने की 'क्रया सम्पन्न करनी पडती है। नित्यकर्म के पश्चात् उसे कोठरी के भीतर कर के द्वार वन्द किये जाते है और फिर उसी प्रकार वन्दी सीकचो से हाथ वाहर निकाल कर अपनी हथकडी खुलवाता है।

सामान्यतया प्रात कालीन भोजन १०॥ वजे होता है। उसके पूर्व आधा घटा या अधिकारियो के सौजन्य से एक घटा वाहर आगन मे टहलने की सु वधा उसे मिलती है। सध्या मे भी इसी प्रकार सारा क्रम दोहराया जाता है। कोठरी में एक कम्वल और एक चद्दर, इतना ही वन्दी का ससार होता है। रात्रि को आशका होने पर शौच या मूत्रपात के लिये या तो कोठरी में ही मिट्टी के पात्र रख दिये जाते है या कोने में मिट्टी का ढेर रखा होता है। पानी की आवश्यकता

हो तो वाहर से प्रहरी ही उसके हाथो पर पानी डालता है। इस प्रकार यह छोटी-सी कोठरी मानो शौचालय ही होती है।

दीपक होता है तो वह प्रहरी की सुविधा के लिए, कि उसके प्रकाश में वह वन्दी की गतिविधि देख सके। फांसी का वदी रात को सुखपूर्वक सो भी नही सकता। वह जीवित है या नही, कही मर तो नही गया, यह देख कर आश्वस्त होने के लिए पहरा वदलने के समय नव नियुक्त प्रहरी आवाज देकर उसे जगा देता है। प्रत्येक तीन घटे में पहरा वदला जाता है। अर्थात् प्रति प्रहर निद्रा तोड दी जाती है। प्रहरी आया, उसने पुकारा, वदी की नीद टूटी और उसने उत्तर दिया तो प्रहरी द्वारा उसे फिर सात्वना देने का मौखिक प्रयास—"कुछ नही, सो जाओ, ऐसे ही पुकार लिया।" यह सव प्रपच वदी को वहुत वुरा लगता है किन्तु दो-चार दिनो में वह इसका अभ्यस्त हो जाता है। इस यातना से उसकी मुक्ति या तो फांसी पर लटक जाने पर होती है या दण्ड का पुनर्निर्णय होने और फांसी की कोठरी से निकाले जाने पर।

प्रात, सायं और अधिकारियो की इच्छा पर कभी भी वन्दी और उसकी कोठरी का परीक्षण होता है। सीकचो की कोई छड काटी हुई तो नही है, यह देखने के लिये प्रत्येक छड को डण्डे से वजाकर या हाथ से हिलाकर परखा जाता है। वन्दी को ऐसा कुछ करने का अवसर न मिले इसके लिए प्रतिदिन उसकी कोठरी वदल दी जाती है। उसके भोजन की प्रत्येक वस्तु को अधिकारी या प्रहरी चख कर देखते है। उसके पश्चात् वह वस्तु उसे दी जाती है।

नथूराम और आपटे को इनमें से किसी भी नियम में छूट प्राप्त नही थी। उन्हें सुविधा थी तो प्रकाश की और लेखन सामग्री एव साहित्य की। उनकी कोठरी के वाहर द्वार के निकट एक पटरे पर (मेज पर) उनके लिखने पढने की सामग्री रखी रहती थी। एक पृथक् दीपक उन्हें उपयोग के लिए दिया जाता था। पहले लिखा जा चुका है कि सरदार वल्लभभाई पटेल के सौजन्य से उन्हें वी० श्रेणी दी गयी थी। नथूराम और आपटे जव क्रमश वाहर आते थे तव कभी-कभी पटरे पर शतरज के दाँव लगाते थे। उनमें से एक कोठरी के अदर और दूसरा वाहर सीकचो के पास वैठकर खेलता था। मनोरजन के लिये कभी कभी ताश भी खेलते थे। हम लोग भी उनके साथ कभी-कभी शतरज खेल लेते थे। फांसी के उन वन्दियो को उस समय मिली इस छोटी सी सुविधा के लिए मन में आज भी कृतज्ञता का अनुभव होता है।

घर में वैठकर वन्दी जीवन की कल्पना करना कठिन है, फांसी कोठरी के जीवन की तो और भी कठिन। स्वाधीनता सग्राम के सदर्भ में कारावास भोगनेवाले थोडे वहुत लोग अव भी जीवित है। कारावास की कठोरता की उन्हें

कल्पना है। फांसी कोठरी के जीवन की कल्पना भी वे अधिक निकट से कर सकते है।

इन स्थितियो में भी फाँसी का वन्दी जीवित रहता है। दण्ड सुनते ही दूसरे दिन उसे क्रियान्वित करने की पद्धति नही है। उच्च न्यायालय से पुर्नविचार की सभावना होती है। पुर्नविचार में मृत्युदंड दूसरे किसी दण्ड में परिर्वातित हो सकता है, पूर्णतया मुक्ति भी मिल सकती है। 'जवतक साँस तवतक आस' की यह भावना उसे आश्वस्त करती है। आशा की इस क्षीण डोरी से बँधा वह सभी यातनाएँ सहन करता रहता है। किन्तु नथूराम ने वैसी कोई आशा नही रखी थी। जिस निर्णय और आरोप के विरुद्ध वन्दी को कोई शिकायत नही हो उस आरोप और उस पर किए गये निर्णय पर पुर्नविचार की कोई आवश्यकता नही रहती। नथूराम ने अपने मृत्युदड के विरुद्ध पुनर्न्याय की माँग नही की थी। उच्च न्यायालय ने भी ऐसा अभिमत अपने निर्णय पत्र में व्यक्त किया है (चक्री टकित निर्णय पत्र पृष्ठाक २०४)। उन्होने दया के लिये भी कोई याचना नही की थी। अत मृत्युदड से मुक्ति की आशा के बल पर फाँसी कोठरी का जीवन विताने की स्थिति यहाँ न थी। फाँसी अवश्यभावी है यह जानते हुए वे कालकोठरी मे अपने जीवन के अंतिम दिन वडे धैर्य और निश्चिन्तता से विता रहे थे।

नाना आपटे के व्यवहार की एक स्मृति मेरे मन पर अकित हो गयी है। नाना सिगरेट पिया करते थे। मैं जव उनके पास जाता था तो वे मुझसे अवश्य कहते— "गोपाल! सिगरेट ?"

मैं नही पीता, यह उन्हे ज्ञात था तथापि मैं उनके साथ पीऊँ यह उनकी आतरिक इच्छा रहती थी। किसी भी वस्तु के उपभोग का आनंद किसी मित्र के साथ वढ जाता है, स्यात् उनके आग्रह के पीछे यही भावना थी। किन्तु मैं टाल जाता था।

केन्द्रीय शासन से अभीतक फाँसी के दिन का निर्देश नही आया था और हम सवको आशा थी कि नाना को फाँसी नही होगी। उन्ही दिनो एक वार मैं उनके पास गया। वे सिगरेट पी रहे थे। सदा की भाँति उन्होंने मुझसे कहा— "गोपाल! सिगरेट ले लो। पडित (नथूराम) तो घनचक्कर है। वह नही पियेगा।"

"नाना! आप मुझसे सदा आग्रह करते है, यह ठीक है किन्तु मेरी दृष्टि में सिगरेट जीवन के लिए कोई आवश्यक वस्तु नही है। वह तो एक व्यसन है और व्यसन किसी आनद के अवसर पर ही अच्छा लगता है। आपको फाँसी नही होगी, यह निश्चय हो जाने दीजिये। तव मैं आपके साथ अवश्य सिगरेट पियूँगा।" मैंने उनसे कहा।

"कितना पगला है रे तू गोपाल !" नाना हँस कर बोले, "जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ तो हमें दी गयी हैं उतनी ही है। रहने के लिए आश्रय, दोनो समय का भोजन और वस्त्र। क्या प्रत्येक घर में केवल इतनी ही वस्तुएँ होती है।"

"किन्तु अन्य सभी वस्तुएँ 'अनावश्यक' की परिभाषा में नही आती।" मैंने विरोध व्यक्त किया।

"अनावश्यक वस्तुएँ हमें कब आवश्यक प्रतीत होने लगती है, यह हम समझ भी नही पाते। आदत के कारण वस्तु की 'अनावश्यकता' लुप्त हो जाती है और वह परमावश्यक बन जाती है।" नाना ने समझाना प्रारभ किया, "छोटे बालको को हम खिलौने देते है। क्यो ? इसलिये कि हम चाहते है कि वे खेलें, हँसें, प्रसन्न रहें। वास्तव में खिलौना भी जीवन के लिए आवश्यक वस्तु नही है। इधर उधर की वस्तुएं मनुष्य के मनोरजन के लिए हैं। सुख के लिए है। उन्हे प्राप्त करने के लिए मनुष्य प्रयत्नशील रहता है। यथासभव प्राप्य वस्तुओ का उपभोग प्रत्येक व्यक्ति करता है। मुझे ऐहिक सुख किस वस्तु में मिलेगा यह निश्चय प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है।"

कुछ अशो में क्या यह भोग वृत्ति नही है ?" मैंने कहा।

"मैंने तुम्हें जीवन का उद्देश्य नही बताया है। जीवन का उद्देश्य क्या है, यह एक अलग बात है। प्राप्य सुख का भी स्वेच्छा से उपभोग न करने के भी कुछ कारण होते हैं। व्यक्ति पर समाज का कुछ ऋण होता है। अपने-अपने सस्कारो के अनुरूप प्रत्येक व्यक्ति को इस ऋण का थोडा बहुत बोध होता है। कुछ प्रसगो में यह बोध बहुत तीव्र हो जाता है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति अपनी जीवनोपयोगी प्रवृत्तियो में कटौती करने लगता है। जीने का यह भी एक उद्देश्य है। सामान्यतया इसे त्याग कहते है। दूसरी अवस्था में कोई व्यक्ति अपनी कमाई में से पाँच-पाँच सौ, पाँच-पाँच सहस्त्र या पाँच लाख रुपये सामाजिक कार्यों के लिए दान करता है किन्तु अपनी प्रिय प्रवृत्तियो अथवा जीवनोपयोगी सामग्री में कोई कटौती नही करता। अपवाद की बात अलग है। इसके भी आगे की सीढ़ी है जीवनोपयोगी वस्तुओ और व्यसनो को ही नही अपने जीवन को भी तुच्छ समझ कर समाज का ऋण चुकाने के लिए उत्सर्ग कर देने की तत्परता। किन्तु तुम्हें मिलनेवाले ऐहिक सुख का उपभोग करने पर तुम सामाजिक दायित्व को भूल रहे हो, यह अर्थ नही लगाया जा सकता। हाँ ! सामाजिक दायित्व की ओर आँखे मूँद कर सुखोपभोग में लिप्त हो जाना निस्सदेह भोगवृत्ति है। सामान्य दृष्टि से 'सेना पेट पर चलती है', ऐसा कहा जाता है। किन्तु सैनिक जीवन का उद्देश्य पेट की आग बुझाना तो नही होता। वह कुछ और होता है।

" मुझे फाँसी होती है या नही, यह नियति के वश की बात है। उस पर तुम निर्भर मत रहो। जिस कार्य में तुम्हे रस नही मिलता उस कार्य को करने के लिए बाध्य करना, मैं नही चाहता, किन्तु तुम जीवन की आवश्यकता का दर्शन मुझे सिखाने लगे थे इसलिये मैंने किंचित तत्वज्ञान तुम्हे पिलाया है।"

नाना से थोडी देर और बात करके मैं लौट आया। मैंने सिगरेट नही पी। चार दिन पश्चात् मैं नाना से मिला तो उस दिन फाँसी का दिन निश्चित होने और नाना की फाँसी का दड पूर्ववत रखने का निर्णय आ गया था। नथूराम की फाँसी तो पूर्व निश्चित और अवश्यभावी थी ही। मैं नथूराम से पहले नाना के पास गया। उन्हें फाँसी न हो यह मेरी आन्तरिक इच्छा थी। किन्तु निर्णय प्रतिकूल हुआ था। मेरे मन की खिन्नता मेरे मुख पर भी झलकती थी। नाना कुछ पढ़ रहे थे। निर्णय उन्हें ज्ञात था। उन्होने सिर उठाकर मुझे देखा और सहास्य मुद्रा मे मुझे मानो झिडका—"हूँ, क्या है रे!" उनकी स्थिर मुद्रा को देखकर अपनी उदासीनता पर मैं लज्जित हुआ। प्रयत्नपूर्वक चित्तवृत्ति को नियन्त्रित करके मैं आगे बढकर सीकचो के सामने जा खडा हुआ।

"नाना! आप इस कोठरी के बाहर हो यह इच्छा थी। चार ही दिन पूर्व सुख की कल्पना के सम्बन्ध में आपने मुझे प्रवचन दिया था। मेरी कल्पना के सुख का समारोह मुझे प्राप्त नही हुआ, परन्तु अपने वश के बाहर की बात पर मेरी सुख-कल्पना आधारित थी।" मैंने कहा "मुझे सिगरेट दीजिये। आज तो मैं आपके सम्पर्क में हूँ। जितना प्राप्य है उतने आनन्द का उपभोग तो अपने वश में है।"

"आज तू अच्छा लग रहा है। (Now you are a man)।" नाना प्रसन्न होकर बोले। उन्होने डिब्बा खोलकर मुझे सिगरेट दी और स्वय ली। घूम्र के छल्ले छोडते हुए उनके मन को मानो गति मिली। वे बोले—"गोपाल! अत्युच्च आनद कौनसा है। तुम जानते हो ?"

मैंने प्रश्न-मुद्रा में उनकी ओर देखा।

"देखो, 'यत् पिंडे तत् ब्रह्माडे' इसका अर्थ हुआ 'यत् ब्रह्माडे तत् पिंडे'। जो ब्रह्माण्ड मे है वही पिंड में है। हमारा मन, हमारी प्रजा, ये सब उस ब्रह्माण्ड मे व्याप्त अज्ञात और अदृश्य सत्ता के ही अश है। आनन्द ज्ञात को जानने में नही प्रत्युत अज्ञात को खोजने में है। अन्तर्मन मे उस अदृश्य-अज्ञात शक्ति मे उस नियति से—एक रूप होने की स्थिति यह सर्वोच्च आनन्द है। इसने बढकर आनन्द आगे नही है। इससे अन्य कोई भी आनद बाह्य साधनो पर निर्भर है। जिन साधनो पर वह निर्भर है उनका नाश होने पर वह भी लुप्त हो जायेगा किन्तु

ब्रह्माड को नियंत्रित करने वाली शक्ति अविनाशी है। इसलिये उस शक्ति में एकरूपता का आनद भी कभी नष्ट नही होता।

" अब परावलम्बी आनन्द की दशा भी देखो। मैं कल मरनेवाला हूँ इसलिये आज से ही रोने लगने से आज की उपलब्ध-उपभोग्य वस्तु से मिलनेवाला आनन्द भी खो बैठता हूँ। अपने आनन्द की रक्षा करनी हो तो मृत्यु के पूर्व के क्षण तक मृत्यु का शोक न करने से ही वह प्राप्त होगा। और मरने के क्षण में तो हम हमारे रहते ही नही। हमारे अवयव आनन्द और दु ख की सीमा से दूर पहुँच चुके होते हैं।"

हम अभियुक्त जब लालकिले के बदीगृह में विचाराधीन वन्दी थे तब नथूराम, नाना और सावरकरजी के बीच यदा-कदा पातजल योगसूत्रो पर चर्चा हुआ करती थी। पर्याप्त अवकाश होने के कारण नाना ने उन सूत्रो को कण्ठस्थ कर लिया था। ज्ञानेश्वरी, तुकाराम गाथा और गीता रहस्य आदि ग्रंथ वे पढते ही थे। नथूराम का अध्ययन तुलनात्मक होता था। किस तात्विक विषय पर किस भाष्यकार ने क्या कहा है, यह उन्हें सदा स्मरण रहता था और प्रसगानुसार वे उनका उदाहरण भी देते थे। नथूराम और नाना के बीच चर्चा होती रहती थी। इस समय नाना इन ग्रंथो का सार सरल भाषा में बता रहे थे। वे उत्साह में थे और उनकी वाणी में वेग आ गया था। मैं जान ही नही सका कि मेरे चित्त की खिन्नता उन्होने कब दूर कर दी। उनके शब्दो में भावना का कोमल स्पर्श था। वे कह रहे थे—

"घर-द्वार का बन्धन छोडकर, कठिन समय में साथ देने के लिए, तुम जैसे मित्र आज मेरे सपर्क में हो। ज्ञात ससार की दृष्टि से मृत्यु के द्वारतक हाथो में हाथ डालकर साथ चलनेवाली नथूराम की और मेरी दृढ एवं चिर मैत्री नियति ने मुझे प्रदान की है। इतना सब होते हुए अदृष्ट शक्ति से एक रूप होने का अवसर मिलने पर मृत्यु का दुःख क्यो माना जाय ? गोपाल !

मैंने पूछा—"आप बहुत समय तक ध्यानस्थ होकर होकर बैठते है नाना ! क्या आपको सिद्धि प्राप्त हो गयी है ?"

"सिद्धि का अर्थ है—मैं और वह शक्ति दोनो पृथक् हैं, यह भावना नष्ट होना। इस सिद्धि के प्रयत्न में सुख की समाप्ति मैं कर रहा हूँ। कुछ दिनो मे सिद्धि भी प्राप्त होगी ही।" नाना ने अर्थपूर्ण शब्दो में कहा और कुछ देर बातें करके मैं अण्णा (नथूराम) की ओर बढा।

अतिशयोक्ति अलंकार में मित्रगण नाना को विलासी और नथूराम को सन्यासी कहा करते थे। किन्तु मैं कुछ असाधारण करता हूँ ऐसा प्रदर्शन नाना ने कभी

नही किया और मै अलिप्त हूँ अथवा मुझ मे कुछ विशेषता है ऐसी घमड नथूराम मे भी किसी ने नही देखी। मैत्री के स्थायित्व के लिये स्वभाव में कही किंचित समानता बडी सहायक होती है। प्रदर्शन पराङ्मुखता का यह साम्य दोनो के स्वभाव के अन्य समान अशो मे से एक था। अपने वैयक्तिक जीवन मे किस प्रकार जीना इस विषय में अपना मत अथवा अभिरुचि दूसरे पर न लादना यह उनके स्वभाव की दूसरी समान विशेषता थी।

नाना के जीवन को विलासी मान भी लिया जाय तो भी कालकोठरी मे वह कितने स्थिरचित्त थे यह जानने के लिये मेरे और उनके उन दिनो के सम्भाषण का उल्लेख पर्याप्त है।

मेरे विवरण में किसी को नथूराम और नाना का उदात्तीकरण प्रतीत हो या गाधीजी का अवमूल्यन लगे तो उसके लिए किंचित स्पष्टीकरण मुझे आवश्यक प्रतीत होता है। नथूराम हो, आपटे हो, या गाधीजी हो, भारत के इतिहास में नियति ने तीनो का विशिष्ट स्थान दिया है। तीनो अपने अपने स्थान पर स्थिर है। जो अवान्छनीय कालातीत में घट चुका है उसकी पुनरावृत्ति फिर न हो इसके लिये सभी सावधान रहने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु जो हो चुका है उसे बदल सकना यह किसी के वश की बात नही है। इसलिए इतिहास में उनके स्थान का मूल्य चढाना या घटाना भी किसी के वश की बात नही है। इतिहास की खोज, उसका परीक्षण, विवेचन और पुनर्लिखन इतना ही हमारे वश में है।

हाथ में पृथ्वी का मानचित्र लेकर उसे फडफडाने से भूकम्प नही होता ऐसा 'गडकरी' ने कहा है। इसी प्रकार इतिहास के पन्नो को नष्ट करने से जो घट चुका है उसकी वास्तविकता और उसके परिणाम नष्ट नही हो सकते। भारतीय इतिहास की एक क्रातिकारी दुखद घटना के पन्नो का और उनके परस्पर सम्बन्धो के इतिहास का हम निष्पक्ष भाव से अवलोकन कर रहे हैं यह दृष्टिकोण सामने रखने पर अवमूल्यन अथवा मूल्य वृद्धि जैसा भ्रम मन मे उत्पन्न नही होगा।

विधि की दृष्टि से हत्या निषिद्ध कृत्य है। अवैध कृत्यो पर विचार करने के लिए हमी ने न्यायपीठ खडा किया है। किन्तु केवल कागज पत्रो पर अवैध कृत्य की निंदा करके न्यायपीठ की सत्ता सार्थक नही हो सकती। कोई देश किसी देश के मौलिक अधिकारो पर आक्रमण करता है तो आक्रात देश आक्रामक को यदि कोरे विरोधपत्र ही भेजकर सतोष कर ले और आक्रामक देश उन पत्रो को उठाकर रद्दी की टोकरी में फेकता रहे, ऐसी निरर्थक सत्ता न्यायपीठ की नही होती। क्योकि न्यायपीठ के पीछे उसके निर्णयो को मान्य करने के लिये हमने शक्ति खडी की है। न्यायपीठ कभी-कभी अपराधी के प्राणो का निषेध अपनी कार्यवाही मे लाकर अवैध कृत्य का निषेध करता है।

अब हत्या अथवा अन्य अवैध कृत्य की बात अलग है, और सम्बन्धित अपराधी के गुण या भावना का प्रश्न पृथक है। किसी व्यक्ति के प्राणो का अपने निर्णय द्वारा हरण करते हुए न्यायपीठ उस व्यक्ति के गुणो या विशिष्ट कृत्यो के पीछे की भावनाओ की आलोचना करने का तब तक प्रयत्न नही करता जब तक वह भावना ही निषिद्ध अथवा निन्दनीय न हो क्योकि न तो भावनायें अपराधी होती है और न विशिष्ट गुण अवैध होते है। अनेक बार अपराधी के गुण और उसकी भावनायें सराहनीय सहानुभूति के योग्य ही नही प्रत्युत अनुसरणीय भी होती है और शासनारूढ व्यक्ति भी उनका सम्मान करने पर विवश होते है। एक उदाहरण अप्रासगिक नही होगा।

सरदार भगतसिह के निकट सहयोगी श्री बटुकेश्वर दत्त को भगतसिह के पहले १२-६-१९२९ को आजीवन करावास का दण्ड मिला था। नौ वर्ष पश्चात् सन् १९३८ में वे मुक्त हुए। जुलाई १९६५ में उनकी मृत्यु होने पर जिन्होंने उन्हें श्रद्धाजली समर्पित की उनमें राज्यासन पर अधिष्ठित वरिष्ठ पुरुष भी थे। राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने भी उन्हें पुष्पाजलि समर्पित की। राष्ट्रपति ने किसका सम्मान किया ? क्या उस अवैध कृत्य का जिसमें दत्त सहयोगी थे ? ऐसी कल्पना करना तो राष्ट्रपति पर दोष आरोपित करना होगा। उन्होने दत्त के विधि विरोधी कृत्य का नही प्रत्युत दत्त की देशभक्ति का देश के लिये उनकी त्याग भावना का सम्मान किया। क्योकि वह भावना अपराधी नही थी, निषिद्ध नही थी, प्रत्युत सराहनीय थी, वन्दनीय थी और अनुसरणीय थी।

अपराधियो के गुणों की सराहना के उदाहरण हमें अग्रेजी शासनकाल मे कही कही दिखाई देते हैं। जुलाई १९०९ में क्रातिवीर मदनलाल धिंग्रा का अभियोग लदन में चल रहा था। उनका आचरण धीरोदात्त था। उस आचरण मे अनेक अग्रेज प्रभावित हुये थे जिन्होने किसी से भयभीत न होते हुए मदनलाल को फासी दिये जाने का सार्वजनिक रूप में विरोध किया। मदनलाल के प्रति सहानुभूति प्रकट करके उन्होने उनके द्वारा की गई हत्या का समर्थन किया था ऐसा नही माना जा सकता।

फरवरी-मार्च १९१० में बम्बई न्यायालय में क्रातिकारी अनत कान्हेरे पर अभियोग चल रहा था। तीन न्यायाधीशो में दो श्री स्कॉट और श्री हीटन अग्रेज थे। बैरिस्टर जैकर भी अभियोग को सुनने के लिये न्यायालय में बैठते थे। उन्ही दिनो उन दो अग्रेज न्यायाधीशो में से एक की श्री जैकर से भेंट हुई तो सर्वथा अप्रत्याशित रूप में श्री जैकर से उन्होंने कहा—"आप प्रतिदिन न्यायालय मे बैठते है, कान्हेरे के सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं ? ऐसे कोमल, सुन्दर और धैर्य के प्रतिमूर्ति युवक को मुझे फासी पर चढाना पड़ रहा है। कैसा दुर्भाग्य है यह।"

(.... ... What a pity that I have to send such a handsome and couragcous youth to the gallows !) The Story of my L·fe : M. R. Jaykar; Page 117, 118)

न्यायमूर्ति के इन उद्गारो में कान्हेरे की धैर्यशीलता की प्रशसा थी। हत्या के कृत्य का समर्थन नही।

उपरोक्त निरूपण के अतिरिक्त न्यायालय का एक और अभिमत पाठको की दृष्टि में लाना उपयुक्त होगा उससे उदात्तीकरण और अवमूल्यन जैसे भ्रमो का अनायास ही निराकरण होगा।

दिनाक १५-११-१९४९ को नथूराम और आपटे को अम्बाला केन्द्रीय कारागार में फांसी दी गई। उस दिन पूना के "केसरी" (अर्घ साप्ताहिक) ने "देहान्त शासनाचे राष्ट्रीय बळी" शीर्षक अग्रलेख प्रकाशित किया। दिनाक २९-१२-१९४९ को वम्बई-शासन ने एक आदेश के द्वारा "केसरी" से ३००० रुपये की प्रतिभूती (Security) मागी। शासन का कहना था कि "केसरी" ने इण्डियन प्रेस एक्ट (१९३१) की सीमा का अतिक्रमण किया है। क्योंकि उसने शासन द्वारा घोषित गाधी वध के दण्डित अपराधियो की प्रशसा की। "केसरी" के तत्कालीन सम्पादक श्री ग वि केतकर ने वम्बई के उच्च न्यायालय में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। जो Criminal application No 136 of 1950 इस क्रमाक से पजिकाबद्ध किया गया। न्यायपीठ पर न्यायमूर्ति श्री छागला, श्री बावडेकर और श्री शहा विराजमान थे। दिनाक १३-४-१९५० को दिये गये निर्णय को न्यायमूर्ति छागला ने लेखापित (Dictate) किया था और अन्य न्यायमूर्तियो ने उसे मान्यता दी थी। न्यायमूर्ति श्री छागला के अनुसार केसरी ने विधान का उल्लघन नही किया था। न्यायमूर्ति का तात्पर्य यह था कि हत्या प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन अथवा हत्या के लिये हत्यारे की प्रशसा करना ही आपत्तिजनक है। अपने अभिप्राय को उदाहरण द्वारा समझाते हुये न्यायमूर्ति ने तर्क दिया कि मान लो किसी चित्रकार पर हत्या का आरोप लगाया जाय और फाँसी दे दी जाय तब उसकी मृत्यु के पश्चात् यदि कोई समाचार पत्र दण्डित कलाकार की कला की प्रशसा करता है तो उसका यह अर्थ लगाना कि वह उसके द्वारा की गई हत्या की प्रशसा कर रहा है सर्वथा असगत है। न्यायमूर्ति ने शासन के आदेश को लौटा दिया।

कोई अपराध अथवा अपराध का सकल्प भी किये बिना मेरी नियति मे कारावास लिखा जाय, यह बात मुझे सदा बुरी लगी है, इसलिये ऊपर का निरूपण करना मुझे आवश्यक प्रतीत हुआ। मैं जिसके प्रति निष्ठा रखता हूँ ऐसा

भारत के अतिरिक्त कोई देश ससार मे नही है। किन्तु विडम्बना देखिये कि बिना किसी नियम और गणनाक्रम के निश्चित अवधि से अधिक समय तक आजीवन कारावास का दड भोग कर मुक्त होने के ४० दिन पश्चात् ही मुझे पुन. बन्दी बनाया गया तो 'भारत सुरक्षा अधिनियम' के आधार पर २४-११-६४ से ३०-११-६५ तक मुझे पुन कारावास भोगना पडा।

स्थानबद्धता की अवधि में मैंने सम्बन्धित अधिकारियो को लिखा—"देश की सुरक्षा मे सुविधा के लिये आप मुझे स्थानबद्ध रखना चाहते है न ? देश मेरा है। उसकी रक्षा के लिये जो भी यातना मुझे भोगनी पडें उन्हें भोगना मेरा कर्तव्य है। आप अपनी सतुष्टि तक मुझे बन्दी बनाये रखें, किन्तु मेरा दोष क्या है, यह तो मुझे समझा दीजिये।

आजीवन कारावास की अवधि में जिस प्रकार किसी भांति का प्रतिदान न लेते हुए मैंने अनेक बार रक्तदान किया था उसी प्रकार स्थानबद्धता के बीच भी पाकिस्तान का भारत पर आक्रमण होने पर रक्तदान मैंने किया। प्रतिदान की व्यवस्था होने पर भी मैंने कोई प्रतिदान नही लिया। देशनिष्ठा की भावना से मैंने यदि कुछ किया है तो उसका प्रतिदान लेने की इच्छा मेरी कभी नही रही किन्तु कोई बात का बतंगड खडा करे और किसी कार्य के पीछे का निहित अभिप्राय समझे बिना, कोई अपराध सिद्ध या आरोपित किये बिना ही यदि किसी पर कारावास लाद दे तो उससे किसके मन को दु ख नही होगा ? मुझे फासी कोठरी में रहने का अनुभव नही था। स्यात् इसी कसर को पूरा करने के लिये स्थान बद्धता के समय यरवदा बदीगृह में मेरे निवास के लिये फासी कोठरी चुनी गयी थी। कौन जाने The order is to be executed ... .. के स्थान पर The Prisoner is to be executed ... की कल्पना अधिकारियो को हुई हो। पांच दिन पश्चात् मुझे औरंगाबाद ले जाया गया। वहाँ तो मुझे एकान्त कोठरी से भी कठिन स्थान दिया गया। यह सब बात का बतगड बनाकर किया जा रहा था इसीलिये मुझे इसका क्षोभ था। अन्यथा उपरोक्त विवेचन की कोई आवश्यकता न थी।

दडित अपराधियो के व्यक्तित्व की विशेषताओ की प्रशंसा के उपरोक्त उदाहरण अप्रत्यक्ष स्वरुप के है। किन्तु पजाब उच्चन्यायालय (शिमला) के न्यायमूर्ति ने नथूराम के व्यक्तित्व या व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष प्रशंसा की थी। उसी न्यायपीठ के एक न्यायाधीश न्यायमूर्ति खोसला ने पन्द्रह वर्ष पश्चात् लिखी अपनी पुस्तक में, नथूराम के वक्तव्य में कितनी तार्किकता थी, उसमें श्रोताओ के हृदय हिला देने की कैसी विलक्षण क्षमता थी इसका स्वयप्रेक्षित, स्वयंश्रुत विवरण प्रस्तुत किया है।

न्यायपीठासीन जिन न्यायाधीशो ने नथूराम के अवैध कृत्य के कारण उसे मृत्युदड दिया उन्ही ने उनके व्यक्तित्व मे देखे गुणो की, उनके अपराधी होने पर भी, सार्वजनिक रूप में प्रशसा की। न्याय का यह सन्तुलन न्यायमूर्तियो के लिए तो गर्व की बात है ही, हमारे लिए भी अपने न्यायपीठ पर गर्व करने योग्य है।

नथूराम के जिन गुणों के लिये इस प्रकार की निरपेक्ष और निर्भीक प्रशसा की गई उन गुणों की भूमिका क्या है ? नथूराम का आचरण क्या उनका कारणभूत नही है ? यह जानने के लिए इतिहास का किंचित अवलोकन आवश्यक है।

ब्रिटिश कार्यकाल के देशभक्त क्रातिकारियो को गोरे शासको की न्यायपरायणता पर विश्वास नही था। जिस शासक को वे छली, धूर्त और अन्यायी मानते थे उसके द्वारा खोली गयी न्याय की दूकानो की तुला पर उन्हें कैसे विश्वास होता ?

१८५७ के स्वातत्र्य योद्धा तात्या टोपे पर चलाये गये अभियोग के संदर्भ में १० अप्रैल १८५९ को न्यायालय में तात्या ने कहा—"तुम हमारा न्याय करने वाले कौन होते हो ? तुम हमारे कोई नही हो। मैं तुम्हारा नागरिक नही हूँ। हमारा राज्य छीन लेने का अधिकार तुम्हे किसने दिया है ? तुम लोगो के द्वारा अन्यायपूर्वक छीने गये अपने राज्य को पुन प्राप्त करने का प्रयत्न करना हमारा अपराध नही है।

"मेरा जन्म तुम्हारे राज्य मे नही हुआ। जो मेरा राजा नही उसके प्रति निष्ठा की शपथ मैं क्यो लूँ ? मैं तुम्हारा नौकर नही, सेवक नही तव मैं विद्रोही कैसे हो गया ?

"यह राज्य हमारा है। यह पेशवाओ का राज्य है। मैं यदि निष्ठावान हूँ तो केवल उनके प्रति। केवल उनकी आज्ञा ही मुझे मान्य है, मेरा सिर धड़ से अलग कर दिया जाय तो भी मैं उनका सेनापति हूँ।

"भाग्य का पासा उलटा पड गया है। इसलिये मै विजित हूँ और तुम विजेता। किन्तु इसमें तुम्हारी वीरता सिद्ध नही होती। तुम्हारी न्यायपरायणता प्रमाणित नही होती। तुम्हारी सत्ता को मैं स्वीकार नही करता। मेरी निष्ठा मेरे देश के साथ है, मेरे राज्य के साथ है और मेरे स्वामी के साथ है।"

दिनाक १८-४-१८५९ के दिन तात्या को मृत्युदड दिया गया और उसी दिन उन्हें फाँसी दे दी गयी, यह पाठक जानते ही होगे।

इसी प्रकार सरदार भगत सिंह और उनके साथियो ने हुतात्मा यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु के पश्चात् न्यायालय का बहिष्कार कर दिया था। उनका कहना

था कि जिस राज्य की आधारशिला ही अन्याय की मिट्टी पर टिकी है उनके द्वारा नियुक्त न्यायालय अपने अन्यायी शासन के मूलोच्छेद के लिये कृतसंकल्प देशभक्तों के साथ न्याय देंगे यह असभव है। स्वाधीनता सग्राम की राजनीति के अखाड़े में उतरने वाले प्रत्येक देशभक्त को अग्रेजी न्यायालयो से कोई आशा नही करनी चाहिए, भगतसिंह का यह निश्चित मत था। १९३० के अक्टूबर में उन्हें दड दिया गया और सुखदेव, भगतसिंह और राजगुरु को २३-३-१९३१ की रात्रि में लाहौर कारागार में फाँसी दे दी गयी।

तीसरा उदाहरण तनिक भिन्न होने पर भी उद्धरणीय है। १९१० के अभियोग में स्वातन्त्र्यवीर सावरकर ने एक व्यवस्था का प्रश्न उठाया था। उनका कहना था कि वे ब्रिटिश राज्य के बन्दी नही हैं। उन्हें फ्रान्स की भूमि से पकड कर लाया गया है। यह गिरफ्तारी ही अवैध है। उन्हें फ्रान्स के हाथो सौंप दिया जाना चाहिए। फिर भी यदि ब्रिटिश शासन उन पर अभियोग चलाती है तो उसमें तटस्थ रहेंगे क्योकि ब्रिटिश राज्य और न्यायालय को उन पर अभियोग चलाने का कोई अधिकार नही है। दिनाक २४-१२-१९१० के दिन उन्हें आजीवन कारावास हुआ और ३०-१-१९११ को द्वितीय आजीवन कारावास दिया गया। उनकी सम्पूर्ण अचल सम्पत्ति पर शासन ने अधिकार कर लिया।

किन्तु गाधी वध के इस प्रसग में स्थिति दूसरी थी। अब राज्य अपना था। नथूराम एव अन्य अभियुक्त स्वय को इस राज्य का नागरिक मानते थे। वे न तो शासन को परकीय मानते थे और न ही उलटने के उद्देश्य से उन्होंने शस्त्र उठाये थे। शासन के प्रति निष्ठावान होने के कारण उसे उलटने की उनके मन में न तो कल्पना थी और न ही अभियोजको ने ऐसा कोई असत्य आरोप उन पर लगाया था। शासन के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने पर उसके द्वारा नियुक्त न्यायपीठ के सभी न्यायासनो के प्रति निष्ठा रखना स्वाभाविक है। न्यायासन को न्याय करने में सहयोग देना जिस प्रकार अभियोजको का कर्तव्य है उसी प्रकार अभियुक्त या बचाव पक्ष का भी कर्तव्य है। इस दिशा में जो निर्णय मनोनुकूल हो उसे न्यायोचित और जो अपने प्रतिकूल हो उसे अन्याय पूर्ण मानने की मनमानी प्रवृत्ति उचित नही है। इसी धारणा से नथूराम न्यायासन को अपना सम्पूर्ण सहयोग देने के लिये कृतसकल्प थे। ३० जनवरी की घटना के सम्बन्ध में और गवाहियाँ प्रस्तुत करने की कोई आवश्यकता नही है, यह इसी भावना से नथूराम ने अभियोजकों के वकील को समझाया था। थोडी बहुत इधर-उधर की बातो को छोड कर मुख्य घटना की प्रामाणिकता में किसी को कोई सन्देह नही था। नथूराम स्वय उसे स्वीकार कर रहे थे। इसलिये इसी घटना को और अधिक सबूतो से प्रमाणित करने के परिश्रम से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, ऐसा नथूराम का

अभिप्राय था। अभियोजक उन कन्याओ की शहादत न्यायासन के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे, जो गांधी जी के साथ अन्तिम क्षणो तक थी और जिनके कन्धो पर हाथ रखे गाधी जी प्रार्थनास्थल तक आये थे। गोलियो की ध्वनि के साथ गाधी जी के धराशायी होने पर वे कन्याये इतनी भयभीत और व्याकुल हो गई थी कि खडी रह सकना उनके लिये कठिन हो गया था। वे गाधी जी के पास वही भूमि पर बैठ गई थी। उनकी वह व्याकुलता, भय और आतंकित मुद्रा नाथूराम को स्मरण थी। वे उन निर्दोष कन्याओ को भीड भरे न्यायालय मे उस दु खान्तिका को स्मरण कराने और दोहराने की मानसिक यन्त्रणा नही देना चाहते थे, विशेषतया उस स्थिति मे जब उनकी शहादत से अभियोग अधिक पुष्ट होने वाला न था। गाधी जी की हत्या प्रमाणित हो चुकी थी और नथूराम उसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रारम्भ से ही अपने ऊपर ले चुके थे। नथूराम का अभिप्राय अभियोजको ने समझा और उन कन्यायो एव अन्य और वहुत से गवाहो को प्रस्तुत करके पिष्टपेषण का विचार छोड दिया गया। मूल घटना का कारण स्वयं होना स्वीकार करके न्यायासन को पूरा पूरा सहयोग देने का नथूराम ने जो निश्चय किया था उस पर वे अन्त तक दृढ रहे।

न्यायालय ने जब मृत्युदण्ड सुना दिया तब नथूराम ने न्यायालय को आदर प्रदान करते हुए उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। उनका कहना था कि न्यायालय ने किसी द्वेषभाव से प्रेरित होकर मृत्युदण्ड नही दिया है, यह न्यायालय स्वतन्त्र भारत का अपना न्यायालय है। नथूराम मृत्युदण्ड के विरुद्ध पुनरावेदन करते तो उसमे उनकी देशनिष्ठा पर कोई कलक लगने वाला नही था।" क्योकि इस न्यायालय के ऊपर उच्च न्यायालय भी स्वतन्त्र भारत के अपने शासन ने ही स्थापित किये थे किन्तु उच्च न्यायालय में उन्होने अपने मृत्यु दण्ड के विरुद्ध पुनरावेदन प्रस्तुत नही किया। उन्होने जो पुनरावेदन किया वह षडयन्त्र के आरोप के विरुद्ध था। गाधी जी को मैंने मारा है, इस कार्य के पीछे कोई योजना या कोई षडयन्त्र नही है, इसलिये षडयन्त्र की कल्पना करके जो अन्य निर्दोष लोगो को दण्डित किया जा रहा है, वह अनुचित है और उस पर पुनर्विचार होना चाहिये। यही उनका अभिप्राय था। किन्तु इस पर भी उच्च न्यायालय जो निर्णय दे उसे शिरोधार्य करने का उनका निश्चय था।

मृत्युदण्ड के कार्यवहन के आत्मसमर्पण के उदाहरण बहुत बार देखने को मिलते है। किन्तु प्राय. उनका उद्देश्य शासन को चकमा देने का होता है। किन्तु नथूराम की भूमिका यह नही थी। आत्महत्या करके शासनको धोका अथवा चकमा देने का उनका विचार न था। क्योकि उनकी धारणा थी कि शासन और न्यायासन दोनों ही अपने है।

नथूराम की यह भूमिका पजाब उच्च-न्यायालय ने स्पष्ट अनुभव की। वकील का कार्य, फिर चाहे वह अभियोजक पक्ष का हो अथवा बचाव पक्ष का, न्याय-प्रदान कार्य मे न्यायालय को सहयोग देना होता है। नथूराम ने भी अपने अभियोग की अवधि मे वैसा ही सहयोग न्यायालय को दिया था, ऐसा न्यायालय की कार्यवाही पढने से ज्ञात होता है। मृत्यु दण्ड के विरुद्ध उन्होने एक भी शब्द नही कहा किन्तु न्यायालय के सम्मुख उन्होने अपना पक्ष जिस कुशलता से प्रस्तुत किया वह नितान्त प्रशसनीय एव सराहनीय माना जायगा। यद्यपि पुनरावृत्ति होगी तथापि प्रस्तुत प्रसग के परिपेक्ष्य में "निर्णय पत्र" के पृष्ठ २०४ पर अंकित शब्दो को यहाँ पर उद्धृत करना अनुपयुक्त न होगा।

" . of the appealants NathuRam V. Goodse has not challanged his conviction under section 302 of the Indian Penal Code for the offence of the murder of Mahatma Gandhi on the 30th January 1948 nor has he appealled from the sentence of death passed on him in respect of that offence He has confined his appeal and also has arguments at the Bar He personlly argued his appeal, I must say with conspicuous ability evidencing, a mastery of facts which would have done credit to any counsel only to the other charges which have been found proved against him . "

नथूराम द्वारा न्यायालय को सहयोग देने का न्यायाधीशो पर उपयुक्त प्रभाव पडा होगा।

न्यायाधीश यह भलीभाति जानते थे कि देश की तत्कालीन परिस्थितियो से दुखी एव बाध्य होकर ही यह हत्या की गयी है। देश विभाजन के परिणाम-स्वरुप उनका प्रान्त और सम्भवतया वे स्वय भी प्रपीडित थे अत उन्हें उसकी पुनरानुभूति करा देने की आवश्यकता नही थी। १९२९ में सम्पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव लाहौर कांग्रेस में ही पारित हुआ था। जिस की स्मृति में आज हम २६ जनवरी को गणतन्त्र दिवस मनाते हैं। २६ जनवरी १९२९ को कांग्रेस ने सम्पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पारित किया था। वही पवित्रस्थल भारत का भाग होते हुए भी अब स्वतन्त्रता के बाद विदेश का भाग बन गया था। हिन्दुओ के लिये वहाँ अब कोई स्थान नहीं, और अब वह मुस्लिमधर्माधिष्ठित राष्ट्र बन गया है इस नाते वह पाक अथवा पवित्र बन गया है यह ध्वनि भारतवासियो को कर्णगोचर हो रही थी। इतिहास की यह विडम्बना न्यायमूर्तियो के सम्मुख ही घटित हुई थी और हो रही थी। लाहौर निवासी अन्यान्य हिन्दुओ की ही भाति वहाँ की

न्यायपीठ पर आसीन न्यायमूर्तियो को भी निर्वासित होना पडा था। पजाब उच्चन्यायालय जो किसी युग में लाहौर में अधिष्ठित था उसे विभाजित भारत में लाना पडा था और सुविधा-असुविधा की दृष्टि से अनेक वर्ष तक उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण करते रहना पडा था, इसका अनुभव भी न्यायमूर्ति प्रतिक्षण करते रहते थे। यही कारण है कि हत्या के अपराध में विधानानुसार नथूराम को प्राणदण्ड देने पर भी उन्हे ऐसा नही प्रतीत हुआ कि नथूराम न्यायनिष्ठ अथवा देशनिष्ठ नही है और यही कारण है कि इस अवधि मे जो गुण उन्होने नथूराम मे देखे उनकी प्रशसा उन्होने स्पष्टतया निर्भीक होकर अपराधी को दण्ड देना जिस प्रकार जनता के प्रति न्याय प्रदर्शित करना है उसी प्रकार अपराधी की भावना का मूल्याकन करना भी जनता के प्रति न्याय्य ही था। विदेशी और स्वदेशी दो विभिन्न राज्यो मे क्रान्तिकारी अभियुक्तो की भूमिका में और न्यायपीठ की अभियुक्तो की ओर देखने की भूमिका में जो अन्तर होता है वह इस अभियोग अवधि में देखने को मिला। इस प्रस्तावना के उपरान्त हम नथूराम के पूर्वचरित्र पर प्रकाश डालेंगे।

अग्रेज शासको के प्रति भारतीयो द्वारा किये जाने वाले शस्त्र प्रयोग की रोकथाम के उपायो पर विचार करने के लिये १९१७ में ब्रिटिश सरकार ने एक समिति का गठन किया था। न्यायमूर्ति एस०,ए० टी० रोलेट इस समिति के सयोजक थे। १५-४-१९१८ को उन्होने अपनी छानबीन का विवरण प्रस्तुत कर दिया था। इस प्रतिवेदन को "सिडिशस कमेटी रिपोर्ट" के नाम से जाना जाता है।

उनका कहना था कि लोकमान्य तिलक द्वारा प्रचारित एव प्रसारित 'गणेशोत्सव' तथा 'शिव जयन्ती' कार्यक्रम क्रान्तिकारी षडयन्त्रो के मूल हैं। उन्होने अपनी खोज में इसे भी महत्व दिया कि लोकमान्य तिलक, चाफेकर बन्धु, रानडे, कान्हेरे, शिवराम महादेव पराजपे तथा सावरकर बन्धु सदृश सभी उग्रवादी चितपावन ब्राह्मण हैं। अग्रेजी शासन का भारत से मूलोच्छेद करने की भावना चितपावनो में अत्यत तीव्र है। उनका निष्कर्ष था कि सभी षडयन्त्रकारी ब्राह्मण हैं।

भारतीय स्वतन्त्रता एव क्रान्तिकारियो के इतिहास पर यदि हम दृष्टिपात करें तो हमें विदित होगा कि केवल एक छोटे से चितपावन ब्राह्मण समुदाय में ही ब्रिटिश राज्य के प्रति विरोध की भावना विद्यमान रही हो ऐसी बात नही है। इतिहास पर साधारण दृष्टिपात से ही यह तथ्य समझ मे आ सकता है। रौलेट कमेटी ने अपने प्रतिवेदन मे चितपावन ब्राह्मणो के प्रति जो अपनी भावना व्यक्त की है यह उसका सकुचित दृष्टिकोण ही है। उक्त प्रतिवेदन की पृष्ठ सख्या १० पर अकित है कि कान्हेरे के षडयन्त्र के जिन सात व्यक्तियो को दण्ड दिया

गया वे सबके सब चितपावन ब्राह्मण थे। इस षडयन्त्र में कान्हेरे, कर्वे और देशपाण्डे को मृत्युदण्ड दिया गया था। इस प्रसग मे यह बता देना उचित होगा कि देशपाण्डे चितपावन ब्राह्मण नही थे, यह महाराष्ट्र के सभी लोग जानते है।

सामान्यतया भी इस प्रतिवेदन में ब्राह्मणो के विरोध में जो लिखा गया है वह सब उन्होने पूर्वाग्रह से पीडित होकर ही लिखा है। सम्भवतया उनकी धारणा यह रही हो कि ब्राम्हणो को राजद्रोही बता कर जन साधारण को यह समझा दें कि ब्राह्मणेतर जन उनसे अच्छे है। इस प्रकार जातिवाद का प्रश्न उपस्थित कर परस्पर फूट के बीज बो उससे लाभ उठाने की लालसा समिति के सदस्यो की रही होगी। उनकी धारणा अथवा लालसा जो भी रही हो किन्तु यह सत्य है कि अग्रेज शासको को फूटी आखो न सुहानेवाले चितपावन ब्राह्मण कुल में ही नथूराम गोडसे का जन्म हुआ था। उनका कुल ऋग्वेदाम्यासी एव शाण्डिल्य गोत्रीय था।

इस सम्बन्ध में बहुत प्राचीन इतिहास की छानबीन करने की आवश्यकता नही है। कितना भी प्राचीन इतिहास क्यो न खोजें किन्तु यह सम्भव नही कि किसी भी इतिहास का प्रथम पृष्ठ हस्तगत हो। नथूराम के पितामह श्री वामनराव विद्वान ब्राह्मण थे। कृषि के साथ साथ वे पौरोहित्य का कार्य भी करते थे। पूना जिला में मावल तालुके के अन्तर्गत उक्साण ग्राम के वे निवासी थे। उन दिनो आवागमन का साधन बैलगाडी ही थी। मार्ग पर स्वाभाविक ही गाडी के चक्रो की लीक सी बन जाती थी। उन दिनो तारकोल अथवा सीमेण्ट का प्रचलन नही था। इसी कारण से वर्षाऋतु में लगभग चार मास तक इस प्रकार आवागमन बन्द रहता था, मार्ग में पानी भर जाने के कारण लम्बी यात्रा सम्भव नही हो सकती थी।

सर्वसाधारण रूप से प्राय उस समय सभी देहातों का जीवन कठिन होता था। परिवहन की सुविधा नही थी और न उद्योग धन्धे ही विकसित हो पाये थे। यही कारण है कि आजीविका के लिए ग्रामीण साधन सर्वथा अपर्याप्त थे। अपनी सन्तति अग्रेजी शिक्षा ग्रहण करे, उसमे उसे सरकारी नौकरी प्राप्त हो जिससे कि बढते हुए परिवार का परिपालन हो सके, इस महत्वाकाक्षा के वशीभूत ग्रामवासियो की दृष्टि नगरोन्मुखी हो गई थी।

नथूराम के पितामह पण्डित वामनराव की तीन कन्यायें तथा एक पुत्र था। सुपुत्र विनायक का जन्म १८७५ में हुआ था। कन्याओ की शिक्षा का प्रबन्ध उस युग में घर पर ही होता था। उनको कही बाहर नही भेजा जाता था। इसलिए उनकी शिक्षा का प्रश्न प० वामनराव के सम्मुख नही था। पुत्र की प्राथमिक शिक्षा उक्साण में ही पूर्ण कर उच्च शिक्षा के लिये वे सपरिवार पूना

आ गये। परिवार पूना में ही रहने लगा और वे स्वय गाव घर का कार्य देखने के लिए यथानियम उक्साण आते जाते रहे।

जब विनायक उच्च शिक्षा के अन्तिम वर्ष में थे उस समय उनके विवाह की चर्चा चली। तब उनको सत्रहवा वर्ष लग गया था। प्राचीन प्रथा के अनुसार सत्रहवें वर्ष में उनका विवाह कर दिया गया। पूना के ही निवासी वैद्य श्री विनायकराव फडके की सुकन्या सौ० गोदावरी से उनका पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। गोदावरी की आयु उस समय १० वर्ष की थी। विवाहोपरान्त उनका नाम लक्ष्मी बदला गया। उसी वर्ष परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त विनायक को पूना में ही डाकघर की नौकरी भी मिल गई। प्रथम तीन मास के लिए उनका मासिक वेतन पाच रुपया निर्धारित हुआ और तदुपरात पन्द्रह रुपये मासिक निश्चित किये गये।

पाँच अथवा पन्द्रह रुपये मासिक वेतन आज भले ही उपहास का विषय हो, किन्तु तत्कालीन स्थिति में यह पर्याप्त समझा जा सकता था। वस्तुएँ इतनी महगी नही थी। विनायक १० रुपये में अपना मासिक व्यय चला लेते थे और पाँच रुपया वे नियमितरूपेण अपने पिताजी को भेजते थे। उनके पिताजी कभी उकसाण में रहते थे और कभी उनके समीप पूना में। सदैव विनायक के पास रहना उनके लिये सम्भव नही था क्योकि नौकरी के कारण विनायक का स्थानान्तरण होता रहता था। गाँव की कृषि उनकी आजीविका का साधन था।

विनायक की गृहस्थी विवाह के पाँच-दस वर्ष उपरान्त ही प्रारम्भ हुई। ज्येष्ठ पुत्र के जन्म पर उनको पितृपद प्राप्त हुआ और अब वे विनायक से विनायकराव कहलाने लगे। सुपुत्र का नाम रामचन्द्र रखा गया। किन्तु दुर्दैव से दो वर्ष बाद ही रामचन्द्र दैवगति प्राप्त कर गया। दूसरी सन्तानके रूप में सुकन्या ने जन्म लिया उसका नाम मथुरा रखा गया। इसके बाद दो सुपुत्र और हुए किन्तु वे भी एक-एक वर्ष से अधिक इस ससार में नही रहे। लडको के न रहने से माता-पिता एव नाना-नानी को बहुत दु ख होता था।

आज के इस यान्त्रिक युग में भी जब अभी श्रद्धा का पूर्ण लोप नही हुआ, तो उस युग में समाज पर श्रद्धा का जितना प्रबल प्रभाव था वह कोई आश्चर्य की बात नही है। विनायकराव उससमय बारामती में रहते थे। धर्मपत्नी लक्ष्मी पुन गर्भवती थी। तब विनायकराव के माता पिता ने कुलदेवता के मन्दिर मे जाकर मनौती मानी कि उनकी पुत्रवधू के सुपुत्र उत्पन्न हो, उसे वे दायी की गोद में दे देंगे। दायी का पुत्र समझ कर ही उसका पालन-पोषण करेंगे, उसका उपनयनादि भी मन्दिर में ही करेंगे, आदि-इत्यादि।

सौभाग्य से १९ मई १९१० को सौ० लक्ष्मीबाई ने पुत्ररत्न को जन्म दिया। पारिवारिक लोगो की धारणा दृढ हो गई कि कुलदेवता ने उनकी मनौती

स्वीकार कर ली है। पुत्र को दायी की गोद में दिया गया। उसका नाम रामचन्द्र रखा गया। उसकी नाक छेदी गयी। नाक छेदने के कारण सभी लोग प्यार के भाव से उसको नथू (नकछेद) कहने लगे। किन्तु कालान्तर में नथूराम नाम ही प्रचलित हो गया।

बारामती के बाद विनायकराव का स्थानान्तरण खेड, लोनावला, तलेगाव, कर्जत और रत्नागिरि आदि स्थानो पर हुआ। नथूराम के बाद १९१५ में बारामती में दत्तात्रय, १९१७ में खेड में शाता, १९२० में गोपाल और १९२१ में तलेगाव में गोविन्द उत्पन्न हुए।

नथूराम की प्राथमिक शिक्षा बारामती में ही प्रारम्भ हुई। उनका उपनयन सस्कार कुलदेवता के सम्मुख मनौती के अनुसार बारामती के राममन्दिर में हुआ। सन्ध्या-वन्दन और सूर्य नमस्कार सभी माता पिता उन दिनो अपने घरो में अपनी सन्तान को सिखाते ही थे। नथूराम का भी वही उपक्रम चलता रहा। स्कूली शिक्षा के साथ साथ उन दिनो यह प्रथा भी थी कि पुत्र को कठाभरण कराया जाय। ऐसी मान्यता थी कि इससे बुद्धि का विकास होता है। यह कार्य घर पर ही होता था।

कठाभरण में नथूराम की बुद्धि बहुत ही तीव्र थी। शाम को नवनीत के चुने हुए श्लोक मनुस्मृति के श्लोक, करुणाष्टक, आरती, रामायण और महाभारत के चुने हुए श्लोक पढाने तथा उनके सुन लेने की प्रथा होने के कारण नथूराम का कठाभरण बहुत अच्छा हुआ था।

महाराष्ट्र के विशेष तथा पूना के राष्ट्रीय विचारधारा के समाचार-पत्रो को रौलट ने चितपावन प्रेस सज्ञा से ही सम्बोधित किया है। सिडिशस कमेटी की रिपोर्ट के पृष्ठ १३ पर ऐसा स्पष्ट अकित है। 'केसरी' उस समय का प्रमुख पत्र माना जाता था। अग्रेज भक्त कर्मचारियो ने ''केसरी'' की नीति को अग्रेजी राज्य का विरोध करने के लिये जनता में असन्तोष निर्माण करने वाली नीति कहकर अलिखित रूप मे केसरी के पठन को आपत्तिजनक घोषित किया हुआ था। किन्तु इसके विपरीत वस्तुस्थिति यह थी कि प्रेमी पाठको से भी अधिक उत्कण्ठा ऐसे लोगो में ही 'केसरी' पढने के लिये देखी जाती थी। किसी कृति पर प्रतिबन्ध लगाने मे उसके प्रति कौतूहल बढता है। यही कारण है कि नथूराम के पिता ने अपने ऊपर कोई आरोपण न हो सके इस सम्भावना मे बचने के लिये नथूराम के नाम मे, जिसकी आयु उस समय सात-आठ वर्ष की होगी, 'केसरी' मगवाना आरम्भ किया।

नथूराम को छोटी सी अवस्था मे पढने का चस्का लग गया था। वह 'केसरी' पढ़ कर उसको समझता भी था, ऐसी बात नही है किन्तु घर में पठन सामग्री के

रूप मे 'केसरी' विद्यमान होने से वह उसे पढते थे। स्वातन्त्र्य-समर की जो सामग्री उसमें प्रकाशित होती थी उसे नथूराम बाल्यावस्था में तो अनजाने में किन्तु बाद में समझ कर निरन्तर रुचि से पढते थे। इसका उनके मन पर प्रभाव हुआ। इस सम्बन्ध में होने वाली चर्चा तथा भाषणो में भी उनकी रुचि बढने लगी थी। एक बार वे अपने पिताजी के साथ एक भाषण सुनने के लिये गये। भाषण के विषय के अनुसार घर लौटने पर उन्होने विदेशी शक्कर के बहिष्कार का आग्रह किया। उनके पिताजी जानते थे कि यह हठ केवल बाल स्वभाव के कारण है, किसी विषय को पूर्णरूप से समझकर करने की प्रतिक्रिया नही है। इतना जानते हुए भी केवल पुत्र का हठ पूर्ण करने के विचार से और यह समझते हुए भी कि इस हठ को पूर्ण करने में कोई हानि भी नही है उन्होने उस समय से घर में विदेशी शक्कर का लाना बन्द कर दिया। किन्तु इस क्रिया ने एक परम्परा डाल दी और भविष्य मे घर में विदेशी वस्तुओ का न लाना नियम सा बन गया।

नथूराम के पिता का स्थानान्तरण छोटे-छोटे ग्रामो में होते रहने के कारण उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न हो पा रहा था। मराठी की चतुर्थ श्रेणी उत्तीर्ण कर अग्रेजी शिक्षा के लिये उनको पूना में उनकी बुआ के पास रखा गया। बाद मे तीन चार छात्रो ने मिलकर एक अलग कमरा लिया तो नथूराम भी वही जा कर रहने लगे। अवकाश के दिन नथूराम अपने घर आया करते थे।

कविता पढना, उसे कंठस्थ करना और स्वय भी कविता रचना, यह अभि-रुचि पाठशाला के दिनो में ही नथूराम मे जागृत हो गई थी। लोकमान्य तिलक के उद्देश्य के अनुसार उस समय गणपति समारोह का सदुपयोग राष्ट्रभक्ति प्रज्ज्वलित करने के लिये ही किया जाता था। लोकमान्य के बाद में भी यह प्रथा प्रचलित रही, खण्डित नही हुई। नथूराम उन दिनो मेले मे गाये जाने योग्य देशप्रेम से ओतप्रोत रचनाये रचने लगे थे। उन दिनो ही उन्होने "लक्ष्मीतनय" नाम से एक छोटा सा पद्यसग्रह भी प्रकाशित कराया था। 'रामरक्षा स्तोत्र' का छन्दोबद्ध रूपान्तर भी उन्होने किया।

यद्यपि नथूराम की विचारप्रणाली तर्ककठोर थी किन्तु बाल्यावस्था मे वह अत्यन्त भावुक प्रकृति के थे। बडी बहिन मथुरा का विवाह हो चुका था। उसका स्वास्थ्य ठीक नही रहता था अत निश्चय किया गया कि उसको मायके लाया जाय और यहाँ पर उसकी चिकित्सा की जाय। औषधोपचार किया गया किन्तु उसका सन्तोषजनक परिणाम नही निकला। किसी ने सुझाव दिया कि कही इसका दैवी प्रकोप न हो इस कारण घर मे कठपुतली की पूजा कराई जाय। घर

पर उसकी पूजा कराई जाने लगी और सयोग की वात कि वहिन का स्वास्थ्य सुधरने लगा।

यह पूजा नथूराम ही करते थे। पूजा की विधि थी कि कासे की थाली के बीच में काजल पोता जाता था, देवस्थान या अन्य किसी भी सुविधाजनक स्थान पर दीवार के समीप भूमि को लीपा पोता जाता था, पीढा रख कर वह थाली उस दीवार के समीप रखी जाती थी, पीढे पर दो दीपक प्रज्वलित रहते थे, उनका प्रतिविम्व काजल मे पडता था। यह पूजा प्राय सायंकाल सन्ध्या के वाद होती थी। पूजा करने वाला उस थाली के सामने बैठता था, वह गवाक्षत से पूजा करता था। एक दृष्टि से वह थाली के काजल की ओर देखता रहता था।

पूजा करने वाले से प्रश्न पूछे जाते थे। उसके मुख से निकलने वाला उत्तर देवी का उत्तर माना जाता था। पूजा करनेवाले को उस कागज में कभी मूर्ति, कभी आकृति और कभी अक्षर दिखाई देते थे। प्रश्न पूछे जाने पर पूजा करनेवाले को उससमय काजल में जो दीखता था वह वता देता था। कई वार उसे उस प्रश्न का प्रत्यक्ष उत्तर समझ में नही आता था। तव उसका अर्थ समझने के लिये तर्क किये जाते थे। इस प्रकार नित्य आधा घटे तक यह प्रक्रिया चलती थी।

घर के सभी व्यक्तियो ने काजल में कुछ देखने का यत्न किया। किन्तु किसी को कुछ नही दीखा केवल नथूराम को ही ये दृश्य दिखाई देते थे।, कभी कभी तो प्रश्न न पूछे जाने पर भी नथूराम को किसी समय में कही अन्यत्र देखे हुए देवी देवता अथवा मूर्तियाँ दिखाई देती। कभी कभी तो उनको अपने पढे हुए किन्तु जो कण्ठस्थ न हो पाये हो ऐसे श्लोको के अक्षर उस पर दीखते थे जो तेजी से लहर की भाति आते और आगे वढते जाते थे। नथूराम उनको पढने का यत्न करते तो उनके मुख से कोई श्लोकवद्ध स्तोत्र अथवा रुद्राष्टक का भाग निकलता था।

पूजा समाप्त होने पर नथूराम को जव काजल में दीखनेवाला स्तोत्र अथवा श्लोक पढकर कहने के लिये कहा जाता तो वे सुना नही पाते थे, तवतक वे पुन विस्मरण हो जाते थे। कण्ठाभरण के लिये यह अच्छा उपाय है, इस भावना से वह कठपुतली की पूजा प्रत्येक मगलवार और शुक्रवार को करने लगे। किन्तु अगली पूजा में पिछली पूजा के अक्षर ही दिखाई दें ऐसी वात नही होती थी। तव किसी अन्य स्तोत्र अथवा श्लोक के अक्षर उभर आते थे। नथूराम में भी कुछ दैवी शक्ति है, ऐसी घरवालो की भावना वनने लगी थी।

यह उन दिनो की वात है जव नथूराम की शिक्षा पूना में हो रही थी और वे छुट्टी विताने के लिए घर पर आये हुए थे। यह पूजा उन्ही दिनो की गई

थी। तब उनकी आयु १५-१६ वर्ष की रही होगी। उसके बाद उन्होंने पूजा छाड दी, इसके लिए उनका कहना था कि उनकी श्रद्धा लुप्त होने लगी है।

नथूराम को उस काजल में मूर्ति या अक्षर दीखता था यह बात भौतिक विज्ञान की कसौटी पर खरी नही उतरती थी। भले ही अध्यात्मवादी इसको सत्य सिद्ध करने का यत्न करते रहे।

आदि शक्ति या माया सत्, रज् और तम इन तीन गुणो से युक्त है ऐसा हम मानते है। मानव प्राणी उस शक्ति का ही परिणाम माना जाता है। इन तीन गुणो और माया की शक्ति के जीवन से मनुष्य के मन का वातावरण बनता है। मनुष्य जिस समय जैसा व्यवहार करता है उस समय उसमें उस गुण विशेष का होना माना जाता है।

मनको एकाग्र करने का तात्पर्य है स्वय में सत्वगुण की वृद्धि करना, अर्थात् रज, तम के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली शक्ति को समाप्त करना। तब मन की एकाग्रता किस प्रयोजन से की जा रही है यह प्रश्न गौण है।

किसी विषय में मनुष्य की भावुकता अथवा श्रद्धा मन को एकाग्र करने में सहायक होती है। अतीत में देखी कोई घटना, पढी हुई पंक्तियाँ अथवा सुनी हुई वार्त्ता का प्रभाव मन पर अंकित होता है। यह बात भौतिक शास्त्र भी मानता है। उदाहरणार्थ जब कभी कोई व्यक्ति हमको मिलता है, हम उसको पहचानने का यत्न करते है, किन्तु उसका नाम स्मरण नही आता इससे हमको अडचन होती है। किन्तु बाद में जब पुन वह व्यक्ति कभी हमारे सम्मुख न भी हो तो सहसा उसका नाम स्मरण हो जाता है। मन का प्रभाव जागृत होता है।

मन एकाग्र होने पर वह किसी भाव विशेष पर केन्द्रित हो जाता होगा और सामने अक्षर दीखने पर कण्ठस्थ किये स्तोत्र अथवा श्लोक के अनुसार मुख से शब्द निकलने लगते होगे। अक्षर दिखाई दे रहे है इस धारणा का मूलाधार भी अक्षरो का ज्ञान होना ही होगा। एक प्रकार की समाधि अवस्था की स्थिति, बढी हुई आयु में विक्षेप शक्ति का प्रभाव अधिक होने के कारण मन का उस विषय विशेष पर एकाग्र होना कठिन हो जाता होगा।

सार्वजनिक कार्य में उत्साह दिखाना यह युवको का स्वभाव होता है। किसी में यह गुण विशेष होता है। ऐसे विशेष गुणो वाले युवक प्रत्येक पीढी में होते है। नथूराम उस आयु में सार्वजनिक कार्यों में सोत्साह भाग लेते थे। सार्वजनिक कार्य का उस समय का अर्थ इतना ही होता था कि वह काम स्वय के व्यवहार से अतिरिक्त हो। उदाहणार्थ, कुओ को साफ कर देना, उसकी घास निकाल देना, किसी को यात्रा के लिये सहायता दे देना, मन्दिरो में होने वाले समारोहो में

अग्रसर रहना, रोगियो की सेवा करना, विवाह समारोह में सहायता देना आदि आदि कार्य सार्वजनिक माने जाते थे।

नथूराम को तैरने का बहुत शौक था। वे और उनके मित्र जब जुटते थे तब वे मिल कर एक बडा सा पत्थर नदी के उस पार ले जाने का खेल खेला करते थे।

जिन दिनो वे लोनावला मे थे, उन दिनो अल्पायु होने पर भी वे तैराकी में निपुण हो गये थे। एक बार एक लडका कुएँ में गिर गया। उसकी माता तथा तत्रस्थ अन्य महिलायें रोने चिल्लाने लगी। उसी समय नथूराम और उनका एक मित्र उधर से जा रहे थे। नथूराम ने रोना चिल्लाना सुना तो उन्होने कूएँ में झाका लडके को डूबता देख कूएँ में छलाग लगाई और बच्चे को निकाल कर ले आये।

घरवालो को जब पता चला तो नथराम को डाटा डपटा गया। वह इसलिये नही कि उन्होने कुए में से लडके को क्यो निकाला अपितु इसलिए कि उन्होने महार के लडके को कुए से निकाल कर घर आकर स्नान क्यो नही किया। महार "हरिजन" कहलाते हैं। अपनी यौवनावस्था में जातिभेद को मिटाने का जो कार्य नथूराम ने किया उसकी पृष्ठभूमि में एक यह घटना भी सम्भवतया मुख्य रही होगी।

एक बार उनकी छोटी बहिन शान्ता घाट पर से नदी में गिर पडी और बहने लगी। नथूराम इस घाट पर तैर रहे थे। लड़की के डूबने पर चिल्लाहट हुई तो वे तैरते हुए उस पार गये और बहिन को उठा कर घाट पर ले आये।

कण्ठाभरण, भाषा, इतिहास आदि में विशिष्टता प्राप्त करते हुए भी अन्यान्य सभी अभ्यासो में भी वे उतने ही प्रखर हो यह बात नही थी। अंग्रेजी उनके लिये बहुत कठिन विषय था। एक समय ऐसा भी आया कि जब उनमें आवारा लडको के चिन्ह देखे जाने लगे। उनके एक पुराने सहपाठी हाल में ही मुझे मिले। वे इस समय किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित है। वे कहने लगे कि मैं भी उस आवारगी में सम्मिलित होता था। सात रुपयो में हमें दो बार का भोजन मिलता था। उन दिनो चित्रपट पर मूक चित्रो का प्रदर्शन होता था। हमें चित्र-पट देखने का चस्का लग गया। जब देखा कि पैसे अपर्याप्त होने लगे है तो हमने दो बार की अपेक्षा एक बार भोजन करना आरम्भ कर दिया। उसके लिये चार रुपये दिये जाते थे। जब फिर भी पैसो की कमी अनुभव होने लगी तो विचार किया गया कि भोजन घर पर ही बनाना आरम्भ किया जाय। उसके लिये सबने अपने घरवालो को कह दिया कि भोजनालय का भोजन महगा पडता है इसलिये हम अब स्वय घर पर भोजन बनाया करेंगे। इस प्रकार अपने घर वालो से सब ने प्राथमिक आवश्यकता की वस्तुओ के कुछ न कुछ पैसे ले लिये।

उनका कहना था, "हमने घर पर भोजन बनाने की योजना बनाई। तदनुसार प्रात काल एक बार ही दो पदार्थ बना कर दोनो समय का भोजन करने का कार्यक्रम था। परन्तु अन्न और शाक-भाजी आदि छोड कर तावा, परात आदि बर्तन हमने खरीदे नही अपितु किसी से माग कर काम चलाया। घर से आवश्यक सामग्री के लिये जो पैसे मगाये गये थे उससे हमने चित्रपट देखे। एक बार हममें से किसी के पिताजी अचानक हमारे कमरे में आ गये। कमरा बन्द था। उन्होने पडोस में रहने वाले लोगो से पूछताछ की। किसी पडोसी ने भली प्रकार हमारी आत्मनिर्भता का बखान उनके सम्मुख कर दिया। वे हमारे आने तक प्रतीक्षा करते रहे।

"अपने पिताजी को एकाएक आया देख कर उक्त लडका चौक गया। उसने अपनी अनुपस्थिति का यह बहाना बता दिया कि हम सब लोग पढाई के लिये बाहर गये हुए थे। उसके पिताजी उससे कुछ बोले नही। कुछ आगे बढे और सहसा अपने पुत्र की जेब में हाथ डाल दिया।

दुर्भाग्य कि बात कि चारो लडको के चित्रपट के टिकट उस समय उसी की जेब में थे। पिताजी को क्रोध आ गया और पुत्र की जेब में पडा हुआ हाथ जोर से उसके गाल पर लगा।

"थोडा बहुत समझा बुझा और कुछ डरा धमकाकर उस लडके के पिताजी दूसरे दिन अपने घर को चले गये। 'सस्ते ही छूटे' यह समझकर हम लोगो ने सुख की सास लिया।

"किन्तु हमने देखा कि आठ-दस दिनो के भीतर सभी लडको के घर से पत्र आये कि अब तक जो पैसा तुम्हें भोजन व्यवस्था के लिये दिया गया है उसका विवरण दो और जो वस्तुयें खरीदी है उनके बिल आदि भेजो।

"हम लोगो के घरवालो को यह बात उस लडके के पिताजी ने लिखी थी इसी के आधार पर हमसे यह स्पष्टीकरण मागा गया था। इससे भी बुरी बात यह हुई थी कि उन्होने एक पत्र मुख्याध्यापक को भी लिखा था जिसमें उनसे प्रार्थना की गई थी कि वे उन चारो लडको पर दृष्टि रखें। इसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि जब कभी भी हमको पढाई में कमजोर पाया गया तो छडियो से हमारी पिटाई की गई और कहा गया कि आवारगी के कारण हम उस पढाई में कमजोर रह गये है। भले ही कमजोर रह गये हो। भले ही कमजोरी का कोई अन्य कारण भी रहा हो।

"परीक्षायें समीप थी, इसलिये हम भी सब कुछ छोड कर पढाई में जुट गये।"

नथूराम का ध्यान राजनीतिक हलचल की ओर अधिक रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पढाई से उनका ध्यान हटने लगा। उन दिनो गाधी के नेतृत्व मे सत्याग्रह आन्दोलन जोर पकड रहा था। उन्होने पिताजी से सत्याग्रह में भाग लेने की अनुमती मागी। पिताजी ने उनको सुझाव दिया कि बाकी की बातें बाद में सर्वप्रथम शिक्षा को महत्व दिया जाना चाहिये। फिर उन्होने अपनी नौकरी जाने का भय भी दिखाया। नथूराम यदि सत्याग्रह में भाग लें तो पिताजी की नौकरी जाने का पूरा भय था। इन सब बातों पर गम्भीरता से विचार कर उन्होने सत्याग्रह में भाग न लेने का ही निश्चय किया।

परन्तु इनमे नथूराम को सन्तोष नही हुआ। तब उन्होने सोचा कि बाहर से ही इस कार्य में कुछ सहायता की जाय। किन्तु जो स्वयं परावलम्बी हो वह बाहर से किस प्रकार सहायता कर सकता था। पुत्र होने के नाते थोडा बहुत हठ करने का अधिकार उसका होता है इस दृष्टि से उन्होने और अधिक आग्रह करने का निश्चय किया। उस समय उनके पिताजी बम्बई-पूना मार्ग स्थित कर्जत में नियुक्त थे। छुट्टी के दिनो में नथूराम कर्जत जाया करते थे। इस बार दस-पन्द्रह सत्याग्रहियो का एक दल बम्बई जा रहा था। मार्ग में वह कर्जत में रुका था। गाव के मन्दिर में उन्होने निवास किया। गाव छोटा सा होने के कारण उनके वहा ठहरने का समाचार सर्वत्र फैल गया और सत्याग्रह के विषय में जनसमूह में कुतूहल जागृत हुआ। पूरे गाव में वार्ता प्रसारित हो गई। नथूराम अवकाश के कारण वहा गये हुए थे अत वे भी सत्याग्रहियो के दर्शनार्थ मन्दिर में गये। उस दल के प्रमुख से उन्होने भेंट की। और उन्होने उनमे भोजन के विषय में पूछा तो विदित हुआ कि कोई निश्चित प्रबन्ध नही है तब उन्होने सत्याग्रहियो को उस दिन का भोजन अपने यहां करने का निमन्त्रण दे दिया। यह निमन्त्रण उन्होने अपने पिता की ओर से दे दिया और अपना घर बता दिया। दल प्रमुख द्वारा निमन्त्रण स्वीकार किये जाने पर नथूराम घर आ गये।

घर आकर इस विषय में उन्होंने कुछ नही बताया। समय से कुछ पूर्व ही भोजन करके वे पुन. मन्दिर में चले गये। वहां जाकर उन्होने कहा कि भोजन बन रहा है, आप तब तक चलकर स्नान ध्यान करिये। इस कार्य में भी लगभग दो घटे तो लग ही जावेंगे। बात सुनकर सत्याग्रही उनके साथ उनके घर के लिये चल दिये।

नथूराम के पीछे पन्द्रह लोगो को कन्धे मे तौलिया डाले आते देख माताजी विस्मय करने लगीं। नथूराम ने आगे बढकर माताजी को कहा कि इन लोगो ने अभी भोजन नही किया है। केवल बेसन-भात ही यदि बन जाय तो

काम चल जावेगा। दोपहर वाद चार वजे की गाडी से इन लोगो को आगे जाना भी है।

मां कुछ उत्तेजित स्वर में बोली, "यह बात तुमने पहले क्यो नही बताई ? अब क्या तुरन्त ही यह सब हो सकता है ? कम से कम डेढ दो घटा तो लग ही जावेगा भोजन तैयार करने में ?"

"डेढ-दो घटे तक वे लोग यहा बैठेंगे, स्नान-ध्यान करेंगे। तात्या क्रोध करेंगे इस भय से पहले तुमको नही बताया था।" नथूराम ने स्पष्टीकरण करते हुए बता दिया।

शीघ्रता में जितनी अच्छी रसोई बन सकती थी वह माताजी ने यथासमय बनाकर तैयार कर दी। पत्तल परोसने से जूठन उठाने तक की सहायता नथूराम ने कर दी। मा को पुत्र की दक्षता देख आनन्दमय आश्चर्य हो रहा था।

सत्याग्रही भोजन कर ही रहे थे कि बीच में पिताजी आ गये। डाकखाने से जुडा हुआ ही घर था। उन्होने देखा और स्थिति को समझा। सत्याग्रही जन सरकारी वस्ती में और एक सरकारी कर्मचारी के यहाँ भोजन कर रहे थे। छोटा-सा गाव। उच्चाधिकारियो को विदित हुआ नही कि नौकरी गई।

माताजी इस वात को न जानती हो ऐसी बात नही थी। किन्तु वे व्यवहार कुशल थी। पिताजी की मन स्थिति को उन्होने भाप लिया और बोली, "दोपहर के भोजन के समय घर पर आये हुए अतिथियो को क्या कभी हमने वापस लौटाया है ? ये सत्याग्रही है अथवा तीर्थयात्री हमें इससे क्या ? क्या हमने कभी अतिथि से पूछा है कि वे कहाँ जाने वाले हैं ?"

जैसे भी हो, पिताजी का थोडा वहुत समाधान हुआ। क्योकि अब इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय भी तो नही था, क्योकि भोजन करनेवाले तो भोजन कर ही रहे थे। वाद में भी वहुत दिनो तक उनके मन में अशान्ति तो रही किन्तु उन्होने इस विषय में नथूराम पर कभी किसी प्रकार का क्रोध प्रकट नही किया। किन्तु उन्होने उनको इतना ही कहा कि फिर कभी ऐसा अवसर आवे तो विना उन्हें सूचना दिये ऐसा काम न किया जाय। उन्हें वता दिया जाय वे उसकी समुचित व्यवस्था कर देंगे। गाँव में उनका अच्छा मान है, वे अपने घर के अतिरिक्त इस व्यवस्था को भली भाति करा सकते हैं।

सत्याग्रहियो ने उनके घर पर भोजन किया। इसप्रकार का स्वल्प समाधान आ वहुत दिनो तक नथूराम के मन में रहा।

नूतन मराठी विद्यालय में नथूराम अध्ययन कर रहे थे। विद्यालय की अन्तिम परीक्षा में वैठे किन्तु अनुत्तीर्ण रहे। तब वे कर्जत आ कर रहने लगे।

पिताजी ने पुन परीक्षा में वैठने का आग्रह किया। किन्तु नथूराम सोचते थे कि अध्ययन में उनकी बुद्धि नही चल रही है अत कोई कला या हस्तव्यवसाय सीख लिया जाय। इस दृष्टि से काष्ठकारिता से सम्वन्धित कुछ साहित्य उन्होने एकत्रित किया और घर पर छोटे-मोटे उपकरण रख कर कार्य प्रारम्भ करने की ठानी।

उन्ही दिनो पिताजी का स्थानान्तरण रत्नागिरी को हो गया। १९२९-३० की यह वात है। यद्यपि पिताजी को तो नही किन्तु स्थानान्तरण की यह घटना नथूराम के जीवन को एक नया मोड देने वाली सिद्ध हुई।

उन दिनो स्वातन्त्र्यवीर सावरकर रत्नागिरी में ही रह रहे थे। रत्नागिरी की सीमा लाघने पर उन पर प्रतिवन्ध था। उनके राजनीति पर चर्चा करने, व्याख्यान देने और लिखने आदि पर भी प्रतिवन्ध था।

उस समय सावरकर जी को लोग कठिनाई से ही पहचानते थे। उसी समय उनकी लेखमाला 'जन्मठेप' प्रकाशित हुई थी और कुछ समय वाद ही सरकार ने पुस्तक को प्रतिवन्धित कर दिया था। जिस पुस्तक पर प्रतिवन्ध होता है उसके विषय में उत्सुकता वढ जाया करती है। उस पुस्तक में कुछ ऐसा होगा जिससे उस पर प्रतिवन्ध लगा है, ऐसी लोगो की साधारण धारणा वन जाया करती है।' विषयवस्तु से सम्वन्धित समाज का एक विशेषवर्ग उस पुस्तक की ओर आकर्षित होता है और येन-केन-प्रकारेण उसको हस्तगत करने का यत्न करता है।

नथूराम को सावरकर जी की महत्ता का ज्ञान हो गया था। हिन्दुस्तान की स्वाधीनता के लिये जो-जो महापुरुष प्रयत्नशील थे उनके प्रति नथूराम के मन में आदर भाव होता था। इस प्रकार वे सावरकर जी को ज्वलन्त देशभक्त समझते थे। जव उनको यह विदित हुआ कि पिताजी का स्थानान्तरण रत्नागिरि के लिये हो गया है तो यह समाचार सुनकर उनको उल्लास मिश्रित आनन्द हुआ। उनको यह स्पष्ट होने लगा कि अव वे वीर सावरकर सदृश क्रान्तिकारी के दर्शन सुगमता से कर सकेंगे।

कर्जत से पूना-कोल्हापुर मार्ग से होते हुए हम रत्नागिरी पहुँचे। आठ-दस दिन एक घर में रहे। उसे असुविधाजनक समझकर छोड़ दिया गया और वीच की गली में एक अन्य घर लिया।

वह घर स्वर्गीय वाल गंगाधर खेर के पिताजी का था। उनके पिताजी उसी घर में रह रहे थे। उसके एक भाग में हम रहने लगे।

घर में रहने वाले लोग जव किसी घर को छोड़ कर दूसरा घर वसा लेते हैं तो उस मिट्टी, चूना पत्थर मिश्रित ढाँचे के प्रति कोई विशेष मोह अथवा भावना नही रखते। जाने अथवा अनजाने हमारे साथ हुआ यह कि उस घर के

जिस भाग में हम रहने लगे थे उसमें किसी समय जब सावरकर जी प्रथम बार रत्नागिरी आये थे तो रहते थे। बाद में वे उसी गली के एक छोर मे अन्य मकान में रहने लगे थे। रत्नागिरि मे हमारा पूरा डेढ वर्ष का वास श्री खेर के उस घर मे ही रहा। सावरकर जी कभी कभी अपने व्याख्यानो में कहा करते थे, जिस किसी का भी मेरे साथ दूर अथवा निकट का सम्बन्ध आयेगा उन्हें आग मे जलना नही तो झुलसना तो होगा ही, ऐसा दैव का विधान दीखता है। गोडसे घर से सावरकर जी का १९२९ के लगभग आया हुआ सम्बन्ध लगभग बीस वर्ष बाद शब्दश वैसा ही चरितार्थ हुआ, जैसा सावरकर जी कहा करते थे।

हमारे रत्नागिरी पहुँचने के तीन दिन बाद ही नथूराम सावरकर जी से मिलने गये थे। वह उनकी प्रथम भेंट थी। उसके बाद वे नित्य ही उनके पास जाने लगे। १९–२० वर्ष के इस युवक मे सावरकर जी ने कई गुणो को समाहित देखा। उन्होने देखा कि उनका अध्ययन उनकी आयु से कही अधिक है। उन्हें प्रतीत हुआ कि नथूराम ने न केवल कहानी उपन्यास का ही अध्ययन किया है अपितु, इतिहास, तत्वज्ञान के ग्रन्थ एव धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन भी किया हुआ है। उन्हें विदित हुआ कि नथूराम की स्मरण शक्ति भी तीव्र है और अपनी चर्चा मे इसी आधार पर समय-समय पर महान ग्रन्थो का उल्लेख करते रहते हैं। थोडे दिनो बाद ही वे यह भी समझ गये कि नथूराम की वक्तृत्व शक्ति भी अद्‌भुत् है।

सावरकर जी की लदन की गाथा नथुराम को कभी कभी उनके ही मुख से सुनने को मिलती रहती थी। वे सावरकर जी से 'वार ऑफ इडिपेन्डेन्स' की एक प्रति माग लाये और रात को बैठकर उनका अध्ययन करने लगे। जहाँ कही अर्थ उनकी समझ मे न आता वे पिता जी से समझ लेते थे। जब वे पढने बैठते तो पिताजी और माता जी सुनने बैठ जाते। सुनता तो मै भी था किन्तु यह बात उसकी समझ से परे थी। समझदार श्रोता तो दो ही थे—माँ और और पिताजी।

सावरकर जी उन दिनो जो लिखते थे उसकी प्रतिलिपि करने में नथूराम को आनन्द मिलता था। उन्हे इस बात का भी गर्व था कि सावरकर जी की रचना के प्रथम पाठक वे ही है। नथूराम कभी कभी सावरकर जी के सन्दर्भग्रन्थो को घर पर ले आया करते थे। सावरकर जी को जब आवश्यकता होती तो वे उनमे वापस मगवाते थे। नथूराम सोचते थे, कि जिस ग्रन्थ का एक बार उपयोग कर लिया उसको पुन देखने की क्या आवश्यकता है। एक बार अपनी शका उन्होंने सावरकर जी के सम्मुख रख भी दी। तब सावरकर जी ने उन्हे समझाया कि उनकी रचना

मे किसी प्रकार की भूल न रह जाय, उद्धरणो का उचित अर्थ एव उपयोग हो रहा है इसका ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है, इसके लिये सन्दर्भग्रन्थो को वार वार देखना उपयुक्त होता है जिससे कि किसी प्रकार की टीकाटिप्पणी अथवा आलोचना-प्रत्यालोचना बाद में सुननी न पडे।

लेखन के विषय मे सावरकर जी सदा ही नथूराम का पथ प्रदर्शन किया करते थे। क्या पढना चाहिये, किस प्रकार की टिप्पणी करनी चाहिए, विषय का किस प्रकार प्रतिपादन होना चाहिये यह सब वे उनको समझाया करते थे। उनके सम्पर्क से ही नथूराम राजनैतिक सभाओ में भी भाग लेने लग गये थे।

उस समय गान्धी जी के सत्याग्रह आन्दोलन का जो फैसला हुआ था। सावरकर जी भी समझते थे कि येन-केन-प्रकारेण जनता मे जागृति तो आ रही है। वे स्वयं तो वन्दी का जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस अवस्था में वे जनता का पथ-प्रदर्शन नही कर सकते थे।

रत्नागिरि के विट्ठल मन्दिर में समय समय पर धार्मिक विषयो पर व्याख्यान हुआ करते थे। एक वार ध्रुवाख्यान पर व्याख्यान था। नथूराम तो प्रत्येक व्याख्यान सुनने के लिये अवश्य ही जाते थे। पौराणिक विषयो एव मदिरो के व्यासपीठो का देशभक्ति के प्रचार के लिए प्रयोग हो ऐसी उनकी धारणा बनती जाती थी। उन्हें यह भी विश्वास था कि इसके द्वारा जागृति सहज सम्भव है। जिस दिन ध्रुवाख्यान वहाँ होनेवाला था उस दिन उन्होने भी कुछ बोलने के लिये अनुमति चाही तो उनको अनुमति मिल गई।

अपने व्याख्यान में नथूराम ने कहा, जिस प्रकार ध्रुव का स्वाभिमान जागृत हो उसने अपने लिए सुस्थिर स्थान चाहा था आज उसी प्रकार हमारा भी स्वाभिमान जागृत हो चुका है और हम भी अपने लिये सुस्थिर स्थान चाहते हैं। अपने स्थान की प्राप्ति के लिये ध्रुव ने कठिन तप किया था, पिता द्वारा दिये गये प्रलोभनो में वह नही पडा था। इतना ही नही उसने सम्पूर्ण राज्य प्राप्ति के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया था। उसने पिता की अपेक्षा वास्तविक दाता 'जगन्नाथ' को जान लिया था और उसी से प्रार्थना किया करता था।

"हमने तप करना आरम्भ कर दिया है। क्रूर विदेशी शासक कितने ही आघात करें, हमारे नेताओं को भले ही पकड़ लें, उन पर मुकदमें चलायें, उन्हें फासी दें अथवा हमे प्रलोभित करें तो भी हमें अब पीछे नही मुडना है। हमे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि विना कष्ट सहन किये कोई भी फल सुलभ नही होता। कठिन प्रतीत होनेवाला कार्य भी अपने प्रयत्नो से ही सरल हो सकता है, असाध्य को साध्य करना होगा। इस प्रकार विचार कर स्वतन्त्रतारूपी

ध्रुवतारे को अपनी दृष्टि के सम्मुख रखते हुए भक्त ध्रुव के समान स्थि·ता एव कष्टसाध्यता को अपना लक्ष्य बनाना होगा, तभी हम अपने उद्देश्य मे सफल हो सकते हैं।"

अपने भाषण मे उन्हें सन्त तुकाराम की वाणी, दासबोध का तत्वज्ञान और नवनीत की सूक्तियो को उद्धरित करने के लिये कभी कठिनाई नही हुई और न किसी उक्ति विशेष को स्मरण करने के लिये उन्हे कोई विशेप प्रयत्न ही करना पडा था। सभी बाते मुख से अनायास इसी प्रकार निकल रही थी मानो वे उनके अपने ही वाक्य हो। उपस्थित श्रोताओ को अपने भाषण से उन्होने मन्त्रमुग्ध सा कर दिया था। सावरकर जी को जब यह वृत्त विदित हुआ तो उन्होने उनकी पीठ ठोककर उनको प्रोत्साहित किया था।

यद्यपि उन दिनो सावरकर जी एक प्रकार से बन्दी का सा जीवन व्यतीत कर रहे थे किन्तु तब भी अछूतोद्धार का उनका कार्य जारी था। इस विषय मे उनसे चर्चा करने के लिये देश भर के माननीय जन उनके पास आते जाते रहते थे। इस प्रकार की परिचर्चा मे नथूराम तन्मयता से भाग लेते थे।

रत्नागिरी का पतित पावन मन्दिर समस्त भारत मे ऐसा पहला ही मन्दिर था जिसमें चतुर्वर्ण हिन्दुओ का प्रवेश होता था। पूजा के लिये उस मन्दिर के द्वार सभी वर्ग एव वर्ण के हिन्दुओ के लिये खुले रहते थे। कभी कभी वहा सह-भोज के कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते थे। नथूराम उनमे सोत्साह भाग लेते थे। किन्तु हमारे घर में इसको पसन्द नही किया जाता था। हिन्दुओ की रूढिवादिता के विषय में सावरकर जी के जो विचार थे उनको भी हमारे घर मे पसन्द नही किया जाता था। नथूराम अब बालक तो थे नही कि उनको इन सब बातो मे भाग न लेने के लिये रोका जा सके। अत मौन विरोध होने पर भी वह अपने मन की बात किसी प्रकार मनवा ही लेते थे और इस प्रकार के समाज सुधार के कार्यों में अग्रणी रहते थे।

सावरकर जी के निमन्त्रण पर एक बार नेपाल के राजकुमार एव वहा के प्रधामन्त्री रत्नागिरी आये थे। पतित पावन मन्दिर के प्रागण मे ही उनके और सावरकर जी के भाषण हुए थे। इस सारे आयोजन के प्रबन्ध का मुख्य भार नथूराम पर ही था।

नथूराम को इस बात का आभास था कि हम लोग परिवार पालन के लिये किसी प्रकार का कार्य नही करते। पिताजी की प्रबल इच्छा थी कि नथूराम को डाकखाने में भरती कराया जाय। किन्तु नथूराम ने निश्चय किया था कि वे सर-कारी नौकरी नही करेंगे। तथापि वे उस अवसर को प्रतीक्षा में थे जब कि वे अपने उद्योग का विकास कर सकें।

वडी वहिन मथुरा एक वार मायके में रहने के लिये रत्नागिरी आई थी। जव वह अपने पतिदेव के पास जाने लगी तो नथूराम उनको छोडने के लिये गये। हमारे वहनोई ईटारसी में सरकारी कर्मचारी थे। नथूराम कुछ दिन वहा रहे तो अपने वहनोई की सहायता से उन्होने कुछ साहित्य एकत्रित कर वढईगीरी सीखी और इस कार्य मे उन्होने वहा रहते पर्याप्त प्रगति भी कर ली थी।

परन्तु उनका मन किसी एक कार्य मे स्थिर नही रहता था। उन्हें इस वात का खेद रहता था कि देश के इस सकटमय काल में भी वे राजतीतिक कार्यो से अलिप्त रहते हैं। इटारसी में हिन्दी का प्रचलन अधिक था इस कारण उन्होने यहा रहते हिन्दी भली भाति सीख ली थी। लोक जागरण के लिये उन्होने वहा रहकर हिन्दी में कथा करना आरम्भ कर दिया। कभी-कभी वे वहा लगने वाले मेले मे व्याख्यान भी देते थे।

इन सव गतिविधियो से वे वहा रहते पुलिस की दृष्टि में चुभने लगे। एकाध वार उनको थाने पर बुलाकर वहा रोका भी गया और प्रयत्न से उनको वहा से छुडवाया गया था। किन्तु इस वात के लिये वहनोई एवं पिताजी को सावधान किया गया कि लडके पर नियन्त्रण रखा जाय। पिताजी को इसकी सूचना रत्नागिरी भेजी गई थी।

पिताजी को जव सारा विवरण विदित हुआ तो इस दृष्टि से कि कम से कम अपना लडका अपनी दृष्टि में रहेगा, नथूराम को इटारसी से रत्नागिरी बुला लिया गया। किन्तु रत्नागिरी आकर नथूराम सावरकर जी के सम्पर्क मे आये और इटारसी में सीखा उद्योग यहाँ विलकुल भी नही चल पाया।

कुछ काल वाद पिताजी सरकारी सेवा से निवृत्त हुए। दत्ता, शाता, गोपाल और गोविन्द की शिक्षा तव तक पूर्ण नही हो पाई थी। परिवार को सागली भेज दिया गया। क्योंकि पूना की अपेक्षा सागली कम व्ययसाध्य था। एक वर्ष वाद शान्ता का विवाह हो गया। अन्य लडको की शिक्षा जारी रही। नथूराम ने दर्जी का काम सीखा और "उद्यम मण्डल" नाम से दूकान की स्थापना कर दर्जी का कार्य आरम्भ किया।

उन दिनो हिन्दुओ के सुदृढ सगठन के रूप मे राष्ट्रीय स्वय सेवक संघ प्रसिद्ध होता जा रहा था। डा० हेडगेवार इस सघ के प्रमुख थे। डाक्टर मुजे और वावाराव सावरकर का डाक्टर हेडगेवार को सक्रिय सहयोग-प्राप्त था। रत्नागिरी मे रहते हुए सावरकर को भी संघ कार्य की सूचना मिलती रहती थी। किन्तु सागली आने से पूर्व नथूराम को इस सस्था के विषय में केवल परोक्ष ज्ञान ही था। कुछ स्थानो पर पढ कर और कुछ लोगो के मुख से सुन कर। तव तक उनका सघ से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही आया था।

स्वाधीनता प्राप्ति सुकार्य में मुस्लिम समाज की प्रवृत्ति कभी उदासीनता की होती थी तो कभी विरोध की। इस न्यूनता की पूर्ति के लिए हमारा हिन्दू समाज सगठित एव बलवान बने यह उस समय सघ की दृष्टि समझी जाती थी। सावरकर जी ने इसी दृष्टिकोण को कालान्तर में सूत्रबद्ध किया था। " आयेग तो आपके साथ' " आदि उनकी वह रचना थी।

नथूराम को सघ की भूमिका उपयुक्त प्रतीत हुई। रत्नागिरी का पतित पावन मन्दिर तो ईंट पत्थर का एक ढाचामात्र था और वह भी रत्नागिरी तक ही सीमित। किन्तु सघ तो सभी हिन्दूओ को आत्मसात करने, निस्सीम एव विशाल वास्तुविहीन मन्दिर था। समस्त भारत उसका कार्य क्षेत्र था। राष्ट्र को बलवान बनाने का सघ का सकल्प था अत स्वाभाविक ही स्वराज्य प्राप्ति का हेतु सघ की प्रतिज्ञा में समाविष्ट था। सघ की शाखायें शनै शनै बढ रही थीं।

सागली में भी सघ की शाखा चालू हुई। श्री काशीनाथ पत लिमये उसके सघ चालक थे। नथूराम तन्मयता से सघ के कार्य मे जुट गये। थोडे दिनो मे वे वहाँ के बौद्धिक कार्यवाह हो गये।

सावरकर जी उन दिनो "किर्लोस्कर" मासिक मे हिन्दूसमाज की विसगतियो, अनुचित भावनाओ और हानिकर रूढियो पर आलोचनात्मक लेख लिखा करते थे। सावरकर जी से प्रत्यक्ष परिचित होने के कारण उनकी तर्कपूर्ण रचनायें नथूराम अवश्य पढते थे। उन लेखो से भी वे प्रभावित थे।

यद्यपि नथूराम का सिलाई कार्य जारी था किन्तु इसमे पर्याप्त धनार्जन न होने के कारण परिवार में अभाव रहता ही था। उन्होंने कुछ अन्य व्यवसाय भी करना चाहा। किन्तु अर्थाभाव के कारण कोई और सफलता नही मिली.

पिताजी का स्थानान्तरण होकर जब वे रत्नागिरी आये थे तभी से नथूराम के विवाह की चर्चा चल पडी थी। किन्तु उनकी बहिनो भी विवाह योग्य हो गई थी अत प्रथम उसका विवाह करना आवश्यक था, इस कारण नथूराम के विवाह के प्रश्न को कभी महत्व नही दिया गया। किन्तु जब कभी भी इस प्रकार का प्रश्न उपस्थित होता तो नथूराम स्पष्ट कह देते " मैं विवाह नही करूंगा।" हमारे माता-पिता समझते थे कि अभी छोटा है ज्यो ज्यो आयु बढेगी, वह स्वय ही विवाह की इच्छा करने लगेगा।

सागली में रहते हुये दत्ता ने इण्टर साइस की परीक्षा दी। क्योंकि उसे परीक्षा मे उच्च श्रेणी प्राप्त नही हुई थी अत छात्रवृत्ति नही मिली। उसमे आगे पढने का विचार त्याग दिया। और कुछ प्रशिक्षण प्राप्त कर अपना छोटा सा उद्योग प्रारम्भ कर दिया। उसकी आयु भी विवाह योग्य हो गई थी। शान्ता का विवाह हो चुका था।

एक बार पिताजी अत्यधिक बीमार हो गये। उन्होंने आग्रह किया कि नथूराम विवाह कर ले। नथूराम के लिये यह कसौटी थी। एक ओर रुग्ण पिता का आग्रह दूसरी ओर अपना साध्य।

पिता जी के आग्रह के उत्तर में उनका कहना था कि विवाह के विषय में मैंने कभी विचार ही नहीं किया, यदि कभी किया भी तो यह सही कि मुझे विवाह नहीं करना है। आपकी यह धारणा है कि विवाह कर मैं सुखी जीवन व्यतीत करूँगा किन्तु मैं समझता हूँ कि विवाह करने से मेरा जीवन सुखी नहीं हो सकता। मेरा मन गृहस्थी के लिये नहीं रमता। आपके आग्रह पर यदि मैं विवाह कर भी लूँ और बाद में फिर मुझे कष्ट और दुःख हुआ तो उससे आपको भी तो कष्ट और दुःख होगा। परिवार के सबसे बड़े लड़के के नाते दूसरों की सुखी गृहस्थी देखने से ही मुझे सन्तोष होगा। अतः आप दत्ता के लिये विवाह का प्रबन्ध कीजिये। वह अब विवाहयोग्य हो गया है। मुझसे विवाह का आग्रह एवं अनुरोध अब मत कीजिये।

नथूराम के उस उत्तर को सुन कर माता पिता विवश हो गये। और पिताजी ने उनके विवाह का विचार अपने मन से निकाल दिया। कुछ दिनों बाद उनका स्वास्थ्य भी ठीक हो गया और उसी वर्ष दत्ता का विवाह भी कर दिया गया।

१९३७ मे जब जमनादास मन्त्रिमण्डल बना तो सावरकर जी पर से प्रतिबन्ध उठाया गया। उन्होने रत्नागिरी से बम्बई के लिये प्रस्थान किया। बम्बई जाते हुए मार्ग मे कोल्हापुर, मिरज, सागली आदि स्थानो पर सावरकर जी के व्याख्यान आयोजित किये गये।

इस यात्रा मे नथूराम सावरकर जी के साथ स्थान स्थान पर घूमने लगे। उनके मन में यह कल्पना स्पष्ट हो गई कि समस्त हिन्दू समाज को संघबद्ध एक माला मे पिरोना अत्यावश्यक है। सघ कार्य को राजनीतिक उत्थान की ओर मोटने की कल्पना भी उनके मन मे आने लगी। दिनानुदिन उनकी दृष्टि व्यापक होती जा रही थी। उन्हे प्रतीत हुआ कि उनके कार्य के लिये सागली छोटा स्थान है।

नथूराम सागली छोड कर पूना चले गये। जीविकोपार्जन का धन्धा कपडे सीने का ही था। किन्तु उनका अधिकाश समय सघ और हिन्दू महासभा के कार्य में ही बीत जाता था।

सावरकर जी अपने ओज एव तेज से भारत की राजनीति को एक नई दिशा प्रदान कर रहे थे। सभ्रम की आधी मे अभीतक भारतवासी अनुनय विनय द्वारा भारत की स्वाधीनता की मागः करते रहे। उनके मन में कभी यह कल्पना ही नहीं आई कि स्वाधीनता प्राप्ति के लिये स्वाभिमान का होना आवश्यक है।

राजनीतिक स्वाभिमान शब्द से अपरिचित थे। सावरकर जी का कथन था कि आत्महीनता की भावना को त्याग कर देशवासियो को अपना स्वाभिमान जागृत करना होगा।

उन्ही दिनो पूना की एक सभा मे स्व० आचार्य अत्रे ने सावरकरजी को 'स्वातन्त्र्यवीर' की उपाधि से विभूषित किया। तबसे सावरकर के नाम के साथ 'स्वातन्त्र्यवीर' जुड गया। सावरकर जी में अथाह आत्मविश्वास था। वे कहा करते थे कि १९३८ मे जो लोग यह कहते है कि उन्हे १९०८ की सावरकर की बातें तथ्यपूर्ण प्रतीत होती है उन्हें १९३८ के सावरकर को समझने के लिये १९६८ तक प्रतीक्षा करनी होगी। सावरकर जी में इतना अथाह आत्मविश्वास था इसी कारण आसेतु हिमाचल असख्य युवक उनकी विचारप्रणाली से प्रभावित हुए थे। नथूराम तो बहुत प्रारम्भ मे ह' उनसे प्रभावित हो चुके थे।

हैदराबाद में हिन्दुओ पर जो अत्याचार हो रहे थे उनके प्रति जो अन्याय हो रहा था उसके प्रतिकार के लिये हिन्दू महासभा ने सन् १९३८ में एक आन्दोलन करने का निश्चय किया। उस आन्दोलन को "नि शस्त्र प्रतिकार" सज्ञा दी गई थी। सत्याग्रह और नि शस्त्र प्रतिकार में यद्यपि लोगो को समानता प्रतीत होती थी किन्तु इसमे आधारभूत अन्तर था। सत्याग्रह मे तो शस्त्रधारण करना ही पाप समझा जाता है जब कि नि शस्त्र प्रतिकार में यदि आवश्यकता पडे अर्थात् इस प्रक्रिया से कार्य सिद्धि न हो तो फिर शस्त्र भी धारण किया जा सकता था। यदि बिना शस्त्र के ही कार्य सम्पन्न हो जाय तो शस्त्र धारण करने की क्या आवश्यकता ? केवल यही भावना इस नि शस्त्र प्रतिकार आन्दोलन की थी। शस्त्र धारण न करने की कोई शपथ नही ली गई थी।

इस आन्दोलन में नथूराम ने पहले जत्थे का नेतृत्व किया। उनको तथा उनके सभी साथियो को एक वर्ष का कारावास का दण्ड मिला था जिसे उन्होंने हैदराबाद के कारागार में बिताया। आन्दोलन के परिणामस्वरूप हैदराबाद के निजाम और हिन्दू महासभा के नेताओ के मध्य एक समझौता हुआ। इस प्रकार यह आन्दोलन समाप्त हुआ।

अपने हाथ मे किसी प्रकार का प्रचार यन्त्र न होने से हिन्दू सगठन के कार्य मे पर्याप्त अडचन आती थी। इस कमी को ध्यान मे रखते हुए नथूराम ने अपने साथियो से परामर्श किया और विचार विनिमय के उपरान्त निश्चय किया गया कि हिन्दू महासभा के ध्येय के प्रचार-प्रसार के लिये एक दैनिक पत्र का होना नितान्त आवश्यक है। फलस्वरूप १९४४ के मार्च मास में 'अग्रणी' नामक समाचार पत्र, जो पहले कभी प्रकाशित होता था, उसको पुनर्जागृत किया गया। उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध चल ही रहा था इस कारण कोई नया समाचार-पत्र

प्रारम्भ करने की अनुमति सरकार नही देती थी। कालान्तर मे अनेक वर्ष वाद उसी "अग्रणी" को 'हिन्दूराष्ट्र' के रूप मे नामातरित किया गया।

'अग्रणी को अनेक वाधाओ का सामना करना पडता था। उनसे एक के वाद एक अनेक वार सरकार की ओर से प्रतिभूति (सिक्योरिटी) मागी जाती थी। नथूराम इसके सम्पादक थे और नाना आप्टे सचालक। ३१ जनवरी १९४८ को इसका अन्तिम अक प्रकाशित हुआ था। उसके वाद यह समाचार पत्र वन्द हो गया।

१९४८ से पूर्व नथूराम के जीवन का ७-८ वर्ष का काल, लेख, दौरे, व्याख्यान, समाचार पत्र चलाने आदि जैसे कार्यो मे ही वीता था। सीमित शब्दो मे कहा जाय तो इतना ही पर्याप्त होगा कि हिन्दू सगठन के कार्य के लिये ही उनका तन-मन-धन समर्पित था।

नथूराम शान्त प्रकृति के उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे अपने ओजस्वी भाषणो में भी उन्होंने कभी सयम नही खोया। राजनीतिक क्षेत्र मे उन्होने अनेक लोगो की कार्यविधि एव ध्येय की आलोचना की हो किन्तु उन्होने कभी किसी की व्यक्तिगत आलोचना नही की। हिन्दुत्व विरोधी राजनैतिक दलो के अनेक लोगो से उनकी मित्रता थी। एक वार पूना मे एक छविगृह के उद्घाटन के अवसर पर सचालको ने काका गाडगिल (नरहरि विष्णु गाडगिल) और नथूराम दोनो को ही एक साथ आमन्त्रित किया था। दोनो को परस्पर प्रेमालाप करते हुए देख लोगो को वडा विचित्र सा प्रतीत हो रहा था। इन्हें विस्मय होता था कि दो अत्यन्त विरोधी विचारो के व्यक्ति भी इस प्रकार प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप कर सकते है।

एक वार नथूराम एक मेले में गये। स्वभावानुसार उन्होने वही पर अपना व्याख्यान आरम्भ कर दिया। तव वहॉ कुछ समवयस्क लोगो ने वीच में ही उनको रोकते हुए कहा, "पण्डित! आज का दिन तुम्हारा नही है। तुम्हारे व्याख्यान सुनने के लिये हम शनिवार वाडे के सामने एकत्रित होगे।" जिस सद्भावना और मनोरजनमय वातावरण में ये शब्द कहे थे सभी सुननेवाले इससे हस पडे और नथूराम को भी इससे कोई अपमान की अनुभूति नही हुई। उन्होने भी उसे मनोरजन ही समझा था। इस अवसर पर कोई अन्य व्यक्ति होता तो वह प्रतिकार करता। किन्तु नथूराम ने उसे स्वीकार किया था। तभी किसी ने गीत गाना आरम्भ कर दिया। नथूराम उसको सकेत से चुप करते हुए उस घर के भीतर चले गये और वहा से हारमोनियम निकाल लाये। किसी को कल्पना नही थी कि नथूराम वाजा भी वजा लेंगे। अत उन्होने गायक से कहा कि तुम उसकी ओर ध्यान नही दो और अपना गाना गाते जाओ।

किन्तु जब लोगो ने देखा कि नथूराम ने थोडी देर में स्वर साध लिये है और वे लय के साथ बाजा बजा रहे है तो उन्हें आश्चर्य मिश्रित आनन्द हुआ। क्योंकि नथूराम को सबके सामने बाजा बजाने का अवसर नही आया था अत साथियो की धारणा भी उसी आधार पर बनी थी। इतना ही नही किन्तु बाद में स्वयं नथूराम ने भी दो तीन गीत सुनाये। उन्होने अपना प्रिय गीत "दे हाता या शरणगता" भी हारमोनियम पर बजाकर सुनाया। नथूराम को शास्त्रीय सगीत का ज्ञान था। वे बासुरी भी अच्छी बजाते थे।

काफी नथूराम का प्रिय पेय था। जब से उन्होने होश सम्भाला होगा सम्भवतया चाय उन्होने कभी नही पी किन्तु काफी बहुत पीते थे। तथापि उसको उनका व्यसन नही कहा जा सकता। क्योंकि काफी के बिना कभी उनका काम रुक गया हो ऐसी बात नही हुई। काफी नमिलने पर बिना काफी के भी वे काम कर सकते थे।

जिन दिनो वे कालकोठरी मे थे, एक बार मै और करकरे उनके पास गये। अनायास ही बन्दीगृह के अधीक्षक भी वहाँ आ गये। नथूराम ने करकरे को काफी भेजने के लिये कहा। अधीक्षक ने पूछा, क्यो ? शाम की काफी को कितनी देर हुई है ? "अधीक्षक का अभिप्राय यह नही था कि एक बार काफी पी लेने के बाद दुबारा नही मिलेगी किन्तु वे तो देखना चाहते थे कि कही काफी लाने मे विलम्ब तो नही हुआ है।

नथूराम ने कहा, "मैं शाम की काफी पी चुका हू। दुबारा पीने की इच्छा हो रही है। इसलिये मगाई है। आप भी थोडी पी लीजियेगा। फिर वे हसकर कहने लगे, "फासी तो आप लोग देंगे ही उसकी क्या चिंता करना। पर उससे पहले एक बार एक कप काफी तो दिलवा दीजिये। (I do not mind the gallows but I must have a cup of coffee before the execution)

यही है सक्षेप मे नथूराम का पूर्व चरित्र। अनेकानेक क्रान्तिकारियो का चरित्र पढने एव सुनने से मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि उनका अपना एक पृथक अध्यात्मवाद होता है। उसी के आश्रय से वे मृत्यु मे जूझते है, विचलित नही होते।

श्री रामदास गाधी के पत्र के उत्तर मे नथूराम ने अपने पूर्वचरित्र के बारे में कुछ लिखा था। जैसा कि प्रारम्भ मे मैंने श्री रामदास गाधी और नथूराम के उत्तर का सकेत किया है उन पत्रो के अनुवाद के साथ इस अध्याय को समाप्त कर रहा हू।

श्रीरामदास-गांधी का पत्र

खलासी लाइंस, नागपुर
दि० १३ जून १९४९

प्रिय श्री नथूराम गोडसे,

आपका दि० ३ जून १९४९ का पत्र प्राप्त हुआ।

आप सदैव विचार ग्रहण के लिए उद्यत हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई। आपने जो मार्ग ग्रहण किया हुआ है, जिसके माध्यम से आप मातृभूमि की एकता की स्थिरता तथा चिरंतन हिन्दू धर्म की रक्षा करते हुए किसी भी प्रकार के प्रचलित भेदभाव से स्वयं को अलिप्त रखने तथा भविष्य की सम्भावनाओं के विषय में मुझसे अथवा मेरे पिताजी के सहयोगियों से मुक्त हृदय से विचार विनिमय करने की आपकी आकांक्षा उत्साहवर्द्धक है।

तदनुसार भारतीय प्रशासन की ओर से तथा मेरे एवं मेरे साथ जो भी आवेंगे उनकी ओर से, आपसे बातचीत करने के विषय पर किसी भी प्रकार का आश्वासन न देते हुए मैंने आज पण्डित जवाहरलाल नेहरू से श्री विनोबा भावे, श्री किशोरीलाल मश्रूवाला और मेरे स्वयं आपके साथ उपरिनिर्दिष्ट विषय पर चर्चा करने की अनुमति देने के लिए प्रार्थना की है। क्योंकि यह आपकी हार्दिक इच्छा थी अतः, मैंने ऐसा करना उपयुक्त समझा है।

यह चर्चा यदि वैधानिक समझी गई तो ऐसा २५ जून १९४९ के बाद ही सम्भव हो सकेगा। क्योंकि नागपुर से दिल्ली तक आगे जहां आपको रखा गया है वहां तक पहुंचना हमारे लिए २५ जून से पूर्व सम्भव नहीं होगा। इस बात को आप ध्यान में रखियेगा।

मैं समझता हूं कि "हम लोगों को सत्य ही बोलना चाहिये।" इस प्रकार की आपकी ओर से जो शर्त है वह वांछनीय नहीं। क्योंकि वह न तो मेरे सम्बन्ध में आवश्यक थी और न ही मेरे पिताजी के निकट सहयोगियों के ही सम्बन्ध में आवश्यक थी।

मेरी आपको सम्मति है कि इस बीच का पूर्ण समय आप आत्मसंशोधन में व्यतीत कीजिए। और वह भी परमेश्वर पर पूर्ण श्रद्धा के साथ। "वही" आप पर कृपापूर्ण सुदृष्टि रखेगा ऐसी प्रार्थना कीजिये। क्योंकि वैसी कृपा ही आपको आपका अपराध स्वीकार कराने में सहायक होगी ऐसी मेरी धारणा है। अनादर और आक्रमण से अपनी मातृभूमि और विशेषतया हिन्दूधर्म की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है इस बात को अन्त में गांधीजी भली भांति जान गये थे, इस सत्य का साक्षात्कार भी आपको होगा। यदि आपने ऐसा किया तो मैं समझता हूं कि

आपकी और हमारी जो प्रस्तावित भेंट है उसके अन्त में सौंदर्य और अर्थ से परिपूर्ण भगवद्गीता के १८ वें अध्याय के निम्न श्लोक को आप हमारे साथ प्रसन्नता से उच्चारण कर सकेंगे ऐसा मेरा विश्वास है —

नष्टो मोह स्मृतिलब्ध्वा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गत सन्देह करिष्ये वचन तव।

सद्भावनाओ सहित
आर० एम० गाधी

* * *

नथूराम का उत्तर

मध्यवर्ती वन्दीगृह, अम्बाला
२८-६-१९४९

प्रिय श्री रामदास गाधी,

इसी मास के दिनाक तेरह का आपका पत्र मुझे २३ जून को प्राप्त हुआ और मैं आपके आशय से अवगत हुआ।

आपने मेरी विनती को स्वीकार कर लिया है यह जान कर मुझे आनन्द हुआ। आपको जब भी सुविधा हो आजाइयेगा। मेरी फासी से एक दिन पूर्व भी आप मुझसे मिल सकते हैं। उस भेंट के लिये मैं अत्यधिक उतावला नही हूँ। मुझसे मिलने का आपका विचार है, यह जान कर ही मुझे पर्याप्त सन्तोप हुआ है। यदि किसी अडचन के कारण आप मुझे न भी मिल सकें तो भी मुझे किसी प्रकार का खेद नही होगा। क्योकि मुझसे मिलने की उत्कण्ठा आपने व्यक्त की है इससे ही आपकी आस्था का आभास प्राप्त हो रहा है, मेरे लिये यही पर्याप्त है।

मेरी आपसे केवल यही विनती है कि मुझे मिलने की चेष्टा कीजियेगा।

"जो सत्य है वही बोला जाय।" यह शर्त मुझे नही लिखनी चाहिये थी आपके इस प्रकार के विचार से मैं सहमत हूँ। विश्वास कीजिये वैसा लिखते समय आपके हृदय को ठेस पहुँचाने की मेरी मनोभावना किंचित् भी नही थी। परन्तु ऐसा लिखने के लिये मेरे पास दो कारण थे। इस युग में 'सत्य' के अनेकों तथाकथित पुजारी मुझे मिले है। किन्तु उनके प्रत्यक्ष व्यवहार में मैंने इस प्रकार की कोई बात नही पाई। शपथपूर्वक विकृत सत्य बोलते हुए अनेक लोगो को मैंने न्यायालय के कठघरे में खडे देखा है। और दूसरा कारण था कि हमारे वार्त्तालाप के समय मुझे कडुआ सत्य बोलना पडेगा, वह चाहे जो हो, कम से कम मेरी धारणा के आधार पर वह कटुसत्य ही होगा।

कुछ भी हो, नीडरता से वोलने का भय मुझे नही रहना चाहिये," आपके पत्र से मुझे ऐसा आश्वासन प्राप्त हुआ है। मैं प्रसन्न हूँ।

"नष्टो मोह स्मृतिर्लब्धा" भगवद्गीता का यह श्लोक आपने मुझे स्मरण कराया इसके लिये आपकोधन्यवाद। मुझसे यदि आप पूछें तो गीता का न केवल यही श्लोक अपितु सम्पूर्ण गीता ही अर्थ और सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

"करिष्ये वचनम् तव" अर्जुन के ऐसा कहने के वाद श्रीकृष्ण ने उनको यह भी कहा था—"मामनुस्मर युद्ध च।" और अर्जुन ने इसे प्रत्यक्ष कृति में सम्पन्न किया था।

श्री विनोवा भावे जन्म से ही महाराष्ट्रीयन हैं उनके माध्यम से अथवा किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से मेरे साधारण चरित्र के वारे में अथवा व्यवहार के वारे में जितनी अधिक जानकारी आप प्राप्त कर सकें यदि करें तो उत्तम होगा। जिस व्यक्ति ने ऐसा क्रूर एव अवैध कर्म किया है उसका पूर्व चरित्र समझ लेना कदाचित आपके लिये उपयुक्त होगा।

सम्प्रति अधिक कुछ नही।

सद्भावनाओं सहित आपका
नथूराम वि० गोडसे
२४-६-१९४९

छः

उत्सर्ग

दिल्ली के लाल किले में दि० १०-२-१९४९ के दिन गांधी वध के सम्बन्ध मे गठित विशेष न्यायालय के न्यायाधीश स्वर्गीय आत्माचरण ने अभियोग का निर्णय घोषित किया। उन्होंने निर्णय मे नथूराम गोडसे और नाना आपटे को तो मृत्यु दण्ड की घोषणा की थी और विष्णु करकरे, मदनलाल पाहवा, गोपाल गोडसे, शंकर किस्तैया और डाक्टर परचुरे को आजीवन कारावास का दण्ड दिया। इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक दण्डो का विधान था किन्तु वे उस मुख्य दण्ड के अन्तर्गत ही आ जाते थे। दिगम्बर बडगे को क्षमा प्रदान कर दी गई थी और सावरकर जी को निष्कलंक मुक्त कर दिया गया था।

देशगौरव सुभाषचन्द्र बोस के आजाद हिन्द फौज के अभियुक्तो के लिये लाल किले के एक भाग को वन्दीगृह में परिवर्तित किया गया था। उसी भाग को कुछ ठीक ठाक करके गांधी वध, के अभियुक्तों के लिये प्रयुक्त किया गया था।

किले के तट की मोटी दीवार के भीतर जो कक्ष (कमरे) निकाले जाते है उन कक्षों की पक्ति को ही सामयिक वन्दीगृह के रूप मे परिवर्तित किया गया था। सात कमरे अभियुक्तो के लिये नियत थे। कमरो के सामने बरामदा था। बरामदे को कांटेदार तारो से बन्द किया गया था। दो कमरों के बीच बरामदे को दीवार देकर बन्द करके उनको शेष भाग से पृथक कर दिया गया था।

बडगे सरकारी गवाह बन गया था और शंकर किस्तैया से अपेक्षा की जा रही थी कि वह बडगे की गवाही की पुष्टि करेगा। इसलिये उन दोनों को उन पृथक किये गये कमरों मे रखा गया था। शेष पांच कमरों में से एक एक

में मदनलाल, एक में नथूराम गोडसे और गोपाल गोडसे, एक में डाक्टर परचुरे, एक मे नाना आपटे और विष्णु करकरे और एक में वीर सावरकर को रखा गया था।

निर्णय होते ही दण्डितो को इसी बन्दीगृह में लाया गया था। नथूराम और नाना आपटे को मृत्यु दण्ड घोषित हुआ था इसलिये उन्हें उस अलग भाग में रखा गया था। शेष पाच दण्डितो को दूसरे भाग में एक एक कमरे में अलग-अलग रखा गया था।

नित्य ही कमरा बदल दिया जाता था। इस प्रक्रिया को 'उड़दो' कहते है। एक ही कमरे में रखने से कैदी दीवार में छेद करके, छड़ काटकर या किसी अन्य प्रकार से भाग जाने का प्रयत्न कर सकता है ऐसी सम्भावना सदैव बनी रहती है, इसलिये पूर्व सावधानी के तौर पर ऐसा किया जाता है।

दीर्घकालावधि के वन्दी को तीन सेर वाली डडा बेडी पहनाने का नियम था। शाम को हम पाँच दडितों के पैरो में डडा बेडी पहनाई गई।

आजन्म कारावास निष्कासन की सजा होती है। सीमा पार करने तक बन्दी को बन्दीगृह में रखना अनिवार्य होता है। और जबतक वह बन्दीगृह मे होता है उसे सश्रम कारावास भुगतना पडता है। इस नियम के अनुसार दूसरे दिन हमें लिफाफे बनाने के लिये दिये गये। यह कार्य प्रात से सायकाल तक चलता था, भोजन के समय अवकाश मिलता था।

अभियोग के निर्णय तक हम सभी को 'बी' श्रेणी दी गई थी। किन्तु निर्णय-पत्र मे वन्दियों के लिये किसी श्रेणी का निर्देश नही दिया था। अत दण्ड प्रारम्भ होते ही हमें 'क' श्रेणी में रखा गया।

श्रेणी निर्धारण के लिये हमने आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। ३–४ दिन बाद मदनलाल ने अनशन प्रारम्भ कर दिया। अनशन ६ दिन तक चला फिर उसने वह छोड दिया। ३७ दिन बाद हम सात वन्दियो मे ६ को 'ब' श्रेणी मिल गई। वे ६ थे, नथूराम गोडसे, नाना आपटे, मदनलाल, करकरे, गोपाल गोडसे और डाक्टर परचुरे। शकर किस्तैया को ब श्रेणी नही दी गई थी।

मृत्युदण्ड घोषित वन्दियो को भी तत्कालीन गृहमन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल की उदारता से 'ब' श्रेणी प्राप्त हुई थी।

दण्ड के विरोध में पुनर्न्याय मॉगने के लिये पन्द्रह दिन का अवसर दिया गया था। दिल्ली में पजाब क्षेत्र के लिये उच्च न्यायालय निर्धारित था। उस समय पजाब उच्च न्यायालय की पीठ शिमला में विद्यमान थी।

निश्चित अवधि के अदर दण्डितो ने अपने आवेदन-पत्र (अपीलें) दाखिल

किये। नथूराम को दण्डसहिता की धारा ३०२ के अतर्गत जो दण्ड हुआ था उसके विरोध में उन्होंने पुनर्न्याय की मांग नही की। उन पर जो अन्य आरोप लगाये गये थे उसके प्रतिकार में उन्होंने याचिका प्रस्तुत की थी।

अपनी याचिका पर स्वय वहस करने की अनुमति के लिये भी उन्होंने प्रार्थना की। उसको स्वीकार कर लिया गया था।

किसी विशेष कारागार में मृत्युदड का प्रवन्ध करने की अपेक्षा जहाँ इसकी व्यवस्था हो और जहाँ से नथूराम को शिमला लाने ले जाने मे सुविधा हो ऐसे कारागार मे हम लोगो को भेजना निश्चित किया गया। तदनुसार दि० ९-४-१९४९ को मोटर द्वारा पानीपत होते हुए हमें अम्वाला केन्द्रीय कारागार में प्रविष्ट कराया गया।

हम सभी वन्दी एक ही मोटर में थे। मृत्युदण्ड प्राप्त वन्दी भी हमारे साथ थे और वहुत दिनो वाद हम लोग दिल खोल कर मिले थे। अत सभी के मन प्रफुल्लित थे। वार्तालाप मे हँसी-विनोद की वहार आ गई थी।

हमें किस मार्ग से ले जाया जा रहा है इसका हमे ज्ञान नही था। जिस प्रदेश से हमको ले जाया जा रहा था वह भी हमें अपरिचित सा प्रतीत हो रहा था। हमारे साथ जाने वाले आरक्षी-दल के व्यक्ति एव उनके अधीक्षक सभी अच्छे व्यक्ति थे। हमारे वार्तालाप में भी वे लोग कभी कभी भाग ले लेते थे। हमारा वाहन किस मार्ग से जा रहा था यह वे समय समय पर हमें वताते जाते थे।

जव अधिकारी महोदय ने कहा कि अव पानीपत आने वाला है, यह सुनकर हमारे मनो में विचार आया कि क्षण भर के लिये उस भूमि पर उतर पडें। प्रश्न केवल भावनाओ का ही होता है। महाराष्ट्र का पानीपत से वहुत निकट का नाता है। लगभग दो सौ वर्षो वाद भी हमारे मन मे से वह भावना मिटी नही थी।

जव हमने अधिकारियो से कहा कि हम यहाँ पर थोडी देर टहलना चाहते हैं, आपकी कृपा होगी यदि वाहन रुकवा दें तो उन्होंने वाहन रुकवा दिया। हम सव नीचे उतर गये। मार्ग के किनारे पर छायादार वृक्ष थे, उसी छाया में हमने कुछ क्षण विश्राम किया। फिर गाडी में वैठे और वहाँ से चल कर फिर गाडी ने अम्वाला कारागार मे जाकर ही विश्राम लिया।

उस कारागार में चार काल कोठरियाँ थी। नथूराम और नाना आपटे को तो वहाँ ले जाया गया। हम पांचो के लिये कारागार के प्रवेश द्वार के निकट का एक भाग खाली किया गया था। उसमें दो वडे कमरे थे, एक रसोईघर था। शौचालय अलग था, सामने आगन था जिसके चारो ओर ऊँची दीवार थी।

वहाँ हमें बेंत की कुर्सियाँ बुनने तथा चिकने परदे बनाने का कार्य दिया गया।

फासी की कोठी के समीप जा कर नथूराम तथा नाना से बार बार मिलने की हमे छूट थी। उनका भोजन भी हमारी रसोई मे ही बनता था। दिल्ली के लाल किले के बन्दीगृह की अपेक्षा यह स्थान खुला था और बडा भी। इस कारण यहाँ घूमना, फिरना और खेल-कूद हो सकता था।

इससे भी अधिक सन्तोष अथवा आनन्द की बात थी अम्बाला कारागार के अधिकारियो का सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार।

मेरी दृष्टि मे इस सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के दो कारण थे। एक तो यह कि कुछ दिन तक हम सभी को अधिकारियो ने भली भाति परखा था। यद्यपि विधानानुसार हमको 'क्रूरकर्मी' सज्ञा दी गई थी तथापि अधिकारियो ने हमको किसी प्रकार का भी क्रूरकर्म अथवा व्यवहार करते नही पाया। दूसरा कारण था देश विभाजन। पाकिस्तान बन जाने पर वहाँ पर जो मार काट हुई थी उनमे उन अधिकारियो के परिवार भी वही विनष्ट हो गये थे। अचल सम्पत्ति तो सबकी नष्ट हुई ही थी। किसी के पुरखा मारे गये, किसी की मा-बहिनो का अपहरण हुआ था तो कोई स्वय ही घायल अवस्था मे भारत पहुँचा था।

गाधी जी का वध क्यो हुआ? सरकारी नौकरी में होने के कारण वे इस विषय में कुछ बोल नही सकते थे, तथापि उसके कारणो को वे भली भाति जानते थे। अपने अधिकारो में जो कुछ भी अधिकाधिक सहूलियत वे हमें दे सकते थे वह सब उन्होने हमे दिया। इसके अतिरिक्त मनुष्य स्वभावानुसार परस्पर व्यवहार से जो प्रेम प्रतिफलित होता है वह भी उनकी ओर से हमें प्राप्त हुआ।

हमारा आवेदन सुनने के लिये उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीश श्री भण्डारी, श्री अच्छरूराम और श्री खोसला की एक खण्डपीठ का गठन किया गया था। आवेदन सुनने का दिन भी निश्चित किया गया और जो भी अभियोग थे उनको टकित करा कर उनकी एक एक प्रति हम लोगो को दी गई थी। हमने वह प्रति अपने वकील को दी थी। नथूराम को स्वय अपनी याचिका प्रस्तुत करने की अनुमति मिल गई थी इसलिए उन्होने स्वय ही उन कागजपत्रो का अध्ययन आरम्भ कर दिया।

चूँकि नथूराम स्वय ही अपना पक्ष प्रस्तुत करने वाले थे इसलिये उनको शिमला ले जाया गया था। उनका वहा निवास और उच्च न्यायालय के वक्तव्य पृथक अध्यायो के विषय है। सक्षेप मे यदि उनके वहाँ के निवास के बारे में कहा जाय तो यही कि वे स्वय अपना पक्ष प्रस्तुत करने वाले है यह सबके लिये कौतूहल

का विषय बन गया था। और उस पर भी मृत्युदण्ड के विरोध में उन्होंने कोई आवेदन नही किया था, न ही उनको इस विषय में किसी प्रकार की शिकायत थी। तदपि मृत्युदण्डरूपी तलवार के सिर पर लटकते होने पर भी न्यायालय जैसे स्थान पर सम्बन्धित विषय का सुसगत विवेचन वह व्यक्ति स्थिरचित्त होकर किस प्रकार कर पावेगा यह जिज्ञासा सभी के मन में रहती थी।

न्यायालय मे जाने के लिये अनुमति प्राप्त करनी पडती थी, उसके अभाव मे किसी को प्रविष्ट होने नही दिया जाता था। अत स्थानीय लोग जो इसमें रुचि रखते थे वे प्रवेश-पत्र प्राप्त करते थे और तब न्यायालय में अभियोग सुनने के लिये जाया करते थे। जिस दिन से नथूराम का वक्तव्य प्रारम्भ हुआ उस दिन से ही न्यायालय खचाखच भरा रहने लगा।

आरक्षी अधिकारियो और न्यायालय के अधिकारियो की सुकृपा से अनेक लोग नथूराम को उनके बन्दीगृह मे मिलने भी जाया करते थे। ऐसे अवसरो पर कभी-कभी आगन्तुको को उनके साथ थोडी बहुत गम्भीर चर्चा का अवसर भी सुलभ हो जाता था।

शिमला न्यायालय का प्रेक्षक समुदाय उच्चवर्ग से सम्बन्धित ही होता था। क्योकि शिमला मे प्राय उच्चवर्ग के व्यक्ति ही निवास करते हैं। मौलाना आजाद ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'इण्डिया विन्स फ्रीडम' के पृष्ठ २२५ पर लिखा है "सम्भ्रान्त परिवारो की कतिपय महिलाओ ने अपने हाथ से बुनकर के नथूराम को ऊनी स्वेटर भेजे थे।" इस उद्धरण को उद्धृत करने का हमारा उद्देश्य केवल यह समझाना है कि उच्च कहे जाने वाले परिवारो में भी नथूराम को वीर पुरुष माना जाता था।

मौलाना ने गलत लिखा हो ऐसी भी बात नही है। उनका उल्लेख ठीक ही है। सहानुभूति रखने वाले जेल अधिकारियो के माध्यम से नथूराम को यह सन्देश मिलता था कि हम सभी मिलकर यह स्वेटर आपको भेंट कर रहे हैं कृपया आगामी पेशी के अवसर पर इसी स्वेटर को पहन कर न्यायालय में आइये। नथूराम को भी इस प्रकार का निवेदन स्वीकार कर लेने में कुछ आपत्ति अथवा अड़चन नही थी। क्योकि इससे मुकदमे पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता था। शिमला मे सर्दी थी ही और स्वेटर भी नथूराम पहनते ही थे। फिर इस अथवा उस स्वेटर मे उनको कोई अन्तर नही था। अत भेंटकर्ताओ की प्रसन्नता के लिये वह उनका आग्रह मान लेते थे।

नथूराम के वक्तव्य से लोग कितने प्रभावित हुए थे इसका उल्लेख तत्कालीन न्यायाधीश श्री खोसला ने अपनी पुस्तक में किया है। उनका कहना है "प्रेक्षक वर्ग के लिये नथूराम का वक्तव्य ही एकमात्र आकर्षण का विषय था।

प्रेक्षकों से भरे हुए न्यायालय में कितना भावावेश था इसका आभास कभी जनसमुदाय के उच्छ्वास अथवा सिसकियो से मिलता रहता था। उनके अश्रु-पूरित नेत्र अथवा झरते हुए अश्रु भी दिखाई देते थे। यदि न्यायालय में समुपस्थित उन सभी प्रेक्षको से कहा जाता कि वे इस अभियोग में न्यायदान का कार्य करें तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नही कि "नथूराम निर्दोष है" यह निर्णय प्रचण्ड बहुमत से दिया जाता।"

"The high light of the appeal before us was the discourse delivered by Nathuram Godse in his defence. He spoke for several hours discussing, in the first instance, the facts of the case and then the motive which had prompted him to take Mahatma Gandhi's life "

(The murder of the Mahatma, P. 338)

"The audience was visibly and audibly moved. There was a deep silence when he ceased speaking. Many women were in tears and men were coughing and searching for their handkerchiefs. The silence was accentnoted and made deeper by the sound of an occasional subdued sniff or a muffled cough .. ..

"I have however no doubt that had the audience of that day been constituted into a jury and entrusted with the task of deciding Godse's appeal, they would have brought in a vedict of 'not guilty' by an overwhelming mejority"

(The Murder of the Mahatma, P. 234)

नथूराम की न्यायालय को वास्तव में यह याचना तो थी भी नही कि उनको निर्दोष घोषित कर उन्हें मृत्युदण्ड से मुक्त किया जाय। उच्चन्यायालय के निर्णय-पत्र में ही न्यायमूर्ति ने लिखा था—"नथूराम ने सिद्ध हुए आरोप और भारतीय दण्ड संहिता की धारा ३०२ के अन्तर्गत सुनाई गई फांसी की सजा के विरोध में पुनर्न्याय की माँग नही की थी। उन्होंने अपना अभियोग वकील के द्वारा नहीं अपितु स्वय ही चलाया और उस समय भी वे अपने आवेदन की सीमा के भीतर ही रहे।"

"of all the appellants Nathuram V Godse has not challenged his conviction under sec 302 of the Indian Penal code

....., nor has he appealed from the sentence of death passed on him in respect of the offence He has confined his appeal and also his arguments at the Bar only to the other charges which have been found proved against him" (High Court Judgement)

अन्त तक उनके मन में यही भावना थी कि मैंने मानव-हत्या की है अत' उसके दण्डस्वरूप मैं मृत्युदण्ड सहर्ष स्वीकार करता हूँ। यदि मुझे मृत्युदण्ड नही दिया गया तो वह न्याय के साथ ही अन्याय हो जायगा। मेरी भावनाओ के हत्या की चरमसीमा पर पहुँचने में जो पृष्ठभूमि कारण बनी वह यदि सही सिद्ध हो तो उस पर विचार होना चाहिये। क्योकि उसका ऐतिहासिक महत्त्व है, यही आशय उन्होने अपने वक्तव्य के समापन अश में स्पष्ट किया था।

अभियुक्त द्वारा की गई हत्या उपयुक्त है अथवा नही इसका निर्णय करने के लिये उसकी पार्श्वभूमि को देखने की न्यायालय की कुछ सीमित एव विशिष्ट मर्यादाएँ होती है। किन्तु नथूराम द्वारा की गई हत्या की पार्श्वभूमि तो अत्यन्त विशाल थी, दशाब्दियो का इतिहास था, न्यायालय की विचार-परिधि मे उसका आना सम्भव नही था। नथूराम यह जानते थे। अन्यथा प्रेक्षकवर्ग क्यो न्यायालय ही उनको निर्दोष घोषित कर देता, यदि उस पार्श्वभूमि को परखने की उसकी सीमा होती तो। न्यायमूर्ति श्री खोसला के अभिमत का निष्कर्ष केवल इतना ही था कि यदि उस विशाल पार्श्वभूमि को "सत्यासत्य की कसौटी" मान लिया जाता और प्रेक्षक-वर्ग को न्यायासन पर आसीन मान लिया जाता तो निश्चय ही वह नथूराम के कृत्य का समर्थन कर उसे निर्दोष घोषित कर देता।

अस्तु, उपरिउल्लिखित नथूराम के शिमला निवास तथा उनके द्वारा दिया गया वहाँ का वक्तव्य, इनका उल्लेख आगे के किन्ही अध्यायो में किया जायेगा।

उच्च न्यायालय ने दि० २२-६-४९ को अपना निर्णय घोषित किया। तद-नुसार शकर किस्तैया और डॉ० परचुरे को निर्मुक्त कर दिया गया। अन्य पाँचो अभियुक्तो का दण्ड पूर्ववत् ही रहा। गोपाल गोडसे के सम्बन्ध मे न्यायालय ने अपने निर्णय में शासन से अनुरोध किया कि अपने अधिकारक्षेत्र में वह उस पर दयार्द्रता का भाव प्रदर्शित करे।

नथूराम शिमला से अम्बाला लौट आये थे। वहाँ हमारी भेंट होती रहती थी। १५-११-४९ का दिन फाँसी का निश्चित किया गया था। मृत्युदण्ड प्राप्त दोनो व्यक्ति नथूराम गोडसे और नाना आपटे तथा आजीवन कारावास का दण्ड प्राप्त करने वाले अन्य तीनो वन्दी विष्णु करकरे, मदनलाल पाहवा और गोपाल गोडसे, ये सभी अम्बाला वन्दीगृह में ही थे। अधिकारियो की कृपा से मृत्युदण्ड

प्राप्त एवं आजीवन कारावास का दण्ड प्राप्त करने वालो में परस्पर भेंट होती रहती थी।

मृत्युदण्ड की तिथि निश्चित हो जाने पर दोनो मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियो के सम्बन्धियों के अन्तिम बार मिल लेने की दृष्टि से उनके घर वालो को अधिकारियो की ओर से पत्र भेजे गये थे।

नथूराम ने आवेदन किया था कि मेरे माँ-बाप वृद्ध है और वे पूना मे रहते है। इतनी लम्बी यात्रा वे नही कर सकते अत. मुझे येरवडा (पूना) बंदीगृह मे ले जाया जाय जिससे कि माँ-बाप के अन्तिम समय में दर्शन कर सकूँ। किन्तु सरकार ने इस आवेदन को स्वीकार नही किया।

जो सम्बन्धी और नातेदार मिलने के लिये अम्बाला आ सकते थे वे सब १३-११-४९ को अम्बाला पहुँच गये थे। किन्तु उनकी भेंट १४-११-४९ को कराई गई।

भेंट के लिये आये हुए व्यक्तियो की संख्या ३०-३५ के लगभग थी। १४-११-४९ को प्रात काल १० बजे से ७-८ के गुट के रूप में मिलने का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। नथूराम और आपटे दोनो ही मिलने वालो से बडी सरलता और सहजरूप में बात करते थे। किसी भी भेंटकर्त्ता ने यह परिलक्षित नही किया कि कल प्राप्त होने वाले मृत्युदण्ड के कारण वे किंचित् भी विचलित हुए हो। उनके मन पर उसका किसी प्रकार का प्रभाव नही दीखता था। भेंट के लिये आने वालो का भावाभिभूत होना स्वाभाविक था। परन्तु उन्हें इस बात का भी स्पष्ट ज्ञान था कि यह मृत्यु असहाय अवस्था मे ही आ रही है ऐसी बात नही, अपितु स्वयं ही इन्होंने इसका वरण किया है, अत उन्होने भी अपना संतुलन बनाये रखा था।

नाना आपटे और उनकी पत्नी सौ० चंपूताई की भेंट बडी हृदयस्पर्शी थी। नाना बोले, "कल से तो तुम्हें रोना ही है। मैं यदि कहूँ कि "किसी प्रकार का भी दु ख नही मानना चाहिये।" तो भी दु ख तो होगा ही और होता ही रहेगा। कोई कितना भी कुछ कहे। फिर भी ये कुछ क्षण हमको परस्पर वार्तालाप के लिये मिले है अत दु ख मनाने की अपेक्षा यदि हम इन्हें समाधान में बितायें तो उपयुक्त होगा।"

पति की यह अन्तिम इच्छा थी। अपने हृदय पर पत्थर रख कर पत्नी को इसे निभाना था। किसी भी प्रकार से मन की भावनाओ को दबाकर पति की उस इच्छा को पूर्ण करने मे चंपूताई सफल हुई। नाना अपनी पत्नी से परिजनों की कुशल-क्षेम पूछते रहे। चंपूताई ने शान्तचित्त से उनके सब प्रश्नो का उत्तर दिया। कारागार की आध घंटे की पति-पत्नी की वह अन्तिम भेंट बहुत ही महत्त्वपूर्ण और साथ ही उतनी ही संयमपूर्ण मन स्थिति में परिपूर्ण हुई।

भेंट करने के लिये आये हुए लोग बहुत सारे खाद्य पदार्थ लाये थे। अधिकारियो ने भली प्रकार उनकी जाँच कर सब वस्तुएँ हमें सौंप दी। भेंट का यह भावुकतापूर्ण कार्यक्रम शाम के पाँच बजे तक चलता रहा।

नथूराम गोडसे और नाना आपटे, जिनको दूसरे दिन ही फाँसी के फदे मे लटकना था, उनको मिलने आये हुए परिजनो एव मित्रो की मर्मस्पर्शी भेंट का दृश्य कारागृह के अधिकारियो ने भी देखा। मृत्युदण्ड-प्राप्त बन्दियो की धीरोदात्तता का ऐसा उदाहरण उनकी दृष्टि में कभी नही आया था। उनलोगो को अब तक ऐसी मुलाकातो में रोदन-क्रन्दन ही देखने-सुनने को मिला था। इस भेंट के अवसर पर अधिकारी भी अनेक बार भावविभोर होते देखे गये। आखिर वे भी तो मनुष्य-प्राणी ही थे।

नथूराम और नाना का भोजन हमारी ओर से ही जाता था। भेंटकर्त्ता जो खाद्यान्न लाये थे उस शाम वही हमने उनके भोजन के लिये भेजा था। कल आने वाली मृत्यु का विचार कर न तो उनकी भूख भाग गई थी और न ही उनके मन में यह भावना थी कि कल तो मरना ही है अत. आज जितना अधिक से अधिक खाया जा सके उतना खा लिया जाय। वे जानते थे कि ये पदार्थ उनके आत्मीयो द्वारा भेजे हुए है, उनसे सम्बद्ध भावना का मूल्य भी वे समझते थे। अत प्रत्येक वस्तु को उन्होने उसी भावना से चखा। और हमारे द्वारा सम्बन्धियो तक उन्होने यह भी सन्देश दिलवाया कि पदार्थ बहुत ही स्वादिष्ट थे, जिससे कि क्षणिक ही सही, उनको भी कुछ समाधान हो।

रात्रि के आठ बजे मैं, करकरे और मदनलाल तीनो जने नथूराम और नाना आपटे से मिलने के लिये गये। हम लोगो ने गीता के कतिपय अध्यायो का वहाँ अध्ययन एव पारायण किया। नथूराम गीता के दूसरे, ग्यारहवे और अठारहवें अध्याय को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे। कभी-कभी हम उन विषयो पर चर्चा किया करते थे। प्रस्तुत भेंट में भी गीता-पाठ के अनतर हमारी बहुत बातचीत हुई। भेंट करने के लिये आये जनो का बोलना, उनके साथ किया गया विनोद, पूर्व स्मृतियाँ आदि अनेकानेक विषयो पर हमारा वार्त्तालाप होता रहा। इस प्रकार दो घटे वहाँ उनके साथ व्यतीत कर हम अपने निवास मे वापस आये।

देश का वर्तमान पश्चिमी प्रदेश पजाब प्रान्त भारत-विभाजन के कारण अत्यधिक एव प्रत्यक्ष रूप में उलझा हुआ था। जनमानस में इसकी जो प्रतिक्रिया थी वह हमारी भावनाओ को भली-भाँति समझती थी। हमसे भेंट करने के लिये आने वाले व्यक्तियो ने भी इस विषय में अपने अनेक अनुभव सुनाये। दिल्ली से अम्बाला वाली गाडी में काफी भीड का उनको सामना करना पडा था, रात्रि गाडी में खडे-खडे ही बितानी पडी थी। अन्य यात्रियो ने अनुभव किया कि ये

कुछ लोग देश के इस भाग के नही है, अपितु किसी अन्य भाग के है और जब उन लोगो को यह विदित हुआ कि ये लोग महाराष्ट्र के हैं तथा गाधी-वध काण्ड मे मृत्युदण्ड प्राप्त नथूराम गोडसे एव नाना आपटे से मिलने के लिये जा रहे है तो उन लोगो ने अपने स्यान इन लोगो को दे दिये तथा वे स्वय खडे हो गये।

कुछ यात्री उनके साथ ही अम्वाला स्टेशन पर उतरे। उन लोगो ने इन भेंट करने के लिये आये हुए यात्रियो से अम्वाला में ठहरने के प्रवन्ध के विषय मे पूछताछ की। जव उनको विदित हुआ कि अमुक स्यान पर उनके निवास की व्यवस्था की गई है तो फिर उन्होने उनके ताँगे आदि की व्यवस्था कर दी। उन्होंने ताँगे वालो को भी समझा दिया कि ये परप्रदेशी यात्री किस विशेष कारण से अम्वाला आये हैं। परिणामस्वरूप जव ये लोग निश्चित स्थान पर उतरे तो ताँगे वालो ने भाडा लेने से ही इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि हमारे लिये आपके लोगो ने, जिनसे आप भेंट करने के लिये आये है, जान पर खेला है। अत उनका आग्रह था कि सहानुभूति के इस आदान-प्रदान में हमें भी कुछ भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाय।

अम्वाला के भोजनालय अथवा उपहारगृह में जाने पर प्रथम अपरिचित से लगने वाले इन व्यक्तियो से साधारण पूछताछ की जाती थी। किन्तु जव उनको उनके आने का कारण विदित होता था तो वे लोग भोजन आदि का मूल्य नही लेते थे। ऐसे भावनापूर्ण दृश्य उन लोगो को देखने को मिले।

फाँसी लगने के दूसरे दिन जव ये भेंटकर्ता अपने स्थान को वापस जा रहे थे उस दिन अम्वाला स्टेशन पर स्थानीय लोगो की भारी भीड उपस्थित थी। उन लोगो ने स्टेशन को नारो से गुँजा कर अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति की।

फाँसी मिलने के पहले दिन की घटना है कि दो युवक इन भेंटकर्ताओ के पास आये और प्रार्थना करने लगे कि हम लोग भी गोडसे और आपटे के दर्शन करना चाहते है, आप कृपा कर अपने साथ ही हमारा नाम भी सम्वन्धी जनो के साथ लिखवा दीजिये। किन्तु सम्वन्धी जन इन अपरिचितो को इस प्रकार अपने साथ लेने के लिये उद्यत नही थे। उनको शका थी कि कौन जाने गुप्तचर विभाग ने ही इन व्यक्तियो को अपना कार्य करने के लिये भेजा हो। अत उन्होंने कह दिया कि हम आप लोगो को इस प्रकार अपने समूह में समाविष्ट नही करेंगे। उन्होने कह दिया कि अधिकारियो से मिल कर आप अपनी भेंट का सीधा प्रवन्ध कर सकते हो तो कर लीजिये। विवश उन लोगो को वहाँ से जाना पडा।

जव से हम लोगो को अम्वाला कारागार में लाया गया था तव से ही हम पर विशेष पहरेदारो की नियुक्ति की गई थी। उनका सारा व्यय केन्द्रीय सरकार को

वहन करना पडता था। किसी भी फाँसी के प्रथम दिन विशेष सावधानी वरती जाती थी। फिर नथूराम गोडसे और नाना आपटे की फाँसी तो अत्यधिक महत्त्व की थी अत इस अवसर पर और भी अधिक सावधानी वरतने का आदेश था। इस अवसर पर विशेष पहरा दिया जा रहा था।

लगभग रात के पौने दो वजे एक पहरेदार ने देखा कि दो नवयुवक वाहर खडे है, उनको देखते ही उसको तो कँपकँपी आ गई। उसने सोचा कि ये दो वन्दी है जो भागने का प्रयत्न कर रहे है। उसके पास शस्त्र था, कुछ साहस वटोर उसने उनको रोका। आगन्तुक युवक निश्चल खडे रहे। उन्होने केवल इतना ही कहा "हमे नथूराम गोडसे और नाना आपटे के दर्शन भर करा दो, फिर हम वापस हो जायेंगे।" यह सुन रक्षक को कुछ सन्तोप हुआ। वह उनके समीप गया, उनकी तलाशी ली और जव देखा कि उनके पास कोई शस्त्र नही है तो फिर वह उनको अपने प्रमुख अधिकारी के समीप ले गया।

इस घटना से अधिकारियो में भागदौड आरम्भ हो गई। एक वार किसी वात का सन्देह हुआ कि फिर वह असीम हो जाता है। वे सोचने लगे कि कही फाँसी वालो को भगा कर ले जाने की कोई चाल तो ये लोग नही चल रहे है। इन लोगो के पीछे और भी कोई है अथवा नही इस वात की छानवीन होने लगी। आरक्षक दल को सावधान कर दिया गया और कारागार के चारो ओर पहरेदारो की सख्या में पर्याप्त वृद्धि कर दी गई।

अधिकारियो ने जव उन नवयुवको से पूछताछ की तो उन्होने अपने साथ वीती घटना को स्पष्ट कर दिया। उनका कथन था कि वे वनारस से केवल इस निमित्त आये है कि नथूराम गोडसे और नाना आपटे के अन्तिम दर्शन कर सकें। एतदर्थ उन्होने उस दिन मध्यान्ह के समय जेल के अधिकारियो से प्रार्थना की थी किन्तु उन्होने अस्वीकार कर दी। फिर वे मृत्युदण्ड प्राप्त व्यक्तियो के सम्व-न्धियो से मिले और उनसे विनती की कि वे उनको अपने दल में सम्मिलित कर दर्शन का सुअवसर प्रदान करें। उन्होने भी उनकी विनती को स्वीकार नही किया। तव उन्होने इस प्रकार का कृत्य किया। क्योकि यदि वे आज रात तक उनके दर्शन नही कर पाते है तो कल प्रात काल तो उनको फाँसी दे दी जायगी जिससे उनका भौतिक शरीर सदा-सर्वदा के लिये दृष्टि से दूर हो जायगा। फिर तो वे कभी दर्शन कर ही नही पावेंगे।

वन्दीगृह की दीवार को वढाने का कार्य चालू था। इसके लिये दीवार के समीप तत्सम्वन्धी सामग्री अर्थात् ईंट, रोडा आदि पडे थे। उसी ढेर मे उनको दो सीढियाँ दिखाई दी। उसको उठाकर उन्होने दीवार के सहारे लगाया। उनका

विचार था कि वहाँ तक तो पहुँच जायँ, फिर अन्दर आने की वात सोचेंगे। इसी विचार से उन्होने यह साहसिक कार्य किया था किन्तु उन्हें इस पर भी भेंट का अवसर प्रदान नही किया गया और वाद में हमने सुना कि कई दिनो वाद उन दोनों युवकों की खूब छानवीन के वाद कारागार से मुक्त कर दिया गया।

जिस दिन फाँसी की सजा मिलनी थी उस दिन बहुत प्रात पुन हम उन लोगो से मिले। रात को वारी-वारी से बन्दीगृह के पहरेदार रात भर उनके द्वार पर पहरा देते रहे। उन लोगो के साथ हमारे सम्बन्ध इतने बढ गये थे कि एक प्रकार की आत्मीयता-सी अनुभव होने लगी थी। इस कारण रात के सारे पहरेदार भी उस समय वही थे, उनका विचार था कि प्रात काल वन्दीजनो से मुलाकात कर उनसे दो-दो वात कर लेंगे। उसके वाद तो फिर न उनसे भेंट हो सकती है और न सम्भाषण।

प्रात मिलने पर हमने गीता के १-२ अध्यायों का पाठ किया। दोनो ने प्रातर्विधि समाप्त कर स्नान किया। दोनो ही प्रसन्नचित्त प्रतीत होते थे।

मैं नथूराम को अण्णा कह कर सम्बोधित करता था। मैंने कहा, "अण्णा! दाढी वनाओगे क्या ?" "किसलिये ? किसी सभा-समाज में थोडे ही जाना है।"

"नही, सभा-समाज में तो नही जाना है। आपने स्नान किया, इसीलिये मैंने पूछा था।"

"अपनी स्वत की प्रसन्नता भी तो कोई चीज होती है न ? अभी तो मुझे ढाई घण्टा और जीना है न ? मन की प्रसन्नता के लिये शारीरिक स्वच्छता सहायक होती है।, दाढी तो कल ही बनाई थी, उसकी आज कोई वात नही है। और कुछ समय वाद तो यह सारा शरीर ही भस्मीभूत होने वाला है अत दाढी वनाने अथवा न वनाने से कोई अन्तर नही पडता। जितना समय मैं दाढी वनाने मे लगाऊँगा उतना ही वार्तालाप में भली प्रकार व्यतीत कर सकता हूँ। यह देखो ये पहरेदारो के अधीक्षक अभी आये हैं, इन्हें मुझसे वात करनी है।"

उपरिलिखित दो युवको की कथा हमें रात को हमारे कमरे के पहरेदार ने सुना दी थी। वह कहानी मैंने प्रात काल नथूराम को सुनाई। मेरी वात सुनकर नथूराम बोले, "मुझे यह पहले से ही ज्ञात है और मैं अपनी वात अधिकारियो को बता चुका हूँ।"

मैने फाँसी के समय अपने उपस्थित रहने की अनुमति चाही तो उस समय वे कहने लगे कि वे कोई उच्चाधिकारी तो हैं नही जो इस प्रकार की अनुमति प्रदान करें। फिर उन्होने कहा था "परन्तु फांसी से पूर्व आधे घटे तक मेरा अधिकार है, तब तक तुम प्रसन्नता से मिलो।"

नथूराम काफी पिया करते थे। उन्हे चाय नही सुहाती थी। हमने काफी और चाय मँगवाई। सभी ने अपना-अपना पेय पदार्थ पिया। दूर की यात्रा के लिये जब मनुष्य जाने लगता है तो उसको जिस प्रकार विदाई दी जाती है, उसी प्रकार हमने उन्हे विदाई दी।

दोनो मृत्युदण्ड प्राप्त बन्दियो ने अपने माता-पिता की प्रतिमाओ का पूजन किया। हम लोगो को उन्होने सावधानी से रहने का उपदेश भी दिया।

उस समय हममें से कोई भी शोकाकुल प्रतीत नही होता था। यदि वे प्रसन्न थे तो हम भी स्थिर थे, उदासीन तो निश्चित ही हम लोग नही थे।

आगे की विधि की तैयारी में आरक्षकगण फाँसी वालो को देने के लिये काले कपडे लिये खडे थे, तब हमने उनसे अन्तिम विदाई ली और वहाँ से चले आये।

अखण्ड भारत का मानचित्र, भगवाध्वज और भगवद्गीता ये वस्तुएँ दोनो ही व्यक्तियो के हाथो में थी। प्रात के ८ बजने वाले थे। सूरज की किरणें अभी मृदु लग रही थी।

फाँसी का तख्ता फाँसी कोठरी के पिछली ओर था। कोठरी से बाहर आते ही उनको सूर्यकिरण दृष्टिगोचर हुई। वे किरणें उनके अग पर पडी। नथूराम तो एक बार शिमला जाने के लिये इस कोठरी से बाहर निकले भी थे किन्तु आपटे आज प्रथम बार ही कोठरी से बाहर निकले थे। सूर्य का प्रकाश उनको बहुत भाया और बोले, "पण्डित! सूर्य की किरणें कितनी कोमल है।"

नथूराम ने उसके उत्तर में कहा, "शिमला मे तो लगभग सदैव ही ऐसा आह्लादकारी दृश्य रहता है।"

फाँसी के बरामदे में पहुँच कर दोनो ने "अखण्ड भारत अमर रहे" और "वन्दे मातरम्" का घोष किया—

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे,
त्वया हिन्दुभूमे सुख वर्द्धितोऽह।
महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे,
पतत्वेप कायो नमस्ते नमस्ते।

एक बार कारागार के वायुमण्डल में यह स्वर गुजायमान हुआ और फिर फाँसी देने वालो ने फाँसी का फदा खीचा कि दो प्राण पचत्व में विलीन हो गये।

* * *

सात

"मेरी राख सिंधु-सरिता में बहा देना!"

"देखो पण्डित ! मैं पहले ही तुमसे कहता था कि पैसों की गणना के झझट में मत पड़ो। तुम्हारे इस कृत्य से अब अभियोजक जो कुछ भी अर्थ लगावेंगे उसको अत्यधिक महत्त्व मिलेगा।" इस प्रकार नाना आपटे सदा स्पष्टरूप में पिछली बातो का छिद्रान्वेषण किया करते थे। जिन दिनों हमारा अभियोग विचाराधीन था उन दिनों हमारे लिये वार्त्तालाप का विषय उस दिन की साक्षी का हुआ करता था।

नथूराम को आरक्षको के अधीन किया गया तो उनके पास से जो वस्तुयें मिली उनकी सूची बनाई गई। उन वस्तुओ में उनकी एक दैनिकी भी थी जिसमें सक्षेप में स्मृति के लिये अनेक नाम, अनेक स्थान, नियत किये गये भेंट के समय, यात्रा का व्यय, रुपये-पैसों की थोड़ी बहुत गिनती, इस प्रकार की बातें अंकित थी। उस दैनिकी को भी आयोजकों ने साक्षी के रूप में न्यायालय में प्रस्तुत किया था। उन्होंने न्यायालय का ध्यान रुपयों-पैसों की उस लिखत की ओर आकृष्ट किया था और वे उसके अर्थ अपनी इच्छानुसार लगाने का यत्न कर रहे थे।

एक स्थान पर अंकित था 'बडोपंत को पैसे दिये।' बड़गे ने अपनी गवाही में बडोपंत से अभिप्राय स्वयं को बताया था। उसमें यह भी लिखा था कि नाना आपटे को इतनी राशि दी अथवा गोपाल को इतनी राशि दी, इतनी राशि अपने पास रखी, इस प्रकार की कुछ बातें उसमे अंकित थी। षडयन्त्र सिद्ध करने के लिये नथूराम का यह लिपिबद्ध लेख बहुत काम आवेगा, अभियोजकों की ऐसी धारणा बन जाना स्वाभाविक था।

ऐसे कार्य मे सलग्न व्यक्ति का अपने पास दैनिकी रखना बहुत हानिकारक होता है। क्योकि जिनका उस षडयन्त्र से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नही है, यदि उनका नाम किसी प्रसग मे उसमे अकित है तो उन्हे भी कष्ट भोगना पड जाता है। इसके अतिरिक्त षडयन्त्र से सम्बन्धित सभी व्यक्तियो का सूत्रबद्ध समावेश उसमे प्राप्त हो जाता है। उसका उपयोग अभियोजक के लिये लाभप्रद सिद्ध होता है।

अत ऐसे समय मे दैनिकी का अपने पास होना बहुत ही हानिकर है। परन्तु धन का ब्यौरा रखने के विषय मे नथूराम की अपनी एक धारणा थी। उनका कहना था, "हम लोगो से पैसे लेते है, हिन्दूराष्ट्र लिमिटेड नामक सस्था के लिये। उसमें से एक निश्चित राशि हम अपने लिये भी व्यय करते है। उसके अतिरिक्त होने वाले व्यय की गणना यदि हम अपने लिये न भी करें तो भी कभी कोई हमसे आय-व्यय का ब्यौरा माँग ले तो कुछ तो उसको समझा सकने की स्थिति में हमें होना ही चाहिये। इसके अभाव में तो न किसी प्रकार का विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है और न स्पष्टीकरण ही।"

नाना कहते थे, "लोग क्या कहेंगे? यही कि इन दोनो ने पैसे खा लिये। उन्हे वैसा कहने दो। हम यह भली-भाँति जानते है कि हमारी स्थिति क्या है। उनके आरोप से जब हमारा तनिक भी सरोकार नही तो फिर हमें उससे विचलित होने की क्या आवश्यकता है?"

नथूराम नाना से पूछते, "हम कुछ न कर पाये और सारा धन व्यय करते गये तो फिर लोगो को क्या कहेंगे?"

नाना कहा करते, "क्या तुम प्रत्येक को यह स्पष्टीकरण देते फिरोगे कि हमारे पास अमुक योजना थी, वह असफल हो गई, उसी में यह खर्च हुआ है। क्या लोगो का तुम पर विश्वास होना चाहिये? हमारे हाथ से कुछ होने वाला होगा तो होगा, नही तो नही। किन्तु तुम यह हिसाब-किताब मत रखा करो।"

परन्तु नथूराम ने उनका यह कहना नही स्वीकार किया। "हिन्दू राष्ट्र मर्यादित" इस सस्था के वे अधिकारी थे। हमने लोगो से ऋण लिया है उसके प्रति हम उत्तरदायी है, लोगो ने जिस विश्वास के साथ अपनी सस्था की सहायता की है, हमको उस विश्वास के योग्य होना चाहिये। उनकी यह हार्दिक आस्था थी। यह आस्था इतनी प्रभावी थी कि उसके जोश मे, अग्नि के समीप बैठकर गोला-बारूद की गिनती की तरह उन्होने ज्वालामुखी पहाड पर बैठकर पैसे के व्यवहार के धोखे मे डालने योग्य टिप्पण कर रखे थे। और अन्त में सावधानी रखने का विचार मन में होते हुए भी असावधानतावश वह दैनिकी उनके अपने पास ही रह गई थी।

अभियुक्तो को दोषी सिद्ध करने के लिये अभियोजको की ओर से उस दैनिकी का भी लाभ प्राप्त हुआ था।

गलतियाँ अनेको से हुई थी। परन्तु जो गलती सामने आती थी उसके सम्बन्ध में उस दिन चर्चा हुआ करती थी। मानो पुन नये से वह गलती हुई है इस धारणा से सम्बन्धित व्यक्ति अन्य अभियुक्तो का लक्ष्य वनता था।

आज नथूराम की वारी थी। नाना आपटे और नथूराम परस्पर वॅरावरी के नाते मे वोल्ते थे। न्यायालय ने भी उनसे वरावरी का ही व्यवहार किया, क्योंकि नाना आपटे को भी नथूराम के साथ ही फाँसी की सजा सुनाई गई थी।

नथूराम ने गोली चलाई और उन गोलियो से गाधी का देहात हुआ यही आरोप उन पर था। और उन्होंने उसे स्वीकार भी किया था। तथा इस अपराध के लिये उनको फाँसी का दण्ड दिया गया, यह भी उन्होने स्वीकार किया। परन्तु नाना आपटे ने गोली चलाई और उसके कारण गाधी की मृत्यु हुई ऐसा आरोप तो नाना पर नही था। षडयन्त्र में एक घटक की जो सजा हुई वह सभी घटको को हो सकती है यह निर्वध ध्यान में रखते हुए भी सभी अपराधियो को फाँसी की सजा नही दी गई थी। जितना नथूराम का दोप था उतना अन्य अभियुक्तो का नही था यह तो स्पष्ट है। नाना का कृत्य भी नथूराम के कृत्य के समान नही था। परन्तु उन्हें भी फाँसी की सजा हुई थी। अर्थात् नथूराम को जो सजा मिली उसके अनुपात में उनको कुछ अधिक सजा मिली थी। इसे न्यायालय का नाना पर रोप ही कहा जावेगा। क्या नाना का दोप अनुपात में नथूराम से अधिक था?

न्यायालय ने अपने निष्कर्ष में वताया था कि इस षडयन्त्र का सारा सचालन नाना के आदेश पर किया जा रहा था। उपलव्ध प्रमाणो की छानवीन करके ही न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा था। उच्च न्यायालय ने भी उसी निष्कर्ष को मान्यता प्रदान की थी।

किसी धार्मिक समारोह मे अनेक लोगो को एकत्रित कर लेना सरल होता है, क्योंकि उसमे भावना प्रधान होती है। यद्यपि उसके लिये सगठन चातुरी चाहिये परन्तु पहले से ही सम्वन्धित विषय में श्रद्धा विद्यमान होने से समारोह सम्पन्न करने में सुविधा होती है। इसी प्रकार किसी राजनीतिक विषय पर समान विचार वाले विभिन्न जनो को एकत्रित कर लेना भी सम्भव हो जाता है परन्तु अपने प्राणो को हथेली पर लेने के लिये लोगो को तैयार करना और फिर उन्हें एक मच पर एकत्रित कर देना इसमें सगठक का व्यक्तित्व ही प्रभावी होता है। तीव्र भावनायें तो अनेको की होती है परन्तु उनमे भी श्रेणियाँ हुआ करती है। ऐसे अवसरो पर अनेक लोग अनेक प्रकार की वात करते है और चाहते है कि श्रेय का कार्य उन्हें सौंपा जाय, अन्य छोटे-मोटे सहायक कार्य कोई अन्य करे। कुछ

ऐसे भी होते हैं जो तात्कालिक उत्साह दिखाकर समय आने पर खिसक जाया करते हैं।

मुझे इस अवसर पर एक प्रसग स्मरण आ रहा है। मैं उस समय प्राथमिक पाटशाला मे था। उन दिनो संत पाचलेगाँवकर महाराज साँपो के सम्बन्ध में सप्रयोग जानकारी दिया करते थे। किन साँपो मे विप होता है, किन में नही होता और मनुष्य सामान्यतया भय से ही कैसे मर जाया करते है, इस विपय मे उन्होने अनेक व्याख्यान दिये थे। उन्हे सर्पदश की ओपधि भी आती थी। साँप से डँसवा कर दिखाना भी उनका एक कृत्य हुआ करता था। अपने व्याख्यान के अन्त मे वे कहते, "वोलो, कौन है जो साँप डँसवाने का प्रयोग करने के लिये उद्यत है ?"

लोग उत्साह से भरे हुए थे, संत महाराज के व्याख्यान से प्रभावित हुए थे। वीस-तीस व्यक्तियो ने हाथ ऊपर उठा दिये।

"वाह, बहुत आनन्द की वात है। अपने हाथो को उठाये रखिये।" ऐसा कह कर उन्होने अपने समीप वैठे शिष्य से कहा, "जाओ, जरा भीतर से टोकरी तो ले आओ।"

टोकरी लाई गई। जव उसे खोला गया तो उसमें से पूरा पाँच फीट लम्बा साँप निकल कर महाराज के पास आकर रुक गया।

महाराज ने अपने शिष्य से कहा "गिनो तो कितने लोगो के हाथ ऊपर है ?"

तव तक देखा तो चार-पाँच हाथ ही उठे हुए शेष थे। महाराज ने जिस समय टोकरी लाने का आदेश दिया था तभी से कई लोगो के हाथ ऐंठने से लग गये थे। धीरे-धीरे उन्होने हाथ नीचे कर लिये। कई लोगो ने तो शायद यह सोचा कि कदाचित् प्रसाद-वितरण करने के लिये टोकरी मँगाई जा रही है। किन्तु जव उन्होने लाई जाने वाली टोकरी की प्रसाद की टोकरी से कुछ भिन्न आकृति देखी तो प्रसाद का मोह त्याग अपने हाथ नीचे कर लिये। कई लोगो ने नाग को देखा तो भावना मे ही उनके हाथ नीचे लटक गये।

वहाँ वैठे हुए वालको में शोर मच गया। किसी ने कहा कि वर्षा तो हुई नही, फिर यह आर्द्रता कहाँ से आ गई ? आस पास के लड़के 'मैंने नही, मैंने नही' का शोर मचाने लगे।

अन्त में केवल तीन व्यक्ति निश्चय से खडे हुए। महाराज ने उनमें से एक को चुन लिया और फिर उन्होने उस पर सर्पदश व। तथा उसका विप उतारने का तात्कालिक प्रयोग वही पर किया।

मैं स्वय किस वर्ग में था यह वात न वोलना ही अच्छा रहेगा। लोगो की

भावनाओ को जागृत कर उन्हें एकत्रित करने पर भी कौन अन्त तक साथ निभायेगा, इसका निश्चय करना अति कठिन होता है। इस अभियोग में न्यायालय का कथन था कि प्राणो की आहुति देने की सिद्धता रखने वाले लोगो का सगठन करने में नाना आपटे का प्रमुख भाग था।

नाना से अच्छा परिचय रखने वाले आज भी अनेक हैं। कभी-कभी इस संसार में ऐसी भी घटनायें घटित होती है कि उन पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। मेरा और नाना का परस्पर थोडा-सा ही परिचय पहले से था। इसलिये वे कैसे आगे बढे, उनका आस पास का वातावरण कैसा था, इस सम्बन्ध में मुझे प्रत्यक्ष जानकारी नही है। परन्तु जो व्यक्ति उनसे परिचित है वे कहते हैं कि नाना और षडयन्त्र यह बात तो विश्वसनीय है ही नही। यह विचित्र घटना है। नाना को इस षडयन्त्र का सूत्रधार मानना यह तो विरोधाभास की चरम सीमा है।

महाराष्ट्र के इतिहास के अन्वेषण में साठोत्तरी के जो व्यक्ति आज विद्यमान है वे सभी नाना आपटे के पिता स्वर्गीय श्री दत्तोपन्त आपटे से परिचित हैं। उनमें से अनेको के वे गुरु भी थे। स्वर्गीय महादेव चिमणाजी आपटे के ट्रस्ट द्वारा पूना की आनन्दाश्रम संस्था का सचालन होता है। स्वर्गीय श्री दत्तोपन्त उस सस्था के व्यवस्थापक थे। वे स्वय भी इतिहासज्ञ थे। इसके अतिरिक्त इतिहास-सशोधन की आवश्यक भाषा और लिपियो का अध्ययन भी उन्होने किया था। सस्कृत, गणित, भूगोल, खगोलशास्त्र आदि विषयो में भी उनका प्रवेश था। जब लोकमान्य तिलक का क्रान्तिकारियो से सम्बन्ध आया था तो इस प्रसग मे विदेश से शस्त्रास्त्रो के मँगाने में दत्तोपन्त भी एक माध्यम थे। परन्तु बाद मे वे विद्याव्यासग में व्यस्त हो गये थे।

नाना आपटे का जन्म सन् १९११ में हुआ था। उनकी बडी बहिन तपस्वी बाबा पराजपे की बहू थी। उनकी दो और भी बहनें थी। नाना के चार भाई थे, बलवत, विष्णु, माधव और मनोहर। वे सब अपने-अपने व्यवसाय मे है। मनोहर तो उच्च शिक्षा के लिये विदेश भी हो आये है।

नाना ने बी० एस-सी० उत्तीर्ण किया था और अहमदनगर में उनको शिक्षक की नौकरी मिल गई थी। उन्ही दिनो उनका विवाह भी हो गया। उनके एक सुपुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु बाद में वह नही रहा।

अध्यापन-क्षेत्र में नाना ने उन्नति की, उनकी ख्याति बढने लगी थी। वे शिक्षा-वर्ग चलाते थे। प्रत्येक विद्यार्थी चाहता था कि वह उनसे पढे। नाना ने अनुभव किया कि उनकी लोकप्रियता बढ रही है। उन्होंने बी० टी० करने का निश्चय किया और वह परीक्षा भी उत्तीर्ण कर ली।

गौरवर्ण, सुडौल, स्वस्थ शरीर, प्रसन्नवदन नाना आपटे मित्र एव परिजनो में प्रिय थे। सजधज कर रहने का उन्हें बहुत शौक था। बचपन के दिन उनके गरीबी में बीते थे। किन्तु आज पैसा उनके पीछे लगा था। अपने बचपन के दिनो से मानो वदला ले रहे हो इस प्रकार खान-पान एव परिधान मे जो उत्तम वस्तु हो उसका ही प्रयोग वे उन दिनो किया करते थे।

महाराष्ट्रीय सुसंस्कृत घरो में हिन्दुत्वनिष्ठा की सहज प्रवृत्ति है। घर के सस्कार वैसे होने के कारण नाना के मन पर भी हिन्दुत्वनिष्ठा का प्रभाव था। जब उनकी बुद्धि कुछ विकसित हुई तो थोथी निष्ठा विलुप्त हो गई। अब वे प्रत्येक बात को विज्ञान की कसौटी पर कस उसको ग्रहण करते थे। इसी क्रम में १९३७ में उनकी भेंट स्वातन्त्र्यवीर सावरकर से हो गई। वे उनसे प्रभावित हुए और उनके द्वारा प्रतिपादित हिन्दुत्ववाद की ओर आकृष्ट हो गये। नाना ईसाइयो द्वारा सचालित विद्यालय में शिक्षक थे। उस विद्यालय में हिन्दू विद्यार्थी भी अध्ययन के लिये जाते थे। प्रत्येक विद्यार्थी को वह चाहे किसी भी मत, पथ अथवा सम्प्रदाय का हो, उससे वहाँ अनिवार्यरूपेण ईसाई प्रार्थना करवाई जाती थी। नाना ने इस परिपाटी को रुकवा दिया। यही उनकी हिन्दुत्व निष्ठा का प्रथम प्रमाण और प्रत्यक्ष प्रायोगिक कार्य था।

हिन्दू महासभा की नीति के अनुसार सैनिकीकरण के मार्ग को प्रशस्त करने के लिये नाना ने स्थान-स्थान पर "रायफल क्लबो" की स्थापना की। काग्रेस का शासन होने पर भी इस कार्य के लिये नाना ने सम्बन्धित पदाधिकारियो से मान्यता प्राप्त कर ली थी।

नाना का सगठन सौष्ठव विकसित हो रहा था। हिन्दू महासभा के अधिवेशनो के माध्यम से नाना और नथूराम का सम्पर्क बढ रहा था। अधिक सम्पर्क में आने पर दोनो ने परस्पर यह अनुभव किया कि दोनो में कुछ न कुछ गुण अवश्य है। १९४४ के आरम्भ में दोनो ने मिल कर योजना बनाई कि दैनिक-पत्र का प्रकाशन किया जाय। इस योजना के अन्तर्गत 'अग्रणी' का जन्म हुआ। जिसका सचालकत्व नाना ने और सम्पादकत्व नथूराम ने सँभाला। उन दोनो का सचालक-सम्पादक का नाता इतना अटूट रहा कि गाधी-वध अभियोग के अवसर पर भी न्यायालय ने इन दोनो का ही तद्रूप षडयन्त्र के सचालक-सम्पादक की सज्ञा से विभूषित किया।

समय-समय पर योग्य एवं उपयुक्त व्यक्तियो को ये अग्रणी अथवा हिन्दूराष्ट्र सस्था मे बुला कर उन्हें समाचार-पत्र के महत्त्व से अवगत कराना तथा वृत्तपत्र के प्रति एव अपने कार्य के प्रति उनमें विश्वास जमाने का कार्य नाना बडी कुशलता के साथ करते थे। कही पर किसी से मिलने जाना हो तो उनको किसी सहायक की

अपेक्षा नही होती थी। संयोग कहिये अथवा उनका व्यक्तित्व कि जहाँ कही भी वे जाते उनको सफलता ही मिलती थी। किसी भी अधिकारी से वे अपना कार्य करवा लेते थे।

उस समय हिन्दुत्व के जागरण की वृत्ति शासको को रुचिकर नही थी। क्योंकि शासन काग्रेस का था। हिन्दुत्ववादी जन मुस्लिमपरस्ती अथवा मुस्लिम तुष्टीकरण का घोर विरोध करते थे। काग्रेसी जानते थे कि वे पाकिस्तान-निर्माण की ओर अग्रसर हैं और वे यह भी जानते थे कि पाकिस्तान-निर्माण में हिन्दुत्ववादी कदाचित् बाधा उपस्थित करें। इसलिये तत्कालीन काग्रेसी शासको ने हिन्दुत्ववादी समाचार-पत्रो को दबाने के लिये अपने अधिकार का दुरुपयोग किया। इसी प्रकरण में 'अग्रणी' से भी एक के बाद एक इस प्रकार अनेक प्रतिभूतियाँ 'सिक्योरिटी' माँगी गई। शासको का उस समय का यह इतिहास गाधी-वध अभियोग के अभिलेख में समाविष्ट हुआ है। नाना और नथूराम को परेशान किया जाता था। भीतर के तूफान को दबाकर वे लोग प्रसन्नवदन इन घटनाओ का सामना करते थे। भावी घटनाओ के विश्लेषण के आधार पर अब हम यह कह सकते हैं कि गाधी पर नाना के क्रोध का एक कारण यह भी रहा होगा।

गाधी के समक्ष उस समय एक यही समस्या प्रमुख थी कि कांग्रेस जनो से लेकर अन्य जनसाधारण तक के गले में मुस्लिमपरस्ती को किस प्रकार उतारा जाय। समकालिक लेखको की कृतियो का अध्ययन करने से हमें इस तथ्य का आभास मिलता है। एक बार गाधी पाचगणी आये तो पचीस युवको के एक गुट ने उनके आगमन का विरोध किया। नाना उस गुट के प्रमुख थे। यह घटना २२-७-१९४४ की है। श्री देउलकर नामक एक आरक्षक अधिकारी उन दिनो पाचगणी मे गाधी की सुरक्षा के लिये नियत थे। गाधी-वध अभियोग में उनकी भी साक्षी हुई थी। नाना के गुट द्वारा गाधी के उस आगमन के विरोध का उन्होंने अपनी गवाही में उल्लेख किया था।

जब गाधीजी ने आकर नई दिल्ली की भंगी बस्ती में अपना डेरा जमाया तो उस समय भी नाना ने उनके विरोध में एक प्रदर्शन का आयोजन किया था। उस समय नाना का गाधी से कहना था, "हिन्दुओ की खून पसीने की कमाई को छीन कर मुसलमानो को मत दो, क्योंकि इससे भी वे सन्तुष्ट होने वाले नही हैं। इस दान से उनकी तृप्ति नही होगी। देश का विभाजन मत कराओ। नोआखाली के हिन्दू हत्याकाण्ड से कुछ शिक्षा ग्रहण करो। मुसलमानो की धमकियो से मत डरो। हिन्दू युवको का आवाहन करो। प्रतीकार के लिये वे प्राणपण से सन्नद्ध रहेंगे।" इतनी बात बताना मात्र उनका खास उद्देश्य था।

गाधीजी की सभी प्रतिज्ञायें और आश्वासन व्यर्थ अथवा विफल सिद्ध हुए।

देश का विभाजन हुआ। देश में रक्त की नदियाँ बही। केश्मीर पर पाकिस्तान समर्थित कवाडलियों का आक्रमण हुआ। हमारे सैनिको की क्षति हुई। पाकिस्तान को दिये जाने वाले ५५ करोड रुपयो के समर्पण का निर्णय बदल दिया गया था। गाधी की हत्या हुई।

न्यायालय के सम्मुख नाना ने अपनी नीति के प्रतिपादन को स्पष्ट करते हुए कहा कि गाधी की मुस्लिम परस्ती उनको बिलकुल भी पसन्द नही थी, उन्होने उसके विरोध मे समय-समय पर प्रदर्शन किये। ऐसा ही एक अन्य प्रदर्शन २०-१-१९४८ को भी करने की उनकी योजना थी। ३०-१-१९४८ की हत्या की घटना से उनका किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नही था। उनमें और नथूराम में मतभेद हो गया था। नथूराम क्या करने वाले थे इसका उन्हें ज्ञान नही था। हम दोनो की दिशायें अलग-अलग हो गई थी।

परन्तु न्यायालय ने स्पष्ट परिलक्षित किया कि नाना का अनेक लोगो से सम्बन्ध था। शस्त्र और पैसा एकत्रित करने के लिये नाना ने किस प्रकार अनथक प्रयास किया था इसका चित्रण करने के लिये भी कई साक्षी न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किये गये। भिन्न-भिन्न स्तर के लोगो को षडयन्त्र में गूँथा गया था। बिना किसी सूत्रधार के इस प्रकार का गुट निर्मित हो जाना नितान्त असम्भव है और नाना मे वे सभी गुण विद्यमान है तथा किसी न किसी प्रकार से वे षडयन्त्र-कारियो से सम्बन्धित अथवा परिचित है अत इस षडयन्त्र का अधिकाधिक भार नाना पर डाल कर ही उन्हे फाँसी का दण्ड सुनाया गया था।

जिन दिनो हम पर अभियोग चल रहा था उन्ही दिनो भारत सरकार ने हैदराबाद के रजाकारो का दमन कर राज्य की सत्ता को अपने हाथ में लिया था। सरदार पटेल के इस साहसिक कार्य से नाना और नथूराम को इतनी प्रसन्नता हुई थी कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पादन के लिये उन्होने सरदार वल्लभ भाई पटेल को बधाई का सन्देश भेजा था। यह बात १९ या २०-९-१९४८ की है। आगे चलकर मैं औरगाबाद बन्दीगृह में अपना बन्दीवास भुगत रहा था। वहाँ के बन्दीजन उस समय की पुलिस कार्यवाही का वर्णन किया करते थे। वे लोग यह भी सुनाया करते थे कि वहाँ के मुसलमान कहा करते थे कि यदि आज गाधीजी जीवित होते तो उन पर और उनके गाधी के माध्यम से राज पर यह विपत्ति का प्रसग नही उपस्थित होता। मुसलमानो के इन उद्‌गारो से गाधी भक्ति नही, अपितु अपना उल्लू सीधा करने की वृत्ति झलकती थी।

फाँसी का दण्ड निश्चित हो जाने पर नथूराम और नाना ने अपनी एक ही इच्छा व्यक्त की था कि उनकी भस्मी को सिधु नदी में विसर्जित किया जाय। अपने मृत्युपत्र मे उन लोगो ने लिखा था कि भारत भू का भाग बन कर जब सिन्धु नदी

भारत में आयेगी तो उस समय यह भस्मी उसमें विसर्जित की जाय। इसमें चाहे कितने ही वर्ष लगें अथवा कितनी ही पीढियाँ बीतें किन्तु यह तभी किया जाय जब सिन्धु नदी भारत का अग बन जाय।

मैंने उस समय उनसे पूछा था कि उनको सिन्धु का स्मरण कैसे हो आया। नथूराम से तो इस विषय पर मेरा वार्तालाप हुआ था। नाना से मैंने पृथक् में यो ही कहा था कि "नाना! बहुत हुआ तो हम इन अस्थियो को गगाजी में विसर्जित कर देंगे।"

तब नाना का कहना था, "गोपाल! मनुष्य के मर जाने पर उसका प्रेत अथवा उसकी भस्मी का किस प्रकार क्या करना है, मृतक की दृष्टि से इसका कोई मूल्य नही होता। परन्तु मनुष्य तो मृतक की भावनाओ को समझने और उनका आदर करने की चेष्टा करता है। हमारी निष्ठा पुराणपन्थी निष्ठा मात्र नही है। साधारण-रूप से हमारे यहाँ गगाजी में ही अस्थि-विसर्जन किया जाता है। किन्तु फिर भी गगा, सिन्धु, सरस्वती आदि सभी नदियो को हम पवित्र मानते हैं। हमारी मृत्यु राजनैतिक एव राष्ट्रीय स्वरूप की है। तदनुसार हमारी राष्ट्रीय भावना को ध्यान में रखना भी स्वाभाविक है। फिर भी जब तुमने प्रश्न पूछा है तो उसका उत्तर देना परमावश्यक है। हमारे मन मे दो कसक है, उनका ज्ञान आप लोगो को हो इसलिये ही सिन्धु नदी मे अस्थि-विसर्जन का आग्रह हमने किया है। यह इच्छापत्र तो हमने मृत्यु के पूर्व ही लिख कर रख दिया है।"

उन्होने अपने वार्तालाप मे कसक शब्द का प्रयोग किया था। अत मुझे उत्कण्ठा हुई तो उनसे पूछा, "अपनी कसक के बारे मे तो आपने बताया ही नही।"

नाना बडे क्षोभ से बोले, "हिन्दूराष्ट्र की भूमिपर हिन्दू रस का शोषण करके पला हुआ यह पाकिस्तान। स्वतन्त्रता और पृथक् जीवनरूपी खाद्य एव जल मिलते ही उसने अवशिष्ट हिन्दुस्थान को अपमानित करने का उपक्रम प्रारम्भ कर दिया है। हमने स्वय मे सम्बन्धित बातो तक ही विचार किया क्योकि हमारी मर्यादा उतनी ही थी। गाधीजी के देहान्त के बाद यदि किसी ने उनका अपमान किया है तो वह पाकिस्तान ने ही किया है। तुम्हे जिन्ना का शोक-सन्देश स्मरण है?"

एकता के लिये हिन्दुओ को दवाये रखा और इस प्रकार मुसलमानो की स्वतन्त्र एव पृथकतावादी मनोवृत्ति में निरन्तर वृद्धि के कारण बने। उन गाधी के प्रति कम से कम उनकी मृत्यु के वाद तो वे कृतज्ञता-ज्ञापन कर अपने कर्तव्य का पालन करते ? विभाजन से पूर्व गाधीजी को यदि हिन्दुस्थान का नेता कहा जाता तो भी उसमें उनका अपमान नही था। क्योकि अन्त में पाकिस्तान ने इसी भूमि पर जन्म लिया था और कृतज्ञता की भावना से मुस्लिम राष्ट्र को भी गाधी को अपना राष्ट्रपिता मानना चाहिये था। इसलिये जिस राष्ट्र मे गाधीजी केवल हिन्दू के नाते अपमानित हुए है उस हिन्दू द्वेप पर खडे हुए राष्ट्र को तोडकर सम्पूर्ण सिन्धु नदी अपने ध्वज के नीचे आने के वाद उसमें हमारी अस्थियाँ विसर्जित की जायँ यही हमारी इच्छा है।"

मैंने कहा, "मरते समय गाधीजी ने 'हे राम' वोला था। क्या ऐसा प्रचार गाधीजी के शिष्यो ने नही किया ? तव यदि जिन्ना ने उन्हें हिन्दुओ का नेता कहा तो क्या गल्ती की ?"

नाना वोले, "शिष्य द्वारा गुरु को पराजित करने का यह पहला ही उदाहरण नही है गोपाल ! गाधीजी या तो उनको समझे नही था फिर वे ढोगी थे। सीधा-सा तथ्य विचारणीय है। राम-रहीम, कृष्ण-करीम, ईश्वर-अल्ला इस प्रकार साथ-साथ नामोच्चारण में ही जिस व्यक्ति ने अपना जीवन व्यतीत किया हो वह व्यक्ति मरते समय रहीम छोडकर केवल राम कहे, करीम छोडकर केवल कृष्ण कहे या अल्ला छोडकर केवल ईश्वर कहे और मरते समय तो केवल राम नाम ही सच्चा है ऐसा मानो लोगो को कहे क्या शिष्यो का यह प्रचार गाधीजी पर कठोर अन्याय करने वाला नही ? गाधीजी को यदि विचार करने का अवसर होता तो वह राम ही क्यो कहते, रहीम क्यो नही वोलते अथवा राम और रहीम क्यो नही वोलते ? केवल हिन्दुओ की भावनाओ को उभारने के लिये उनके भक्तो ने गाधी-जी के मुख में सहसा 'राम' शब्द ठूँस दिया। और वे चाहे कुछ भी उपदेश देते रहे हो अन्त में वे थे हिन्दू ही। मुस्लिम विश्व के ध्यान में यह वात विठाने के लिए मुस्लिम राष्ट्र के नेताओ ने उनको केवल हिन्दुओ का नेता वनाकर उनका अपमान किया है। यह कसक हमारे मन में है, हमारे शरीर में है इसलिये हमारी हड्डियों में भी उसका अस्तित्व रहने वाला है। स्वतन्त्र सिन्धु नदी के जल मे निमग्न होने के वाद ही वह प्रवाहित हो सकता है।"

मैंने पूछा, "आपकी दूसरी कसक कौन-सी है ?"

"गाधीजी की भस्मी का क्या हुआ ? इसका तुम्हें कुछ स्मरण है ?"

"हाँ, उसे ससार की सभी प्रमुख नदियों में विसर्जित किया गया।"

"ठीक है। उनकी भस्मी को ससार की प्रमुख नदियों मे विसर्जित करने की

योजना भारत सरकार की थी। विदेशियो की धार्मिक भावनाओ का हिन्दुस्थान ने आदर किया है यह ज्ञात हो जाने पर किसी भी देश की किसी भी नदी मे उस भस्मी को विसर्जित करने में किसी प्रकार की कठिनाई नही आई। किसी भी नदी में उस भस्मी के विसर्जित किये जाने से उस नदी का जल अपवित्र हो जावेगा, ऐसी किसी भी देश के किसी भी निवासी ने दुर्भावना व्यक्त नही की।

"और पाकिस्तान।" नाना वडे क्षुब्ध से वोल रहे थे, "श्री श्रीप्रकाश उस समय वहाँ भारत के उच्चायुक्त थे। उन्होने वडी निराशा के-से स्वर मे कहा कि "पाकिस्तान सिन्धु नदी में गाधीजी की भस्मी विसर्जित करने की अनुमति नही दे रहा है।" मानो वह भस्मी कोई इस प्रकार शस्त्रास्त्र हो जिसके प्रवेश पर पाकिस्तान को आपत्ति होना स्वाभाविक है। सम्भवतया पाकिस्तान किसी अवसर पर शस्त्रास्त्र जाने की अनुमति दे देता क्योकि उसमें प्रश्न भावना का नही, अपितु राजनीति का होता है। किन्तु यहाँ तो प्रश्न भावनाओ का था वह भी हिन्दू भावनाओ का। अपनी दृष्टि से उन्होने हिन्दुओ की भूमि पर अपने लिये एक "पाक" अर्थात् पवित्र स्थान निर्माण किया था, उस पर वे चिपक कर बैठे थे। उस पवित्र स्थान का पवित्र जलप्रवाह एक काफिर की राख से अपवित्र हो जाता, ऐसा वे क्यो करने देते। "हमारे पवित्र मुस्लिम राज्य मे हिन्दुओ के नापाक तौर-तरीके हमें सह्य नही" ऐसा तक कहने की उद्दडता पाकिस्तान मे पनपने लगी।

"हमारी धारणा थी कि हमारा शासन गाधीजी की अस्थियो के कुम्भ को सिन्धु में विसर्जित करने के लिये सुरक्षित रखेगा और जव भी अवसर सुलभ होगा उसमे विसर्जित कर देगा। किन्तु पाकिस्तान की अस्वीकृति को किसी प्रकार का अपमान नही माना गया। यद्यपि भारत को इस वात से सबसे अधिक चिढ उत्पन्न होनी चाहिये थी कि जिन काग्रेसियो ने पाकिस्तान के निर्माण के लिये अपने दो-दो हाथो से मत प्रदान किये थे, उन गाधीजी के शिष्य कहलाने वालो को जिन्होने सद्भावना से ही पाकिस्तान दे दिया था, उनकी भावनाओ को पाकिस्तान के उस दुष्कृत्य से किसी प्रकार की ठेस ही नही लगी। वर्षो तक जिनकी अस्मिता को अस्तित्वहीन कर दिया गया हो उनको पाकिस्तान द्वारा किया हुआ वह अपमान कोई अपमान ही प्रतीत नही हुआ। किन्तु जो कुएँ मे नही है वह डोलची में कैसे आ पावेगा। सत्य की रक्षा करने का अभिप्राय अर्थात् सकुचित वृत्ति की यह शिक्षा जिनके कानो में निरन्तर पडती रही हो उनको मानापमान की भावना क्या समझ में आवेगी। अहिंसा ही जीवन का सर्वोच्च तत्त्व है इसका उपदेश देते हुए कायरता अथवा भययुक्त व्यवहार को ही अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में उच्च तत्त्व का चिन्ह मानने लगे। गाधीजी की अस्थियो का जो अपमान हुआ है उसका वदला भी सिन्धु नदी के उस पवित्र जल

में प्रवाहित करने से ही धोया जा सकेगा। फिर चाहे कभी वह जल का प्रवाह रक्त का प्रवाह ही क्यो न बना रहे उसके बाद ही यह अस्थि-विसर्जन हो यही हमारी इच्छा है।"

मैंने पूछा, "नाना ! क्या हम कभी अपमान की चोट को समझेंगे भी ?"

नाना बोले, "ऐसी बात नही। अपमान की चोट, यह भी एक प्राकृतिक प्रक्रिया होती है। मनुष्य का ऐसा स्वभाव है। यदि ऐसी भावना विद्यमान न होती तो क्या गाधी-वध के बाद महाराष्ट्र मे अग्निकाण्ड हो सकते थे ? इतने लोग जो मारे गये क्या वैसा हो सकता था ? हेतु का आरोप यदि हम न लगावें तो हमें मानना पड़ेगा कि जो लोग गाधी को देवता समान मानते थे उनकी दृष्टि में एक ब्राह्मण द्वारा गाधी की हत्या हुई इस लिये उन्होने सम्पूर्ण ब्राह्मण जाति से उसका प्रतिशोध लेने का निश्चय किया। कल्पना करो, यदि लोगो के मन मे यह भावना भरी गई होती कि अपना देश अर्थात् भारतमाता जननी एव देवीस्वरूप है तो यही अस्मिता जननी एव देवीस्वरूपिणी इस भारतमाता के खण्डित होते समय धधक उठती और पाकिस्तान न बनने देने के लिये विकराल रूप धारण कर लेती। पाकिस्तान ने सिन्धु नदी मे गाधी की भस्मी को विसर्जित करने नही दिया, उससे हमारा अपमान हुआ है इसका भी यदि सकेत हमारे नेताओ ने किया होता तो भारतवासी पाकिस्तान को शिक्षा देने के लिये सहस्त्रादपि भुजाओ मे शस्त्र-धारण कर अपने अपमान का प्रतीकार करने के लिये सन्नद्ध हो जाते।

"निदान, महाराष्ट्र में तो यह अनुभव नया नही है। सम्भाजी की मृत्यु के बाद दक्षिणस्थित औरगजेब की सत्ता को इन्ही लोगो के पूर्वजो ने ही तो तग कर दिया था। मनुष्य मे प्रतीकार की भावना तो विद्यमान रहती ही है उसको मोड देने वाला कुशल नेता होना चाहिये। वह दिशा यदि मिल जाय तो इसी अस्मिता के बल पर सारे भारतवर्ष की रक्षा कर पाना सभव है।"

"क्या आपने इस विषय पर नथूराम से वार्त्तालाप किया था ?" मैंने उनसे पूछा।

वे बोले, "ठीक इसी विषय पर तो नही। परन्तु हम सदा विचार-विमर्श करते रहते है। क्यो, "तुम्हारा पूछने का अभिप्राय क्या है ?"

"यो ही। आप सघ को दोष देते है। परन्तु आप स्वयसेवको की ऊँची श्रेणी के स्वयसेवक प्रतीत होते है। इस लिये मैंने पूछा था।"

"मैं तुम्हारा अभिप्राय नही समझा।"

"परसो ही इस बात पर मेरी नथूराम से चर्चा हुई थी। जिस प्रकार आपने सूत्र रूप में बात बताई वैसे ही उन्होने भी कहा था। यदि कुछ अन्तर था

तो वह केवल वाक्य-रचना का ही। एक विचार, एक आचार और एक उच्चार यह संघीय प्रणाली आप दोनो में शतश चरितार्थ हुई है। इससे मुझे कुतूहल हो रहा था।"

नाना हँस पडे। कहने लगे, "विचारो के सम्बन्ध मे यदि पूछोगे तो देखोगे कि अनेक बार हमारे विचार एक जैसे ही होते हैं। यह पिछले चार-साढे चार वर्षो का हमारा अनुभव है। ऐसा बहुत बार हुआ है कि नथूराम ने कही से अग्र-लेख लिख कर भेजा हो और मैंने उसी तरह का अग्रलेख लिखकर मुद्रित किया हो। और यदि संघ के सम्बन्ध में कहोगे तो 'पतत्वेप कार्यो नमस्ते नमस्ते।' इस प्रतिज्ञा को कृति के साथ कहने वाले स्वयसेवक हम दोनो ही हैं।"

मैं मुस्कुराया।

"गोपाल! मुझे तुमसे एक प्रश्न करना है। मैं समझता हूँ कि प्रश्न करने का मेरा अधिकार भी है।" उत्तेजित से नाना ने कहा।

"नाना! आपका अधिकार न भी हो तो भी आप प्रश्न पूछिये।"

वे बोले, "गधे! मेरा इतना समय क्यो बरबाद किया? तुमने पहले क्यों नही बताया कि इस विषय पर तुम नथूराम से वार्तालाप कर चुके हो।"

"नाना आपको कोई कही की गाडी थोटी पकडनी है जो मेरे वार्तालाप से छूट जाती। फाँसी ही तो चढना है, वह समय टलने नही देंगे। क्यो व्यर्थ में खिन्न होते हैं।"

"गोपाल! तू बहुत बोलने लगा है। पडोस की कोठरी खाली है। जमादार को यदि कह दिया जाय तो वह तुरन्त तुमको वहाँ बन्द कर देगा।"

मैंने कहा, "नाना! यदि कल्पना ही करनी है तो फिर ऐसे ही करेंगे कि आप अपनी कोठी खाली करो मैं उसमें आकर रह लूँगा। आप लोगो का नेतृत्व कर सकेंगे। आप अपने स्वप्नो का हिन्दू राष्ट्र कुछ ही वर्षो में खडा भी कर लेंगे। कम से कम उसकी योजना तो बना ही सकेंगे।"

फाँसी की छाया तले कालकोठरी में हुए गम्भीर सवादो के मध्य कभी-कभी इस प्रकार का उपहास भी हो जाता था, इसको आसानी से सच नही समझा जा सकता। किन्तु उस भूमिका में चलने-फिरने मे मनुष्य अभ्यस्त हो जाता है और रणभूमि पर सैनिकों में जिस प्रकार की एक निश्चिन्तता की वृत्ति दृष्टिगोचर होती है वही यहाँ भी दृष्टिगोचर होती थी। यह मैंने अपने ही नहीं, अपितु अन्य भी अनेकों नेताओं के सम्बन्ध में देखा है।

सौभाग्यवती गंगूताई को नाना ने कहा था, "मनुष्य की अमरता पर यदि तुम्हारी श्रद्धा हो तो फिर समझो कि तुम सौभाग्यवती ही हो। अपने बाह्य

सौभाग्यचिन्हो के साथ ही तुम चल-फिर सकती हो। उससे ही तुम्हें मेरे अस्तित्व का भान होता रहेगा।"

सौ० चम्पूताई रानी लक्ष्मीबाई स्मारक मण्डल मे बालको की शाला में अध्यापिका का कार्य करती है।

मित्रता कितनी दृढ होनी चाहिये ? 'राजद्वारे श्मशाने च' स्थिर रहने वाली मित्रता सच्ची होती है ऐसा सुभाषित है। इसको यदि चरितार्थ में देखना हो तो वह नथूराम और नाना के मध्य टिकी हुई अभग मित्रता को देखा जा सकता है। यह भी सयोग की बात है। विपत्ति समुपस्थित होने पर कौन सहायता के लिये सम्मुख आता है ? इसका उत्तर नाना ने अपनी मित्रता से निभाया है। तुम आगे बढो, मैं तुम्हारा अनुगमन करूँगा ऐसा कह कर पीछे और पीछे की ही ओर खिसकने वाले लोग गाधीजी के सत्याग्रह में भी अनेक हुआ करते थे।

दि० ३१-१-४८ को नाना ने बम्बई से दिल्ली एक तार भेजा था। उसमें नथूराम को अपने बचाव की ओर ध्यान देने के लिये आग्रह किया गया था। वह तार उनके प्रति आरोपित अभियोग मे साक्षी के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता था। किन्तु नाना तो नथूराम के पग पर पग रखने के लिये ही सदा उद्यत रहने वाले व्यक्ति थे और इस प्रकार की उन्होने सिद्धता भी रखी थी। नाना ने वह तार पहले ही लिखकर श्रीमती मनोरमा साळवी के माध्यम से भेजने का प्रबन्ध किया था, ऐसा सुनने में आया था। श्रीमती मनोरमा की गवाही नही हुई थी। क्योकि अभियोजको का कथन था कि वह विरुद्ध जाने वाली अर्थात् होस्टाइल गवाही है।

मैंने १९६१ में अपनी सजा के सम्बन्ध में प्रबन्ध आदि के विषय का एक आवेदन मुद्रित करके सर्वोच्च न्यायालय को भेजा था। परिमाण में वह बहुत बडा हो गया था अत उसके साथ एक समर्पण पत्रिका भी नत्थी कर दी गई थी। आवेदन की क्रम सख्या पिटीशन स० १६, १९६२ थी।

जब उसको ग्रन्थ का रूप दिया गया तो मैंने उसके साथ अपना समर्पण भी प्रस्तुत किया। मैंने उसे नथूराम और नाना को समर्पित किया था। नथूराम के गुणो की प्रशसा तो न्यायालय ने भी की थी। उनके गुणो के लिये उनका और नाना ने जो उनके साथ अन्त तक मित्रता निभाई उनकी इस दृढ मित्रता की भावना के लिये उनको भी मैंने वह समर्पित किया था। उस समर्पण में मैंने लिखा था—

"आदरणीय वन्धु नथूराम को और नथूराम के मित्र नारायण दत्तात्रय आपटे को जिन्होने जिस प्रकार सुख के दिनो में मित्रता निभाई उसी प्रकार दु ख के दिनो मे भी वे उससे विमुख नही हुए, जो अन्त में नथूराम के साथ हाथ में हाथ देकर, कधे से कधा लगाकर ससार की दृष्टि मे सर्वाधिक अमूल्य वस्तु प्राणो का भी उत्सर्ग कर ज्ञात और अज्ञात विश्व को जोडने वाले सेतु पर खडे हुए। जिन्होने नथूराम के साथ मनीषि वकिम के मत्रमुग्ध करने वाले 'वन्दे मातरम्' शब्दोच्चारण के साथ इन चर्मचक्षुओ के दृष्टिमान विश्व से विदा ली,

उनको सादर समर्पित।

* * *

आठ

अभियुक्त विनायक दामोदर सावरकर

गांधी-वध के अभियोग में देहली में विशेष न्यायालय के सम्मुख प्रत्यक्ष में नौ अभियुक्तों को लाया गया था। उन नौ अभियुक्तों में से आठवें अभियुक्त थे स्वातन्त्र्यवीर श्री विनायक दामोदर सावरकर।

किसी अवैधानिक कृत्य को सम्पन्न करने के लिये जब एक से अधिक व्यक्ति उसमें सम्मिलित हो कर गुप्त संकेतों द्वारा कार्य निष्पन्न करने की योजना बनाते हैं उसे षडयन्त्र मान लिया जाता है। वे दो या उससे अधिक व्यक्ति उस षडयन्त्र के घटक माने जाते हैं। अत. षडयन्त्र के एक घटक को जो दण्ड दिया जावेगा अन्य घटक भी उसी दण्ड के पात्र समझे जावेंगे।

इस षडयन्त्र में प्रत्यक्षरूपेण असपृक्त व्यक्ति से भी यदि किसी षडयन्त्रकारी को उन दिनों कोई साहाय्य प्राप्त हुआ हो तो उस व्यक्ति को भी उस षडयन्त्र में सम्मिलित समझा जाता है। वह साहाय्य फिर उस अवैध घटना के समय एवं स्थान पर उपस्थिति का हो, धन आदि का हो, शस्त्र प्रदान का हो अथवा अन्य भी जिस किसी प्रकार का हो, उस सहायक का उस षडयन्त्र में भाग एवं हाथ है ऐसा माना जाता है। किसी व्यक्ति ने उन भावी षडयन्त्रकारियों को यदि किसी प्रकार का आशीर्वाद दिया हो अथवा उनके किसी कार्य के प्रति शुभकामनायें व्यक्त की हों, तो भी वह शुभचिन्तक उस षडयन्त्र का घटक मान लिया जाता है।

किसी को षडयन्त्र का घटक सिद्ध करने के लिये न्यायालय मूलत दो बातों को देखता है। एक तो यह कि किसी द्वारा सम्पन्न किसी अवैध कृत्य का उस दूसरे व्यक्ति को जिसको कि घटक सिद्ध करना है, कार्य सम्पन्न होने से पूर्व उस कृत्य का आभास था और यदि उसको ज्ञान था तो उसके उस

कृत्य को सम्पन्न करने के लिये उसने किसी प्रकार की सहायता प्रदान की थी ? केवल ज्ञान हो किन्तु उस घटना का वह घटक न हो उसको षडयन्त्र का भागीदार नही माना जाता। इसी अभियोग मे इसका उदाहरण है प्राध्यापक जगदीश चन्द्र जैन। उन्होने अपनी साक्षी मे कहा था कि इस षडयन्त्र के सम्बन्ध में मदनलाल ने उनको पूर्व सूचना दी थी। दि० २०-१-४८ को मदनलाल ने गाधीजी की प्रार्थना-सभा में बम का विस्फोट किया यह समाचार उन्होने २१-१-४८ को समाचार-पत्रो में पढा था और वे भी इस सम्बन्ध में मोरारजी देसाई से मिले थे और मदनलाल ने जो कहा था वह उन्हे उन्होने बताया था, ऐसा उन्होंने अपनी साक्षी के समय कहा। किन्तु वह पूर्वज्ञान प्राध्यापक जगदीशचन्द्र जैन को इस षडयन्त्र का घटक सिद्ध करने के लिये अपर्याप्त था।

हम यह कल्पना भी यदि कर लें कि प्राध्यापक जैन ने अपने वक्तव्य के अनुसार मदनलाल ने उनसे जो कुछ कहा था उन्होने वह सब किसी को नही बताया किन्तु पुलिस को किसी प्रकार उस बात का ज्ञान हो गया और फिर प्राध्यापक जैन ने भी उसकी पुष्टि कर दी तो भी इस स्थिति में भी श्री जैन का पूर्वज्ञान उन्हें षडयन्त्र में सम्मिलित करने के लिये पर्याप्त नही समझा जा सकता था। क्योकि उनका इस कृत्य का पूर्व ज्ञान और उस पर भी उनका मौन धारण करना इस घटना की उद्देश्यपूर्ति मे कही भी किसी प्रकार भी सहायक नही सिद्ध किया जा सकता था, उसके लिये कोई प्रमाण भी नही था।

दूसरी बात जो न्यायालय देखता है वह है षडयन्त्रकारियो को सहायता देना। वह सहायता फिर धन की हो, साहित्य की हो, शस्त्रास्त्र की हो अथवा केवल षडयन्त्रकारियो के प्रति शुभकामना मात्र हो। यदि यह सिद्ध भी हो जाय कि षडयन्त्र में सहायता दी गई तो फिर यह भी देखना होता है कि वह सहायता षडयन्त्र के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हुई अथवा नही। यदि छानबीन करने के बाद यह सिद्ध हो जाय कि अमुक व्यक्ति की अमुक प्रकार की सहायता षडयन्त्र के उद्देश्य में सफलता के लिये हुई है तो फिर उस व्यक्ति को भी षडयन्त्रकारी मान लिया जाता है, अन्यथा नही। इस प्रकरण में इसी अभियोग का एक उदाहरण है।

अभियोग के मध्य सरकारी पक्ष की ओर से दो साक्षियो, श्री दीक्षित और श्रीकृष्ण जीवन को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। उन्होने अपनी साक्षी में बताया कि उन्होने नाना आपटे को शस्त्रास्त्र क्रय करने के लिये द्रव्य रूप में सहायता की थी। शस्त्रास्त्र के क्रय के लिये सहायता करना स्वतन्त्र रूप मे एक अवैधानिक कृत्य हो सकता है, किन्तु इस विशिष्ट उद्देश्य के लिये उन्होने सहायता की थी अथवा उनकी सहायता का इसके लिये उपयोग किया गया यह आरोप सिद्ध न हो सकने के कारण उनको षडयन्त्र का घटक अथवा षडयन्त्रकारी नही

माना गया। पूर्व लेख में इसका विस्तार से उल्लेख किया जा चुका है अत. यहाँ संक्षेप में उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया गया है।

दि० २७-५-४८ को पहले-पहल अभियुक्तो को न्यायालय में लाया गया था। उस दिन और उसके एक-दो दिन बाद भी प्रारम्भिक व्यवस्था की दृष्टि से न्यायालय लगा था। अभियुक्तो पर दि० २१-६-४८ को आरोप लगाये गये। पहले दिन ही अभियुक्त क्रमाक ४, दिगम्बर, रामचन्द्र बडगे को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। क्योंकि वह सरकारी गवाह बन गया था अत उसे क्षमा प्रदान की गई तथा अभियुक्तो की सूची में से पृथक् कर दिया गया। परिणामस्वरूप उसके आगे के अभियुक्तो की क्रमसंख्या में भी परिवर्तन हो गया। अब सावरकर-जी अभियुक्त क्रमाक ८ से अभियुक्त क्रमाक ७ हो गये। सरकार की ओर से प्रमुख वकील श्री दफ्तरी ने न्यायालय के सम्मुख अभियोग की रूपरेखा प्रस्तुत की।

(ग्रन्थ ६, पृष्ठ ४६)

श्री सावरकरजी पर लगाये गये आरोप

सावरकरजी के विरुद्ध अभियोजको का जो कहना था वह मुद्रित अभिलेख के भिन्न ग्रन्थों में अलग-अलग आया है। उन सब आरोपो को सक्षेपो मे इस प्रकार कहा जा सकता है —

"नथूराम और नाना आपटे का सावरकरजी से घनिष्ठ परिचय था। नथूराम और नाना आपटे द्वारा सचालित "हिन्दूराष्ट्र" दैनिक मे सावरकरजी और उनकी विचारधारा का चित्रण हुआ करता था। नथूराम और नाना आपटे को सावरकरजी ने आर्थिक सहायता दी थी। नथूराम और नाना आपटे का सावरकर-जी से परस्पर पत्रव्यवहार होता रहता था। गाधी-वध का ज्ञान सावरकरजी को घटना से पूर्व ही था। इस हत्या की पूर्ति मे सावरकरजी ने भी हाथ बटाया था। सावरकरजी के साथ इस घटना मे सम्बन्धित अन्य कुछ अभियुक्तो की भेंट हुई थी। सावरकरजी ने इस षड्यन्त्र के घटको को शुभकामना एव आशीर्वाद प्रदान किया था। अभियुक्तों के दिल्ली पहुँचने पर भी दि० १९-१-४८ को टेली-फोन द्वारा श्री सावरकरजी से सम्पर्क स्थापित करने का यत्न किया गया था।"

अभियोजकों ने इसमें एक और तीखापन भी जोड दिया था। उनका तो यहाँ तक कहना था कि अभियुक्त क्रमाक ७, विनायक दामोदर सावरकर ने ही नथूराम और आपटे के माध्यम से गाधी की हत्या करवाई थी। ये दोनो व्यक्ति सावरकर को गुरु के स्थान पर मानते थे। वे सदा मार्गदर्शक के नाते उनका आदर करते रहते थे। परदे के पीछे रहकर सावरकरजी ने यह सारा कृत्य करवाया था।

अभियोजको ने न्यायालय को वचन दिया था कि वे अपने आरोपो को सप्रमाण सिद्ध करेंगे।

अभियोजको के कथनानुसार यदि आरोप सिद्ध हो जाता तो इस घटना का सम्पूर्ण दायित्व सावरकरजी पर आने वाला था और फिर यह भी निश्चित था कि मृत्युदण्ड के अतिरिक्त इससे कम उनको दण्ड भी नही दिया जाता।

अभियोग सिद्ध करने का कार्य आरम्भ हुआ और सावरकरजी के विरुद्ध एक-एक करके प्रमाण प्रस्तुत किये जाने लगे। कालक्रमानुसार उन प्रमाणो का सम्बन्ध जोडा जाने लगा।

अभियुक्तो के साथ पत्र-व्यवहार

गाधी-वध के ठीक अगले दिन दि० ३१-१-४८ को पुलिस अधिकारी श्री नागरवाला और श्री प्रधान ने सावरकरजी के घर की तलाशी ली। वहाँ से उन्होने पत्र-व्यवहार के कई ढेर और कुछ अन्य कागजात अपने स्वाधीन किये। वह पचनामा प्रमाण क्र० पी० २४४ सज्ञा से न्यायालय में प्रस्तुत है।

(अभिलेख ग्रन्थ ४, पृष्ठ १८२–८४)

पत्र-व्यवहार की १४३ फाइलें थी। उनमे लगभग दस हजार कागजात होगे। इन सबकी छानवीन मे गुप्तचरविभाग को तीन मास लग गये।

उन पत्रो मे नथूराम और आपटे के सम्मिलित तथा अलग-अलग लिखे हुए पत्र भी मिले। वडगे के भी दो-तीन पत्र थे। उन सब पत्रो के ढेर मे से प्रमाण के लिये २०–२५ पत्र न्यायालय में प्रस्तुत किये गये। उनको क्रमाक सख्या २७७ से २९९ दी गई। उनमे सावरकरजी द्वारा लिखित पत्रो का भी निर्देश था।

जब साक्षी से पूछा गया कि नथूराम के लिये कितने पत्र मिले तो उन्होंने बताया कि उनके द्वारा लिखित १०१ पत्र है। क्योकि वे पत्र प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत नही किये गये थे इस लिये न्यायाधीश ने इस प्रश्न एव इसके उत्तर को भी कार्यवाही मे अकित न करने का आदेश दिया।

यद्यपि पत्र-व्यवहार मे किसी प्रकार की कोई भी बात आपत्तिजनक नही थी परन्तु पत्रो के प्रमाणो से सरकारी पक्ष यह सिद्ध करना चाहता था कि १—नथूराम और आपटे की सावरकरजी से घनिष्ठता थी और उसी प्रकार वडगे का भी उनसे परिचय था, २—नथूराम और आपटे सावरकरजी के साथ दौरे पर जाया करते थे और ३—नथूराम और आपटे के केवल वचन-पत्र के आधार पर ही सावरकरजी ने उन्हें १५ हजार रुपये ऋण दिये थे।

इन आरोपो में से किसी एक को भी सावरकरजी ने अस्वीकार नही किया। उन्होंने प्रत्येक बात का स्पष्टीकरण दिया था। वडगे के पत्रो को पी० ८७, ८८ और ८९ क्रमाक दिया गया था। वडगे हिन्दूसभा का कार्यकर्त्ता था। हिन्दूसभा का वह वैतनिक एव अवैतनिक दोनो प्रकार का कार्यकर्ता रहा। वडगे शस्त्र-

भण्डार का सञ्चालन करता था। वडगे का कथन था कि १९४७ तक उस शस्त्र-भण्डार मे ऐसे शस्त्र रखे जाते थे जिन पर लैसेन्स आवश्यक था। वडगे के द्वारा लिखे गये पत्रो मे दो पत्र सन् १९४३ के थे। उन पत्रो मे उसने सावरकरजी को अपने शस्त्र-भण्डार का विवरण प्रस्तुत करते हुए उनसे उसके लिये आर्थिक सहायता का निवेदन किया था।

सावरकरजी ने दि० २०-११-४८ को न्यायालय में अपना वक्तव्य दिया था। वडगे के सम्बन्ध में उन्होने कहा था—

"मै यह प्रचार करता था कि शस्त्रो पर से रोक-प्रणाली को समाप्त किया जाय। शस्त्रो को बेचने और उनके प्रयोग के लिये मुक्तहस्त से लाइसेंस प्रदान किये जायँ और युवको को सैनिक शिक्षा दी जाय। मैं इस प्रकार का प्रचार किया करता था। हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष के नाते शस्त्रवितरण-कार्य का विवरण मेरे पास आया करता था और इसके लिये आर्थिक सहायता की माँग करने मे सम्वन्धित अनेक पत्र मेरे पास आते रहते थे। (ग्रन्थ २, पृष्ठ १९१)

वडगे का तीसरा पत्र दि० २६-३-४७ का था। हिन्दूमहासभा के बम्बई कार्यालय से विभिन्न पुस्तकालयो को पुस्तको की भेंट दी जाया करती थी। वडगे शस्त्र-भण्डार के साथ-साथ एक पुस्तक-भण्डार भी चलाता था। उसकी सहायता के लिये ३६ रुपये के ग्रन्थ और 'तुकाराम गाथा' की दो प्रतियाँ तथा अन्य भी कई ग्रन्थ भेजे गये थे। वडगे का वह पत्र उन ग्रन्थो की साभार पहुँच की सूचना थी। सावरकरजी ने कहा, "अभियोजको के हाथो मे मेरे पत्रो की फाइलें है। उसमें इस प्रकार अनेक प्राप्ति-पत्र प्राप्त होगे। उनमे यह प्रतीत होगा कि यह प्रतिवर्ष सैकडो रुपयो के ग्रन्थ भेंट के रूप मे भेजा करता था। प्रस्तुत अभियोग से सामने लाये गये प्रमाण का तनिक भी सम्वन्ध नही है। पत्र-व्यवहार में आपत्तिजनक कोई वात नही है। यही मेरा कथन है।"

(ग्रन्थ २, पृष्ठ १९१)

सैनिकीकरण हिन्दूमहासभा का प्रमुख कार्यक्रम हुआ करता था। नाना आपटे उन दिनो नगर (अहमदनगर, महाराष्ट्र) में थे। उन्होंने वहाँ सैनिकीकरण और शस्त्रविद्या की शिक्षा का कार्य चलाया था। वे हिन्दूमहासभा के कार्यकर्ता थे। नगर में उस वार हिन्दूमहासभा के वहुसख्या में सदस्य निर्वाचित हो कर आये थे। वह सारा विवरण आपटे ने सावरकरजी को भेजा था। आपटे ने उस समय के गृहमन्त्री की, श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी की, अनुज्ञा से एक "रायफल क्लव" चलाया हुआ था। उन दिनो आपटे की नियुक्ति आनरेरी टेक्नीकल रिक्रूटिंग आफिसर के पद पर थी। आगे चल कर उन्हे हवाई

दल में 'किंग कमीशन' मिला था। आपटे के पत्रों में बहुत करके सैनिकीकरण के कार्य का वृत्तान्त और हिन्दूसभा के कार्य की चर्चा होती थी।

नाना आपटे का प्रमाण में लाया गया पहला पत्र दि० १२-२ ३८ का था। (अभिलेख ग्रन्थ ५, पृष्ठ ९, प्रमाण डी २२) बम्बई के मुख्यमन्त्री श्री खेर और गृहमन्त्री श्री मुन्शी को नगर के जिला अधिकारी के माध्यम से रायफल क्लब के लिये अनुज्ञापत्र देने के लिये प्रार्थना करने का निर्देश उसमें है। आगे के पत्र में आपटे की जिले में संचार करके रायफल क्लब चलाने की माँग की प्रार्थना का निर्देश है। पूना के रायफल क्लब का उद्‌घाटन श्री न० वि० गाडगिल के द्वारा होने की सूचना भी १०-५-३९ के पत्र में है। ग्रन्थ ५, पृष्ठ १२, आगे चल कर इस सम्बन्ध में सावरकरजी से मार्गदर्शन की प्रार्थना की है। 'हिन्दूराष्ट्र' अग्रणी इन वृत्तपत्रों का जब विचार हो रहा था तब के, और यह पत्र लिखने के बाद के अनेक पत्र है।

नथूराम का पहला पत्र दि० २८-२-३८ का है। (ग्रन्थ ५, पृष्ठ १७) उस पत्र में उन्होंने कांग्रेस के ५७ वें अधिवेशन में हुए देशगौरव सुभाषचन्द्र बोस के अध्यक्षीय भाषण की समालोचना की है। जातीय समस्या, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रलिपि के सम्बन्ध में हिन्दुस्थान का दृष्टिकोण समझने के लिये विदेश में प्रचार, आर्थिक और औद्योगिक विकास, सामाजिक समस्या के तत्त्व का स्वीकार, अंग्रेजों से लड़ने के विषय में स्पष्ट चुनौती, राष्ट्रीय स्वयसेवक दल स्थापित करने का महत्त्व आदि प्रश्नों पर अपना मत व्यक्त करते हुए हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष के नाते सावरकरजी को भी क्या-क्या करना अपेक्षित है इस प्रकार का उल्लेख भी उस पत्र में किया गया है।

उसके बाद के अन्य पत्रों में भी हिन्दूमहासभा के कार्य का इतिवृत्त तथा उनसे दौरे पर आने के लिये प्रार्थना आदि बातें लिखी गई है। 'अग्रणी' जो कालान्तर में 'हिन्दूराष्ट्र' नाम से प्रचलित किया गया, के प्रारम्भ करने के उद्देश्य के विषय में भी पत्र लिखे गये। हिन्दू राष्ट्रदल के कार्य का विवरण आदि-आदि विषयों पर पत्र लिखे जाते रहे। इस प्रकार के पत्र सावरकरजी को नाना आपटे और नथूराम गोडसे दोनो ही लिखा करते थे। कभी-कभी दोनो मिल कर भी लिखते थे।

हिन्दूमहासभा के कार्यकर्ताओं में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा सावरकरजी के प्रति अधिक आदर-सम्मान की भावना होती थी। और सावरकरजी भी 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' की नीति के आधार पर निष्ठावान कार्यकर्ताओं के प्रति अधिक प्रेमभाव रखते थे। 'अग्रणी' या 'हिन्दूराष्ट्र' नामक समाचार-पत्र के लिये नथूराम और नाना आपटे के मात्र वचनपत्र के आधार पर सावरकर-

जी ने उनको पन्द्रह हजार रुपये दिये थे। इस दैनिक पत्र की रीति-नीति का सचालन केवल नथूराम और नाना आपटे द्वारा ही हो, इस प्रकार की व्यवस्था अन्य सम्बन्धित व्यक्तियो से कर लेनी चाहिये इस विषय मे उन्होने एक पत्र द्वारा उनको सूचित किया था। (पत्र दि० ४-४-४५, प्रमाण पी० ३०२, अभिलेख ग्रन्थ ४, पृष्ठ २२४)। इनमें से किसी एक बात को भी अस्वीकार करने की आवश्यकता सावरकरजी ने नही समझी और न ही उनको इन बातो को स्वीकार करने में किसी प्रकार के भय की प्रतीति होती थी। उन्होने अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा —

"हिन्दूमहासभा के अनेक कार्यकर्ता होते थे। नथूराम और नाना आपटे भी उनमें से ही थे। कार्यकर्ता के नाते मेरा और उनका परस्पर अच्छा परिचय था। मैंने उनके दैनिक पत्र को आर्थिक सहायता भी दी थी। न केवल उनको ही मैंने विक्रम और श्री हिन्दुस्थान आदि अन्य समाचार-पत्रो को भी सहायता दी थी। नथूराम द्वारा लिखे गये पत्रो में इसका उल्लेख प्राप्त हो सकता है। दौरे पर जाने पर मेरे साथ अनेक लोग हुआ करते थे, उनमें से ये दो व्यक्ति भी होते थे। दैनिक पत्र की रीति-नीति निश्चित करने के विषय में यह बात उन्ही दोनो के मन की थी। आपटे अथवा नथूराम से मेरा किसी प्रकार का अवैध सम्बन्ध था, इस प्रकार का प्रमाण आपको किसी भी पत्र में प्राप्त नही होगा।"

दैनिक पत्र के शीर्ष पर प्रकाशित होने वाला चित्र

'अग्रणी' या 'हिन्दूराष्ट्र' दैनिक पत्र के प्रथम पृष्ठ के शीर्ष पर सावरकरजी का चित्र प्रकाशित हुआ करता था। अभियोजको ने इस बात का विशेष उल्लेख किया था। उनका कहना था कि इस चित्र को देखकर यह स्पष्ट होता है कि 'अग्रणी' की नीति से सावरकरजी की सहमति थी। सावरकरजी ने कहा, "समाचार-पत्रो में इस प्रकार के चित्र प्रकाशित करने की इस देश में सामान्य प्रथा-सी बन गई है। अनेक समाचार-पत्रो पर गाधीजी का चित्र प्रकाशित हुआ करता था। ऐसे पत्रो पर भी उनका चित्र प्रकाशित होता था जिनको कभी गाधीजी ने पढा तो क्या, देखा भी नही होगा। पूना के सुविख्यात समाचार-पत्र 'केसरी' पर लोकमान्य तिलक का चित्र होता है। परन्तु उस पत्र की आज की नीति के लिए स्वर्गीय लोकमान्यजी की आत्मा उत्तरदायी है, ऐसा तो कोई अध्यात्मवादी भी आज किसी न्यायालय में ऐसा कहने का दुस्साहस नही करेगा। वास्तव में और न्याय की दृष्टि से भी नेताओ के चित्र प्रकाशित करने के लिए समाचार-पत्र का सम्पादक ही उत्तरदायी माना जाना चाहिये। जिन नेताओ का चित्र समाचार-पत्र के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित होता है उन्हें उसकी नीति के लिए उत्तरदायी नही माना जाना चाहिए।"

अभियोजको का आरोप था कि नाना आपटे और नथूराम दोनो ही सावरकर-जी को अपना गुरु मानते थे, अतः गाधी-वध करने से पूर्व उन्होंने उनके साथ विचार-विनिमय अवश्य ही किया होगा, इसके उत्तर में सावरकरजी ने कहा, "अनेक अभियुक्त जिनको दण्ड प्राप्त हो चुका होता है, किसी न किसी धर्मोपदेशक के अनुयायी कहलाते हैं। किन्तु अपराध करने से पूर्व उन्होंने अपने गुरु से परामर्श किया होगा, इस प्रकार का अभिप्राय निकालना क्या उचित एंव उपयुक्त है ? गाधीजी पर श्रद्धा रखने वाले अनेक व्यक्तियो ने जिन्हें उनका शिष्य कहा जाता था १९४२ मे गुप्तरूपेण अत्याचार किया था। विदेशी राज के विरोध के लिए इस प्रकार का शस्त्राचार उचित था अथवा अनुचित यह इस समय विचारणीय नही है। किन्तु केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गाधीजी ने इस प्रकार के शस्त्र-प्रयोग का निषेध किया था। किन्तु गाधीजी के उन शिष्यो के मार्गदर्शन मे लोगो ने विप्लव किया, रक्तपात किया और ऐसा करते हुए वे लोग महात्मा गाधी की जय के नारे भी लगाते रहते थे। वे लोग जो गाधीजी के प्रति आदर व्यक्त करते हैं और अपना कार्य करते समय गाधीजी की जय भी बोलते है, अत इसका अभिप्राय यह हुआ कि उन्होने विदेशी घात-पात और लूटपाट करने के लिए गाधीजी से परामर्श किया ही होगा, ऐसा आरोप तो ब्रिटिश सरकार ने भी नही लगाया था। अभियोजको के प्रमाण—'ऐसा हुआ होगा' अथवा 'ऐसा होना सम्भव है'—इस प्रकार के सन्देहास्पद निष्कर्षो पर आधारित है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यो-ज्यो ठोस और प्रत्यक्ष प्रमाण मिलने असमर्थ होते गये त्यो-त्यो अभियोजक विवश असम्बद्ध एव असगत तर्को का आश्रय लेने लगे। इसको प्रतिष्ठा का प्रश्न समझ कर उसकी सुरक्षा के लिए वे इस प्रकार के अनुपयुक्त एव तर्कहीन प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए उद्यत हुए है।"

मदनलाल की प्रशसा

अभियोजक चाहते थे कि प्रो० जगदीशचन्द्र जैन, श्री मोरारजी देसाई और अगद सिंह के कथन का एक भाग पार्श्वभूमि के रूप में श्री सावरकरजी के विरुद्ध प्रयुक्त किया जाय। डॉ० जैन का कथन था कि दिल्ली आने के एक-दो दिन बाद मदनलाल उनसे मिला था। इस प्रकार की एक भेंट के अवसर पर अगद सिंह थोडे समय के लिए उनके समक्ष उपस्थित था। तब मदनलाल ने जो कुछ कहा था उसका साराश डॉ० जैन ने बताया था। मदनलाल ने अहमद-नगर में निर्वासितों के पुनर्वास की व्यवस्था के लिए एक सघ की स्थापना कर ली थी। करकरे उनको आर्थिक सहायता दिया करते थे। उस सघ ने अनेक शस्त्रास्त्र एव विस्फोटक पदार्थ एकत्रित कर लिये थे। यह सब सामग्री को एक

वन में छिपा कर रखा गया था। हिन्दूमहासभा के अध्यक्ष वीर सावरकरजी को जब मदनलाल के क्रिया-कलाप का ज्ञान हुआ तो उन्होंने उसको अपने पास बुलवाया और उससे एक-दो घंटे तक चर्चा की। उन्होंने उसकी पीठ थपथपाई थी और 'चलने दो' इस प्रकार का उसको प्रोत्साहन प्रदान किया था। मदनलाल ने कहा था कि उन्होंने एक नेता को मारने का निश्चय किया है।

अगदसिंह बीच में ही आ गये थे। 'अहमदनगर के निर्वासितो के पुनर्वास की व्यवस्था के लिए हमने एक संघ स्थापित किया है,' इस कथन के पूर्व ही वह वहाँ से चले गये थे ऐसा श्री जैन का कथन था। अगदसिंह के कथनानुसार वह जब श्री जैन से पुन मिले तो उन्होंने उनको मदनलाल द्वारा बताई गई बात को बताया था।

श्री जैन ने बम्बई के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट श्री आस्कर ब्राउन के समक्ष दि० २६-२-४८ को बयान दिया था। जब उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछा गया तो श्री जैन ने कहा, "मैंने उस बयान में ऐसा नहीं कहा था कि मदनलाल ने उनसे कहा था कि उसने लोगो से शस्त्र एकत्रित कर जगल मे छिपा कर रखे हैं और वीर सावरकर ने उसको बुलाकर प्रोत्साहित करते हुए उसकी पीठ थपथपाई थी।" उनका कहना था कि उन्होंने उस वक्तव्य में अगदसिंह का भी उल्लेख नही किया था। (ग्रन्थ १, पृष्ठ १३३)

श्री जैन ने अपने बयान मे कहा था कि मदनलाल की बात को उन्होंने दि० २१-१-४८ को श्री मोरारजी देसाई के समक्ष रखा था श्री मोरारजी देसाई ने अपने बयान में इसका उल्लेख किया था। यदि उन दोनो के कथन से सावरकरजी का सम्बन्ध हो सकता है तो केवल यही कि उसने जब अहमदनगर में पुनर्वास शिविर की स्थापना का उल्लेख किया होगा तो उसके लिये उन्होंने उसकी पीठ थपथपाई होगी। किन्तु अगदसिंह को अपनी साक्षी में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता आ पडी होगी। अंगदसिंह का कहना था कि मदनलाल ने श्री जैन को कहा था कि इस षडयन्त्र की पृष्ठभूमि में सावरकरजी हैं और यह बात श्री जैन ने उनको बताई थी। (ग्रंथ १, पृष्ठ १४८)

सावरकरजी ने न्यायालय के सम्मुख यह सिद्ध किया था कि यह साक्षी सार-हीन एव अविश्वसनीय है। उनके कथन का साराश निम्न प्रकार है —

"मूलत इन तीनो साक्षियो में से एक ने भी अपने-अपने बयान तथा पर-स्पर एक-दूसरे की बातो को कही भी कलमबन्द कर सुरक्षित नही रखा था और मोरारजी देसाई ने भी स्वीकार किया है कि उन्होंने भी कभा इस प्रकार की किसी बात को लिखित रूप में अंकित कर सुरक्षित रखा हो। स्मृति 'सील' प्राणी

जैसे फिसलती है। मनुष्यस्वभाव विस्मरणशील है, तथा सुनी-सुनाई बात कितनी विकृत हो जाती है यह अगदसिंह की साक्षी से स्पष्ट परिलक्षित होता है। सम्भावना यही है कि श्री जैन और मदनलाल मे परस्पर लेन-देन का सम्बन्ध होने के कारण कही भविष्य में मदनलाल से उनका सामीप्य सिद्ध न हो जाय इस भय से बचने के लिये श्री जैन तुरन्त गृहमन्त्री के पास गये होगे क्योकि उस दिन के समाचार-पत्रो में इस प्रकार का समाचार प्रकाशित हुआ था कि यह कोई षडयन्त्र होगा। श्री जैन ने इस अवसर से लाभ उठाने के लिये और स्वय को निर्दोष सिद्ध करने की दृष्टि से यह कथा रची होगी। मदनलाल से षडयन्त्रकारियो के नाम जानने की शायद उनको आवश्यकता नही पड़ी होगी। अन्यथा वे उनका भी नामोल्लेख करते जो कि वे कर नही सके। एक बात और, जिस समय मदनलाल षडयन्त्र के बारे में बताते है ठीक उसी समय अगदसिंह कैसे अनुपस्थित हो जाते है।

"श्री जैन ने जब मजिस्ट्रेट के समक्ष अपना बयान दिया तो उस समय उन्होंने मेरी और मदनलाल की भेंट का कोई उल्लेख नही किया। जब उनसे इसके विषय मे पूछा गया तो वे कहने लगे कि मैंने पुलिसवालो को और गृहमन्त्री को इसके विषय में बता दिया था, किन्तु उन दोनो में से किसी ने भी उनकी बात को कलमबन्द करके सुरक्षित नही रखा। इसके अतिरिक्त अन्य साधारण बातो का श्री जैन ने मजिस्ट्रेट के सम्मुख उल्लेख किया था।

"यदि समझ लें कि मदनलाल ने जैन के सम्मुख कुछ बताया होगा तो मदनलाल से मेरा सम्बन्ध नगर की हलचल से उन्होंने जोड लिया। किन्तु उस प्रमाण की पुष्टि करने में वे असमर्थ रहे है। मदनलाल का कहना है कि ऐसी कोई बात कभी नही हुई है। अत. मेरा कथन है कि प्राध्यापक जैन से मन्त्रियो तक की सारी साक्षी असपुष्टित, अविश्वसनीय एव सुनी-सुनाई मानकर उसको रद्दी की टोकरी में डाल देना चाहिये।"

नथूराम, आपटे की सावरकरसदन को भेंट, दि० १४-१-४८

दि० १४-१-४८ को नथूराम और आपटे की सावरकरसदन में हुई भेंट का विवरण बाद में प्रस्तुत किया गया। दि० १४-१-४८ को नथूराम और नाना आपटे दोपहर की गाडी से पूना से बम्बई आये थे। जिस गाडी से वे लोग आये थे उसी गाडी में श्रीमती शान्ता मोडक भी थी। दि० ३-८-४८ को उनकी साक्षी हुई। उन्होंने कहा, "मेरा टिकट दूसरी श्रेणी का था। डिब्बे में चढकर मैं खिडकी के समीप की जगह खोजने लगी। किसी ने मुझसे पूछा, "आप क्या खोज रही है ?" उन्होंने पूछा। "खिडकी के समीप स्थान।" मैंने उत्तर दिया। तो वे सज्जन बोले, "लीजिये, आप इस मेरे स्थान पर ही बैठ जाइये। ठीक

रहेगा ?" इतना कहते हुए वे उठ खड़े हुए। मैं उस स्थान पर जाकर बैठ गई। मेरे सामनेवाला स्थान खाली था, वे सज्जन उस स्थान पर जाकर बैठ गये। गाड़ी चलने ही वाली थी कि इतने में एक अन्य सज्जन आ गये। वे उस पहले वाले सज्जन के पास में आकर बैठ गये। मुझे ऐसा लगा कि दोनो का कुछ पूर्व परिचय-सा था।" श्रीमती शान्ता मोडक ने पहचान के अवसर पर नाना आपटे को पहला सज्जन और नथूराम को दूसरा सज्जन बताया। आगे उन्होने बताया—

"जिन्होने स्थान दिया उन्होने मुझसे पूछा, "आप विंवा तो नही ?" मैंने स्वीकृति में सिर हिलाया। यह मेरा रजतपट पर कार्य करने का नाम था। अपने बातचीत के दौरान मैंने इतना और बताया था कि मुझे दादर उतरना है। इस बीच और कोई बातचीत नही हुई। जब दादर समीप आने लगा तो उन्होने मेरा पता पूछा। मैंने "शिवाजी उद्यान" बता दिया। वे बोले, यदि आप अकेली ही जाने वाली हो तो हम आपको वहाँ तक छोड देंगे। उनके बोलने से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वे सावरकरसदन में जाने वाले हैं। मैंनें कहा कि, मुझे लेने के लिये मेरा भाई स्टेशन पर आनेवाला है, यदि वह नही आया तो मैं आपके साथ चलूँगी।

"हम दादर पहुँचे। मुझे लेने के लिए मेरा भाई आया हुआ था। उसके पास जीप थी। तब मैंने उन दोनो को कहा कि, मैं ही आपको शिवाजी उद्यान पर छोड दूँगी। उन्होने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मेरा घर और सावरकरसदन एक ही मार्ग पर तथा सडक के एक ही ओर है। पहले हमारा घर आता है, उसके बाद सावरकरसदन। हमने सावरकरसदन के पास गाडी रोक दी, वे दोनो जब उतर गये तो हमने गाडी घुमा ली।"

प्रतिप्रश्न करने पर श्रीमती शान्ता मोडक ने कहा, "मैंने उन्हें सावरकर-सदन में प्रविष्ट होते हुए देखा नही था।" (ग्रथ १, पृ० १२२-१२४)

सावरकर सदन में नीचे की मजिल पर श्री अ० स० भिडे रहते थे। सावरकर जी के कार्यवाह श्री दामले और श्री अप्पा कासार भी नीचे की मजिल पर ही रहा करते थे। उस मजिल का बीच का भाग हिन्दूमहासभा के कार्यकर्ताओ के लिये कार्यालय के रुप मे था। सावरकर पहली मजिल पर रहते थे। सावरकर-सदन में या कार्यालय में आने वाले लोग सावरकरजी के यहाँ जाते ही थे ऐसा कोई नियम नही था। ये सब बातें प्रमाण में आई थीं।

नथूराम और आपटे सावरकरजी के यहाँ जानेवाले थे, ऐसा कोई आभास उन्होने दिया हो यह भी शान्ता मोडक ने अपनी गवाही में नही कहा था। साक्षी ने यह कहा कि उसने उन्हें सावरकरसदन में प्रविष्ट होते हुए नही देखा था। यदि सावरकरसदन में जाते हुए देखा भी होता तो भी वे सावरकर-

जी के ही पास गये थे अथवा जानेवाले थे ऐसा भी सिद्ध नही हो सकता था। वे लोग सावरकरजी के यहाँ गये इतना कहने मात्र से ही सावरकरजी को उस षड्यन्त्र में गूँथना अयुक्तिक था। किन्तु यहाँ पर तो इसी साक्षी की ओर से भी यह प्रश्न उपस्थित नही किया गया था। सावरकरसदन की ओर उसकी निचली मंजिल की अवस्था क्या थी इसका निर्देश सावरकरजी ने किया था और इस गवाही का कोई भी सम्बन्ध इस बात से नही आता, ऐसा न्यायालय का कथन था। (ग्रन्थ २, पृष्ठ १९१)

वड़गे का वक्तव्य

क्षमा के साक्षी वडगे की गवाही का कुछ अंश सावरकरजी पर लागू होता था। ऐसी बातो को कहनेवाले की ध्वनि भी किसी और शक्ति से ही आया करती है। वडगे और सावरकरजी का परस्पर परिचय था। अपनी गवाही में यह सिद्ध करने के लिये वडगे ने पार्श्वभूमि के रूप में प्राथमिक वक्तव्य-सा दिया। उसने अपने वक्तव्य में कहा, "१९४४-४५ में गवालिया टैंक पर सावरकरजी का भाषण हुआ। उसके बाद ३०-४० व्यक्ति उन्हें मिलने के लिये उनके घर गये थे। मैं भी उनमें से एक था। वहाँ एक अनौपचारिक सभा हुई, उसमें भी सावरकर-जी ने भाषण दिया। उसके बाद मेरा परिचय कराते हुए मुझे शस्त्रभण्डार का स्वामी बताया गया और साथ ही उन्होने एक प्रकार से सन्तोष व्यक्त करते हुए यह भी कहा कि मैं वहाँ पर अच्छा कार्य कर रहा हूँ। अन्त में उन्होंने कहा कि मैंने इनको वही कार्य करते रहने का परामर्श दिया है।

"हिन्दूमहासभा शस्त्रो पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिये प्रयत्न किया करती थी। वडगे जो शस्त्र बेचता था उनकी गणना निर्बन्धित शस्त्रों में आती थी। वडगे का मैंने उस प्रकार परिचय करा दिया था और मैंने उसके लिये प्रशंसोद्गार प्रकट किये थे यह यदि मान भी लें तो इसमें आक्षेप के योग्य तो कुछ भी नही है" ऐसा वीर सावरकरजी का कथन था।

वडगे ने १९४६ के अन्त अथवा १९४७ के प्रारम्भ की किसी अनौपचारिक बैठक का उल्लेख किया था उसके कथनानुसार उस बैठक में सावरकरजी ने कहा था, "कांग्रेस की नीति हिन्दुओ के लिये हानिकारक है। मुसलमानो का आर्थिक बहिष्कार करना चाहिये और यदि उन्होने हम पर आक्रमण किया तो हिन्दुओ को उसके प्रतिकार की सिद्धता रखनी चाहिये। इसलिये हिन्दुओ को शस्त्र-विद्या सीखनी चाहिये।"

इस विषय में सावरकरजी का कहना था कि ऐसी कोई भी बैठक मेरे घर पर नही हुई थी और यदि हुई भी हो तो वड़गे के कथन में कोई ऐसी बात

नही है जिसके शब्दो को आपत्तिजनक सिद्ध किया जा सके। प्रस्तुत तथाकथित षडयन्त्र से उस बैठक का कोई सम्बन्ध भी नही प्रतीत होता।

किसी समय श्री परमेकर, श्री वखले, डॉ० मुजे, वीर सावरकर आदि का एक सामूहिक चित्र खिचवाया गया था। उसमें वडगे भी था, ऐसा उसका कहना था। यह प्रमाण भी निरर्थक एव असम्बद्ध होने से निकाल देना चाहिये ऐसा सावरकरजी का कथन था।

पुन सावरकरसदन, बड़गे की गवाही

इस पार्श्वभूमि के उपरान्त वडगे ने क्रम-क्रम से सावरकरजी के विषय में बताना आरम्भ किया। उसने कहा, "दि० १४-१-४८ की रात को ९ वजे के आसपास नथूराम, आपटे और मैं, अर्थात् वडगे सावरकरसदन की ओर निकले। वहाँ पहुँचने पर आपटे ने मुझसे शस्त्रास्त्रो की थैली ली और मुझे बाहर ही ठहरने के लिये कहा। आपटे और गोडसे भीतर गये। पाँच-दस मिनट बाद ही वे लोग वापस आ गये। बाहर आने पर वह थैली आपटे के हाथ में ही थी।"

इसके प्रतिवाद में सावरकरजी का कहना था, "सावरकरसदन में जाने का अभिप्राय सावरकर के यहाँ जाना नही होता और वडगे यह भी नही कहता कि उसने वह शस्त्रो की थैली सावरकरसदन में रखी थी। वडगे का कहना है कि वह थैली दीक्षितजी महाराज के यहाँ रक्खी गई। फिर नथूराम और आपटे इस भेंट से इनकार करते हैं। इस घटना का कोई सबध दीखता नही है। प्रमाण की दृष्टि से 'वडगे और थैली' इस काल्पनिक कथा का कुछ भी मूल्य नही है।"

वडगे का आगे का कथन इस प्रकार था, "आपटे, गोडसे और मैं दीक्षितजी महाराज के घर से बाहर निकले और आँगन में खडे रहे। १५-१-४८ को आपटे ने मुझसे कहा कि मैं उनके साथ दिल्ली चलूँ। मैंने कार्य के विषय में पूछा तो आपटे ने कहा कि सावरकरजी ने तय किया है कि गाधी, नेहरु और सोहरावर्दी को समाप्त किया जाय, और यह कार्य उन्होने हमारे अर्थात् गोडसे एव आपटे के ऊपर छोडा है।"

इसके उत्तर में सावरकरजी ने कहा, "वडगे ने यह नही कहा कि आपटे अथवा नथूराम को ऐसा कहते हुए मैंने सुना। उसका कथन सुनी-सुनाई बात पर है। मान लीजिये कि यदि आपटे ने वडगे को ऐसा कहा भी हो तो उसने सच ही कहा है इसका क्या प्रमाण। आपटे और गोडसे इस घटना को भी स्वीकार नही करते। पुलिस के दबाव में आकर वडगे इस प्रकार की गवाही दे रहा होगा। इस घटना की कही से भी संपुष्टि नही होती।"

'यशस्वी होकर आइये'

इसके बाद के एक प्रसग का उल्लेख करते हुए बडगे ने कहा, "गोडसे, आपटे और मैं तथा शकर किस्तैया एक दिन टैक्सी मे घूम रहे थे कि नथूराम ने कहा 'हमें सावरकरजी के अन्तिम दर्शन कर लेने चाहिये।" उसके कहने पर हम सावरकर-सदन गये। शकर को आंगन के बाहर ठहरने के लिये कहा गया। हम तीनो सावरकरसदन मे गये। आपटे ने मुझसे निचली मजिल पर ही ठहरने के लिये कहा। गोडसे और आपटे ऊपर गये। पाँच-दस मिनट में ही वे वापस नीचे आ गये। उनके पीछे तुरन्त ही तात्याराव आये। वह बोले, "यशस्वी होकर आइये"। यह शब्द उन्होने आपटे और गोडसे के लिये कहे थे। इसके बाद हम बाहर आ गये। बाहर आकर हम चारो टैक्सी में बैठे और रुइया कॉलिज की ओर निकले। टैक्सी में आपटे ने मुझसे कहा, "तात्याराव का कहना है कि गाधीजी के सौ वर्ष पूरे हो चुके है, अपना काम यशस्वी रूप से पूर्ण होगा इसमे सन्देह नही। इसके बाद हम अफजलपुरकर के घर की ओर चले गये। यह घटना दि० १७-१-१९४८ की है।

सावरकरजी ने इस प्रसग को अस्वीकार करते हुए कहा, "आपटे और गोडसे मुझसे नही मिले थे। 'यशस्वी होकर आइये,' ऐसा मैंने किसी से नही कहा। गाधीजी की आयु सौ वर्ष की पूरी हो चुकी है इस प्रकार को भविष्यवाणी भी मैंने नही की। बडगे के कथनानुसार आपटे, गोडसे और बडगे मेरे पास मिलने के लिए आये थे यदि इसे मान भी लिया जाय तो भी वह आगे यह कहता है कि गोडसे और आपटे मुझसे मिलने ऊपर आये थे। वे मुझसे मिलने आये थे या घर में किसी अन्य से मिलने के लिए आये थे यह समझना उसके लिए सम्भव नही है। यदि यह भी मान लिया जाय कि वे लोग मेरे पास आये थे तो भी हमने परस्पर क्या वार्त्तालाप किया यह तो वह जान नही सकता। अत उन लोगो ने मुझसे षडयन्त्र के विषय में बात की थी ऐसा बड़गे के वक्तव्य के आधार पर यह मान लेना न्यायोचित नही होगा। उस दिन आपटे और गोडसे बहुत स्थानो पर गये और अनेक लोगो से बोले, हैदराबाद राज्य का आन्दोलन तथा 'हिन्दूराष्ट्र' के प्रकाशन के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत लोगो से वार्तालाप किया तथा पैसा एकत्रित किया ऐसा अभियोजको का कथन है। किन्तु मेरे साथ वे केवल षडयन्त्र के विषय में ही बोले ऐसा आरोप लगाना क्या न्यायोचित होगा? यदि बडगे का यह कथन मान लिया जाय कि मैंने उन्हें 'यशस्वी होकर आइये' ऐसा कहा भी तो यह कथन किसी अन्य कार्य के लिए क्यो नही हो सकता? गाधीजी के सौ वर्ष पूरे हो चुके है मेरा यह कथन बडगे ने स्वय सुना ऐसा वह नही कहता। उसका कहना है कि यह उसको आपटे ने कहा है, अत. उसके लिये मैं किस प्रकार

उत्तरदायी हो सकता हूँ ? फिर भी आपटे और गोडसे इस घटना को भी अस्वीकार करते हैं।

टैक्सी ड्राइवर की गवाही

बम्बई के एक टैक्सी ड्राइवर का नाम ऐतप्पा कोटियन था, जिसकी टैक्सी एक दिन सावरकरसदन के आसपास चक्कर काटती रही। बडगे, शकर किस्तैया, नथूराम और आपटे उसमें बैठकर सावरकरसदन गये थे, ऐसा अभियोजको का आरोप था। साक्षी के कथनानुसार उसकी गाडी शिवाजी उद्यान के एक ओर खडी की गई, चारो सवारियाँ नीचे उतर गईं, वे लोग कोने के दाईं ओर को मुड कर दूसरे घर तक गये इतना ही उस ड्राइवर ऐतप्पा को दिखाई दिया था।

उसकी गवाही से यह किंचित् भी आभास नही मिलता कि जिस घर में। उसकी टैक्सी की सवारियाँ गई हैं उस घर का नाम सावरकरसदन था और साक्षी को उसका ठिकाना ज्ञात है, वे लोग उतर कर कहाँ गये इसका उसको तनिक भी ज्ञान नहीं। वह ऐसा भी नही कहता कि वे लोग उतरकर उस दूसरे घर में गये थे। उसका कहना है कि वे लोग पाँच मिनट मे ही वापस आ गये थे। किन्तु बडगे की गवाही के आधार पर टैक्सी से घर तक जाने के पाँच मिनट और फिर घर के भीतर ऊपर की मजिल में जाने-आने में पाँच-दस मिनट तथा पाँच मिनट वापस टैक्सी पर पहुँचने में, इस प्रकार बीस-पचीस मिनट का समय लगता है। दोनों साक्षियो के कथन में इस प्रकार की विसगति का का ध्यान सावरकरजी ने न्यायालय को दिलाया। आपटे और गोडसे ने इस प्रसग को, बडगे की कल्पना, कह ही दिया था। न्यायमूर्ति के पूछने पर शकर किस्तैया ने कहा था कि शिवाजी उद्यान तक वह उन लोगों के साथ टैक्सी में गया था। किन्तु आपटे, बडगे और नथूराम टैक्सी से उतर कर कहीं गये थे, वह स्वय टैक्सी में ही बैठा रहा। सावरकरसदन का तो उसने नाम तक नहीं सुना था। वस्तुस्थिति से इसकी भी विसगति की ओर सावरकरजी ने ध्यान आकर्षित किया।

सावरकरजी द्वारा गाधीजी की आयु के विषय में की गई भविष्यवाणी की शकर किस्तैया की गवाही में पुष्टि होनी चाहिये थी, क्योकि बडगे के कथनानुसार आपटे ने उसको यह बात टैक्सी में बैठने के बाद बताई थी। न्यायमूर्ति के पूछने पर शंकर किस्तैया ने कहा, 'मैं ड्राइवर के पास बैठा था। शेष तीनो पिछली सीट पर बैठे थे। वे मराठी और अग्रेजी दोनो भाषाओ में बोलते थे। मुझे न तो उनका बोलना साफ-साफ सुनाई देता था और न ही मेरी समझ में आता था।''

वडगे के कथन की दोनो गवाहियो में से किसी एक ने भी पुष्टि नही की। सावरकरजी ने न्यायमूर्ति के ध्यान में यह वैठा दिया कि उसकी वात को सीधे ही काटा जा सकता है ।

मैं सावरकरजी की आज्ञा से षडयन्त्र मे गया —वड़गे

मैं सावरकरजी का एकनिष्ठ अनुचर था अत. सावरकरजी के विषय में कहा गया मेरा कथन प्रामाणिक होना चाहिये, इस वात को सिद्ध करने के लिए वडगे ने एक अन्य वक्तव्य दिया। वडगे स्वय इस षडयन्त्र में क्यो सम्मिलित हुआ इसके विषय में बताते हुए उसने कहा कि गोडसे और आपटे ने अनेक वार उसकी आर्थिक सहायता की थी। उनका आभारी होने के कारण वह सदैव ही उनके कथनानुसार कार्य करता था। अत नथूराम और आपटे के कहने पर ही वह गाधीजी तथा अन्यो को मारने के लिये उनके साथ दिल्ली गया था। इस पर भी इस काम को करने की सावरकरजी की आज्ञा थी इस प्रकार की कल्पना भी आपटे ने उसको करा दी थी। इसलिए उनकी अर्थात् सावरकरजी की आज्ञा का पालन करना वह अपना कर्तव्य समझ उनके साथ गया था।

इस प्रकार इस षडयन्त्र से सावरकरजी का सम्बन्ध जोडने के लिये वडगे का उपरिलिखित कथन सर्वोच्च स्थान रखता था। सावरकरजी की आज्ञा है ऐसा यदि उसको नहीं कहा जाता तो वह इस षडयन्त्र में सम्मिलित नही होता। न केवल इतना, नथूराम और आपटे भी इस दुष्कर कार्य को अपने कधे पर नहीं ले सकते थे। इस प्रकार की भावना वड़गे के इस कथन से परिलक्षित होती है।

यह प्रमाण भी सुनी-सुनाई वातो पर आधारित होने के कारण उसका उत्तर देने के लिये सावरकरजी को कोई विशेष श्रम करने की आवश्यकता अनुभव नही हुई। वडगे के इस कथन के लिये किसी प्रकार की स्वतन्त्र पुष्टि नही थी। सावरकरजी ने कहा, "वडगे जैसा साहसी, धैर्यवान, सुपरिचित व्यक्ति मनुष्य के सहज स्वभाव के अनुसार स्वय मुझसे ही उस आज्ञा के सम्बन्ध में पूछ सकता था। 'यशस्वी होकर आइये' ऐसा मैंने कहा यह उसने सुना और देखा ऐसा उसका कथन है। आपटे और गोडसे समीप ही थे। उससे भी अधिक वह मुझसे स्वय पूछ सकता था, 'यह आज्ञा आपकी ही की है न?' परतु वडगे ने ऐसा नही किया। यदि वडगे स्वय को इतना एकनिष्ठ आज्ञाकारी मानता है तो वह २० जनवरी को गाधीजी पर सामने से हमला करना छोडकर अपनी जान वचाने के लिये क्यो भाग गया हुआ? मैं समझता हूँ कि यदि वडगे दिल्ली गया भी होगा तो उसका एकमात्र उद्देश्य यही रहा होगा कि किसी प्रकार निर्वासितो को अपने अवैध अस्त्र वेचकर अधिक धन कमाने की इच्छा से ही गया होगा।"

वडगे की उच्चता

वडगे की गवाही के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर सावरकरजी ने उसके चरित्र एवं व्यवहार का न्यायालय के सम्मुख प्रत्यक्षीकरण करते हुए कहा कि वडगे कहता है—"मैं विना लाइसेंस के वम तथा पिस्तौल आदि वेचता था। मैंने खरात के घर में शस्त्रास्त्र का थैला रखा था, क्योकि अगर मैं पकडा जाऊँ तो शस्त्रास्त्र मेरे पास न मिलें यह मेरा हेतु था। दिल्ली में ड्राइवर की जानकारी के बिना मैंने दोनो पिस्तौल टैक्सी में रक्खी क्योकि यदि वे पकडी जाती तो टैक्सीवाला सकट में पड जाता और मैं वच जाता। मैं विना टिकट यात्रा करता था और कर्मचारियो को रिश्वत देता था। मैं पैसा चाहता था। मैं चाहता था कि मुझसे पिस्तौल लेकर दीक्षितजी महाराज मुझे कम से कम ३५० रुपये दें। इसलिये वह पिस्तौल मुझे वदले में मिलने पर भी उसे मैंने खरीद लिया है ऐसा मैंने उनसे झूठ ही कहा था।" यह सब वडगे ने अपनी गवाही में विभिन्न अवसरो पर कहा था।

परस्थ दूरध्वनि (ट्रक कॉल)

दि० १९-१-४८ को प्रात काल ९-२० पर दिल्ली के टेलीफोन न० ८०२४ से वम्वई के टेलिफोन न० ६०२१० पर एक ट्रक कॉल वुक कराई गई। दिल्ली का नम्वर हिन्दूमहासभा भवन का है और वम्वई का सावरकरसदन का। अभियोजको की ओर से यह आरोप लगाया गया था। उनका कथन था कि ट्रक कॉल वैयक्तिक था ऐसा उनके कागज-पत्रो से विदित होता था। नथूराम, आपटे, करकरे, मदनलाल, वडगे और शंकर ये लोग दिल्ली में थे और हिन्दूमहासभा भवन में ठहरे थे, यह अभियोजक पहले ही कह चुके थे। अभियोजको का कथन था कि वह ट्रक कॉल कासार या दामले के नाम से था। कासार सावरकरजी के अगरक्षक का नाम था और दामले उनके कार्यवाह का। आपटे और नथूराम उन दोनो से परिचित थे। इसलिये उन्होने ही वह कॉल वुक कराई होगी और वह सावरकरजी के लिये ही होगी ऐसा तर्क अभियोजक प्रस्तुत करते थे।

टेलीफोन सावरकरसदन में निचली मंजिल पर था। निचली मजिल पर हिन्दूसघटन-कार्यालय था और उस कार्यालय में अनेकानेक कार्यकर्ता आते-जाते रहते थे यह भी न्यायालय को ज्ञात था।

वह ट्रङ्क कॉल अनुत्तरित हुआ था। उसमें कोई वातचीत नही हुई थी क्योकि वम्वई कार्यालय से यह कहा गया कि अपेक्षित व्यक्ति उपस्थित नही है। दिल्ली की ओर से कॉल को रद्द करा दिया गया था और उसको पुस्तिका में 'रद्द' अंकित कर दिया गया था।

प्रतिप्रश्नो के अवसर पर ॲडवोकेट भोपटकरजी ने इस कथन का विरोध किया और सावरकरजी ने अपने कथन का योग्य स्पष्टीकरण किया। वह दूर-ध्वनि कासारे और दामले के लिये नही था यह वकीलो ने उस साक्षी से ही कहलवा लिया था। चिट्ठी पर एक नाम था 'कसैया' और दूसरा था 'दलाल'। आगे चलकर दलाल काटकर डी मैलो लिखा गया था। यह दोनो नाम कासारे और दामले से सादृश्य रखते हुए भी दूसरी ओर इस नाम के व्यक्ति न मिलने पर किसी भी प्रकार का निष्कर्ष इस कथन से निकाल लेना न्याय के विरुद्ध हो जाता था।

उस ट्रक कॉल का भुगतान दो रुपया बारह आना १९-५-४८ को किया गया था। हिन्दूमहासभा के कार्य के लिये एक कार्यालय से दूसरे कार्यालय को कॉल बुक कराई गई होगी, ऐसा स्पष्टीकरण युक्तियुक्त था। दिल्ली से किसने कॉल बुक कराई इसका कोई लेखा-जोखा और प्रमाण प्राप्य नही था।

जो दूरध्वनि जन्म से पूर्व ही मर चुकी थी उसके विषय में क्या पूछना, जो जन्मा ही नही अथवा जो हुआ ही नही, उसकी क्या वार्त्ता करना इस रीति से सावरकरजी ने अपने वक्तव्य मे इसका उल्लेख किया था।

विधायक अंग

अपने विरोध में प्रस्तुत साक्षियो एव प्रमाणो का सटीक सप्रमाण उत्तर देने के उपरान्त सावरकरजी ने अपने वक्तव्य का मुख्य विधायक अश प्रस्तुत किया। विधायक कार्य के प्रमाणो के लिये उन्होने समय-समय पर प्रकाशित किये गये पत्रको को प्रस्तुत किया। उनमें एक पत्रक ६-११-४० को प्रकाशित किया गया था। जिसमें नेहरू को सजा होते ही उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए नेहरु की देशभक्ति की प्रशसा की गई थी। अगस्त, १९४२ में जब काग्रेसी नेताओ को बिना किसी प्रकार के आरोप एव प्रमाण के जेलो में ठूँसा गया था उस समय सावरकरजी ने जो पत्रक प्रकाशित किया था वह उन्होने प्रस्तुत किया। गाधीजी के अनशन की समाप्ति के लिये उन्होने २२-४-४३ को एक पत्रक प्रकाशित किया था वह भी प्रस्तुत किया गया। कस्तूरबा के देहान्त पर दि० २३-२-४४ को गाधीजी को भेजे गये सवेदनात्मक पत्र की प्रतिलिपि, गाधीजी की मुक्ति के बाद दि० ७-५-४४ को प्रकाशित किया गया पत्रक आदि ये सब पत्रक उनमें समाविष्ट थे।

सावरकरजी के ऊपर तीखी टेढी दृष्टि क्यो ?

सावरकरजी की काव्य-रचना आज आकाशवाणी पर अनेक बार सुनाई जाती है। सावरकरजी की मृत्यु के उपरान्त उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित

करते हुऐ शासनाधिष्ठित व्यक्तियो ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। मैंने कही पढा है अथवा सुना है कि माननीय श्री बालासाहेब देसाई ने कहा है कि सावरकर-जी जैसा ज्वलन्त देशभक्त आज तक ससार में कोई हुआ ही नही। आकाशवाणी पर भी सावरकरजी की जीवनी सुनाई गई और उनका यशोगान किया गया।

काश्मीर पर आक्रमण करने के हेतु से पाकिस्तान ने १९६५ में पैतरा बदला था। उसके प्रत्युत्तर मे हमारी भारतीय सेना ने पाकिस्तानी घुसपैठियो को भारत की सीमा से खदेडते हुए लाहौर तक मार भगाया था। इस स्वाभिमानयुक्त कृति से वीर सावरकरजी आनन्दित होंगे, इस धारणा के वशीभूत शासन की ओर से उनको शीघ्र युद्धवार्त्ता सुनाने का प्रबन्ध किया गया था, यह भी हमनें पढा अथवा सुना था। केन्द्रीय गृहमन्त्री श्री गुलजारीलाल नन्दा ने सावरकरजी को मानधन देने का प्रस्ताव किया था और प्रादेशिक सरकार ने भी उनको वृद्धावस्था की पेंशन देने का कुछ निश्चय किया था। इस प्रकार का समाचार भी सुनने मे आया था। सावरकरजी को अमुक मान नही दिया गया, अथवा उनको अमुक उपाधि से विभूपित नही किया गया, इस प्रकार के विचार कभी-कभी अपने मन में आते है। परन्तु उन्हे कुछ न कुछ दिया गया था, इससे ऐसा निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि सावरकरजी के प्रति शासन की दृष्टि सुधरने लगी थी, द्वेष-भावना कम होने लगी थी, शासन की यात्रा स्वप्निल राजनीति से व्यवहार्य राजनीति की ओर हो रही थी। पुराने रोग में सहसा सुधार नही होता। अत जितना भी सुधार हो रहा हो उसका यथावत् मूल्याकन होना चाहिये। हम कहाँ थे और कहाँ तक पहुँचे है यह देखने पर पुराना रोग तथा उससे होने वाली निवृत्ति ध्यान में आयेगी। उसी प्रकार सावरकरजी पर धार क्यो थी यह भी समझ में आयेगा।

उच्च शिक्षा के लिये इग्लैंड जाने से पूर्व सावरकरजी ने देशमुक्ति के लिये प्रयत्न किया था। स्वतन्त्रता का स्तोत्र, चाफेकर बन्धु का पवाडा आदि काव्य से और मित्र मेला या अभिनव भारत इन सस्थाओ की स्थापना से और विदेशी कपडो से, अग्निकाण्ड से उनकी स्वयभू स्वतन्त्र प्रेरणा स्पष्ट हो चुकी थी। राष्ट्र स्वतन्त्रता के ध्येय के लिये यथासाध्य साधन का अपनाना केवल समर्थनीय ही नही, आवश्यक भी होता है, यह उनका तत्त्व था। उस तत्त्व के अनुसार उनका व्यवहार भी समय पर शस्त्राचारी हो जाना स्वाभाविक है।

लदन में इण्डिया हाउस में जो युवक एकत्रित हो जाते थे उनको राष्ट्रप्रेम की दीक्षा दी जाती थी। पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल आदि का पथ-प्रदर्शन उन्हें प्राप्त होता रहता था। स्वयप्रज्ञ सावरकरजी ने उस समय भारतभवन को प्रभावित किया था।

गांधीजी और सावरकरजी की प्रथम भेंट इंगलैंड में ही हुई थी। उनकी परस्पर मतभिन्नता एवं विचारभिन्नता उस समय से ही चली आ रही थी।

गांधीजी के चरित्र को हमने शुद्ध मन से देखा और परखा तो भी गांधीजी जिन तत्त्वों के लिये प्रसिद्ध थे क्या उन तत्त्वों से उनका व्यवहार सुसंगत था ऐसा प्रश्न समुपस्थित होता है। मन में ऐसा सम्भ्रम निर्माण होता है कि उन्होंने अहिंसा को जीवन का मुख्य तत्त्व माना था, या स्वतन्त्रता को माना था, या राजनिष्ठा को माना था।

गांधीजी को सावरकर गुट का शस्त्राचारी मार्ग सुहाता नहीं था। 'मारो काटो का पथ' नामक पुस्तिका में उन्होंने क्रान्तिमार्ग एवं क्रान्तिकारियों की निन्दा की थी। इसका उल्लेख श्री शि० ल० करंदीकर ने अपनी पुस्तक सावरकरजी की जीवनी के पृष्ठ १५५ पर किया है। क्रान्तिकारियों के झुण्ड की ओर खिंचते चले जानेवाले युवकों को वे बचाना चाहते थे। श्री इंदुलाल याज्ञिक ने लाला हरदयाल की जीवनी लिखी है। दि० ३-१२-१९०६ को गांधीजी ने जो पत्र डॉ० पी० जे० मेहता को लिखा है उसका उसमें उल्लेख है। उस पत्र में गांधीजी लिखते हैं—"श्यामजी का मार्ग सत्य से दूर है। उनकी कार्य-पद्धति भी धर्मानुकूल नहीं है। वे न तो ईश्वर के अस्तित्व को मानते हैं और न पुनर्जन्म को। भारतभवन के आसपास केवल विषाक्त वायुमण्डल ही बना रहता है। आप श्यामजी की सीख का अनुकरण करते हैं, ऐसा मैं समझता हूँ। मेरी उनसे बातचीत हुई है उसके परिणामस्वरूप ही मैं भयभीत होकर उस मार्ग से पीछे हटा हूँ।"

वास्तव में शस्त्राचार क्रान्तिकारियों का ध्येय न कभी होता है और न हुआ है। लोगों को केवल मारना यह भी उनका उद्देश्य नहीं होता। इस बात को गांधीजी ने कभी गम्भीरता से सोचा ही नहीं। सरदार भगतसिंह ने लोकसभागृह में जो पत्रक बिखेरा था उसमें क्रान्तिकारियों के जीवन-दर्शन का सम्यक् दिग्दर्शन कराया गया था। उस पत्रक में कहा गया था—

"हम मनुष्य के जीवन को बहुत पवित्र मानते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य पर विश्वास करते हैं कि जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति का और स्वातन्त्र्य का अवसर सुलभ होगा। हमको अनिवार्यरूप से जब मानवी रक्त प्रवाहित करना पड़ता है तब हमें दुःख भी बहुत होता है। परन्तु क्रान्ति के माध्यम से सभी को समान स्वतन्त्रता प्रदान करना और मनुष्य द्वारा मनुष्य के ही किये जाने वाले शोषण को समाप्त करना ही हमारा उद्देश्य है। ऐसी क्रान्ति में कुछ न कुछ रक्तपात होना अनिवार्य है।" क्रान्ति के प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारियों की यही भूमिका रही है। यदि सहज ही स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती तो शस्त्रप्रयोग द्वारा

अपने शीश हथेली पर रख कर प्राणों की आहुति देने का दुष्कर कार्य वे कभी न करते।

अहिंसा तत्त्व का सहारा लेने के कारण गांधीजी को क्रान्तिकारियो का मार्ग अनुचित प्रतीत हुआ यदि इस बात को मान लिया जाय तो फिर जो कोई भी शस्त्रप्रयोग करने वाला होगा उन सभी का मार्ग उनको अनुचित ही प्रतीत होना चाहिये। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा किया जाने वाला शस्त्राचार उन्हें अनुचित एवं अधर्म्य प्रतीत नही हुआ, इसका उल्लेख हमें उन्हीं के चरित्र में मिलता है। अंग्रेजो ने झुलूओ के विरोध में युद्ध प्रारम्भ किया था। उसके सम्बन्ध में गाधीजी लिखते हैं "झुलू लोगो ने हिन्दुस्थानी लोगो को भी कोई हानि नही पहुँचाई थी। उन लोगो पर विद्रोह करने का आरोप भी किसी प्रकार लगाया गया था। उन लोगो की बडी क्रूरता से हत्या हो रही थी। परन्तु फिर भी उन लोगो के विरोध में अंग्रेजो ने युद्ध घोषित करके स्वयंसेवको की माँग की यह सुनते ही मैंने स्वयं-सेवक बन कर अंग्रेजो की सेना में भरती हो लडाई में यत्किंचित् भाग लेने का निश्चय किया। क्योकि मैं अंग्रेजी साम्राज्य को विश्व पर उपकार करनेवाला साम्राज्य समझता था। उस साम्राज्य का विनाश न हो यह मेरी हार्दिक इच्छा थी।"

गाधीजी जो अहिंसा के पुजारी बनते थे उन्हें ऐसे अवसर पर कहना चाहिये था, "ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा झुलू समुदाय पर किये जानेवाले अत्याचारो का प्रतिरोध किया जाना चाहिये क्योकि वह हिंसक अत्याचार है इसलिये अधर्म्य है। ससार पर उपकार के नाम पर की गई अहिंसा वन्दनीय और क्रूरता करने के नाम मे की गई अहिंसा निन्दनीय है, अहिंसा की ऐसी द्विविध व्याख्या नही हो सकती। कोई भी भारतीय अंग्रेजो के इस हिंसक युद्ध के लिये कोई सहायता न करे।" गाधीजी के तत्त्व उचित थे अथवा अनुचित इस प्रश्न की अपेक्षा वे अपने उस तत्त्व से सुसंगत रहे ऐसा हम आज कह सकते है, यदि उन्होंने इस प्रकार के विचार व्यक्त किये होते।

हमें यह भलीभांति ज्ञात है कि भारत में आ कर गाधीजी ने 'अप्रत्यक्ष प्रतिकार' का अवलम्ब लिया था। केवल वह उपाय पर्याप्त नही होगा ऐसा सावरकरजी का विचार था। इस विषय पर उनकी 'काळ' नाम दैनिक के लिये लिखी हुई एक वार्ता हमें देखने के लिये मिली। उन्होंने उस वार्ता में दक्षिण फ्रान्स के बागवानो, वहाँ के शासको के साथ हुए कलह और उसके निरोध के लिये अपनाये गये उपायो के विषय में सकेत किया है। इस सम्बन्ध में दि० १९-७-१९०७ को सावरकरजी द्वारा लिखे गये पत्र का साराश इस प्रकार लिया जा सकता है—"दक्षिण फ्रास में संघटित रूप से अप्रत्यक्ष क्रान्ति का अव-

लम्बन लिया गया था। शासन की सेवा न करना शासन के अधिकारक्षेत्र में स्थित पाठशालाओं, न्यायालयों आदि का बहिष्कार करना, शासन के बैंक में धन जमा न करना, शासन को ऋण न देना, लगान न देना आदि इस प्रकार का वे विरोध व्यक्त कर रहे थे। राज्यद्रोह का उत्तरदायित्व न उठाते हुए, हाथ में शस्त्र धारण न करते हुए, और रक्त की एक भी बूँद न गिराते हुए अप्रत्यक्ष प्रतिरोध से राज्यक्रान्ति इस प्रकार की एक नई पद्धति का प्रारम्भ होने लगा। किन्तु ज्यो ही यह आन्दोलन अपनी सफलता के चरम पर पहुँचा त्यो ही शासकों ने सेना और शस्त्र के बल से उसको विफल करने का विचार कर लिया। उस समय आन्दोलनकारियो ने भी फिर अप्रत्यक्ष प्रतिकार का विचार छोड शस्त्र हाथ में लिये। इससे यह सिद्ध होता है कि अप्रत्यक्ष प्रतिकार की सफलता के लिये भी शस्त्रो को दृष्टि में रखना आवश्यक होता है।

"अप्रत्यक्ष प्रतिकार की इस तत्त्व-प्रणाली में हम दो बातें मान लेते है। वह यह कि प्रत्येक व्यक्ति उदात्त होगा और वह पूर्णरूप से सहयोग देगा। सभी लोग शासकीय सेवा का त्याग करेंगे यह मान लेने पर यह बात फिर विचारणीय नही रह जाती कि कगाली से निष्काचन हुए व्यक्तियो में, इच्छा होते हुए भी, इतनी उच्च त्यागवृत्ति नही पनपती। दूसरी बात यह कि विरोधी पक्ष बहुत ही प्रबल है, नियम एव निबन्धो को वह भग नही करेगा, डडे का प्रयोग वह नही करेगा, गला घोटनेवाला नियम वह लागू नही करेगा ऐसा हम मान लेते हैं। जो शासन लोकमत के विरुद्ध जाने तक की निकृष्ट बात सोच सकता है-वह समय पर नया कानून बना कर और पुराने विधान को विघटित कर अप्रत्यक्ष प्रतिकार को बल से दबा देने की सीमा तक क्रूर भी होता है, यह हमें ध्यान में रखना चाहिये।

"विश्वामित्र ने वशिष्ठ की कामधेनु की माँग की थी। वशिष्ठ के इनकार करने पर विश्वामित्र ने तुरन्त निश्चय किया कि वह उसे बलपूर्वक ले जायेंगे। यदि विश्वामित्र से कहा जाय कि वे उदात्त है, तो वह शायद सुनने के लिये राजी हो जायें इस भावना से वशिष्ठ ने उनसे कहने का निश्चय किया और यह दिखाने का यत्न किया कि कम से कम उनके गाय ले जाने के दुष्प्रयत्न का हम प्रतिरोध नही करते, इससे शायद उनमें बुद्धि का विकास हो जाय और वह गाय न ले जाना स्वीकार कर लें। किन्तु विश्वामित्र में तो वह उदात्तता थी नही। कामधेनु के रक्षार्थ शस्त्रधारियो का वशिष्ठ ने आह्वान किया तो उन्होने विश्वामित्र के सैनिको को परास्त कर कामधेनु का अपहरण होने से बचाया। ऐसी पुराणो में कथा आती है।"

स्वराज्य-प्राप्ति के इतिहास पर यदि हम दृष्टिपात करें तो उसमें भी इस प्रकार का विवेचन प्रतिफलित होता प्रतीत होता है। असहयोग आन्दोलन को

दवाने के लिये अंग्रेजो ने बलप्रयोग किया। भारतीयों का गला घोटने के लिये भाँति-भाँति के नियम बनाये गये। रौलट ऐक्ट के विरुद्ध आवाज उठाने का लोगों को साहस ही न हो इसके लिये जलियाँवाला बाग का हत्या-काण्ड किया गया। १९४२ के आन्दोलन में आन्दोलनकारियों ने नि शस्त्रता का परित्याग कर दिया।

सावरकरजी के इस सन्देश का कि—"सेना में जा कर शस्त्र-विद्या प्राप्त करो," देशगौरव नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने दि० २४-६-४४ को एक वक्तव्य द्वारा सम्मान किया। सेना में भरती हुए भारतीयों का उपयोग कर नेताजी ने अंग्रेजो की सेना के छक्के छुडाये थे। युद्ध में अंग्रेजो की विजय होने पर भी उन्हें यह भली-भाँति आभास हो गया था कि अब वे अधिक काल तक भारत पर एक छत्र राज्य नही कर पावेंगे। इंडियन फ्रीडम ऐक्ट प्रसारित करते समय इंग्लैंड के तत्कालीन प्रधानमन्त्री एटली ने भूतपूर्व प्रधानमन्त्री चर्चिल से कहा था। १—भारतीय सेना की अब अंग्रेजो के प्रति निष्ठा समाप्त हो गई है, २—हिन्दुस्थान को अपनी मुट्ठी में रखने के लिये अंग्रेजो की बहुत बडी सेना को भारत में रखना ब्रिटेन लिये हितकर नही होगा। इसलिये ब्रिटेन सत्ता का हस्तान्तरण कर रहा है।

(Britain is transfering power due to the fact that (1) the Indian Merciοary Army is no longer loyal to Britain and (2) Britain cannot afford to have a large British Army to hold down India.

उपरिलिखित अनुभव एटली को सद्य सम्भूत था। १९४६ के प्रारम्भ मे ब्रिटिश अधिकारीगण एव भारतीय सैनिको के मध्य मन-मुटाव का वातावरण एक विशिष्ट रूप धारण करता जा रहा था। कराची, लाहौर, बम्बई और दिल्ली के वायुसैनिको ने हडताल करके एक ऐसा कार्य किया था जो कि सेना के इतिहास में अभूतपूर्व घटना थी। इस प्रकार की अपेक्षा सैनिको से कभी नहीं की जा सकती थी। १९ और २१ फरवरी, १९४६ को नौसैनिको ने आन्दोलन किया। दोनो ओर से मुक्तरूप से गोलियो की वर्षा हुई थी। अंग्रेज सत्ताधारियो को स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि सेना अब उनके अधिकार मे अधिक समय तक रहने वाली नही है। शस्त्रबल का सामर्थ्य स्वराज्य के आन्दोलन की सहायता करता है, यही इसका इतिहास है।

१९२० मे लोकमान्य तिलक के देहान्त के उपरान्त भारतीय राजनीति का नेतृत्व गाधी के हाथ में आ गया था। सावरकरजी उस समय वन्दीगृह में थे। कारागार से मुक्त होने पर भी, १९२४ से उन्हें रत्नागिरि मे स्थानबद्ध करके

रखा गया था। यद्यपि वे कारागृह में नही थे किन्तु किसी भी प्रकार की राजनीति में भाग लेने पर उन पर प्रतिबन्ध था। न वे किसी प्रकार का भाषण दे सकते थे और न ही कोई लेख प्रकाशित कर सकते थे। किन्तु फिर भी गुप्त रूप से कभी-कभी वे राजनीति के विषय पर अपने विचार व्यक्त करते रहते थे।

सावरकरजी चाहते थे कि गाधीजी सशस्त्र क्रान्तिकारियो को भले ही प्रोत्साहित अथवा पुरस्कृत न करें किन्तु कम से कम उनसे घृणा तो न करे। वे युवको में जागृत चेतना को कुचलें नही, उनको अपमानित न करें। सावरकरजी का मत था कि जो समाज शस्त्रपराड्मुख हो चुका है उसे अहिंसा की घूँट पिलाकर पूरे देश का ही विनाश किया जा रहा है। सावरकरजी बडी प्रखरता से क्रान्तिकारियो की देशभक्ति की प्रशसा एव गाधीजी के अहिंसावाद की आलोचना किया करते थे। गाधीजी के वक्तव्यो में व्यक्त परस्पर विरोधी विधान की वे खुल कर आलोचना करते थे। गाधीजी अपने लोगो से कहा करते थे कि जो सच्चा सत्याग्रही है वह कभी मन में इस प्रकार का विचार भी उत्पन्न नही होने दे सकता कि वह शस्त्र का स्पर्श भी कभी कर सकता है। यहाँ तक कि हाथ में लाठी धारण करना भी सत्याग्रही के लिये निषिद्ध है। प्रथम विश्व-युद्ध में बिना शर्त अग्रेजो की सहायता करने के लिये सेना में भरती होने का विचार गाधीजी ने किया था इस विषय में उनका कहना था कि ऐसा उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रेम के कारण किया था। गाधीजी के इन कृत्यो का सावरकरजी अपने लोगो को आभास देते रहते थे। अग्रेज लोग किंचित् भी सज्जन नही और न ही उनका इस देश पर राज्य करना किसी न्यायाधिकरण द्वारा प्रदत्त आज्ञा के अधीन है और न ही उनको यहाँ से भगाना अन्याययुक्त है। उसके लिये अपनाये गये किसी भी मार्ग को पापमय नही मानना चाहिये। इस प्रकार का प्रतिपादन सावरकरजी करते रहते थे। गाधीजी के प्रेममूलक प्रचार से वे बहुत दुःखी होते थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा था—"इस गडबडा ने राष्ट्र का कितना अहित किया है और राष्ट्र को कितना अपमानित किया तथा उसे किस प्रकार अकर्मण्य बनाकर रख दिया है जब इसका विचार मन में आता है तो मन क्रोध एव घृणा से भर जाता है।" यह उन्होंने दि० ११-८-१९२७ को लिखा था।

क्रान्तिकारियो का किसी प्रकार भी उल्लेख न करना अथवा उनके कार्य की निन्दा करते हुए अपमानपूर्ण लेख लिखना सावरकरजी को सह्य नही था। एक बार गाधीजी ने अपने 'यंग इडिया' में क्रान्तिकारी गोपीनाथ साहा का उल्लेख कर उनका अपमान करते हुए उन्हें 'अपराधी' तक लिख डाला था।

गांधीजी ने लिखा था 'उनके उद्देश्य की प्रशंसा करना भी पाप है।' क्योंकि क्रान्तिकारी हिंसक प्रवृत्ति के होते है। सारे देश में गाधीजी के इस विचार की खूब आलोचना हुई थी। जब क्रान्तिकारी यतीन्द्रनाथ का देहान्त हुआ तो उनके विषय में बोलते अथवा लिखते हुए गाधीजी ने उनके सम्मान में 'हुतात्मा' शब्द का प्रयोग नही किया था। केवल इतना कहकर गाधी ने अपनी झेंप मिटानी चाही थी कि 'वे अपराधी नही थे।' किन्तु अपने पत्र में यतीन्द्रनाथ के बलिदान की गाथा प्रकाशित करने को उन्होने टाल दिया था।

क्रान्तिकारियो के बचाव के लिये देश भर में न्याय-सहायता-निधि स्थापित की गई थी। किन्तु गाधी जी ने उसके लिये किंचित् भी सहायता नही दी थी। सहायता न करने मात्र से ही गान्धी जी को सन्तोष नही हुआ अपितु अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होने यह भी कहने की धृष्टता की थी कि इस प्रकार की सहायता निधि एकत्रित करना अनुपयुक्त है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गाधी जी को यह अनुभव होने लगा था कि उनके इन दुष्कृत्यो से उनकी कुख्याति फैल रही थी। उससे बचने के लिये उन्होने एक चाल चली। वह यह कि वे कारागार में क्रान्तिकारियो से मिलने के लिये गये। वहाँ जब उनसे आडे हाथो यह पूछा गया कि आपने उस निधि का विरोध क्यो किया तो गाधीजी अपना दामन बचाने के लिये उत्तर दिया—"इसलिये कि कोई अच्छा बडा वकील पैरवी के लिये आगे आ सके।"

क्रान्तिवीर यतीन्द्रनाथ का उल्लेख न करके और मेरठ अभियोग निधि के विषय में गाधी जी के संदिग्ध उत्तरो की आलोचना करते हुए १६-११-१९२९ को सावरकर जी ने लिखा—"हुतात्मा यतीन्द्रनाथ सशस्त्र क्रान्तिकारी था। आग को निगलने वाले भगत, दत्त, साहा, यतीन्द्र आदि क्रान्तिवीरो का सम्पूर्ण देश ने हुतात्मा, देशभक्त, देशवीर कहकर सम्मान किया तो इसमे मेरे अर्थशून्य, ढलाऊ अहिंसा के सिद्धान्त पर से देशवासियो का विश्वास हटने लगा और उस अनुपात में यद्यपि मेरा व्यक्तिगत नही, क्योंकि व्यक्तिगत प्रश्न पृथक् है, तो भी पाथिक महात्म्य का प्रस्थ कम होता है, इसलिये मैं यतीन्द्रनाथ को हुतात्मा नही कहता ऐसा यदि गाधी जी स्पष्ट रूप से कहते तो इससे बहुत कुछ बात स्पष्ट हो जाती। इसी प्रकार मेरठ के लोग भी सशस्त्र क्रान्ति के आरोप में बन्दी थे। उनके लिये यदि देशवासी निधि स्थापित करते है तो इससे उनका सम्मान होता है अन्यथा किसी एक वकील के निःशुल्क पैरवी के लिये उद्यत हो जाने पर उसको राष्ट्रीय स्वरूप प्राप्त नही हो सकता, इसलिये निधि स्थापित करने से ही उसको राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो सकता है, ऐसा विचार कर ही यह कार्य किया गया था। यह सोच समझकर ही मेरठ सहायता निधि स्थापित की गई थी।

परन्तु देश में मेरे होते हुए क्रान्तिकारियो की इतनी प्रशसा हो इससे मुझे चिढ होती है (गाधी जी को इस विषय में बोलते बोलते कितनी चिढ उठती थी इसका ज्ञान।उन अनेक सज्जनो को है जिनका गाधी जी की इस विचारधारा से विरोध था) ऐसे हुतात्माओ की जय-जयकार का अभिप्राय है मेरे सदृश अहिंसावादी सिद्धान्त के प्रतिवादक का अपमान। ऐसे क्रान्तिकारियो के समर्थन के लिये एकत्रित की जाने वाली निधि अहिंसावादियो की राष्ट्रीय निन्दा के बराबर है, यह मैं भली भाँति जानता था, इसलिये कोई भी ऐसे क्रान्तिकारियो की प्रशंसा करे यह मुझसे सहा नही जाता, इसलिये मैंने मेरठ अभियोग निधि का विरोध किया ऐसा यदि गाधी जी स्पष्ट रूप से कह डाल तो सच-झूठ आदि के बहाने खोजने की आवश्यकता ही न रहे। कम से कम भविष्य में ही वे ऐसे अप्रामाणिक तथा उनका छोडकर अन्य किसी को भी न फसानेवाले कोटिक्रम करना वह छोड दें। इससे उनका मत कितना ही विरुद्ध क्यो न हो किसी को फिर किसी प्रकार का दु ख नही होगा।"

हिन्दू मुस्लिम एकता के प्रयोग में भी गाधी जी का अहिंसा तत्व कसौटी पर खरा नही उतर रहा था। गाधी जी ने अपने यग इडिया में इस्लाम को शान्ति का प्रतीक घोषित किया था। और उसी लेख में उन्होने यह भी लिखा था—"इस्लाम की तलवार के साथ अधिक भी साठ-गाठ होती है यह सच है। परन्तु यह तो परिस्थिति दोष का परिणाम है।" तलवार को हिंसा का प्रतीक मानकर फिर परिस्थितिवश उसके उपयोग को उपयुक्त सिद्ध करना गाधी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध होना चाहिए। यह प्रश्न तो बिलकुल पृथक् ही है कि इस्लाम के तलवार का उपयोग करना उसकी शान्तिप्रियता की ओर इगित करता है अथवा आक्रामक नीति की ओर। किंतु गाधी जी ने तो प्रतिपक्षियो के अन्याय एवं अत्याचार तथा हिंसाचार के प्रतिकार में भी स्वय शस्त्राचार का मार्ग नही अपनाया, इसके विपरीत हिन्दुओ को अहिंसा सिखाने के लिये अपनी सारी शक्ति का अपव्यय किया ऐसा हमें उनके जीवन की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है।

सावरकर जी गाधी जी के एकपक्षीय प्रयोगो पर सदा शका एव सन्देह व्यक्त करते थे। उन्हें उनकी अहिंसा की नीति पर कभी विश्वास नही जमा। उन्हें इससे स्पष्ट आभास मिलता था कि उससे मुसलमानो की आक्रामक नीति को प्रोत्साहन मिलता है। दि० ७-१-१९२७ को लिखे अपने लेख में उनके विचार इस प्रकार व्यक्त किये गये थे—"वास्तविकता तो यह है कि अधिकाश मुसलमानो को यह हिन्दुस्थान अपना देश प्रतीत नही होता। और उसमें भी हिन्दुओ का निवास तो उनको काँटो की भाँति चुभता है। देश भर

में ये जो दगे-फसाद होते है उनकी पृष्ठभूमि में यही भावना कार्य करती है। कतिपय समझदार मुसलमानो को छोडकर अधिकाश मुसलमानो के मन में यही भावना उभर रही है कि तुर्किस्तान, अफगानिस्तान अथवा ईरान की भाँति यह हिन्दुस्थान भी एकमेवाद्वितीय इस्लामी राज्य बन जाय। इस देश को ऐसा बनाने पर ही वे इसके साथ अपने देश का सा व्यवहार कर सकेंगे और इसके प्रति अपना प्रेम प्रकट कर सकेंगे।

"गाधी वच होने के कारण पक्षपात से परे है यह यदि मान लिया जाय तो जिस प्रकार अपनी जाति के साथ पक्षपात करना अनुचित है उसी प्रकार दूसरी जाति की ओर झुकना भी पक्षपात ही कहलायेगा। शब्दकोष में इसके लिये कोई अन्य शब्द उपलब्ध नही हो सकता।"

इसमें यदि सुधार किया जाय तो उचित होगा। इस्लाम के शान्ति, सहिष्णुता और भूतदया के जो उपदेश गाधी जी को ज्ञात है वे सब वस्तुत यग इडिया के माध्यम से गाधी जी अपने मुसलमान भाइयो को ही सिखायें तो उत्तम होगा। और उनके शिष्य अली बन्धुओ के जिस प्रकार खिलाफत आन्दोलन के विषय में व्याख्यान हुए उस प्रकार के व्याख्यान इस्लामी शान्तिमन्त्रो पर करवाने चाहिये। कभी कभी मुसलमानो को राष्ट्रभक्ति जगाने के लिये कडवा किन्तु प्रभावी उपदेश भी देना चाहिये।

गाधी जी द्वारा इस देश में मुसलमानो की आक्रामक प्रवृत्ति को परिपोषण प्राप्त हुआ जिसका प्रत्यक्ष परिणाम हम आज पाकिस्तान के रूप में देख रहे है।

१९३७ में सावरकर जी पर से प्रतिबन्ध हटाये गये। अब वे रत्नागिरि से अन्यत्र आने जाने के लिये स्वतन्त्र थे। इन्ही दिनो से सावरकरवाद और गाधीवाद का प्रत्यक्ष रूप मे आमना सामना होना प्रारम्भ हुआ। स्वराज्य प्राप्ति के लिये आन्दोलन करने के साथ ही सावरकर जी को एक अन्य कार्यक्रम भी अपने हाथ मे लेना पडा और वह था गाधी जी की इस एक पक्षीय अहिंसा प्रणाली की घातक शिक्षा का खण्डन करना। उसी का विधायक स्वरूप था हिन्दूसघटन।

राजनीति मे गाधी जी का प्रवेश होने से पूर्व अर्थात् १९०३ में ही सावरजी ने स्वतन्त्रा देवी स्तोत्र कहा था। आज तो वह आकाशवाणी पर भी सुनने में आ जाता है। उन्होने स्वतन्त्रता की देवी का आह्वाहन करते हुए कहा था—'तुज साठि मरण ते जनन, तुज जनन ते मरण।' अर्थात् तुम्हारे लिये मरना यह जन्म है और तुम्हारे लिये जीना मृत्यु है। स्वय उन्होने देश की स्वतन्त्रता के लिये कितनी यातनायें सही इसका उल्लेख करने की हम आवश्यकता नही समझते। स्वराज्य के लिये बलिदान करनेवालो का वे सदा सम्मान करते थे। १९३७ के

वाद तो प्रकट रूप से सभाओ में वे उनका गुणगान एव अभिवादन करते थे। हिन्दू सगठन के अन्तर्गत हिन्दुओ को ही केवल एकाधिकार प्राप्त हो ऐसी उनकी भावना नही थी। परन्तु सहिष्णुता के नाम पर हिन्दुओ के अधिकार छीन कर दूसरो को दे देने के वे विरोधी थे। हिन्दुओ पर अन्याय किया जाय तथा उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाय यह उन्हे बरदाश्त नही था। हिन्दू महासभा और काग्रेस में यदि परस्पर विरोध अथवा सघर्ष का विषय था तो केवल यही था।

हिन्दु महासभा तो राजनीति में पहले से ही पदार्पण कर रही थी। काग्रेस के प्रचारतन्त्र की व्यवस्था ठीक हो गई थी। सावरकर जी के नेतृत्व में हिन्दू महासभा हिन्दु सघटन का अधिष्ठान था और था गाधी जी के नेतृत्व एव काग्रेस की हिन्दू मुस्लिम एकता की नीति का विरोध। इस बात को लेकर गाधी जी एव काग्रेस का प्रचार तन्त्र यह प्रचार करता था कि हिन्दू महासभा स्वराज्य विरोधी है, वह प्रगतिगामी है, आदि आदि। और इस प्रकार का प्रचार उस वातावरण मे आसानी से खप जाता था। शस्त्रविद्या सीखने के लिये सेना मे भर्ती होना चाहिये, स्वय सुलभ इस प्रकार के सुअवसर को ऐसे समय में ठुकरा नही देना चाहिये, यथोचित समय पर शस्त्र का उपयोग किस प्रकार करना है, इसको समझना चाहिये। सावरकर जी के इस प्रकार के प्रचार का विपरीत अर्थ लगाया जाता था। उसका परिणाम यह हो रहा था कि हिन्दू हितो के विरोध को देशभक्ति का नाम दिया जा रहा था और हिन्दू महासभा के कार्यकर्ताओ पर किये जाने वाले आक्रमणो को स्वराज्यप्राप्तिका मार्ग माना जाने लगा था।

इस प्रकार के अप-प्रचार का उत्तर देने के लिये कभी तो स्वतन्त्र विचारो के समाचार पत्र आगे आ जाते थे, किन्तु सर्वदा एव सुसगठित रूप से ऐसा कोई प्रयत्न सम्भव नही हो पाया था। तब साधारण कोटि के दो चार समाचार पत्रो का सचालन हिन्दु महासभा के लिये किया जाने लगा। आज यदि कोई कहे कि शराब बन्दी का कार्यक्रम सफल हो गया है तो सम्भवतया हम लोग हसते हैं। किन्तु उस समय कोई यदि कहता कि हिन्दूमुस्लिम एकता का प्रयास सफल हुआ है, तो उस समय हसने की सुविधा नही थी। उस हिन्दूमुस्लिम एकता के विरोध में कोई ठोस सप्रमाण लेख भी यदि लिखा जाय तो उस लेखको प्रकाशित करनेवाले समाचार पत्र को दण्डित किया जाता था।

युद्धकाल में शासकीयस्तर का प्रचार तन्त्र विपक्षी को चकमा देने के लिये कियाजाता है। उस समय काग्रेस ने इस बात का भी ख्याल नही किया कि उनका स्वकीय कौन है और परकीय कौन। यदि उन्होने प्रचारतन्त्र का भी उपयोग किया तो आत्मवचना के लिये ही। मुस्लिम राष्ट्र का यदि निर्माण हुआ तो वह

हिन्दुओ की भूमि पर हो भारत के बाहर के किसी देश की भूमि पर नही। अखण्ड हिन्दुस्थान यही हमारे देशभक्ति की कर्मभूमि थी। जिस लाहौर में दि० २६-१-१९२९ को पण्डित नेहरू ने सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पारित किया था विभाजन के बाद वही लाहौर भारतवासियों के लिये विदेश बन गया। भले हो प्रचारतन्त्र के आधार पर कांग्रेस ने यह प्रचलित किया हो कि उसने द्विराष्ट्रवाद का सिद्धान्त स्वीकार नही किया। स्वराज्य प्राप्ति के समय १९४२ के आन्दोलन के आसपास अंग्रेज शासको ने पूरे देश में १५ सहस्त्र से अधिक लोगो को मार डाला ऐसा कांग्रेस महासमिति की कार्यवाही में अंकित है। सुभाष बाबू की आजाद हिन्द सेना तो मोर्चे पर ही लडी थी। नौसेना ने जब विप्लव किया था तो उस समय भी अनेको का बलिदान हुआ था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये हिन्दू मुस्लिम एकता के जो मार्ग अपनाये गये उसकी परिणति हुई स्वतन्त्रता प्राप्ति के अवसरपर प्रान्तों के प्रान्तो में रक्त में लथपथ जन साधारण के रूप में। और उसी प्रचारतन्त्री की एक तूलिका से वे यह रक्तरंजित अध्याय पोछते हैं और तनिक भी न हिचकिचाते हुए कहते हैं—"रक्त की एक बूंद भी न गिराते हुए हमने स्वतन्त्रता प्राप्त की।" उस प्रचार तन्त्र मे अपने हितशत्रुओ को फसाने की शक्ति तो थी नही। हा, अपने ही हितबन्धुओ को फसाने मे हमने अपना और अपने देश का गौरव समझा।

गाधी जी को इस देश की जनता ने नेतृत्व दिया इस बात को भले ही अस्वीकार न किया जाय किन्तु शासन की धारणा तो आज यह बन गई है कि यदि उनकी असफलताओ का वह बखान करेगा तो उससे उनकी प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचेगी। इसलिये गाधी की झूठी प्रशसा को स्थायी बनाने के लिये अथवा उसको बढाने के लिये वह प्रचारतन्त्र आज भी कार्य करता है।

उस समय वस्तुस्थिति का वर्णन करनेवाले व्यक्ति या दल बहुत ही कम थे। ऐसे ही अल्पसख्यको के सावरकर जी अध्वर्यु थे। हमको सदा के लिये पीडा पहुचानेवाले पाकिस्तान का जब निर्माण हो गया तभी भारत को भी स्वतन्त्रता प्राप्त हुई।

उस खण्डित हिन्दुस्थान में तो कम से कम हिन्दू हितो का होम न होने दो, क्योकि इससे स्वतन्त्रता फिर खतरे में पड जावेगी, इसके लिये शस्त्र शक्ति का सचय करो। एक पक्षीय अहिंसा का प्रचार मत करो आदि आदि बातो पर ही सावरकर जी का आग्रह था। सावरकरवाद और गाधीवाद में यही मूलभूत अन्तर था।

केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में भी एक गुट ऐसा बन गया था जिसको गाधीजी की नीति का खोखलापन दृष्टिगोचर होने लगा था। नेहरू और मौलाना आजाद का

गुट यदि गाधी जी की संक्षीण मान प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये प्रयत्नशील था तो सरदार पटेल प्रभृति का झुकाव वास्तविकता की राजनीति की ओर था। इसप्रकार का आभास हमें मौलाना आजादलिखित पुस्तक "इडिया विन्स फ्रीडम" से भी स्पष्ट मिलता है। इस खीचातानी के बीच में ही गाधी जी ने पाकिस्तान को ५५ करोड़ रुपया दिलाने के लिये अनशन तक की धमकी दी और उन्ही दिनो गाधी जी का अनशन, दिल्ली के हिन्दुओ पर लादी गई शर्तें, गांधी जी की प्रार्थना सभा मे स्फोटक का विस्फोट और १० दिन बाद गाधी जी का वध, ये सारी घटनायें बडी शीघ्रता से सम्पन्न होती गई।

हिन्दू हितो की हठपूर्वक उपेक्षा करने के कारण ही गाधी जी का वध हुआ, ऐसा समझने में शासन को कोई समय नही लगा। हिन्दू हितो की रक्षा करने-वाले नेता सावरकर जी ही थे इसलिये शासन का सीधा उन पर रोष होना भी साधारण सी बात थी। यही कारण है कि प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त न होने पर भी किसी दूर सूत्र द्वारा उन्होने इस हत्याकाड में सावरकर जी को फसाने का निश्चय किया। चूकि अभियोजको को शासन का पक्ष मजबूत करना था इसलिये सावरकर जी की प्रेरणा से और आदेश से गाधी वध किया गया होगा। ऐसा तर्क न्याया-लय के सम्मुख प्रस्तुत किया गया।

शासन की ओर से हिन्दू हितो को हानि पहुचाने के उद्देश्य से सावरकरवादी गुट पर येन-केन-प्रकारेण किसी प्रकार के प्रतिबन्ध लगाकर फिर अपनी मन-मानी करने के उदाहरण हमें उसके बाद भी मिले हैं। ज्यो ही नेहरू-लियाकत चर्चा का विषय प्रारम्भ हुआ था, त्यो ही सावरकरजी तथा अन्य अनेको कार्य-कर्ताओ को १९४० मे स्थानबद्धता का दण्ड दिया गया था। मानो हिन्दुओ का अहित कर के ही हिन्दुस्थान और पाकिस्तान के सम्बन्ध सुदृढ हो सकते थे। हिन्दू हितो की आहुति दे कर धर्मनिरपेक्षता को निभाने के लिये उस समय के शासको मे इस प्रकार का हिन्दू द्वेष विद्यमान था। इसी धारणा के वशीभूत सावरकर जीको गाधी वध काण्ड में शासन द्वारा फंसाया गया था। सावरकर जी के प्रति इस द्वेष भावना को कम होने में अनेक वर्ष लगे।

सावरकर जी का व्यवहार

जब सावरकर जी को गाधी वध काण्ड में फसाकर कारागार में रखा गया तो उन्होने अन्य अभियुक्तो को इस प्रकार नही कहा कि वे लोग उनके साथ किसी प्रकार का सम्पर्क सूत्र न रखें, क्योकि इससे अभियोजको को अपने पक्ष को पुष्ट करने के प्रमाण प्राप्त होंगे। जिन दिनो गाधी हत्याकाण्ड के सहयोगियो की खोज जारी थी उन दिनो बन्दी बनाये गये सभी अभियुक्तो को बम्बई के गुप्तचर

विभाग के कार्यालय में रखा गया था। सावरकर जी को आर्थर रोड के वन्दीगृह में रखा गया था। अधिक समय मागने के लिये एक वार उनको चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उपस्थित किया गया, उसी दिन अन्य अभियुक्तो के लिये भी अधिक समय की माग करनी थी अत उनको भी वहा उपस्थित किया गया था। सावरकर जी को सम्मुख देखते ही जो पहला प्रश्न मन में उठा वह यह था कि क्या वे वोलने की मनस्थिति में है ?

वाहन की प्रतीक्षा मे कुछ क्षणो के लिये हम लोग वरामदे में रुके थे। कुछ तो भी वोलने के उद्देश्य से नाना आपटे सावरकर जी से वोले, "ये पुलिस के अधिकारी वोलते समय तो ऐसा प्रतीत होता है कि मुख में शक्कर भरकर वोलते है ?" सावरकर जी ने खुले मन से उत्तर देते हुए कहा, "इसके लिये आपको उन्हे धन्यवाद देना चाहिये। क्योकि वैसा करने के लिये उनपर कोई वन्धन नही है।"

सावरकरजी का उत्तर सुनकर यह प्रतीत होता था कि इस गिरफ्तारी से सावरकर जी हताश अथवा खिन्न नही है। ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होने यह धारणा वना ली थी कि जो हो न्यायालयीय कार्यविधि से उनको गुजरना पडेगा ही। इस दृष्टि मे उन्होने अपनी मानसिक स्थिति वना ली होगी। आज तक हमने सावरकर जी को सकट में सीना तान कर ही खडे पाया था और आज हम उनको उसी प्रकार देख रहे थे।

दिल्ली के लाल किलेवाले वन्दी गृह मे शकर किस्तैया और वडगे को छोड कर शेष सभी एक साथ ही रहते थे। हम सवकी पहली खुली भेंट दि० २७-५-१९४८ को हुई थी। आपटे और नथूराम के साथ सावरकरजी का घनिष्ट सम्वन्ध था। न्यायालय अथवा कारागार में भी उसी प्रकार का घनिष्ठ सम्वन्ध निभाने से किसी प्रकार का सन्देह हो सकता है अत वैसा न किया जाय यह वात सावरकरजी के मन में कभी नही आई। न्यायालय में भी अवकाश के क्षणो में हमलोगो के साथ वे वार्त्ता मे खूव निमग्न रहते थे।

जव हम प्रथम वार मिले तो उन्होने प्रत्येक से पूछा कि पहली भेंट में न्यायालय ने किससे क्या क्या कहलवा लिया है। हम लोगो की वातो को सुनकर उन्होने वताया कि हमारे वयानो से किसके विरुद्ध क्या-क्या प्रमाण एकत्रित किये जा सकते है। सारी सम्भावनायें उन्होने हमारे सम्मुख स्पष्ट की।

नथूराम को सावरकर जी 'पण्डित' शब्द से गौरवान्वित किया करते थे। इससे उनपर किसी प्रकार की आँच आवेगी ऐसा उन्होने कभी नही सोचा। अपने लिखित वयान में भी उन्होने नथूराम के साथ पण्डित शब्द को जोडा था। वहुत वर्ष पूर्व किसी एक व्याख्यान में जिसको टेप रिकार्ड कर लिया गया था,

उसमें भी उन्होंने नथूराम को पण्डित विशेषण से ही सम्बोधित किया है।

नथूराम और आपटे के समान ही अन्य अभियुक्तों के साथ भी उनका स्नेह सम्बन्ध था। एक दिन जब नाना आपटे के विरुद्ध गवाही हुई तो उन्होंने आपटे से पूछा, "यह गवाह आपके विरुद्ध आने का क्या कारण है? नाना बोले, कभी आरक्षकों से बोलते हुए मेरे मुंह से कोई बात निकली होगी, मेरी उस बात की जाँच करने के लिये जब प्रयत्न किया गया तो उनको यह गवाह मिल गया। "" सावरकर जी ने कहा, अकारण ही आप लोगों ने अपने चारों ओर एक विचित्र वायुमण्डल का निर्माण कर लिया है। मुझे लगता है कि यह हानिप्रद सिद्ध होगा। क्या सभी ने गर्दन कटवाने का निश्चय कर लिया है?" बात तो हो चुकी थी, यह तो सच था। नाना इस पर क्या बोलते?

यद्यपि सावरकरजी का अभियुक्त क्रमांक ७ था, तथापि न्यायालय में उनके बैठने की इस प्रकार व्यवस्था की गई थी कि जिससे वे न्यायाधीश के निकट रहें। उनके समीप ही नथूराम बैठते थे। कई बार गवाहों के बयान दूसरों के बचाव की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रतीत होते थे, अथवा कभी किसी गवाह से किसी विधान से उससे कोई विशिष्ट प्रश्न पूछा जाना चाहिये ऐसा विचार उनके मन में उत्पन्न होता था। ऐसे अवसर पर वे नथूराम को संकेत से उस भाग को लिखकर रखने अथवा स्मरण रखने के लिए कहते थे। उसके बाद न्यायालय के मध्यान्तर अथवा बन्दीगृह में उसपर चर्चा होती थी।

डाक्टर परचुरे के विरुद्ध उपस्थित किये गये एक साक्षी से डाक्टर परचुरे को पहचानने के लिए कहा गया। बड़े विश्वास के साथ साक्षी बन्दियों के पिंजड़े के समीप आया और उसने उंगली से संकेत कर बताया। किन्तु उसकी उंगली संदिग्ध रूप में उठी हुई थी। न्यायामूर्ति ने साक्षी को और निकट जा कर संकेत करने के लिए कहा। न केवल इतना ही बल्कि उन्होंने डाक्टर को हाथ से स्पर्श करने का आदेश दिया। साक्षी ने आगे बढ़कर जो हाथ रखा वह डा० परचुरे पर न होकर सावरकर जी पर था।

न्यायालय में इससे हँसी का मानो विस्फोट सा हुआ। साक्षी को लगा उससे कुछ भूल हो गई है। क्षण भर उसने इधर उधर देखा और फिर उसने डाक्टर परचुरे का स्पर्श किया।

बचाव पक्ष ने न्यायमूर्ति को कहा कि बाद का संकेत मान्य न माना जाय। इसके विपरीत आयोजकों का कहना था कि कदाचित प्रकाश की चकाचौंध में वह साक्षी को पहचानने में प्रथम बार भूल कर गया हो।

सावरकर जी खड़े हुए और न्यायमूर्ति से बोले, "साक्षी ने मुझे प्रत्यक्षरूप से छुआ है।" न्यायमूर्ति बोले, "मैंने इसे अंकित कर लिया है।" इस प्रकार यह विवाद बन्द हो गया।

साक्षी क्र० पी० डब्ल्यू० ५३ जगन्नाथ सिंह, (दि० १५-७-४७, अभिलेख ग्रन्थ १ पृष्ठ ७४-७५) साक्षी बना कर लाया गया था। सावरकर जी का विचार था कि इस बात को यदि न्यायाधीश के ध्यान में लाया जाय तो उससे डा० परचुरे का लाभ होगा।

तत्कालीन बम्बई राज्य के गृहमन्त्री श्री मोरारजी देसाई की साक्षी जारी थी। प्रतिप्रश्न में अपने वकील के द्वारा नथूराम ने न्यायालय के सम्मुख यह स्पष्ट किया कि अग्रणी और हिन्दू राष्ट्र दैनिक को मोरारजी देसाई ने किस प्रकार तग किया था। इस वस्तुस्थिति से गाधी वध की पार्श्वभूमि का ज्ञान करवाया था। मोरारजी देसाई स्पष्ट उत्तर देने की अपेक्षा घुमा-फिरा कर उत्तर देते थे। कुछ समय तक नथूराम यह देखते रहे। एक उत्तर से तो उन्हें बहुत खेद हुआ। वे तुरत खडे होकर न्यायमूर्ति से बोले, "मन्त्री महोदय उचित उत्तर नही दे रहे है। ३० जनवरी को मैंने जो कृत्य किया है उसके द्वारा इनके साथ जो छल हुआ है वह इनको असहनीय होना इसका एक कारण है और इसके लिये ये गृहमन्त्री महोदय भी उस कृत्य के लिए उतने ही उत्तरदायी है।

क्षण भर तक तो न्यायालय में स्तब्धता सी छा गई। नथूराम के 'मेरे कृत्य के लिये' यह शब्द अभियोजकोको महत्वपूर्ण प्रतीत हुए। क्योकि वह उनकी स्वीकारोक्ति थी। नथूराम का यह वक्तव्य लिख लेने की प्रार्थना उन्होने न्यायमूर्ति से की। "··मैं अपना वक्तव्य आपको यथासमय लिखकर देनेवाला हूँ। परन्तु इस पर भी यदि आप इस वाक्य को अभी लिख लेना चाहते हो तो मुझे उसमें कोई आपत्ति नही है" ऐसा नथूराम ने कहा था। परन्तु तभी नथूराम के वकील श्री ओक ने न्यायमूर्ति को ध्यान दिलाया कि यह समय अभियुक्तो के वक्तव्यो का नही है। न्यायमूर्ति ने उसे स्वीकार कर लिया। अभियोजको ने भी अधिक आग्रह नही किया। इस प्रकार नथूराम के वे उद्गार लिखे नही गये। किन्तु इससे उपस्थिय जनो को यह आभास मिल गया कि अर्द्धसत्य अथवा असत्य या घुमाफिरा कर दी गई साक्षियो अथवा उत्तरो से नथूराम कितने उद्विग्न होते है।

न्यायालय से वापस आते समय सावरकर जी ने नथूराम से कहा, "नथूराम! आज तुमने मोरारजी को सह्याद्रि दिखा दिया।"

नथूराम स्वीकारोक्ति दें इस प्रकार की सूचना वकीलो के द्वारा कभी कभी सावरकर जी के पास पहुचती थी। तब सावरकर जी कहते, "उनसे कहो, 'सेती का सतुवा, नानी का सराध' करना आसान है। स्वय उस भूमिका में है ऐसा क्षण भर सोच कर फिर उस पर सम्मति दी जानी चाहिये।"

हिन्दुओ मे स्वाभिमान जागृत करने की सावरकर जी में आकाक्षा थी। उनकी जीवन पद्धति में अन्यो पर अन्याय करने के लिये स्थान नही था। किन्तु अपना स्वत्व त्याग न करने के लिये किसी भी प्रकार का त्याग करने की सिद्धता

मनुष्य मे होनी चाहिये यही उनकी विचारप्रणाली थी। अपने लिये तो उन्होने इस प्रकार की सिद्धता रखी थी 'आपुले कुळही त्यामधि ईश्वराश निर्वंश होउनि ठरेल अखंड वश।' अर्थात् अपना कुल भी ईश्वर का अश है और निर्वंश होकर भी उसका अखण्डवश ठहरेगा। अथवा 'अशीच सर्व फुल खुडावी श्रीराम चरणी अर्पण करावी' काही सार्थकता लाभावी या नश्वर देहाची। अमर होय ती वशलता निर्वंश जिचा देवा करिता' अर्थात् किसी तरह सभी पुष्प तोडे जायें और श्रीराम के चरणो में समर्पित होकर इस नश्वर देह को सार्थक करें। वह वशलता अमर होती है। जिसको भगवान पर चढावा चढाने के लिए तोडकर निर्वंश किया जाता है। सत्वरक्षण मे से गाधी वध की पृष्ठभूमि तैयार हुई यह स्पष्ट प्रतीत होते हुए भी तथा उस तत्वज्ञान के जनक सावरकर जी स्वय ही मृत्यु की छाया में विचरण कर रहे थे, फिर भी उन्होने अपने तत्वज्ञान को कभी गलत नही समझा। नथूराम या आपटे उस तत्वज्ञान के या हिन्दू महासभा के समर्थक नही थे इस प्रकार का वचाव उन्होंने कभी नही किया। नथूराम या आपटे अपने वक्तव्य में हिन्दूमहासभा या सावरकरजी के तत्वज्ञान से स्वय को सम्बन्धित न दिखावें, ऐसा निर्देश भी सावरकर जी ने कभी उनको नही दिया था।

नथूराम अपना वक्तव्य स्वय तो मराठी में लिखते थे फिर उसका अनुवाद किया जाता था। नथूराम चाहते थे कि सावरकरजी भी कुछ भाग लिखें। सावरकरजी कहते—"तुम्हारे लिये मुझे लिखने की आवश्यकता नही। अपना लिखा हुआ मुझे दिखाते जाओ, यदि आवश्यकता हुई तो कुछ हेर फेर मैं सुझा दूँगा।"

क्योकि समय वहुत कम रह गया था, इस कारण अपने वक्तव्य के कुछ पृष्ठ नथूराम ने हडवडी में लिखे थे। उनकी इच्छा थी कि विपयवस्तु की रचना अच्छे ढग से की जाय किन्तु उपलब्ध समय में वह सव सम्भव नही प्रतीत हो रहा था। सावरकरजी ने उनको सान्त्वना देते हुए कहा, जो वक्तव्य तैयार हो गया है उसमें कोई विशेप कमी नही है। यदि इस समय उसमें कुछ हेर-फेर किया गया तो इससे उसकी सुसूत्रता को हानि पहुँचेगी। यह कोई व्यासपीठ पर दिया जानेवाला उपदेश तो है नही। अपने प्राणो को देश के लिये वलिदान करने की भावना से उनको तुच्छ समझने की पराकोटि तक किस प्रकार मन की स्थिति पहुँची है उसका प्रकटीकरण करनेवाले ये मन के वुलवुले, तरग अथवा आवेग है। अतीव दुःख के वाद जिस प्रकार सिसकियां मुक्तता धारण कर लेती है अथवा अतीव आनन्द के उपरान्त जैसा अनिर्वन्ध हास्य प्रस्फुटित होता है वैसे ही यह मन का आवेग भी मुक्त या अनिर्वन्ध प्रतीत हो तो भी उसकी पृष्ठभूमि की भावना निश्चित रूप में और अकृत्रिमता से समझी जा सकती है। इस दृष्टि से तुम्हारा वक्तव्य परिपूर्ण है।'

नथूराम ने यह तो निश्चय किया कि उसके वक्तव्य के लिये न्यायालय में तर्क-वितर्क वे स्वय करेंगे किन्तु उसमें उनको कठिनाई थी तो एक यही कि वे अंग्रेजी में बहस नही कर सकते थे। उन्हें दुःख था कि विश्वविद्यालय की उपाधि तो दूर रही साधारण पाठशाला का प्रमाणपत्र भी वे प्राप्त नही कर पाये थे तो न्यायालय में अंग्रेजी में बहस किस प्रकार कर पावेंगे।

दि० १६-१२-१९४८ को नथूराम ने अपना बयान शुरू किया जो दूसरे दिन पूर्ण हुआ। बयान प्रारम्भ करने के कुछ क्षणो बाद ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि न केवल न्यायालय मे उपस्थित जनसमुदाय अपितु न्यायाधीश एवं सरकारी पक्ष के वकील तक को उन्होंने अपने वक्तव्य से अभिभूत कर लिया है। बिना किसी स्थान पर अटकते हुए, किसी योग्य शब्द की किसी प्रकार की खोज न करते हुए विषय को पकड़ कर तथा समय-समय पर सन्दर्भ देते हुए वे घंटो तक बोलते रहे।

अपना वक्तव्य देते समय सम्भवतया नथूराम यह भूल गये थे कि उसकी गर्दन के चारो ओर फांसी की रस्सी लटक रही है। वे निर्भीकता से वक्तव्य दे रहे थे किन्तु कोई भी श्रोता अपने अन्तर्मन से उस रस्से को उनकी गर्दन मे लिपटा स्पष्ट देख सकता था। अन्यथा नथूराम का वक्तव्य कैसा रहा इसका इतना महत्व नही था अपितु इसमे अधिक महत्व था इस बात का कि फांसी के फंदे में फंसी हुई गर्दन के बाद भी नथूराम ने किस प्रकार अपना वक्तव्य दिया। श्रोताओं के लिये इसका महत्व अधिक था।

नथूराम ने अपने वक्तव्य मे कहा, "जिसको सुखी जीवन कह सकते है, उस प्रकार का ही मेरा जीवन था। परन्तु शायद मनुष्य इतने पर सन्तुष्ट नही रह पाता। सहजीवन की कल्पना में से राष्ट्र की कल्पना का निर्माण हुआ। विश्व कुटुम्ब की कल्पना के लिये राष्ट्र की धारणा आवश्यक है। बिखरा हुआ समाज राष्ट्र नही कहा जा सकता। कहा भी जाय तो राष्ट्र के नाते वह टिक नही सकता। क्योकि उसके घटको के हित समान नहीं होगे और समाज के घटक इस दृष्टि से सहजीवन की कल्पना से एक रस नही होगें। सुसघटित राष्ट्रो का सहजीवन ही विश्वकुटुम्ब होता है। सुसगठित राष्ट्र विश्व कुटुम्ब की योजना रच सकता है। व्यक्ति की मर्यादा राष्ट्र की भावना तक सीमित रहती है।

राष्ट्र की कल्पना में से ही समवेदना और सहानुभूति के भावो का परिपोष होता है। जनसमूहो के किसी घटक के राष्ट्रीय स्तर का जो दुःख होगा वही मेरा भी दुःख होगा, राष्ट्र का हित ही मेरा हित, राष्ट्र के स्वातन्त्र्य की रक्षा ही मेरी स्वातन्त्र्य रक्षा होगी, इस प्रकार की भावना हृदय में उत्पन्न होती है। 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे" इस प्रकार के अनेक सन्तो की शिक्षा मन में गूंजायमान होती रहती है।

अपने वैयक्तिक एव आनन्दमय जीवन में भी मुझे असन्तोष सा प्रतीत होने लगा था। जिस महाराष्ट्र प्रान्त में न तो विभाजन की आच आई थी और न ही वहाँ किसी प्रकार का रक्तपात हुआ था ऐसे प्रान्त में मैं रहता था। जिन प्रान्तो का विभाजन हुआ था वहाँ के विभाजनग्रस्त जन मेरे कोई नही थे और उनके रक्तप्रवाह का मेरे लिये क्या शुभाशुभ ? इस प्रकार की भावना मेरे मन में स्थान ही नही पा सकी।

विभाजन की प्रत्यक्ष आच हमारे प्रान्त को यद्यपि न छू पाई थी तथापि निर्वासितो के जत्थे के जत्थे हमारे प्रान्त मे प्रविष्ट हो रहे थे। स्थान-स्थान पर निर्वासितो के शिविर स्थापित थे। मानो काग्रेसी नेताओ की गलत नीति के सजीव स्मारक खडे हो। उनके अनजाने ही उनकी पवित्र भूमि पर इस्लामी राष्ट्र का निर्माण हो गया। उन्हें उनके प्राण और धन-सम्पत्ति का आश्वासन दिया गया था किन्तु वे अनुभव कर रहे थे कि प्रत्यक्षरूप मे तो उस राष्ट्र मे उनके प्राण सकट मे हैं, उनका भवितव्य मृत्यु रूप मे खडा हैं। या तो उनका वहाँ से निष्कासन होगा अन्यथा भ्रष्टीकरण। वे लोग उस नवनिर्मित राष्ट्र के घटक नहीं थे क्योकि वह उस धर्म के नही थे जिस धर्मवालो के लिये उस राष्ट्र का निर्माण हुआ था, यही उनका अपराध सिद्ध हुआ था।

"चूकि वे इस राष्ट्र के ही घटक थे, इस राष्ट्र मे ही वे एक रूप हो सकते थे तथा सहारा लेने के लिये ऐसा कोई अन्य राष्ट्र भी उनको नही था इस भूतल पर, अन्य कोई ऐसा देश भी उनके लिये नही था।

असख्य हिन्दुओ की हत्या करने और अवशिष्ठ हिन्दुओ के निष्कासन के जो कारण थे उनको निमन्त्रण देते हुए हमारे शासको ने कहा—'आप वापस आ जाइये, हमारा देश धर्मनिरपेक्ष हैं, आप कैसा भी व्यवहार क्यो न करें हम तो आपसे भला ही व्यवहार करेंगे, आवश्यकता हुई तो आपने जिन निर्वासितो को हमारे देश में भेजा है उनको खुले मैदान में रखकर भी हम आपके घर आपको वापस करायेंगे और आपके घरो को यदि कोई खाली नही करेगा या आपको मारने के लिए कोई हाथ उठायेगा तो उनका पूरा नाश करने के लिये हमने अपनी सेना को सज्जित किया हुआ है। हमारी बन्दूक आपके ऊपर कभी नही तनेगी क्योंकि उसमे हिंसा होने का भय है, इससे विश्व में हम बदनाम हो जावेंगे।

'इस प्रकार निर्वासितो को पुन निर्वासित बनने की बारी भी आई।'

सहिष्णुता के नाम पर अन्याय की सीढी किस स्तर तक पहुच चुकी थी इसकी मीमासा साधार और सन्दर्भ सहित करते हुए नथूराम अपने वक्तव्य के उच्चतम बिन्दु की ओर जा रहे थे।

अपने राष्ट्र में कोई भी व्यक्ति ऐसा नही होगा जो सभ्यता और शिष्टाचार

से परिचित न हो। जो प्रश्न चर्चा एव वार्तालाप द्वारा हल हो सकता है उसको उसी प्रकार हल करने मे भी किसी को किसी प्रकार की आपत्ति नही होती। बुद्धि के बल से प्रतिपक्ष को अपना दृष्टिकोण जचा देने की क्षमता हममें होनी चाहिये। परन्तु उसके साथ ही साथ यदि किसी ने शस्त्र बल की धमकी दी तो उसका प्रत्युत्तर भी उसी प्रकार देने की क्षमता तो हममे होनी ही चाहिये। यह सूत्ररूप में स्पष्ट करने के लिए उन्होने अपने वक्तव्य में शास्त्र का एक वचन उद्धृत किया था—'अग्रतश्चतुरो वेदा पृष्ठत सशर धनु,। इद ब्राह्म इद क्षात्र शापादपि शरादपि।'

ब्रिटिशर्म के युग में क्रातिकारियो को न्यूनातिन्यून लोकप्रियता प्राप्त होती थी। किन्तु मेरे तो इस अभियोग में राजसत्ता भी मेरे विरुद्ध है और लोगो को भी कदाचित यह कार्य अप्रिय है इस कारण दुगुने रोप के मध्य में मैं स्थित हूं। किन्तु मेरी धारणा है कि विभाजन से प्रारम्भ कर पाकिस्तान को ५५ करोड रुपया मुआवजा देने के सभी कृत्य गाधी जी की नीति का ही परिणाम थे। उन पर आरोप लगानेवाला कोई न्यायालय बन पावेगा ऐसा जब मुझे असम्भव प्रतीत हुआ तब मुझे वह वास्तव में अप्रिय प्रतीत होनेवाली बात करनी पडी। अब इसके परिणामो की भी मुझे कोई चिन्ता नही है।

विगतकाल मे चारुदत्त को भी इसी प्रकार उस समय की किसी धारा ३०२ के अन्तर्गत बन्दी बनाकर न्यायालय मे खडा किया गया था। वह दोषी नही था, किन्तु उस पर दोप मढा जा रहा है, यह जानकर उसे दुःख होता था। उसे मृत्यु का भय नही था। वह कहा करता था—'न भीतो मरणादस्मि केवल दूषित यश।' अर्थात् मृत्यु का भय तो मुझे नही है, लोगो मे मेरे सम्बन्ध में अप्रियता, कटुता अथवा घृणा निर्माण होगी या निर्माण की जायेगी इसका भी मुझे भय नही है। मेरे कृत्य के हेतु का विपर्यास न किया जाय इतनी ही मेरी इच्छा है।

न्यायालय पूर्णरूप से भरा हुआ था। सभी श्रोता एकचित्त होकर सुन रहे थे। हृदय में निकलनेवाले उस समय के उद्गारो को कही प्रकट करने का अवसर नही था। विचार स्पष्ट थे। सुने हुए भाषण से ही लोगो के कठ रुध गये थे। अश्रुकण आखो से बाहर निकल आये थे।

नथूराम ने कहा—मराठी क्षेत्र मे विख्यात व्याख्याताओ की श्रेणी में मेरी गिनती है। विषय से एकरूप होकर बोलने के कारण ही कदाचित वह स्थान मुझे प्राप्त हुआ हो। यदि मैं कहू कि मैंने अनेक सभाओ मे अपने भाषण से खूब धूमधाम मचाई थी तो अतिशयोक्ति नही होगी। लोगो ने मुझे खूब पुष्पमालाओ से लाद रखा है। फूलो की वे मालायें यदि मेरे भाषणो का पुरस्कार समझ कर

मैंने उन्हें सहर्ष स्वीकार किया है तो अपने किये हुए अवैध कृत्यके लिये पुरस्कार रूप में यह फासी का फदा भी मैं उसी प्रकार सहर्ष स्वीकार कर रहा हू ऐसा आप लोगो को प्रतीत होगा। क्योंकि प्रस्तुत विषय से भी मैं उतना ही एक रूप हू।

यह सुनकर श्रोताओ की आखो की पलकों में अटके हुए आसू टप-टप गिरने लगे। रुधे हुए कण्ठ सिसकने लगे। न्यायालय में सन्नाटा छा गया। यदि कोई व्यक्ति बोलने का यत्न भी करता तो उसकी आवाज भारी और भर्राई प्रतीत होती थी। नामोल्लेख करने की अनुमति मैंने ग्रहण नही की है अत. मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि अभियोजकों में से एक वरिष्ठ व्यक्ति की सुग्रहिणी नथूराम के भाषण में इतनी तल्लीन हो गई थी कि उसकी सिसकिया निकल गई थी। उन्हें ध्यान ही नही रहा कि वे न्यायालय में बैठी है अथवा किसी वरिष्ठ व्यक्ति की पत्नी है। स्त्रियो का अन्त करण भावनाप्रधान होता है। अनेक पुरुषो के जब आसू टपक रहे थे तो महिलाओ की अवस्था वैसी होना स्वाभाविक ही है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नही है।

नथूराम की इस प्रकार की ओजस्वी वाणी सुनकर सावरकरजी को आनन्द मिश्रित आश्चर्य हुआ था। उनकी भाषण कला से वे रत्नागिरी से ही परिचित थे। उनके प्रति उन्हें अपनापा एवं विश्वास था। उन पर उनका इतना विश्वास था कि कभी किसी अनौपचारिक वार्तालाप में कोई उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करता तो वे कहते, 'इसका उत्तर हमारा नथूराम देगा।'

नथूराम के वक्तव्य का प्रथम दिन समाप्त होने पर हम लोग बन्दीगृह में आये। सावरकर जी साधारण रूप से दूसरे कमरे में नही जाते थे परन्तु उस दिन वे मेरे और नथूराम के कमरे में आये और नथूराम से बोले।

भाषा का भय तुम क्यो करते हो? साक्षात सरस्वती तुम्हारी जिह्वा पर विराजमान थी। तुमने तो 'वाचमर्थानुधावति' का प्रमाण प्रस्तुत किया है।'

दूसरे दिन मकान को वापस आने के बाद सावरकर जी अत्यन्त ही उत्साहित प्रतीत होते थे। गद्गद् कण्ठ में वे नथूराम से बोले, मैंने धीगरा को निकट से केवल एक ही बार देखा था। अन्य कोई भी रत्नागिरी में आते तो मुझसे मिल कर जाते थे। परन्तु उनके अभियोग में अटक जाने के बाद उनसे भेंट नही होती थी। परन्तु न जाने क्या योग है कि मैं यहा तुम्हे प्रतिदिन देख रहा हूँ।'

अपने वक्तव्य के पन्ने जैसे-जैसे सावरकर जी लिखते जाते थे वैसे-वैसे मुझको देते जाते थे। उनको लेकर मैं उनकी साफ स्पष्ट प्रतिलिपि लिखकर तैयार करता था।

यदि उच्च न्यायालय में जाना पड़ जाय तो उसके लिये भी उन्होने अपनी याचिका का प्रारूप तैयार करके रख लिया था। जब मैं उनसे कहता, 'तात्या! आपके विरूद्ध जो प्रमाण लाया गया है उससे आप दोषी सिद्ध हो सकें ऐसा तो प्रतीत नही होता। इसके उत्तर में वे कहते 'यदि उन्होने मुझे मुक्त किया तो क्या मैं यही रहूँगा ? मुक्त होने पर भी मैं क्या पुनरावेदन करूगा ? जो प्रमाण वे प्रस्तुत कर रहे है वे कितने प्रभावी है इसका ज्ञान शासन को है। फिर भी उन्होने अभियोग लगाने का निश्चय किया है न ? न्यायाधीश यदि खींचखाच कर उससे अपने अनुकूल अर्थ लगाने का निश्चय करें तो ? इसलिये किसी भी परिस्थिति से निपटने की अपनी सिद्धता होनी चाहिये ?'

क्या सावरकर जी पर अभियोग लगाना न्याययुक्त था ?

सावरकर जी के विरुद्ध जो प्रमाण एकत्रित किये गये थे वे प्रत्यक्ष न हो कर सकेतात्मक प्रमाण अभियोग के लिये पर्याप्त है ऐसा यदि मान लिया जाय तो अभियोग में गवाह रूप में लाये गये अमुक व्यक्तियो पर त्रैराशिक दृष्टि से अभियोग करना पड जाता था। इसके अतिरिक्त जिन्हें साक्षी के लिये लाया गया था ऐसे भी अनेक व्यक्तियो पर षडयन्त्र का आरोप लगाना गणितशास्त्र के अनुसार गलत होता था। क्योकि उनके वर्ताव से ही उनके विरुद्ध सकेतात्मक प्रमाण मिल जाता था। सावरकर जी पर यदि आरोप था तो केवल यही कि 'उन्होने गाधी वध के लिये आदेश दिया होगा। उस कृत्य के लिये आशीर्वाद दिया होगा।

सावरकर जी का चरित्र जिन्होने सूक्ष्म रूप से पढा होगा, या जो सावरकर जी के सम्पर्क में आये होगे उन्हें यह ज्ञात है कि सावरकर जी का स्वभाव ऐसा नही है कि वे किसी को तुम ऐसा करो इस प्रकार कोई आदेश दें। वे सदा अपनी ही जान के साथ खेले है दूसरो की जान के साथ नही। उनके तत्वज्ञान मे जो शक्ति थी, व्यक्तित्व में जो प्रेरणा थी उससे स्वय स्फूर्त हो अपनी जान के साथ खेलनेवाले लोग उनके चारो ओर एकत्रित हुए परन्तु 'मेरी इच्छा है कि अमुक कार्य सम्पन्न होना चाहिये और इसके लिये अमुक व्यक्ति कार्य करे ऐसा उन्होने कभी किसी को नही कहा, फिर भले ही वह मदनलाल धीगरा हो या वासुदेव बलवन्त गोगटे।

नथूराम और आपटे ऐसे नासमझ व्यक्ति के नही थे कि सावरकर जी इस प्रकार का कोई आदेश दें और वे उसे चुपचाप सुनकर उस पर कार्य करने की योजना बना लें। उसकी प्रज्ञा स्वतन्त्र थी, उनका आचार-विचार स्वतन्त्र था उन्होने सावरकर जी को भी जो पत्र लिखे है उसमें यही लिखा है : 'हिन्दू महासभा के अध्यक्ष के नाते आप से अमुक अमुक विषयो विचार विमर्श अथवा पथ-

प्रदर्शन प्राप्त करना है।' इसलिये आदेश का प्रश्न कम से कम नथूराम और आपटे के सम्बन्ध मे तो किंचिन्मात्र भी लागू नही होता था।

रहा प्रश्न आशीर्वाद का। इस सन्बन्ध में बडगे ने जो कहानी गढी है वह बहुत उथली है। उसका यह सिद्ध करना कि सावरकर जी के साथ नथूराम और आपटे की जो कुछ भी गुप्त बातें हुई है उन बातो की समाप्ति कमरे में न करते हुए वे उन बातो को सूत्र लेकर चलते हुए सीढियो से उतरते समय बातें करते आये थे और सामने एक साक्षी खडा है यह देख कर भी बोले यशस्वी हो कर आइये। अभियोजको ने इस कहानी के आधार पर अपना यह अर्थ निकालते हुए कि यशस्विता का कार्य गाधी वध का था, और इसके आधार पर सावरकर जी पर अभियोग लगाया गया।

कमरे तक तो गुप्तता रखना और कमरे के बाहर आकर उस गुप्तता की वाच्यता करना ऐसा उच्छृङ्खलापन सावरकर जी के बर्ताव में नही था। इसलिये बडगे की कहानी उपेक्षणीय है। हम यह मान लें कि नथूराम और आपटे यह कहने के लिये सावरकर जी के पास गये कि अमुक कार्य होनेवाला है अथवा वे उसे करने वाले है अर्थात यह समझा जाय कि वह बात उनको विदित थी, तो क्या इतने मात्र से ही यह मान लेना चाहिये कि सावरकर जी उस षडयन्त्र के घटक थे? क्या यह निष्कर्ष उचित होगा? क्या ऐसा उन पर आरोप लगाना न्याययुक्त होगा?

इस स्थिति में अधिक से अधिक यह आरोप लगाया जा सकता है कि एक सम्भ्रान्त नागरिक के नाते उन्हें यदि घटना होनेवाली है इस प्रकार का कोई ज्ञान था तो उसको योग्य अथवा उचित अधिकारी को बताने का प्रबन्ध क्यो नही किया। उसी सीमा तक उन पर आरोप लगाया जाता और उन्हें बचाव का अवसर दिया जाता तो उसे हम अन्याय नही कहते। परन्तु उन्हें पहले से विदित था केवल इसी अनुमान पर वे षडयन्त्र के आरोप के पात्र थे ऐसा निष्कर्ष निकाला गया था।

इस प्रकार तो प्राध्यापक जैन भी षडयन्त्र के घटक थे और उन पर ऐसा आरोप लगाना उचित हो सकता था। उन्होंने मोरारजी देसाई को यदि जानकारी दी भी तो तब जब उन्होने समाचार पत्र में यह पढ लिया कि मदनलाल ने बम फेंका है और उससे गांधी जी घायल भी नही हुए। उससे पूर्व उन्होंने किसी प्रकार की जानकारी किसी भी योग्य अधिकारी को नही दी थी। कल्पना कीजिये कि गांधी जी का वध २० जनवरी को ही हो गया होता, तब क्या श्री जैन मोरारजी भाई को बताने के लिये गये होते?

श्री मोरारजी कहते हैं "मेरा नाम जाहिर मत करो। जिन व्यक्तियो को इसमें फसाया गया है और जिस बस्ती में मैं रहता हू उसका ध्यान करो। नही तो

मेरे जीवन को खतरा है।" ऐसा जैन ने कहा था उनका आगे मोरार जी से कहना था कि "जब मुझे नागरवाला मिले तो उन्हे मैंने यह नही बताया कि इस षडयन्त्र की सूचना मुझे कहा से मिली थी।" (अभिलेख ग्रन्थ १ पृष्ठ १६७)

यदि श्री जैन के कथन से निष्कर्ष निकालना हो तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि "अभी तक तो काम पूर्ण हो जाता, किन्तु काम बिगड गया है । मेरे मन्त्री को मिलने के कारण काम बिगड गया है ऐसा यदि षडयन्त्रकारियो को विदित हो गया तो वे मेरी मरम्मत कर देंगे" ऐसा मन में आने के कारण जैन ने अपना नाम प्रकट न करने का आग्रह मोरारजी से किया। अर्थात् षडयन्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति को ही ऐसा भय लग सकता है। श्री ग० वि० केतकर ने जब श्री बाबूकाका कानिटकर से बातें की तब उन्हें ऐसा भय नही था। कानिटकर को भी बाबासाहेब खेर को पत्र लिखते समय ऐसा भय नही था।

जब मन्त्री ने प्रा० जैन से पूछा कि इस विषय में पहले क्यो नही बताया तो उन्होने उत्तर दिया, 'ऐसे क्रोध से बोलने की तो निर्वासितो को आदत ही थी। और मदनलाल को मैंने उस विचार से परावृत्त किया है ऐसा मुझे विश्वास हुआ (पृष्ठ १६७)। परन्तु प्राध्यापक जैन के कथन के अनुसार उन्होने इस षडयन्त्र के सम्बन्ध मे श्री जयप्रकाशनारायण और उनके महाविद्यालय के ही एक व्यक्ति श्री ए०बी० याज्ञिक को बताया था (पृष्ठ १३२, १३४)। जब उनसे पूछा गया कि आरक्षक अधिकारी को क्यो नही बताया तो उनका कहना था "व्यक्तिश मैं किसी आरक्षक अधिकारी को नही जानता था । और मुझे ऐसा भी लगता था कि आरक्षको को बताने मे अपनी सुरक्षा नही ।" इस उत्तर का भी निष्कर्ष निकाला जा सकेगा । जैन के बर्ताव के कारण आरक्षक उसको षडयन्त्र का घटक समझेंगे, ऐसा उनको भय प्रतीत होता था इसलिये वे आरक्षक अधिकारी के पास नही गये।

श्री जैन ने कहा, "इस षडयन्त्र की खोज में सहायता करने की मुझ मे क्षमता है क्योकि मुझे षडयन्त्र की जानकारी है। ऐसा मैंने मन्त्री को कहा। एक नाग रिक के नाते इस षडयन्त्र की छानबीन में उनकी सहायता करने की मेरी इच्छा थी (पृष्ठ १३४)।

मोरार जी के कथन के अनुसार, "मेरा नाम प्रकट मत कीजिये, मेरे जीवन को इससे खतरा है।" ऐसा जैन ने कहा था। इससे यह स्पष्ट है कि दो में से कोई न कोई तो असत्य भाषण कर ही रहा है। इसका प्रस्तुत विषय से इतना ही सम्बन्ध है कि विस्फोटन से पूर्व श्री जैन ने इसकी सूचना किसी योग्य अधिकारी को नही दी थी। 'जानकारी था' ऐसे सदिग्ध सशय से सावरकर जी षडयन्त्र के

आरोपी के नाते से पकडे गये। जैन को भी उसी कारण से आरोपी बनाया जा सकता था क्योंकि उन्हें तो जानकारी थी, इसमें तो सशय था ही नही।

और मोरारजी देशाई पर आरोप क्यो नही लगाया गया। आरोप लगाना हो तो उनकी असावधानी हेतुपूर्वक थी ऐसा कहा जा सकता है। श्री जैन का कहना केवल अपने सिर पर न रखते हुए आरक्षक और जैन का वे मेल करा देते तो ठीक रहता। क्या जैन को सरक्षण देने की शक्ति शासन में नहीं थी।

श्री जैन ने कहा, "मेरा नाम आगे मत बताओ।" और मोरार जी ने इस बात को मान लिया। इसका अभिप्राय तो यही हुआ कि गांधी जी के वध के सम्बन्ध में जो कुछ भी होता है उसे होने दो बाद में देखा जायगा, इस प्रकार की उदासीन वृत्ति का उन्होने परिचय दिया था। इसके आगे भी यदि सयुक्तिक रूप से आरोप लगाना हो तो इस प्रकार लगाया जा सकता है कि 'तुम अपना काम पूर्ण करो, तब तक हम हाथ नही डालेंगे' ऐसा षडयन्त्रकारियो को भीतर से सकेत करने के हेतु से मन्त्री महोदय ने निष्क्रियता अपनाई।

निष्क्रियता द्वारा यदि किसी अवैध कृत्य को सहायता प्राप्त होती हो तो वैसी निष्क्रियता दिखानेवाला व्यक्ति उस अवैध कृत्य के कर्ताओ का सहायक ही माना जाता है। प्रहरी तथाकथित स्थान से थोडा दूर हटकर यदि चोर को अवसर दे तो ऐसे प्रहरी को निर्दोष नही कहा जा सकता। काग्रेस के भी अनेक नेताओ को गाधी जी की राजनीति से अरुचि पैदा हो गई थी। यह उस समय की वस्तुस्थिति थी जब वे लोग गांधी जी और उनकी राजनीति से थक गये थे और उसमे उन्हें विरक्ति निर्माण हो गई थी। गाधी जी के अन्तिम अनशन से तो वल्लभ भाई के मन में गाधी जी के सम्बन्ध में घृणा ही निर्माण हुई थी। क्योंकि वल्लभ भाई के हाथ बाधने के लिये ही वह अनशन था, यह बात बाद में पूर्णतया स्पष्ट हो ही गई थी। वे दिल्ली छोड कर चल गये थे। गाधी जी अनायास मर जायेंगे तो ठीक है, उससे आगे की दुर्दशा तो रुक जावेगी ऐसा किसी को प्रतीत होना असम्भव नही था।

जिसका गांधी जी के प्रति प्रामाणिक प्रेम था, गाधी जी की मृत्यु के बाद उनका दु ख भी प्रामाणिक माना जाना चाहिये। गाधी जी के देहान्त के क्षण तक जो लोग गाधी जी की आलोचना करते थे, गाधी जी के देहान्त के बाद उन लोगो ने जो दु खावेग नाट्य किया वह प्रामाणिक नही था। गाधी जो जहा स्वयं मृत्यु को निमन्त्रण दे रहे है वहा हम बीच में क्यो पडें ऐसा जिनका वर्ताव था उन्होंने गाधी वध के बाद जो दु ख प्रदर्शन किया वह दु ख केवल अपने वर्ताव को ढकने के लिये था।

सावरकरजी तो स्पष्ट रूप से गाधीवाद के विरोधी थे। गाधीवाद ने क्या हानि की है इसका दिग्दर्शन वे सदैव कराते रहते थे। उन्हे गाधी वध का वृत्त पहले से ज्ञात होगा इस सन्देह में उनको अभियुक्त बनाया गया था। चूकि वह आसान था। इससे एक तो उनके अपने कारनामो पर पर्दा पड जाता था और दूसरे लोगो का ध्यान उनसे हट कर दूसरी ओर करने का यह सस्ता उपाय भी था। जिन्होने उस अवसर पर झूठा दु खावेग प्रकट किया वास्तव में उनका स्थान न्यायालय के कठघरे में होना चाहिये था। क्योकि क्या होनेवाला है इसका उन्हें भलीभाति ज्ञान था और इस दुर्घटना को टालने की सावधानी बरतने के साधन भी नियति के बाद उनके ही हाथ में थे। सत्यासत्य का निर्णय न्यायालय ने किया होता।

अन्यथा केवल सशय मे सावरकर जी को अभियुक्त बनाना पूर्णतया अन्याय था। शासन के सूत्र हाथ में लेना और उसे सावरकर जी के हाथ मे सौप देना ऐसा यह षडयन्त्र नही था। जनस्तुति नही अपितु जनहित यही सावरकर जी का मन्त्र था। किसी भी सम्मान अथवा पद या उपाधि की आकाक्षा उनको नही थी। 'मैं व्यवहारी राजनीति करता हू और वह भी गाधीवाद का जिस ओर प्रवाह है उसकी विपरीत धारा की ओर खडा होकर करता हू। परिणामस्वरूप उपेक्षा और घृणा का ही अधिकारी होना पडेगा' ऐसा वे जानते थे। और उनके हिस्से में उपेक्षा और घृणा ही आई भी थी। इसलिये गाधी वध से किसी प्रकार का सम्मान का स्थान प्राप्त होगा इसकी कल्पना भी उनको छू नही गई थी। सौभाग्य की बात है कि इस प्रकार का कोई आरोप शासन की ओर से उन पर लगाया भी नही गया था। फिर भी केवल सशय में उन पर वध का आरोप लगाना और उसके लिये उन्हे अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिये बाध्य करना भी अन्याययुक्त तो था ही।

ऊपर के विवेचन में जिन नामो का निर्देश आया है उनका इस षडयन्त्र से सम्बन्ध था, इस प्रकार कोई भी सकेत करने की मेरी इच्छा नही है। सरदार वल्लभ भाई पटेल के सम्ब ध में तो 'उनका इस षडयन्त्र से सम्बन्ध था, ऐसा मानना उन पर अन्याय करना होगा।' ऐसा मैं पहले भी एक जगह लिख चुका हू। आगे होनेवाली घटना का ज्ञान होना, उसके सम्बन्ध में मौन रहना या अकर्मण्यता प्रकट करना यह सब एक जगह षडयन्त्र का आरोप लगाते समय उतना दोषार्ह नही ठहरा, किन्तु दूसरी जगह पर ठहर गया इसकी तुलना मुझे स्मरण करानी है। वह अनवधानता जानबूझ कर थी, आपद्धर्म के लिये थी, नीति के कारण थी या ढीलेपन के स्वरूप की थी यह समझने के लिये कोई भी सम्बन्धित आधार नही था। आरोप केवल एक ही व्यक्ति पर आरोपित किया गया था।

सावरकरजी ने नथूराम और आपटे को आगे किया। इस आरोप का उत्तर देने के लिये क्या ऐसा नही कहा जा सकता कि जिन-जिन लोगो ने गाधी जी की मृत्यु के वाद झूठा दु ख प्रदर्शन किया उन्ही ने सावरकर जी के तत्वज्ञान को आगे किया और अपना स्वार्थ सिद्ध किया ? प्रमाण तो दोनो स्थानो पर उपलब्ध नही था किन्तु आरोप एक ही स्थान पर किया गया था। सावरकर जी के तत्वज्ञान के आधार पर उनके अनुचर ने स्वय को आगे प्रस्तुत किया है ऐसा तो अभियोग में माना नही गया है। यह वात दूसरी है। न तो मगनी के आधार पर टिकने वाला वह तत्वज्ञान ही था और न वे व्यक्ति ही ऐसे थे। इस तत्वज्ञान के आधार पर कोई भी व्यक्ति आत्मसमर्पण के लिये खडा दीखेगा। सावरकर जी के शब्दो में यदि कहा जाय तो यही कि हुतात्मा मन से दृढ और पक्का हुआ होगा तभी यह मानना चाहिए कि ऐसा अवसर आया होगा।

निर्णय

सावरकर जी ने लोगो को क्रान्तिकारियो का सम्मान करना सिखाय था। चाफेकर बन्धु का स्वागत उन्होंने इगलैंड जाने से पूर्व ही कर दिया था। रत्नागिरि में स्थानवद्ध होते हुए भी वासुदेव वलवन्त गोगटे का उल्लेख उन्होंने एक पौराणिक कहानी के रूप में किया था। जलियावाला वाग के जालिम मायकेल और डायर को ऊधमसिंह ने मार दिया था। वह समय युद्ध की धूमधाम का था। १९४० मे शनिवार वाडे के आगे जो उन्होने व्याख्यान दिया था उसमें उन्होंने ऊधमसिंह का उल्लेख किया था।

सावरकर जी को १९१० में पकड कर हिन्दुस्थान लाया गया था। उनका भवितव्य भारत का न्यायालय तय करनेवाला था। शासन तो विरोध में था ही और सर्वत्र भय का वातावरण उत्पन्न कर दिया गया था। इस कारण लोग क्रान्तिकारियो की प्रशसा करने का साहस नही जुटा पाते थे। सावरकर जी को उस समय उपेक्षा ही मिली थी।

मुझे मृत्यु दण्ड दिया गया तो क्रान्ति का कार्य कौन करेगा, लोगो को उत्साहित कौन करेगा, उनका नेतृत्व कौन करेगा ऐसा विचार उनके मन मे उत्पन्न हुआ हो अथवा नही किन्तु फिर भी इतने में उनके मन ने उन्हें समझाया, कितना अहकारी है तू ? क्या तेरे विना कुछ अटका रह जावेगा ? तू ही कर्ता है, ऐसा तू समझता है। उस समय के उनके उद्‌गार इस प्रकार है—

"पडले शत शत मरसम तरिका अगतिक असेल भारत हा।
श्री कृष्ण सारथी यद्रथ हाकाया सदा उभा'रत हा।"

लोग अपना अनुगमन करेंगे या नही, यह क्रान्तिकार्य चलायेंगे या नही, वे लोग मेरी प्रशसा करेंगे या नही अथवा निन्दा करेंगे, इन विचारो के परे वे गये थे।

दि० २४-१२-१९१० को न्यायालय ने उन्हें आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया। दि० ३१-१-१९११ को उन्हें पुन आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया।

लगभग ४० वर्ष बाद पुन सावरकर जी पर वैसा ही प्रसंग आ पडा था। शासन विरुद्ध था और लोग भी विरुद्ध थे। तिरस्कार की वेदी पर उनको खड़ा किया गया था।

दि० १०-२-१९४९ का दिन सभी अभियुक्तो का निर्णय सुनाया जानेवाला था। सावरकर जी का विधि लिखित भी उसी दिन के गर्भ में छिपा था।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उस समय का शासन का दृष्टिकोण सावरकर जी के विरुद्ध रोषपूर्ण था। मानो मुस्लिम राष्ट्र और हिन्दू राष्ट्र में युद्ध छेडा गया हो। मानो मुस्लिम राष्ट्र का नेता मारा गया हो। आपने हमारा नेता मारा हम आपका नेता मारेंगे ऐसे प्रतिशोध से जलनेवाले मुस्लिम राष्ट्र ने हिन्दू राष्ट्र के सेनानी को घेरने की प्रतिज्ञा की हो। ऐसे अयथार्थ अहकार मे अपने ही शासन ने ज्वलन्त राष्ट्रभक्त सावरकर जी को घेरने का निश्चय किया था। अपने ही पैरो पर कुल्हाडी मार लेने का वह प्रकार था। लोकसत्ता की पद्धति के कुछ सकेत सभालना आवश्यक था। इसलिए उनके चारो ओर घेरा डालने के पहले न्याय मन्दिर की सीढियाँ चढकर जाना शासन तक को प्राप्त था।

उनके असम्बद्ध सूत्रो को एकत्रित कर अभियोजको ने उसका फन्दा बनाया था। यह फन्दा लीजिये, यह सावरकर जी के गर्दन के चारो ओर ठीक बैठेगा ऐसा उन्होने न्यायदेवता के सम्मुख निवेदन किया था।

कारागार में भी मूँज कूटने के अभ्यस्त सावरकर जी ने उस फन्दे का रेशा-रेशा अलग अलग कर न्यायदेवता के सामने रख दिया था। उन्होंने कहा था—जिस रेशे में शक्ति न हो उसमें ऐंठन कैसे आ सकती है। और जिस डोर मे ऐंठन न हो उसको डोर नही कहा जा सकता। और जो डोर न हो वह मुझे फासेगी किस प्रकार?

वास्तव मे न्यायदेवता कभी कभी अन्धी मानी जाती है। परन्तु वह देवता है, उसे अत चक्षु है, उसको स्पर्श ज्ञान है, सवेदना है। अभियोजको द्वारा प्रस्तुत फन्दा को न्यायदेवता ने टटोला। सावरकर जी की सहायता मे उस फन्दे की बुनाई की विलगता को अनुभव किया और आसानी मे ढीले होनेवाले उस फन्दे के खट से टुकडे करके उन्हें अभियोजको के सामने फेंक दिया। न्यायदेवता ने अभियोजको की प्रताडना करते हुए मानो कहा हो—शासन को जा कर बताओ कि मेरी प्रस्थापना किसी को भी और किसी भी फन्दे से फासने के लिये नही की गई है।

सारवकर जी क. सम्बोधित कर न्यायदेवता ने कहा–सावरकर जी ! आप निरपराध है, आप निष्कलंक हैं । अपने राष्ट्र की ही भांति आप भी स्वतन्त्र हैं ।

लाल किले के वाहर प्रचण्ड जन-समुदाय एकत्रित था । वन्धनमुक्त सावरकर जी लाल किले से वाहर आ रहे थे, जन समुदाय ने हिलोरें ली । आकाश में प्रतिध्वनित होने वाले स्वर से उस जनमागर ने सावरकर जी का अभिवादन किया ।

स्वातंत्र्य लक्ष्मी की जय ! अखण्ड भारत अमर रहे !!

स्वातंत्र्यवीर सावरकर की जय !

***

नौ

वियोग के दिन

रात के आठ वज रहे थे, लोहे की कैंचिया जोडने का कार्य जारी था। गरम किये हुए रिवेट घणाघातो से गोलाकार वन रहे थे।

भट्टी के पखे के लिए विजली का प्रवन्ध नही था। दो लडकिया वारी वारी से पखा घुमाती थी तव कही इस प्रकार एक घटे तक भट्टी धधकती रहती थी।

लडकियो की मा कैंचिया जोडने के काम में व्यस्त थी। उसको तनिक अवकाश है यह देखकर उसकी एक लडकी ने उसे धीरे से कहा, "माँ कल हम चावल और वेसन यही लायेंगे ताकि भट्टी पर ही चावल और वेसन वनाकर गरम गरम खाया जा सके।

इससे उसकी माँ को ध्यान में आया कि लडकियो को भूख लगी है, वे थक गई है। घर जा कर रसोई वनाने तक वे अपनी भूख को नही रोक पावेंगी और भूखी ही सो जावेंगी। उसने अपनी लडकी का समाधान करते हुए कहा, "अच्छा कल ऐसा ही करेंगे।"

भट्टी में डाले गये कीले शीघ्र ही लाल हो गये, उन्हें पीटा गया। नौ वजने की प्रतीक्षा न करते हुए, माँ ने काम वन्द कर दिया और लडकियो को लेकर वह घर की ओर चल पडी।

मेरी पत्नी का नाम सिन्धु है। हमारी दो कन्याये है, एक का नाम विद्युल्लता और दूसरी का नाम असिलता। मुझे फरवरी १९४८ में जव सजा हुई थी तो उस समय वडी कन्या की आयु दो वर्ष की थी और छोटी कोई ३-४ मास की। मा और पिता दोनो का ही उत्तरदायित्व सिन्धु ही निभाती थी। इस प्रकार वह कन्याओ का पालन करती थी।

मेरे बड़े भाई, नथूराम से जो छोटे हैं, 'दत्तात्रय उद्यम इंजीनियरिंग' नामक एक उद्योगालय चलाते थे। सिन्धु वहीं रहती थी और 'उद्यम' में काम करती थी।

सगे-सम्बन्धियो में किसी प्रकार की कटुता अथवा दूरत्व न आ जावे इस दृष्टि से सिंधु ने पाच छ वर्षो बाद अलग जाकर रहना आरम्भ कर दिया। कन्याओ को लेकर वह वहाँ रहने लगी। 'प्रताप इंजीनियरिंग' नाम से उसने एक छोटा सा उद्योगालय वहा स्वतन्त्र रूप से चलाना आरम्भ कर दिया।

छोटे-छोटे कामो से स्थायित्व पाकर पाच छ श्रमिक रखने तक 'प्रताप' ने उन्नति कर ली थी। सिन्धु स्वय भी काम करती थी। कैंचिया बनाने का एक बडा काम उसने अपने हाथ में लिया था। परिस्थिति यह थी कि एक निश्चित अवधि में वह कार्य पूर्ण करके देना था। इतना ही नही यदि नियत समय पर काम पूर्ण न हो तो उसके लिये प्रति दिन के हिसाब से कुछ जुर्माना भी था। काम ने अच्छी गति पकडी थी।

और ऐन समय पर कुछ घरेलू समस्या के कारण उस दिन दो श्रमिक काम पर नही आये थे। श्रमिक महत्व के थे। कैंचिया दूसरे दिन दोपहर तक देनी थी। सिन्धु के सम्मुख समस्या खडी थी।

कन्याओ की शाला में ५–६ दिन का अवकाश था। उन्हें साथ लेकर ही सिन्धु उद्योगालय में जाती थी। रहने का स्थान तपकीर गली में था तो उद्योगालय जंगली महाराज मन्दिर के सामने। दोनो स्थानो में लगभग एक मील का अन्तर था।

साडे तीन या चार बजे उठ कर नित्यकर्म से निवृत्त हो भोजन आदि बनाकर, कन्याओं को उठाना, उनको स्नानादि कराना फिर उनको अल्पाहार देना, उनके टिफिनबक्स में भोजन रखना और आठ बजे पूर्व उद्योगालय में पहुच जाना। इस प्रकार का कार्यक्रम नित्य होता था सिन्धु का। वापस आने पर दाल भात पका कर रात्रि का भोजन करती थी। सोने मे पूर्व कन्याओं की पढाई देखना, उनसे कुछ कठस्थ करा लेना यह सब वह नियमित रूप से करती थी।

आने जाने के लिये वाहन का प्रयोग करना उस समय उसकी परिस्थिति के बाहर की बात थी। दोपहर को पैदल घर जाकर भोजन करके आने में समय अधिक नष्ट होता था, इसलिये दोपहर का भोजन वह उद्योगशाला में ही ले जाया करती थी।

जब उद्योगालय जाकर उसको विदित हुआ कि काम के दो विशिष्ट कारीगर आज अनुपस्थित हैं तो उसको कुछ परेशानी हुई। उसने दूसरे श्रमिको को काम सौंपना चाहा। वे कहने लगे, 'हमने तो कभी यह काम किया ही नही है, हम कैसे

करेंगे ?" तब उनने उन्हें समझाया कि 'जिस प्रकार मैं कहूँ उस प्रकार करते जाओ।' भट्टी जलाई गई और कन्याओं को पंखा घुमाने पर लगा दिया। वह स्वयं कभी घन चलाती तो कभी कीलें ठीक स्थान पर लगा कर उस पर सांसा रखती। इस प्रकार करने से रात तक काम कुछ वश में आया और दूसरे दिन दो-तीन घंटे काम करने के बाद कैंचिया पूर्ण होनेवाली थी।

लड़कियों को भी उद्योगशाला के काम में रस आता था। ड्रिलिंग मशीन की लोहे की पट्टी पर पानी डालना, पट्टी तोड़ी जाते समय दूसरे छोर को पकड़ना, कोयला चुनना, भट्टी पर ध्यान रखना इत्यादि कार्य वे चाव से करती थी। परिस्थितिवश खेलने-कूदने की आयु में ही यह खेल विधाता ने उनको प्रदान किया था।

आज का काम उनके लिये मात्र खेलने जैसा नही था। बाल्यावस्था में काम की विचित्रता में भी आनन्द आता है। एक ही काम करते रहने से मन ऊब जाता है। परन्तु आज दिन भर तो एक यही काम करना होगा इसका आभास उनको हो चुका था। हाथ से भी मन यदि अधिक थक गया हो तो भी थकान प्रकट करने का अथवा 'थक गई' शब्द उच्चारण न करने का उन्होंने मन ही मन निश्चय कर लिया था। अपनी कन्याओं को उनकी सामर्थ्य से बाहर का काम करना पड रहा है, इतना उनकी माता जानती थी। किन्तु एक ही दिन का प्रश्न था और फिर उनके श्रम का परिहार भी तो वही करनेवाली थी। काम का महत्व था। इसलिये अपनी पुत्रियो के प्रति माया प्रकट करने का भी उसको आज अवसर नही था। काम के विलम्ब के कारण दण्ड होने पर भी काम देनेवाले (ग्राहको) को जो हानि पहुँचेगी उससे उसकी भरपाई नही हो सकेगी इसकी कसक उसके मन में थी, क्योकि वह काम भी तो अपने ही राष्ट्र के सुरक्षा विभाग का था। देश की सुरक्षा के लिये विधायक दृढता लाने की योजना को सिंधु सहयोग देती थी।

वचन के अनुसार दूसरे दिन कार्य पूर्ण हो गया था। तैयार माल को यथा-स्थान पहुँचवाया गया।

क्रान्तिकारियो को जेल होते ही उनके परिजनो, सम्बन्धियों यहाँ तक कि परिचितों तक को यातनायें प्राप्त होनी आरम्भ हो जाती है। इतिहास की यही परम्परा है। मानव स्वभाव ऐसा है कि ऐसे अवसरो पर निकट सम्बन्धी भी किनारा काट जाते है, सम्बन्ध विच्छेद कर लेते है। क्योकि वे जानते है कि यदि क्रान्तिकारियो के परिवारो से हम सम्बन्ध रखेंगे तो न जाने हमें ही न पकड लिया जाय। ऐसा भय उनके मन में होने के कारण रास्ते में कभी आमने सामने आकर भी परिचय दिखाने से जी चुराते है।

क्योकि भीतियुक्त वायुमण्डल तैयार किया जाता है, इस कारण ही उन व्यक्तियो के मनो में भय रहता है, उसका ही यह परिणाम है, इनमे उनका दोप नही । आज के समाज मे अव जाति से पृथक करने की व्यवस्था नही रही। तदपि शासन इतना कठोर कर दिया जाता है कि उससे एक प्रकार से क्रान्तिकारियो के सम्वन्धियो का दम सा ही घोट दिया जाता है।

गाधी वध काण्ड में लगभग दस सहस्र हिन्दुओ को पकडा गया था। प्रत्येक व्यक्ति उस समय यही सोचता था कि कही उसका भी सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार गाधी वध काण्ड से न जोडा जाय। जिनको पकडा गया था वे भी सोचते थे कि न जाने किस प्रकार से उनका सम्वन्ध गाधी वध मे जोडा जाता है। लोगो को पकडने के वहाने भी अनेक प्रकार के थे और विचित्र भी। कुछ तो ऐसे लोगो को पकडा गया था जो विलकुल ही मामूली थे। किसी के घर पर अखण्ड भारत का मानचित्र मिला, किसी के घर पर सघ की टोपी टगी देखी गई, किसी के पास सावरकर जी का कोई ग्रन्थ दिखाई दे गया, किसी के घर में अनेक देशभक्तो के चित्र टगे दिखाई दे गये किन्तु उनमें गाधी के चित्र को नही देखा किसी ने किसी को अपने पत्र में कही से गोडसे (मराठी में क्रिया विशेषण है गोड-से) अर्थात् मीठा-सा शब्द का प्रयोग किया हुआ, किसी के घर मे एक से अधिक लाठिया दिखाई दे गई, वह लाठिया सघ की थी ऐसा उनके पडोसियो ने वता दिया, और जिन घरो में इस प्रकार का कुछ भी न मिला हो, किन्तु किसी द्वेप के कारण उनको पकडना हो तो यह सोचा गया कि जिन जिन घरो मे हिन्दुत्व के स्वत्व की रक्षा की जाती है ऐसा सशय था उन घरो तक के लोगो को शासन ने अपने आधीन कर लिया।

पकडे हुए लोगो में से प्रत्येक का किसी न किसी प्रकार गाधी वध से संबंध जोड कर निर्णय करने का कार्य यदि न्यायालय पर सौंपा जाता तो मैं सोचता हू कि यह कार्य आठ दस वर्ष तक भी पूर्ण नही हो पाता। पकडे गये लोगो में से अनेक ऐसे भी थे जिनका शासन के वरिष्ठ अधिकारियो से भी कुछ न कुछ सम्वन्ध निकलता था, ऐसी स्थिति में वीरवल की भाति कुछ रेशम के फन्दे भी तैयार करके रखने पडते थे। (जैसे सोने का शूल राजाधिराज को, क्योकि वह भी तो किसी का जवाई है)।

परन्तु पकडे हुए लोगो में से सभी को न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत नही किया गया। शासन का कार्य केवल आतक फैलाना था, वह उसमें सफल हुई थी। 'नथूराम से अथवा पडयन्त्रकारियो से हमारा सम्वन्ध नही' यह वात अनेको ने चिल्ला-चिल्लाकर और किसी ने साधारण रूप में कही थी। किसी ने तो विना पूछे ही यह कह दिया कि वह मैं नही हूँ।' उस समय नथूराम से सम्वन्ध

का अर्थ था गाधी वध से सम्बन्ध। किन्तु नथूराम से सम्बन्ध गाधी हत्या से सम्बन्ध यह एक नियम नही हो सकता। अथवा यह अनिवार्य नही कि नथूराम से सम्बन्ध का अभिप्राय गाधी वध से भी सम्बन्ध, इतना विवेकपूर्ण विचार करने की मन स्थिति उस समय लोगो की नही रही थी।

क्रान्तिकारी के विषय मे ही यदि कहना हो तो यह सभी जानते है कि जिस समय क्रान्तिकारी किसी प्रकार का कार्य करने का निश्चय कर लेता है तो वह तभी ठान लेता है कि वह अग्नि से खेल रहा है और उसका जीवन उसके अधिकार में नही है, यह बात वह उस क्षण से ही गाठ बाध लेता है। तब उसके हाथ में रह जाता है तो केवल इतना ही कि इस जीवन का जितना अधिक से अधिक उपयोग उस सुकार्य के लिये हो सके, जिसका उसने निश्चय किया है, उतना करने का यत्न करना। माता-पिता का वात्सल्य, पत्नी का प्रेम, सम्बन्धियो अथवा परिजनो का मोह, यह सब नाते बन्धन वह तोड देता है। जिस समय कोई सैनिक युद्ध क्षेत्र के लिये प्रस्थान करता है उस समय उसके घरवालो को एक विशिष्ट प्रकार की कल्पना एव अनुभूति रहती है। और वे उस समय उस सम्बन्ध में जितनी परिसीमा तक सोच सकते है उसकी भी कल्पना कर लेते है। किन्तु क्रान्तिकारी जब किसी कार्य पर जाता है तो वह इस स्थिति में नही होता कि अपने परिजनो को उससे परिचित करावे। जब वह घर से निकलता है तो घर का त्याग करके ही निकलता है। उसके घर से जाने के बाद उसके घर का क्या होगा इसकी चिन्ता उसको नही रहती। 'सन्यास दीक्षा' तो लेनी थी परन्तु भैस वियाने वाली है, इसलिये रुक गया हू। इस प्रकार की बात जो करेगा उसके पाव कभी घर से बाहर निकल ही नही सकते। जिसको बाहर निकालना होता है उसका जी घर की चीजो पर अटका नही रहता।

किसी न किसी सीमा तक क्रान्तिकारियो का इतिहास आज या कल, लोगो के सामने आता ही है। और उनके कृत्य की पृष्ठभूमि मे अवस्थित भावना का भी आदर होता ही है। एक समय के 'सिर फिरे' कालान्तर में उसी समाज की भावी पीढी में राष्ट्रभक्तो के नाते' सम्मानित किये जाते है। किन्तु जिन्होने उनको सिरफिरे कहा था उस पूर्व पीढी को भी वे दोष नही देते। क्योकि वे जानते है कि भय के कारण, आतक के परिणाम के कारण उनको वैसा कहना पडा था।

जिस परिवार से क्रान्तिकारी सम्बन्धित होते है उनके पीछे उस घर का क्या होता है, उनके आश्रितो की अवस्था क्या होती है, साधारण रूप से इस ओर समाज का ध्यान नही जाता। वस्तुस्थिति तो यह होती है कि क्रान्तिकारी स्वय जो यातनायें सहता है उतनी ही यातनायें उसके सम्बन्धियो अथवा आश्रितो को

भी सहनी पडती है। उनके चारो ओर आतक का वडवानल प्रज्वलित रहता उनको कोई अपने घर में नही आने देता, अपने द्वार की ओर झाकने की भी अनुमति नही देता। परिचित होने से इन्कार कर देते है। वे दूर से ही किनारा काट जाते है। इस प्रकार एक प्रकार से अलिखित सा बहिष्कार उन पर लाद दिया जाता है।

वीरान रेगिस्तानी मैदानो में भी कभी कभी नैसर्गिक उर्वरा भूमि के लक्षण दिखाई देने लगते है। उसके आस पास हरियाली दीखती है, ऐसी ससार की विचित्र रचना है। क्रान्तिकारियो के सम्वन्धियो को अपनानेवाले लोग वडवानल का भय रखते हुए भी कभी कभी सामने खडे दिखाई दे जाते है, यह भी ससार की उस रचना के अनुसार ही इतिहास की विस्मयकारी परम्परा है। अपेक्षा न होते हुए भी कोई पास आता है, कहता है—"अपने को निराश्रित मत समझो, हम तुम्हारे साथ है, तुम्हारा तो भवितव्य होगा उसमें हम भी साथी वनेंगे, निराश होने की आवश्यकता नही। साहस एव धैर्य से जीवन विताने से सव काम सुलझ जाते है।" तव लाचारी एवं अनिच्छा से ऐसे व्यक्तियो के आश्रय से चलना पड जाता है।

तव आश्रयार्थी मन में सोचने लगता है कि जहाँ अधिकार के नाते वे जा सकते थे उन लोगो ने तो तुरत उनसे किनारा काट लिया और जिनका कदाचित दूर का सम्वन्ध तो क्या परिचय मात्र होगा उन्होंने सहारा दिया। स्वाभिमानी मन इस प्रकार सोचता तो है किन्तु उपकार का वोझ सिर पर होने पर भी वह उसको प्रकट नही कर सकता।

कई सम्वन्धियो को गाधी हत्या का वहाना करके महाराष्ट्र में ही निर्वासित किया गया। ऐसे अनेक जनो ने इस प्रकार के अनुभव किये हैं।

वडे भाई श्री दत्तात्रय ने 'उद्यम इंजीनियरिंग' उद्योगशाला को गाधी वध से कई दिन पूर्व लिमिटेड वनाया था। विचार में कई योजनाये थी, उसी दृष्टि से कार्य भी किया जाने लगा था। किन्तु गाधी वध के निमित्त श्री दत्तात्रय को भी वन्दी वना लिया गया था। आठ मास तक उनको कारावास में रखा। इस अवधि में उद्योगशाला नष्ट हो गई। मुक्त होने पर उन्होंने नया प्रयास किया। नया प्रयास सफल होने के लक्षण दिखाई दिये। यद्यपि कई कार्य हानि उठाकर भी करने पडे। इसमे प्रगति में वाधा आती रही। आपत्तियो के एक साथ एकत्रित होने पर उस 'मर्यादित' उद्योगशाला का स्वेच्छिक अवसायन जैसा (व्हालटरी लिक्विडेशन जैसा) अपमानजनक अवसर उत्पन्न हुआ। स्वय रोपे हुए वृक्ष को अन्यो से खाद पानी मँगाकर वढाने के वाद फल की प्रतीक्षा करने की शक्ति न रहने के कारण अपने हाथ से ही उस वृक्ष को तोडकर उस सूखे लकड़ी

के मूल्यहीन टुकडे को बाँटने की बारी आये इससे जो दुःख होता है वह उस वृक्ष को रोपनेवाला ही जानता है। तब उस पर आरोप लगाया जाता है कि दूसरे के धन का उचित उपयोग नही किया गया। किन्तु इस आरोप का कोई उत्तर तो दिया ही नही जा सकता। पराजय की टीस मन में होती है। व्यवसाय वृद्धि की दृष्टि से सार्वजनिक रूप से भी ऐसी घटनाओ का अवाछनीय परिणाम होता है। नया उद्योग करनेवाले पर फिर विश्वास नही किया जाता।

गाधी वध के बाद घर छोडने पर बाध्य होकर मेरी पत्नी कई दिन तक अपनी कन्याओ को लेकर अपने मायके में रही। मायके के लोगों ने उनको निडरता से वहाँ रख लिया। कुछ दिनो तक तो उन्होंने मेरे माता पिता को भी अपने पास रखा था। कई मास के बाद सौ० शान्ताबाई गोखले ने मेरे माता-पिता को अपने घर में रहने के लिये स्थान दिया। उस समय की उनकी वह सहायता ही अमूल्य समझी जाती है।

गाधी वध प्रकरण की खोज के लिये हम सभी आरोपियो को बम्बई गुप्तचर विभाग के कार्यालय में रखा गया था। घर के लोगों को मिलने की स्वतन्त्रता होती थी। पहली एक दो मुलाकात में घर का समाचार मिला था। अभी तक सबो के घरो के लोगो की मुलाकातें सपन्न नही हुई थी। मिलकर नही गये थे। इससे सभी को अपने घर की स्थिति समझ मे नही आई थी।

श्री दत्तात्रय के बन्दी बनाये जाने के बाद घर का कारोबार उनकी पत्नी सरोजिनी कर्तृत्व के साथ देख रही थी। श्री गोविंद हम बन्धुओं में सबसे छोटा था, वह भी 'उद्यम' मे काम करता था। अपनी शक्ति के अनुसार वह भी काम कर ही रहा था।

सिन्धु के पास जो पैसे थे वे एक दो मुलाकातो मे ही समाप्त हो गये थे।

अदालती कार्यवाही की व्यवस्था आदि के लिये और अधिक मुलाकातों की आवश्यकता थी। अपने मायके मे पैसे मागना उनको अच्छा नही लगता था। अन्य कोई उद्योग करना उस समय सम्भव न होने के कारण उसने घर में कपड़े धोने और पानी भरने जैसे छोटे-छोटे दो तीन काम आरम्भ कर दिये।

कुछ पंक्तियां सुन ली थी। उन्होंने अपनी पत्नी के पास जा कर कहा, जब वह लडकी कपडे धो चुके तो उसे मेरे पास भेज देना।

उस स्त्री ने, जिसे सिन्धु आत्याबाई अर्थात् फूफी कहती थी, अपने पति का सन्देश उसको सुनाया। शायद कुछ और धोने के लिये होगा, इसका विचारकर सिन्धु उनके पास चली गई। किन्तु वस्त्र तो धोने के लिये थे नही। अण्णा को कुछ कहना ही था। उन्होंने सिन्धु से पूछा, "तुम क्या गा रही थी?"

"कब? मैं तो कुछ नही गा रही थी।"

'कुछ समय पूर्व तुम कौन सी कविता गुनगुना रहीं थी?

"अच्छा, उसके विषय में पूछ रहे हैं। कुछ तो भी गुनगुनाते रहने से काम की थकावट अनुभव नही होती और कार्य भी शीघ्रता ने पूर्ण हो जाता है, कम से कम ऐसा प्रतीत तो होता ही है।"

"कौन सी कविता थी?

"दि मिलर औफ दि डी।"

"पूरी कविता आती है?"

"आती है।"

"सुनाओ सही।"

सिन्धु ने सम्पूर्ण कविता सुना दी। उसके स्पष्ट उच्चारण, उत्कृष्ट स्वर से अण्णा को विस्मय हुआ। वे बोले, "यह कब पढी थी?"

"हमारी अंग्रेजी की चौथी कक्षा की पुस्तक में थी।"

"फिर आगे क्यो नही पढी?"

"पढी थी।

"कितना पढा? "मैट्रिक तक?"

"जी हाँ।"

फिर क्या कॉलिज नही जा सकी?"

"कॉलिज गई थी।"

"मैंने बी० ए० किया है।

सिन्धु की प्रत्येक बात से अण्णा का विस्मय क्षण क्षण बढता जाता था। उपाधि प्राप्त लडकी कपडे धोने का कार्य कर रही है, यह क्या मामला है। उनकी समझ मे बात नही आ रही थी। जिस प्रकार मजदूर लोग टालमटोली से काम करते है उस प्रकार का काम यह लडकी नही करती," ऐसा अण्णाकी पत्नी उनको बता चुकी थी। स्वास्थ्य की पूछताछ, और सेवा सुश्रुषा भी वह घरके व्यक्ति की हो भांति करती है, यह भी उनके सुनने मे आया था। इस सुशील कन्या पर

किसी न किसी प्रकार की आपत्ति आई होगी, ऐसा अण्णासाहव ने विचार किया। इससे पूर्व उन्होने उसका पता वगैरह कुछ भी नही पूछा था। किन्तु आज पूछे विना न रह सके। उन्होने पूछा, "तुम कहाँ रहती हो ?

सिन्धु ने अपने रहने का स्थान वता दिया। अण्णा को सन्तोष नही हुआ। लडकी विवाहित दीखती थी। कुछ और जानने के उद्देश्य से अधूरा प्रश्न किया, "तुम्हारे पति ?"

"वे कारावास में है।"

"कारावास में ? क्यो ?"

"गाधी वध के वाद जो लोग पकडे गये थे उनमें से एक वे भी है।"

"तुम्हारा पूरा नाम क्या है ?"

"सिन्धु गोपाल गोडसे।"

"यानी-यानी गोपाल गोडसे की पत्नी हो तुम ? नथूराम की भाभी ?"

"जी हा।"

"कितना संकट है यह " मानो अपने मन में अण्णासाहव कह रहे हो। इसके वाद ही उनकी आँखें झरने लगी और सिसकिया निकलने लगी। रोना वेकार हो गया।

सिन्धु को वहाँ खडा रहना कठिन प्रतीत होने लगा। दो-तीन मिनट रुक कर उसने पूछा, 'अच्छा तो मैं जाऊँ ?"

हाथ से ही उन्होने रुकने का इशारा किया। कुछ क्षणो में ही उन्होने अपने दु खावेग को सयत किया, आँखें पोछी और भर्रायी आवाज मे वे वोले, "तुम यह काम क्यो करती हो ?"

"गृहस्थी है, मुझे दो कन्यायें है। अपने पति को मिलने के लिये भी वम्बई जाना पडता है।

कील पर टगे कोट की जेव में से अण्णा ने वीस रुपये निकाले और वोले, "तुम यह काम मत करो, मैं तुम्हें हर मास पैसे देता जाऊगा।"

"मुझे वैसे पैसे नही चाहिये। कम से कम आज की स्थिति में तो चाहिये ही नही। मैं सुशिक्षिता हूँ, सुसस्कृता हूँ। समय पर शारीरिक श्रम से और कभी वुद्धि श्रम से स्वावलम्विनी वनने की मेरी क्षमता है। सप्राप्त विपत्ति मे मुझे यदि टिका रहना न आया तो फिर मेरी शिक्षा दीक्षा का क्या उपयोग ? मैंने कभी यह नही सोचा कि शारीरिक श्रम का कार्य तुच्छ होता है और वौद्धिक श्रम का कार्य श्रेष्ठ। मेरी ऐसी धारणा कभी नही रही।"

अण्णा ने स्वय को सम्भाल लिया। वे बोले, "मैं तुम्हे ये पैसे वैसे ही नही दे रहा। मेरे कुछ कानूनी कागज-पत्र है। तुम उनकी प्रतिलीपि बना कर दे दो। किसी न किसी को तो मुझे वह काम देना ही था, वह तुम कर दो।"

"मैं आनन्द से वह कार्य करूँगी और अच्छी तरह कर दूगी।'

"मुझे ऐसा ही विश्वास है।" वे बोले और फिर कहने लगे, "परन्तु कल से तुम ये कपडे धोने के लिये मत आना।

"क्या ? आपके ही शब्दो में आपके यहाँ नही तो किसी न किसी न किसी के यहा तो मैं यह काम करू गी ही। आत्याबाई (फूफी) को भी अब अच्छा लगने लगा है। उन्हें मेरे थोडे से सम्पर्क मे ही उत्साह प्रतीत होता है ऐसा वे कहती है। अभी पन्द्रह दिन तक मैं और आऊगी तबतक वे पूर्ण स्वस्थ हो जावेंगी। बाद में फिर मैं आना बन्द कर दू गी।"

इसके बाद सिन्धु को उस घर की महरी नही अपितु घर की ही एक सदस्या के रूप में माना जाने लगा था।

नौकरी के लिये सिन्धु कई सस्थाओ में गई थी। कई स्थानो पर प्रथम उसकी मौखिक परीक्षा ली जाती थी, उसमें वह सफल होती थी। निर्णय लेने वाले अधिकारी और ही होते थे। जब वे देखते कि नाम गोडसे है और उस पर भी गोपाल गोडसे की पत्नी, इस कारण उसको अस्वीकार कर देते थे।

एक सस्था के एक वरिष्ठ अधिकारी कुछ सहानुभूति रखनेवाले थे। मौखिक परीक्षा के बाद उन्होने सिन्धु को भेंट के लिये बुलाया। भेंट में वे तुरन्त ही बोले "आप अपने मायके का नाम इस समय धारण कर लीजिये और यहा पर काम आरम्भ कर दीजिये।"

सिंधु ने कहा, "आपकी इस सहानुभूति के लिये धन्यवाद। किन्तु मैंने गोडसे बनी रहने के लिये ही विवाह किया था और वही मैं अन्ततक बनी भी रहूँगी। यदि मेरा पतन हुआ तो वह भी गोडसे नाम से ही होगा उद्धार हुआ तो वह भी उसी नाम से होगा। ऐसा लगता है कि गोडसे नाम से आपकी सस्था को भी आपत्ति आने का भय आपको है। आप अपनी सस्था को निरपवाद रहने दीजिये। आपकी सहानुभूति के लिये धन्यवाद। मैं चलती हूं। नमस्कार।'

एक बार दीपावली के अवसर पर सिन्धु को एक पत्र आया। खोलकर देखा तो उसमें पच्चीस रुपये और एक पत्र था। वह उसी वरिष्ठ अधिकारी का था। उन्होंने उस पूर्व घटना का स्मरण कराया था और उस अवसर पर वे

उसकी सहायता नही कर सके थे इसका खेद भी व्यक्त किया। उसके साहस की प्रशसा की थी और दीवाली की भेंट के रूप मे भेजे गये पचीस रुपये स्वीकार करने की प्रार्थना की थी।

गाधी वध पडयन्त्र के अभियुक्त को न्यायिक सहायता देने के लिये एक समिति का गठन किया गया था। समिति का निश्चय था कि धन एकत्रित कर विधि विशेषज्ञो की सहायता प्राप्त की जाय। स्व० ल० व० भोपटकर, स्व० जमनादास मेहता, स्व० रामभाऊ मण्डलिक, स्व० ज० स० करदीकर, श्री ग० वि० केतकर, श्री ज० श्री० तिलक आदि लोगो ने उसमे अपना योगदान दिया था।

बचाव पक्ष के वकीलो की व्यवस्था इस निधि में से हुई थी। लगभग एक लक्ष रुपयो का आदान प्रदान हुआ। इस निधि का निर्देश करते हुए श्री ग० वि० केतकर ने एक बार कहा था "यही एक निधि ऐसी थी जिसके लिये अपने दिये हुए धन की रसीद भी नही मागी गयी।"

कभी-कभी आगन्तुक रूप से श्रेय लेने का प्रयत्न कई लोगो का होता है। ऐसे प्रयत्न मे अवलम्बितो को कष्ट ही पहुँचता है। सिन्धु के साथ इस प्रकार की कई घटनायें हुई थी।

न्याय सहाय्य के लिये निधि एकत्रित की जाती थी। आरोपी कितने होगे उस समय इसकी ठीक कल्पना नही थी। न्याय सहाय्य का वृत्त समझने के लिये सिन्धु एक बार 'केसरी' कार्यालय में गई। उस समय तात्या अर्थात् श्री ज० स० करन्दीकर बाहर निकल रहे थे। सिंधु को देखकर वे रुक गये। उन्होने पूछा, "सिन्धु ! क्या तुम्हारी साडी फट गई है ? खरीदनी है ?"

प्रश्न नितान्त अनपेक्षित था। सिन्धु को भलीभाति ज्ञान था कि उसकी साडी पुरानी होने पर भी फटी हुई नही है। उसने प्रतिप्रश्न किया, "किसने कहा ?"

"अभी निधि के सम्बन्धित लोगो की बैठक हुई थी. किसी ने उस समय इस प्रकार का प्रस्ताव रखा था कि तुम्हारी सास तथा तुम्हारे लिये साडी खरीदने के लिये निधि में से चालीस रुपये दिये जावें।"

सिन्धु को विस्मय हुआ। उसने पूछा, "क्या निर्णय लिया गया ?"

"कोई निर्णय नही लिया। अगली बैठक मे इसका निश्चय होगा।"

सिन्धु ने कहा, "यह देखिये, अभी तो तीन मास ही हुए है। इतने में ही साडियो के विदीर्ण होने और उनके लिये याचना करने का समय नही आया। अपने जैसे घरो में केवल एक-दो ही साडिया नही हुआ करती और हमारे पुरुष लोग हमारी साडिया लेकर तो दिल्ली गये नही थे।"

तात्या खुले मन से हसे और बोले, "ठीक है। पर कभी ऐसी अड़चन, आवे तो संकोच मत करना।"

सिन्धु ने कहा, "तात्या! मुझे आपके या सम्बन्धित निधि के किसी व्यक्ति के पास जाने के लिये किसी मध्यस्थ की आवश्यकता होगी क्या? यदि किसी ने स्वेच्छा से कभी ऐसा प्रस्ताव किया तो उसकी छानबीन करवा लीजियेगा। अन्यथा कही ऐसा न हो कि न्याय्य सहायता के लिये एकत्रित निधि न्याय सहायता का अवसर आने से पूर्व ही फटी साडियो में न उलझ जाय। क्योकि जो आरोपी होगे उनसे सम्बन्धित हम दो ही, (मैं और मेरी सास) ही स्त्रियाँ नही होगी।

सामाजिक निधि को जिस कार्य के लिये एकत्रित किया गया है उसका उपयोग उसके लिये ही होना चाहिये ऐसा तत्व सिन्धु ने अपने कथन से स्पष्ट किया था। तात्या को इस बात से बडी प्रसन्नता हुई। इतने सकट की परिस्थिति में यह लडकी होते हुए भी उसमें अभिव्यक्ति के तीनो लक्षण अभिधा, व्यजना और लक्षणा यथावसर विद्यमान है और उसका तेज तनिक भी क्षीण नही हुआ इससे उन्हे विशेष आनन्द एव विस्मय हुआ।

सिन्धु ने अपना स्वतन्त्र उद्योग खडा करने का निश्चय किया। उद्योगशाला के लिये और रहने के लिये स्थान देखा। उसने उद्योग प्रारम्भ कर दिया। ऐसा भारी उद्योग अथवा व्यवसाय आजतक किसी महिला ने किया हो ऐसा कोई अन्य उदाहरण ज्ञात नही है। इससे कभी-कभी वह हतोत्साह भी हो जाया करती थी। किन्तु उसने थोडे ही दिनो में यह सिद्ध कर दिया कि ऐसा उद्योग केवल पुरुप वर्ग का ही एकस्व है, ऐसी बात नही है। उस क्षेत्र में व्यवसाय करने वाले लोगो ने देखा कि 'प्रताप उद्योगालय' का कार्य निम्न श्रेणी का कभी नही होता।

स्वार्थी सहानुभूति दिखाने की पद्धति कई लोगो की होती है। 'आपकी दशा को ध्यान में रख कर यह कार्य आपको दिया जाता है, इसलिये इस भाव से ही आप इसे ग्रहण कीजिये।" ऐसा आग्रह करनेवाले भी लोग होते है। अपने कर्तृत्व और कार्य की सिद्धता पर सिंधु का विश्वास था। ऐसे अवसरो पर वह कह देती "मेरी दशा को देखने की आवश्यकता नही। वस्तु की श्रेष्ठता अथवा कार्य की उत्कृष्टता तथा मूल्य की उपयुक्तता यदि आपको प्रतीत हो तो हमारे साथ व्यवहार कीजिये। काम में यदि दोप रहा तो उसे सुधारने का दायित्व मेरा है। यदि इसके लिये हानि उठाना पडे तो वह मैं उठा सकती हूँ।"

कभी-कभी किसी सस्था के लिये 'प्रताप' ने विना लाभ के भी काम किया है। केवल इतना ही नही कई संस्थाओ को निर्मूल्य वस्तुएँ भी बना कर दी है।

समीपस्थ एक गाधी स्मारक सस्था ने आठ सौ रुपयो का एक काम देने की इच्छा व्यक्त की। 'सार्वजनिक सस्था होने के कारण आप अपने सहयोग के रूप में विना पारिश्रमिक लिये यह कार्य कर दीजिये, क्योकि आपने अमुक सस्था के लिये ऐसा किया था', ऐसा उसके सचालको ने कहा।

सिन्धु ने कहा, उस सस्था की स्थिति निर्धन है। आपकी वह स्थिति नही है। तो भी मैं एक शर्त पर विना मूल्य काम करके देने के लिये तैयार हूँ।

कौन सी शर्त ?

मैं उस पर यह अंकित करवाऊगी 'हुतात्मा पण्डित नथूराम गोडसे और नाना आपटे की स्मृति में भेंट।' यदि आपको स्वीकार हो तो बताइये।

सचालक का कथन था, "यह कैसे सम्भव है ? आप तो उनके कृत्य की प्रशसा कर रही हैं।"

सिन्धु ने कहा, "कृत्य के पीछे को भावना की प्रशसा होती है। उन्होने जो अवैध कृत्य किया था उसके लिए तो उनको न्यायोचित मृत्यु दण्ड मिल ही गया। परन्तु उन्होने कुछ अराष्ट्रीय कृत्य किया ऐसा उन पर कोई आरोप नही था। अराष्ट्रीय कृत्य के पीछे की भावना निश्चय ही दोषार्ह है। जितनी आपकी सस्था सार्वजनिक है उतनी ही उनकी मृत्यु भी सार्वजनिक थी यह आप जानते ही है। आपकी जानकारी के लिये कहती हूँ स्वय फासी पर चढने से पूर्व पण्डित नथूराम की एक राष्ट्रीय सार्वजनिक समारोह के लिये दी हुई १०१ रुपये की भेंट को शासनाविष्ठित व्यक्तियो ने स्वीकार किया है। आप विना मूल्य काम मागते है, आपके पास पैसे होते हुए भी इस प्रकार का काम मागते है, और आप यह भी देखते है कि इस उद्योग से मेरा पेट भी अच्छी तरह नही भर पाता है फिर भी आप विना मूल्य काम मागते हैं, तभी यह शर्त का प्रश्न उपस्थित हुआ है।"

"अर्थात् काम टालने के लिये आपका यह सब कथन है ?"

"आप गलती कर रहे है। आप पैसे दीजिये। तब शर्त का कोई प्रश्न ही नही। काम करने के लिये ही तो मैंने यह कारोवार किया है।"

"शर्त यदि मान ली गई तो आप काम कब तक करके दे देंगी ?"

"चार दिन के वाद जब भी आप कहेंगे उस दिन आपको मिल जावेगा।"

"आपको शर्त हम मण्डल के सम्मुख रखेंगे, उसके निर्णय से आपको अवगत कर देंगे।" ऐसा कह कर वे लोग चले गये।

दो दिन वाद वे लोग फिर आये। उन्होने कहा, "मण्डल का निश्चय है कि हमें आपसे ही काम करवाना है, किन्तु आपकी शर्त पर नही अपितु मूल्य चुका कर।"

निश्चित अवधि में 'प्रताप' ने उनका कार्य पूर्ण करके दिया। फिर आस-पास की एक दो और भी गाधी स्मारक संस्थाओ का कार्य 'प्रताप' ने किया। उनके संचालको में सकुचित वृत्ति नही थी। शासकीय सस्थाओ ने भी किसी प्रकार का भेदभाव न रखते हुए 'प्रताप' से कार्य करवाया था।

व्यवसाय के यश के लिये उसके स्वामी का कृर्तृत्व कारण होता है किन्तु वही एकमेव कारण होता है ऐसी वात नही है। उसके कर्तृत्व को अवसर मिलना भी तो अनेको अन्य वातो पर निर्भर रहता है। समाज के व्यक्ति एक दूसरे की सहानुभूति के सहारे ही खडे रहते है। सिंवु का उद्योग स्थिर रह सका इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण वात उसके उद्योग को समाज द्वारा मिला हुआ प्रामाणिक प्रोत्साहन था। ऐसी प्रमाणिक सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियो के कारण ही उसके कर्तृत्व को अवसर मिला। इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नही।

जिस तपकीर गली मे सिन्धु रहती थी वहा का वातावरण और पास-पडोस अच्छा नही था। किसी अन्य स्थान पर कही जगह नही मिलती थी। यदि कही स्थान मिलता भी तो उतने पैसे पास में नही होते थे जिससे कि उसको लिया जा सके। श्री भाऊराव (न०गो०) अभ्यकर जी का घर जगली महाराज के रास्ते पर था। उस घर में एक मजिल का निर्माण किया जा रहा था। सिन्धु ने अनुरोध किया तो उन्होने उसको उसमें स्थान दे दिया।

श्री भाऊराव की पत्नी में—भाभी—और सिन्धु में मित्रता थी। सान्निध्य से वह मित्रता गहरी हुई। उद्योगालय और घर सम्भालने का दुगुना बोझ सिन्धु पर था। इस वात को स्मरण रखते हुए ही भाऊराव ने सिन्धु की सहायता की थी। अभ्यकर दम्पति सिन्धु को अपनी कन्या समझते थे।

मेरी मुक्ति के लिये सिन्धु सरकारी अधिकारियो के पास आया जाया करती थी। यशवन्तराव चह्वाण उस समय वम्बई के मुख्य मन्त्री थे। वन्दी का वर्ताव सव दृष्टि से अच्छा है, ऐसा मुक्त कण्ठ से कहा जाता था। किन्तु मुक्ति के प्रश्न को केवल टाला जा रहा था। सिन्धु ने एक वार यशवन्तराव से भेंट में कहा, "ऐसा दिखता है कि आप उमावाई की तरह मेरी भी अवस्था करनेवाले है। कल आपकी सीमा पर आक्रमण हुआ तो युद्ध के लिये देने को मेरे पास लड़का नही है।"

—वडे वाजीराव के सरदार खण्डेराव दाभाडे लडाई में मारे गये थे। एक लडाई पर जाते समय रास्ते में वाजीराव खण्डेराव की पत्नी उमावाई के पास ठहरे थे। विदा होते समय उमावाई की आँखो में आसू आ गये। वाजीराव ने सान्त्वना दी, "उमावाई! जो कुछ हुआ उसको टालने का कोई उपाय नही है। अव तो साहस और धैर्य से ही काम लेना होगा।"

तब उमाबाई ने कहा था, "श्रीमंत ! आप स्वयं मुझे सान्त्वना देने के लिये आये है। पति निधन का दु ख मनाते हुए मैं कैसे बैठूं ? आज आप युद्ध के लिये जा रहे हैं, आपके साथ भेजने के लिये मेरे पास लडका नही है । मुझे तो दु ख इस बात का है।"

इतिहास की इस बात को स्मरण कर सिन्धु के मुख से निकले उद्‌गारो से यशवन्तराव का मन भी एक बार हिलोर गया था । परन्तु वह तो यशवन्तराव नामक व्यक्ति का मन उद्विग्न हुआ था न कि बम्बई के मुख्य मन्त्री यशवन्तराव चह्वाण का।

गोआ का मुक्ति सग्राम जारी था। अनेक युवको ने उसमें भाग लिया था। सात लोगो के एक जत्थे मे नारायण दत्तात्रय कुलकर्णी नामक एक युवक भी था। सिन्धु नारायण के (नाना के) पडोस में रहती थी। नाना का उसके यहाँ आना-जाना चलता था। उद्योग के लिये वह वर्धा से पूना आकर रहने लगा था। परिश्रमी मिलनसार और लम्बे चौडे डील डौलवाले स्वच्छन्द स्वभाव के इस व्यक्ति में भी एक कसक थी। उसको बचपन में मा का वात्सल्य प्राप्त नही हुआ था । सवेदनशील मन को कई प्रसगो में विशेषतया बहुत दु ख अथवा आनन्द के प्रसगों मे इस बात की त्रुटि का तीव्रता से अनुभव होता है। उस समय "तीन लोक का स्वामी भी मा के अभाव में भिक्षुक सा बन जाता है।" तब सामान्य व्यक्ति की तो बात ही क्या।

सिन्धु ने वात्सल्य की पूर्ति की। नाना हमारे घर में आज भी मुँह बोले पुत्र के नाते से रहता है।

१९६२ मे मेरा तबादला नासिक से औरंगाबाद बन्दीगृह में की गई। सर्वोच्च न्यायालय में मेरा एक आवेदन था। उसके सम्बन्ध मे मुझे परामर्श चाहिये था। उसके लिये कई पुस्तकें भी मगानी थी। उसके लिये सिन्धु को हमसे दो तीन बार मुलाकात करना आवश्यक था ।

इसकी अनुज्ञा के लिये सिन्धु इन्सपेक्टर जनरल प्रिझनर्स से मिली। उन्होने कहा, "गोडसे हमारे नियम नही मानते, वे नियमो के विरुद्ध बर्ताव करते है । हमसे झगडते हैं, इसलिये हमने उन्हे औरगाबाद भेजा है। अगर ऐसा ही उनका बर्ताव रहा तो इससे भी कडे उपाय हमें करने पडेगे। कोई उनको समझावे। अधिक मुलाकात का समय हम नही दे सकते।"

सिन्धु जानती थी कि वे एक ही घर के घटक हैं और उस पर हुए अन्याय का उन पर भी प्रभाव पडेगा। उसने कहा, "आदर्शयुक्त व्यवहार का उदाहरण प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति कहकर जिनके विषय में मन्त्रियो से लेकर नीचे तक के अधिकारियो को कहा जाता हो, उसका व्यवहार सहसा विपरीत कैसे हो गया,

क्या इसका किसी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है ? उसकी जडमें कही न कही कुछ दोप है उसके बिना कोई भी व्यक्ति अपने वर्ताव में सहसा इस प्रकार का परिवर्तन नही ला सकता। उस व्यक्ति को परेशान करके आप उसके वर्ताव में सुधार की किस प्रकार अपेक्षा रखते है ? छल करने से अन्याय का निराकरण नही होगा और न बिगड़ा हुआ व्यक्ति ही छल-बल से ठीक हो सकता है।

"भूपण कहिये अथवा दूपण, १९४८ की कई घटनाओ से पागल बन कर जिन्होने सर हथेली पर रक्खे, फिर वह सिर हथेली पर रहा या जमीन पर गिर गया इसकी परवाह वे नही करेंगे, इस बात को आप ध्यान में रखिये। छल से मुक्ति पाने के लिये अपना जीवन किस प्रकार परिपूर्ण होना चाहिये यह बन्दी भली भांति जानते है, और आप भी इस तथ्य से अवगत है। छल के लिये बन्दी तो आपके अधिकार में हो, और मैं उसको उपदेश करूं, इसे आप किस प्रकार व्यवहार्य मानते है ? यदि आप यह अपेक्षा रखते हो तो मुझे मुलाकात का अवसर नही चाहिये।"

यह सुनकर अधिकारियो के स्वर में कुछ नम्रता आई। अपनी इस भेंट का वृत्तान्त मिन्धु ने मुझे अपने दि० १-४-६२ के पत्र में लिखा था।

मुझे तो वास्तव मे फंसाया गया था। बन्दीगृह के अधीक्षको की आज्ञानुसार और उनके निर्देशन पर यदि बन्दी कार्य करता है तो उसके परिणाम स्वरूप उसकी कारागार की अवधि में राज्य की ओर से छूट मिलती है। उसको प्राप्त हुई छूट उसके वर्ताव की दिग्दर्शक होती है। अमुक कार्य शीघ्रता से पूर्ण करना है, अधिक समय लगाकर वह कार्य पूर्ण किया जाय, उसके लिए अलग छूट दी जावेगी ऐसा आश्वासन शासन की ओर से अधीक्षक देता है। यदि बन्दी ने तद-नुसार कार्य किया तो अधीक्षक अपने मौखिक आश्वासन को लिपिबद्ध कर लेते है और हर तीन या छ मास बाद उसके लिये शासन की स्वीकृति प्राप्त करते हैं। वह टिप्पणी स्वीकृत करने का अभिप्राय यह होता है कि बन्दी की मुक्ति का दिन उसको मिले हुए दिनो के परिमाण में समीप आया है। अधिक काम करने वाला बन्दी और अधिक काम न करने वाले बन्दी में इस प्रकार का अन्तर पड़ जाता है।

वही बात रक्त दान करने पर भी होती है। मैंने बन्दीगृह में सात बार रक्तदान किया था। प्रत्येक रक्तदान के लिये दस दिन की छूट अथवा पाच रुपये दिये जाते थे। दो बार मैंने प्रतिदान के रूप में छूट की माग की थी। रक्त देने के बाद अधिकारियों ने उस आश्वासन को लेखबद्ध कर लिया था और उचित समय पर सरकार से उसकी स्वीकृति भी ले ली। इस प्रकार जिन्होने रक्तदान नही किया था उनकी अपेक्षा मेरी मुक्ति की तिथि में बीस दिन का अन्तर हो गया। अन्य पाच बार का रक्त दान मैंने 'दान' के रूप में किया था।

परन्तु अधीक्षको ने अपना बीस दिनो का लिखित आश्वासन भी नही निभाया। वे शासन की ओर उँगुली दिखाते। "मेरे हाथ से बन्दी को क्यो फसाते है ?" किन्तु ऐसा उन्होने भी कभी शासको से नही पूछा। "बन्दी को मैने शासन की ओर से लेखबद्ध आश्वासन दिया है और शासन ने उसे स्वीकार किया है।" यह बात शासन के ध्यान में कभी नही लाई गई। रक्तदान का बन्दीगृह के किसी भी नियम से सम्बन्ध नही है। ऐसी जानकारी उन्होने कभी शासन को नही दी। "आजन्म कारावास" इस दण्ड के "आजन्म" शब्द पर और इसके लिए बन्दी के जीवन से खेलते रहने का उनको अधिकार, है, ऐसा वे मानने लगे। न्यायत जीवन समाप्त करने के लिए जिस बन्दी को अधीक्षक के कब्जे में दिया गया होगा उससे काम, अधिक काम या रक्त नही लेते, उसको छूट का झूठा प्रलोभन भी नही दिखाते यह तुलना अधिकारियो ने अपने ध्यान में नही रखी। मेरा जीवन यदि उन्हें समाप्त करना था तो मुझे पहले वैसा कहना चाहिये था। रक्तदान के सम्बन्ध में कहना हो तो प्रसंग आने पर जिसने पाँच बार बिना प्रतिदान के रक्तदान दिया वह और दो बार भी बिना किसी प्रतिदान के दे सकता था। परन्तु कहा यह गया था कि 'एक बार रक्तदान करो तुम्हारी सजा में दस दिन की कटौती करा दूँगा। पुन एक बार दो तो और दस दिन की कटौती हो जावेगी।' इस अविकृत आश्वासन पर विश्वास कर मैंने रक्त दान किया। रक्त सच्चे रूप में लिया गया किन्तु छूट झूठ स्वरूप में दी गई।

गाँधी वध काण्ड के एक अभियुक्त को हमने अपने अधिकार से किस प्रकार फँसाया, उसका किस प्रकार उपहास किया, वह विवश है यह जानकर हमने किस प्रकार उससे प्रतिशोध लिया, लाठी का प्रयोग न करते हुए भी उससे किस प्रकार क्रूरता का व्यवहार किया इस पर शासन को भले ही गर्व हो किन्तु 'प्रामाणिकता' इस शब्द की यथार्थ व्याख्या करनेवाले लोग इस वर्ताव को शासन के श्वेत वस्त्र पर असत्य का एक कलक ही कहेंगे। अपनी छूट वापिस करो और उसके बदले में पैसे लो ऐसी मुझे सूचना दी गई थी किन्तु मैंने उसे स्वीकार नही किया। मैं समझता था कि प्राप्त हुई छूट बिकने की वस्तु नही होती। मुझे उतने दिन पहले मुक्ति चाहिये थी। मुझे अपनी लाश पर रखने के लिये पैसे नही चाहिये थे। वास्तव में शासन की ओर से इस प्रकार व्यापार करना ही मूलत लज्जा की बात थी। जनता द्वारा लगान के रूप मे दिये हुए पैसे हमारे पास है परन्तु प्रामाणिकता और मनुष्यता का हमारे पास दुर्भिक्ष है यही बात शासन ने अपने इस व्यवहार से प्रकट की थी।

विश्वास के लिये अयोग्य सिद्ध अधीक्षक के प्रति प्रेमभाव रखना मेरे लिये सम्भव नही था। वर्षो से दिन रात दिलोजान से काम करते मैं थक गया था।

जितनी ठगी मेरे साथ हो चुकी है वह पर्याप्त है, इस अवस्था तक मैं पहुँच चुका था।

मेरे द्वारा उपस्थित बहस लिपिबद्ध हुआ करती थी। सम्बन्धित कार्यालयो में वे लेख मिल जावेंगे। मेरे कथन की सत्यासत्यता की जाच उनको देख कर की जा सकती है। अधिकारियो के पास उनके कोई समुचित उत्तर नही होते थे। तब समुचित उत्तर न दे सकने पर वे बल का प्रयोग मेरे साथ करते थे। अपने प्रति किये जानेवाले अन्याय को सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत करने का सदैव ही मेरा प्रयत्न रहता था। कारण कुछ भी क्यो न हो, मुझे उसमें सफलता नही मिल रही थी। इससे मन का उत्साह क्षीण होने लगा था। तब शरीर पर भी उसका परिणाम होना स्वाभाविक था। अन्तिम वर्ष में तो मैं मृत्यु के बहुत निकट पहुँच गया था। दो बार ऐसे प्रसग आये कि मैं मृत्यु से बिलकुल सटकर खडा था। केवल मृत्यु ने मेरा अथवा मैंने मृत्यु का आलिगन नही किया इतना ही शेष रह गया था। वह भी विधिलिखित का ही भाग होगा।

औरंगाबाद जाने पर सात-आठ मास बाद मैं बीमार पडा। मुझे बन्दीगृह के रुग्णालय मे भर्ती किया गया। चिकित्सा के लिये मुझे वही रखा गया।

"स्वास्थ्य चिन्ताजनक है, मिलने के लिये आओ।" इस प्रकार की सूचना नियमानुसार अधिकारियो ने घर पर भेजी थी। घर के लोगो ने जाने का निश्चय किया। घर से चलने से पूर्व स्वास्थ्य का समाचार मिले इसके लिये उन्होने औरंगाबाद कारागार के अधीक्षक को टेलीफोन किया।

वहाँ से उत्तर मिला कि "बच्चो को लेकर अथवा अन्य किसी को भी लेकर आना हो तो आ जाओ, तुरन्त भेंट की व्यवस्था कर दी जावेगी। अन्यथा स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नही है।"

मेरे छूटने के बाद एक दिन सिन्धु ने बताया, टेलिफोन का रिसीवर नीचे रखते ही मैं तो धम से नीचे गिर-सी गई और मेरे हाथ-पाँव की शक्ति क्षीण-सी हो गई। 'स्वास्थ्य के सम्बन्ध में वैसी चिन्ता करने की आवश्यकता नही' इस वाक्य का खोखलापन मुझे बोलनेवाले की ध्वनि से ही प्रतीत हो रहा था। मुझे चिन्ता थी तो केवल इसी बात की कि इतनी दूर शीघ्रातिशीघ्र मैं किस प्रकार पहुच सकूँगी। जिसके लिये मैंने इतनी यातनाएं सही, किसी भी स्थिति में दुर्बलता एवं दैन्य प्रकट नही किया वह मेरे पति मुझे मिलते है कि नही इसकी कल्पना से ही मन बैठा जाता था। भगवान अधिक क्रूर है अथवा शासन इसकी जब मैं तुलना करती तो मुझे सदैव शासन को अग्रस्थान देना पडेगा।

सिन्धु कहती थी, "कभी-कभी मैं बच्चो को लेकर चित्रपट देखने के लिये जाती थी। एक चित्रपट मे 'तू अमता तर कधि नयनानी अश्रु ढाळले नसते झरझर।'

इस करुणा से परिपूर्ण गीत से मैं एकरूप हो चुकी थी। मैं वह गीत गुनगुनाती रहती थी। तुम जीवित होने पर भी मुझसे दूर थे। तुमसे मेरी भेंट होना नियति से भी शासन पर अधिक अवलंबित है ऐसा मुझे प्रतीत हुआ था।

"मैं भावुक हूँ, यह तुम जानते हो। हँसो मत, मैंने ईश्वर से मनौती की थी कि "मेरा गोपाल मुझे मिले।"

"लगभग पाँच मिनट तक मैं वैसी ही बैठी रही। मस्तिष्क मे न समानेवाले इतने विचारो की भीड एकत्रित हो गई थी कि उससे मस्तिष्क का द्वार ही वद हो गया था। मन शून्य हो गया था। उस शून्यता में से ही एक विचार वडी तीव्रता से मस्तिष्क तक पहुँचा। यह कि 'हमे यहाँ से तुरत जाना है।' वाद मे प्रतीत हुआ कि स्वस्थ बैठे रहने से कार्य सिद्धि नहीं होगी। उस समय मेरे पास पैसे नही थे केवल दस-वीस ही रुपये है, यह वात ध्यान में आई। फिर तुरत एक के वाद एक विचार पंक्तिवद्ध मस्तिष्क मे से निकलने लगे।

"हमें यहाँ से तुरत जाना है इस विचार से ही मुझ में शक्ति आई। मैं उठ खडी हुई, दो घंटे इधर उधर घूमकर मैंने चार सौ रुपये एकत्रित किये। कर्मचारियो को देने के लिये ढाई सौ रुपये रख दिये। डेढ सौ रुपये साथ लिये, एक वाहन किया नगर से होकर पाँच घण्टो में हम वंदीगृह के द्वार पर पहुँचे।

रुग्णालय में ही हमारी भेंट हुई। मैं जिन्दा हूँ, वोलता हू, मनुष्य पहचान सकता हूँ इतना जान लेने के वाद ही सिन्धु के मनका तनाव कम हुआ था। भेंट का समय समाप्त हुआ। घर के लोग वापस गये। २०-२५ दिन वाद मेरा रोग कम होने लगा तव २-११-६२ को अपने स्वास्थ्य के सम्वन्ध में मैंने सिन्धु को लिखा—

स्वास्थ्य अव सुधर रहा है। किन्तु ऐसा लगता है कि अभी १५-२० दिन और रुग्णालय मे रहना पडेगा। स्वास्थ्य अच्छा होने पर मुझे ही यहाँ रहना नही भायेगा। रोग तो ठीक हो गया है केवल शक्तिहीनता शेष है।

यह शक्तिहीनता स्थिर है। वह मन पर हुए आघातो के परिणामस्वरूप है। जुलाई १९५७ से अव तक मैं १७ वार विफल हो चुका हूँ। वर्तमान आवेदन में भी मुझे यश मिलेगा ऐसा समझने का कोई कारण नही है। सर्वोच्च न्यायालय के १९६१ के विधिस्वरूप निर्णय के वाद, मैं विगड गया हूँ, ऐसी कल्पना करके मुझे सुधारने के लिये मुझ पर जो उपाय किये गये है उनका भी मेरे मन पर परिणाम हुआ है। मन पर हुए और किये गये आघातो के परिणामो से उत्पन्न शक्तिहीनता मुझे यदि शक्कर में भी घोल दिया जाय तो भी कम नही होगी। और फटके मारने से भी नही जावेगी। अन्याय करने और उसे जारी रखने में तो सभी दक्ष है किन्तु न्याय करना अथवा कराना यह किसी का कर्तव्य नही है ऐसी

कर्तव्यतत्परता मेरे दैव से प्राप्त हुई थी इसलिये मन के द्वारा शरीर पर जो परिणाम हुआ है वह स्थायी है। न्याय से वञ्चित हुआ हूँ, इसलिये मन में उत्साह नही है। शक्तिहीनता दूर करने के लिये शरीर पर किये गये उपचार ऊपरी होते है। इसलिये तुमको विगत पत्र में लिखे अनुसार दुर्बल शरीर पर कोई भी रोग जन्तु आक्रमण करें और भूमि भुरभुरी है ऐसा देखकर वही आसन जमा बैठे यह प्रकृति का नियम है। 'जीवो जीवस्य जीवनम्' हम दूसरे के जी पर जीते है तो तीसरे का जीवन हमारे जीवन पर जीवित है। ऐसा है इस प्रकृति का चक्र है।

वही शक्तिहीनता का तन्तु पकड कर मैंने उस पत्र मे लिखा था, "और राष्ट्रो का भी क्या चलना है। हम शस्त्रास्त्रो से हीन है क्या यह जानकर ही चीन ने हमारी सीमाओ पर आक्रमण नही किया ? हाल ही में क्यूबा में धर्मयुद्ध हुआ। एक भी गोली नही चली और न एक हत्या ही हुई। क्यूबास्थित उत्क्षेपण पटल (मिसाइल बेस) उठाते हो अथवा नही इस प्रकार की गर्वोक्ति अमरीका ने की' वह उसने शस्त्रबल के कारण ही तो की थी। विश्व शाति के उच्च तत्वो का मूल्य रूस ने जान लिया इस कारण नही। क्योकि अमेरिका के शब्द शस्त्र की धार पर से होते हुए पहुँचे थे। और वे यह भी समझते थे कि यदि हमने आज अमेरिका के इस कथन की उपेक्षा की तो अमेरिका का खात्मा करने के अपने षडयन्त्र में सफल होने से पूर्व कही वह हमारा ही सहार न कर डाले। इस भय के कारण ही रशिया ने अपने उत्क्षेपण पटल को संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में उठा लेने का निश्चय किया। भारत की भी शस्त्र शक्ति अपने समान ही है इसका ज्ञान यदि चीन को होता तो वह कभी आगे न बढता। परतु वह भली-भांति जानता था कि भारत का शस्त्रबल शून्य है अत उसने आक्रमण किया।

यू-टू का उदाहरण स्मरणीय है। क्या रूस की भूमि पर अमेरिका हवाई जहाज के द्वारा जासूसी नही करता था ? क्या उसके लिये रूस विरोध-पत्र नही भेजता था ? परतु अपना सामर्थ्य तनिक पङ्गु है इसका ज्ञान रूस को था। भौतिक शास्त्र में रशिया ने तरक्की की, एक के बाद एक यान उसने अतराल मे भेजकर उसकी थाह पाई। किन्तु उसका उपलक्ष्य था अस्त्रो की कक्षा से बाहर मे जाने वाले यानो का भेद करना, छेद करना सम्भव हो इस दृष्टि से अपने विज्ञान की दिशा को उसने मोड दिया था।

"उसमे रशिया को सफलता मिली। तेरह मील की ऊँचाई पर से जानेवाले अमेरिका के विमान को रूस नीचे ले आया। पावर्स को वस्तुस्थिति बोलने के लिये विवश किया। अपनी कारगुजारी पकडी गई है यह समझते ही अमेरिका ने अपना दोष भी स्वीकार कर लिया। जो बात सौ विरोध पत्रो से नही होने वाली थी वह एक आविष्कार से सहज साध्य हो गई। इसको कहते है धर्मनीति। एक

गाल पर थप्पड लगने पर दूसरा गाल आगे करना; यह होता है शाति का आधा अर्थ। अपनी शक्ति ही इतनी बढाई जाय कि किसी को गाल पर एक भी थप्पड मारने का दुस्साहस न हो सके इसे कहते हैं पूर्ण शाति की सगति। ऐसी ही होनी चाहिये अतर्राष्ट्रीय नीति। अस्तु, अपने दुर्बल शरीर के माध्यम से यह प्रवाह मुड गया है।"

चीन ने हिन्दुस्तान की सीमा पर आकर ललकारा था। जिसमें तनिक भी राष्ट्रीय भावना का लेश शेष था उसने इस आघात को अपने ऊपर आघात समझा। तब राष्ट्र की रक्षा के लिये कटिबद्ध होने की लोगो में स्पर्द्धा होने लगी थी। उस समय महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री श्री यशवन्तराव चह्वाण को सिन्धू ने एक पत्र दिनाङ्क ८ ११ ६२ को लिखा—

शासन ने मुझ पर अन्याय किया था तो भी इस समय देश की रक्षा महत्व की है यह सिन्धु जानती थी। व्यक्तिगत दु ख भूल कर एकता की आवश्यकता थी, ऐसे ही सिंधु के सस्कार थे। उसका पत्र निम्न प्रकार था—

सादर प्रणाम!

चीन ने भारत के साथ युद्ध प्रारभ कर एक बहुत बडा धक्का दिया है। जिस दिन यह सुना तभी से मन अस्वस्थ है। क्या करना चाहिये, यह सोच नही पाती।

हाल ही में भारत के प्रधानमन्त्री नेहरूजी ने आकाशवाणी के माध्यम से राष्ट्र का आह्वान करते हुए सहयोग की अपील की है।

इस समय अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्येक भारतीय का कुछ कर्तव्य निश्चित है। मार्ग अनेक है। उनमे से द्रव्यदान, श्रमदान, रक्तदान, और प्राणदान ये मार्ग स्पष्ट दीखते है।

हमारे घर में हम पाँच व्यक्ति है। उनमें से मेरे पति श्री गोपाल गोडसे गाँधी वध अभियोग के बदी होकर सम्प्रति औरगाबाद कारागार मे आजीवन कारावास का दण्ड भुगत रहे है। उन्होने भी सीमा पर जाने की अपनी इच्छा व्यक्त की है।

१९४०-१९४४ तक वे सेना में ही थे। उन्हें ऐसा अवसर देना अथवा न देना यह आपकी इच्छा पर निर्भर है। युद्ध रुक जाने के बाद फिर बदीगृह में रखने से उन्हें कोई इतराज नही होगा। परतु जो भारत-भू का पुत्र है उसको माता की सेवा से परावृत्त करने का और सेवा से वचित रखने का कोई भी कारण नही।

मेरा मानस पुत्र नाना है। आवश्यकता हो और अवसर दिया गया तो सीमा पर जाने से लेकर अन्य भी किसी प्रकार के श्रम करने के लिये वह तत्पर है। रक्तदान और द्रव्यदान तो हम करते ही है और करते रहेंगे।

मेरे अपने सम्बन्ध में--

सम्प्रति पूना छोडकर मैं कही अन्यत्र जा सकूँगी ऐसा सम्भव नही हैं। कारखाना चलाने का उत्तरदायित्व होने के कारण ऊपर लिखे अनुसार मैं देश के लिये अपना पति और पुत्र दे सकती हूँ। मेरे भाग में जो उत्पादन का हिस्सा आवेगा वह भार में उठाने के लिये तत्पर हूँ। हम स्टील स्ट्रक्चर्स बनाते है। अबतक एन० डी० ए०, सी० एम० ई०, एच० ई० फैक्ट्री, पैनसिलीन फैक्ट्री आदि के सामान हमने निर्माण किये है। युद्ध के लिये लोहे का उत्पादन बिना किसी प्रकार का एक पैसे का भी लाभ प्राप्त किये करने के लिये मैं उद्यत हूँ। उत्पादन कार्य पर आपके जो कोई भी प्रतिनिधि हो उन्होने यदि वैसा मुझे अवसर दिया तो मैं नियत सूचना के अनुसार नियतकालावधि मे काम का हिस्सा उठा सकूँगी। इस प्रकार मैं अपनी मातृभूमि की सेवा करने मे अपना कर्तव्य पालनकर प्रसन्नता अनुभव करूगी।

मेरे पति को निश्चित अवधि से दो वर्ष अधिक तक बंदीगृह में रखा गया है वह अपना अन्तर्गत विवाद है।

परस्परविरोधे तु वय पञ्च शतम् च ते।
अन्येभ्यश्च विरोधे तु वयं पञ्चाधिक शतम् ॥

यही आश्वासन मैं आपको दे सकती हू। किसी भी प्रकार से आप मुझे, मेरे पति श्री गोपाल गोडसे एव पुत्र नाना को अवसर दें, यही विनती है।

आपकी

सौ० सिन्धु गोडसे

मेरा एक आवेदन सर्वोच्च न्यायालय के सामने विचाराधीन था। उसके लिये मुझे दिल्ली वन्दीगृह में रखा गया था। क्योकि अपना आवेदन मुझे ही प्रस्तुत करना था। उस अवधि में दि० १३-१०-६४ को मुझे मुक्त किया गया। दिनाक २४-११-६४ को मुझे भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत पुन वन्दी बनाया गया। १ वर्ष ६ दिन कारावास भुगतने के बाद दि० ३०-११-६५ को मुझे मुक्त किया गया। उस समय भी मेरा एक आवेदन बम्बई उच्च न्यायालय मे विचाराधीन था।

लगभग १७ वर्षो के बाद मुझे ४० दिन की मुक्ति मिली थी। स्वतन्त्र ससार से मैं एकरस नही हो सकता था। उसके साथ पाव मिलाकर नही चल सकता था। स्वत का निरीक्षण करने के लिये मुझे बाद के बन्दीवास मे अवसर मिला। २९-१२-६४ को सिन्धु को लिखे अपने पत्र में मैंने लिखा—

"पारिवारिक दायित्व को केन्द्र बिन्दु बनाकर उसके आसपास अपने उद्योग

की योजना मुझे बनानी थी। १७ वर्ष बाद में बाहरी विश्व देख रहा था। नये-नये क्षेत्र और उनके उद्योगो से यदि मेरा किसी प्रकार परिचय होगा तो वह पढ़ने से ही हो सकता है। प्रत्यक्ष विश्व को जब मैंने देखा तो मैं उसे देख कर उसी प्रकार भौंचक्का रह गया जैसे कि छोटे बच्चे को किसी बडे खिलौने की दुकान पर ले जा कर खिलौने चुनने के लिये कहा जाय।

"इस वेगवान ससार मे मैं पदार्पण कर रहा हुँ। १७ वर्षो के अभ्यास की मुझे भरपाई करनी है। इसमे मैं कहा खडा रह सकू, परिवार का दायित्व सम्भाल कर कैसे खडा रह सकूगा इन विचारो से भी मैं असहाय सा बन गया था और वृत्ति पर मन्तत्व आ गया था।"

मैं जब सजा भोग रहा था तब सिन्धु ने कितने धैर्य से दिन बिताये थे, इसके सम्बन्ध मे मैं सुना करता था। उसके कर्तृत्व का फल मैंने ४० दिनो मे देखा था। वह देख कर मुझे कैसा लगा इसका विवरण करने के लिये बाद का वन्दीवास काम आया। उसी पत्र में मैंने सिधु को लिखा था—

"१७ वर्ष पूर्व जब मैं तुमको छोडकर आया था तब मुझे लगता है उस समय वेतन के शेष पांच रुपये ही तुम्हारे पास होगे। बम्बई के तीन चार चक्करो में उन पैसो की भी समाप्ति हो गई होगी। उसके बाद तुम्हारे उदरभरण के लिये कन्याओ की व्यवस्था के लिये तुम्हारा क्या प्रबन्ध है, यह तुमसे पूछने की बारी तुमने मुझे आने ही नही दी थी। अनेक कठिन प्रसगो को तुमने पार किया। शून्य मे से विश्व निर्माण करने की भाँति, टुटपूजिये अनुभव के बल पर, अथक श्रम करके, दिन रात पसीना बहाकर तुमने एक उद्योग खडा किया। मुझे मुक्ति मिले और मेरा एक स्वतन्त्र व्यवसाय हो यह ध्येय मन में रख कर तुमने कष्ट सहे। वस्तुतः मेरा दायित्व तुमने निभाया। तुम्हारा किया हुआ लोकसग्रह मैंने देखा। मुसलमान, पारसी महार या ब्राह्मण आदि सभी मे अपने आस पास तुमने आदर का परिसर निर्माण किया है। इस सकट में पडने पर तुम्हारा और मेरा सहारा ही उद्ध्वस्त हुआ था। मैं छूट कर आया, करीब १७ वर्षो के बाद आया। और सचमुच जहाँ अधिकार से रह सकूं ऐसा सहारा तुम्हारे कर्तव्य से मूर्तस्वरूप मैंने अपनी आखो से देखा और अनुभव भी किया। जिसको मैं अपना कह ऐसे उद्योग का औपचारिक उद्घाटन मेरे हाथो से कराया, उसका अधिकृत नामकरण किया। यन्त्र के अग अग मे तुम्हारे कष्टो की साकार प्रतिमा मुझे झलकती मिली। रागणेकर की—'तुझेच सारे वैभव येथे मी नावाचा धनी।" इस पक्ति का प्रत्यय लक्षणो से नही अपितु प्रत्यक्ष में ही देखने को मिला। उसमें मुझे कही भी न्यूनता न देखकर तुम्हारे विलक्षण कर्तृत्व का अभिमान हुआ। परिस्थितिवश मेरे हिस्से का बोझ उठाने का अवसर मुझे नही प्राप्त हुआ और तुमने उसे भली

भाँति उठाया।

मनुष्य पराधीन हो कर भी जीवन व्यतीत करता है, परन्तु उसके भाव एवं भावनाये जागृत रहती है। वचन के कारण भावनाओ को अभिव्यक्ति को अवसर नही मिलता। उससे तो भावनायें और तीव्र होती है। वन्दीवास की कठिनाई वहाँ के श्रम में, अनुशासन में या वन्द होने में जितनी प्रतीत नही होती उससे बहुत अधिक परिमाण में भावनाओ के प्रवाह में होती है।

वन्दीवास किसी राजनैतिक विचारधारा की प्रेरणा का परिणाम होने पर भी वह प्रेरणा उस व्यक्ति का एक भाग होती है। अन्य भावनायें कुछ समय तक ढँकी रहने पर भी उनका अस्तित्व होता है। युवावस्था जिस प्रकार किसी प्रकार की विचारधारा का चस्का रखने की अवस्था होती है उसी प्रकार वह सुख के मनोराज्य करने की भी होती है। अपना घर अमुक प्रकार का हो, ऐसा चित्र कोई विवाहोत्सुक या नवविवाहित युवती जिस प्रकार रगाती होगी, उसी प्रकार उस अवस्था के युवक भी ऐहिक सुख के स्वप्न मन में लाता होगा।

राजनीतिक पार्श्वभूमि में भी मनुष्य वध करने का ध्येय किसी का नही हो सकता। ऐसी घटनायें राष्ट्र के जीवन में और उसी प्रकार उस व्यक्ति के जीवन में भी अचानक रूप से निर्मित होती है। गाधी वध से मेरा सम्वन्ध भी मेरे जीवन में एक आपात या दुर्घटना थी।

तीन वर्षो के वैवाहिक जीवन के वाद मैं अचानक अटल रूप से परिवार से दूर फेंका गया था। तव तक दो कन्यायें हो चुकी थी। सतति का पालन और शिक्षा दीक्षा हम अमुक प्रकार से करेंगे ऐसा मनोराज्य में करता था। प्रतिदान की अपेक्षा से नही तो वात्सल्य की भावना से मनुष्य ऐसी इच्छायें करता ही है। उन इच्छाओ की पूर्ति से मिलनेवाला सुख वही उनका प्रतिपादन होता है। मेरे वन्दीवास के कारण जो भावनायें दव गई थी उनमें वात्सल्य की यह भावना भी थी।

मन की सान्त्वना के लिये मेरे पत्रो में मेरे मन की भावनाओ को मार्ग मिलता था। जव भी सम्भव होता सिंधु कन्याओ को मुझसे मिलाने के लिये लाया करती। हमारे पिताजी है, परन्तु वे अपने पास नही है, हम उनसे हठ नही कर सकती, हठ की पूर्ति करा लेना हमारे लिये असम्भव है, हमें पिता का प्रत्यक्ष प्रेम प्राप्त नही, यह कसक उनके मन में रहती थी। परन्तु इसके साथ ही किसी निस्वार्थ हेतु के लिये वह वन्दी है इसका ज्ञान भी उन्हे उस छोटी अवस्था में था।

पढना लिखना सीखते ही उनको पत्र लिखने की आदत लग गई। जिन विषयों को वे समझ सकें इस प्रकार के नये नये विषय में उनको लिखा करता था।

मुझे कविता रचने का भी एक शौक था। वर्षगाठ या त्यौहार के प्रसग पर या कभी परीक्षा में सफलता प्राप्त की हो तब उस निमित्त मैं उन्हे कुछ पंक्तिया कवितावद्ध करके लिखता था। विद्युल्लता के एक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर एक बार मैंने उसको लिखा था—

साध्य गाठता एक, आपले साध्य वाढवावे।
जाता तेथे नये थाबता पुन्हा पुढे जावे।
एका मागुनी एक फेकुनी ऊच ऊच याने।
गगनाला गवसणी घातली आज मानवा ने। (मई १९६१)

असिलता का एक पत्र आया था। उसकी वर्षगाठ के समय मैं घर पर नही हूँ इसका दु ख उसने अपने पत्र में व्यक्त किया था। वर्षगाठ के अवसर पर मैंने उसको निम्न चार पक्तिया लिखी थी।—

विधि योगाने तुला राहिली अपुरी जी साउली।
ती नेमे कष्टते कराया पूर्ण तुझी माउली।
दिसो न लोका दैन्य, वा दिसो नये न्यूनता जनी।
अध्ययनी हो पुढे यास्तवे तू सुगुणाची खनी। (मार्च १९६०)

कन्याओ की शिक्षा जारी है यह मैं जानता तो था परन्तु देख नही सकता था। मैं जव छूट कर आया तव एक कन्या परिचारिका की शिक्षा ले रही थी तो दूसरी वास्तुविद्या के (आर्किटेक्चर के) द्वितीय वर्ष में पढ रही थी। उनकी मा ने उनकी यहा तक उन्नति की थी। उसके कर्तृत्व से मुझे स्वाभिमानपूर्ण आनन्द हुआ था।

मेरी अनुपस्थिति में परिवार में नया समाविष्ट हुआ नाना नियमित रुप से पत्र भेजता था। कभी-कभी मिलने आता था और न्यायालयीन कार्य मे अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करता था। मुक्ति के लिये ही वे प्रयत्न हो रहे है यह जानते हुए भी उसके कष्ट का मूल्य मुझे बहुत लगता था।

दवी हुई भावनाओ के वीच में एक भावना पति-पत्नी के वीच के सम्वन्ध की थी। "फर्लो" नाम से कही जाने वाली छुट्टी १९४९ से वन्दियो को यहाँ दी जाने लगी थी। प्रति दो वर्ष के वाद १५ दिन का ऐसा अवकाश मिलता था। मेरे अवकाश पर जाने पर शाति भग की सम्भावना है इसलिए मुझे एक वार अवकाश देने से इन्कार किया गया। पुन आवेदन करने पर इन्कार करने का कोई कारण नही मिला। इसलिये गाधी वध अभियोग के वन्दी का वहाना वना कर अवकाश न देने का वहाना वनाया गया। वह वहाना ही ऐसा था कि उसका खण्डन करने की सामर्थ्य किसी में नही थी। इसलिये शासन ने मेरा आवेदन करने का अधिकार ही छीन लिया था। शासन ने इस प्रकार जानबूझ कर द्वेषभाव

रखने के कारण मुझे कभी भी अवकाश नही दिया।

एक ओर मुक्ति के लिये प्रयत्न करते रहना और दूसरी ओर पत्रो द्वारा एक दूसरे को धीरज देना, आशा दिलाना, यही हम करते थे। पत्रो का उपयोग मैं अपनी दबी हुई भावनाओ को प्रकट करने के लिये करता था।

एक बार दीपावली के अवसर पर मैंने सिंधु को लिखा था—

सदेशानी परस्पराच्या संजवू दीपावली।
परिस्थितीशी झुळते घेऊ सहू ऊन सावली।
विधि वधाने चिर प्रीति जी हृदयी सामावली
तेवत राहो तीच आपली दीपांची आवळी॥ (१९६३)

परन्तु यह केवल मन को आश्वस्त करने की बात थी। किन्तु कभी यह अनुभव नही होता था कि अतृप्त भावनाओ को इससे तृप्ति प्राप्त हुई हो। सदैव की जिच के कारण मन पर एक बोझ बना रहता था। लेखन को धार आती थी। वैसी धार आई कि यह सुधरा नही उसको और तग करना चाहिए ऐसी सुविधाजनक कल्पना अधिकारी गण कर लेता था। अधिकारीगण व्यक्तिश अच्छे हुआ करते थे। परन्तु सरकार ने गाधी के नाम से प्रतिशोधात्मक नीति अपनाई थी उसके अनुसार बर्ताव करना यह अपना कर्तव्य है, ऐसी उनकी धारणा होती थी। इस तरह का सदैव छल करना अमानुषी है, ऐसा कहने का साहस किसी भी अधिकारी मे नही था। न जाने, वैसे स्पष्ट और सत्य बोलने से हम गाधी वध में सहभागी थे ऐसा अपने ऊपर आरोप आयेगा ऐसा भय उन्हें शायद लगता था।

सयोग से लादे गये ये वियोग के दिन सयोग से ही समाप्त होनेवाले थे। वे समाप्त हुए और इसलिये इतिहास के स्वरूप में धुधले से व्यक्तिचित्रो की यह एक झांकी रेखाकित करने का अवसर सुलभ हो सका था।

* * *

दस

बन्दीकरण से लाल किला

"तुम कैद में हो" आरक्षक अधिकारी के इन शब्दो को सुनकर मेरे मन का दबाव नष्ट हुआ। यह विरोधाभास वास्तव में प्रतीत होता है। निश्चित ही कैद में होने से मन पर दबाव आता है। परन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि कैद में होते समय भी मेरे मन पर इतना दबाव था कि कैद होने से मन पर आनेवाला दबाव मुझे उससे पूर्व के दबाव से मुक्त करनेवाला सिद्ध हुआ।

गांधी वध के ६ दिन बाद मुझे पकडा गया था। यद्यपि उस घटना से मेरा जो कुछ सम्बन्ध था, वह विधि रक्षको के उस समय ध्यान न आया हो, परन्तु गांधीवध के पश्चात् जो छानबीन होगी उसमें वह उनको ज्ञात होगा और मुझे कभी भी बन्दी बना लिया जावेगा। यह मेरा सीधा, सरल तर्क था। किन्तु स्वयं पुलिस के पास जाकर इस वध से मेरा इस प्रकार का सम्बन्ध है यह कहने की अपनी भी कोई इच्छा नही होती थी। मैं सोचता था कि मान लिया जाय कि पुलिस को इस विषय में कुछ भी नही ज्ञान होगा तो व्यर्थ में क्यो स्वयं को अभी से सकट में डाला जाय। मन में यह विचार प्रबल था। कैद होने से पूर्व पुलिस का और मेरा दो बार सामना हो चुका था। तब वे यह टटोलना चाहते थे कि उस घटना से मेरा कोई सम्बन्ध है अथवा नही। उन्होने कुछ समझा अथवा नही, यदि समझा तो क्या समझा है इसका अनुमान ही मैं लगाता रहता था। दोनो भेटो में मैंने अनुभव किया कि पुलिस की समझ में कुछ नही आया और मैं स्वतन्त्र हुआ था।

पुलिस की नजरो से कही दूर चला जाऊँ अथवा भूमिगत हो जाऊँ, इस प्रकार की बात मेरे मन में कभी नही आई। मैं पुलिस के हाथ में पड़ूँ अथवा

पुलिस को चकमा दूं, यह बात भी कभी मेरे मन में नही आई थी। एक ओर मैं अपना नित्य का कार्य करता था तो दूसरी ओर सदा यह शका बनी रहती थी कि अभी पुलिस आकर कधे पर हाथ रखकर कहेगी कि चलो हमारे साथ। इस प्रकार मन व्यग्र रहता था और मन पर का वह दवाव अजीव सा था।

३० जनवरी १९४८ का दिन अन्य दिनो की ही भाँति उदित हुआ था किन्तु उतनी ही स्वाभाविकता से उसका अस्त नही हुआ। अस्त होने से पूर्व उस दिन ने अपने पीछे एक प्रचण्ड हलचल छोड दी थी।

गाधी की हत्या किये जाने का समाचार आकाशवाणी ने सायकाल साढे पाँच या छ वजे के लगभग प्रसारित किया था। समाचार में गम्भीरता थी वढते हुए अन्धकार के साथ ही उस समाचार को गम्भीरता भी गहन होती गई।

उन दिनो मेरा मकान खडकी में था। खडकी पूना से पाँच छ मील दूरी पर है। तीन चार दिन पूर्व ही मेरी पत्नी कन्याओ को लेकर अपने मायके गई थी। वहाँ उसकी चचेरी वहिन का विवाह था। मेरे माता पिता पूना में शुक्रवार पेठ में श्री साठे के मकान में रहते थे। बडे भाई श्री दत्तात्रय पूनास्थित ऐरण्डवणा से 'उद्यम इजीनियरिंग' उद्योगशाला के नये भवन में रहने लगे थे। शाम को मैं पूना आता था और प्रात काम पर जाता था।

उस दिन शाम को पूना के लिये प्रस्थान करते समय ही मैंने गाधी वध का वृत्त आकाशवाणी पर सुना था। ऊपरी तौर से मैंने उस वार्ता के सम्बन्ध में जिज्ञासा नही दिखाई, परन्तु मेरे मन में मात्र खलवली मची थी।

वास्तव में गाधीजी के प्रति प्रेम मेरे मन की खलवली का कारण हो यह वात नही। वध किसने किया इस वात को अभी तक प्रकट नही किया गया था। नथूराम गाधी वध के लिये प्रवृत्त हुए थे इसकी मुझे कल्पना थी। मन स्वार्थी होता है अथवा अपने अनुकूल विचार करने की मन को आदत होती है। मैं मन में सोचता था कि गाधी वध के सम्बन्ध मे नथूराम का नाम न आवे तो अच्छा है। मानो किसी अन्य के प्राण मेरी दृष्टि में नथूराम के प्राणो से अल्प मूल्य के थे। परन्तु स्वत को अनुकूल प्रतीत होनेवाले विचार अधिक समय तक नही टिकते थे इससे मन को अस्वस्थता होती थी।

गाधी वध से मेरा किसी प्रकार भी सम्वन्धित होना मेरे जैसे साधारण घर-गृहस्थ के वश के वाहर की वात थी। परन्तु वातावरण के परिणाम जाने अथवा अनजाने, मन पर होते ही है। अपने सम्बन्ध में मैं यह कह सकता हू कि गाधी के प्रति मेरे मन में जो कटुता निर्माण हुई थी उसका कारण देश का वातावरण ही था।

स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा मैं अपना कोई राजनीतिक मत निश्चित करू ऐसी मेरी

बुद्धि उस समय तक विकसित नही हुई थी। बचपन से राष्ट्रीयत्व, स्वराज्य, लडाई, आन्दोलन, क्रान्ति, सगठन आदि सज्ञाओ के सस्कार मन पर थे। आजीविका के लिये कुछ तो करना होगा ही और कही न कही कोई सेवावृत्ति अपनानी ही होगी तो फिर सेना में ही क्यो नही, इस विचार से मैं सेना में भर्ती हो गया। तब द्वितीय विश्वयुद्ध का आरम्भ हुआ था। युद्धकाल में तीन वर्ष विदेश मे—ईराक, ईरान में जाने का अवसर प्राप्त हुआ था। विदेश जाने से पूर्व मेरी सावरकर जी से भेट हुई थी। उस समय प्रथम बार ही मैंने उन्हीके मुख से रासविहारी का नाम सुना था। वे जापान में कार्य कर रहे है ऐसा भी उनसे सुना था। सुदूरपूर्व में रासविहारी बोस और सुभाष बाबू की गतिविधियो के समाचार अग्रेजो के अभेद्य पहरे में से भी कभी-कभी हम तक पहुच जाया करते थे। मध्यपूर्व में भी वैसी हो किसी प्रकार की हलचल है अथवा नही इस पर हम सनि‍को का लक्ष हुआ करता था। अग्रेजो के साथ पहले जैसी एकनिष्ठा अब सैनिको में नही रह गई थी। हम लोग भी यह चाहने लगे थे कि सुभाष बाबू के जैसे प्रयत्न पूर्व दिशा में हो रहे है वैसे ही कोई प्रयत्न इस ओर भी हो। परन्तु उस प्रकार का बोझ अपने कधो पर लेनेवाला स्वतन्त्र प्रज्ञा का कोई सैनिक नेता उस दिशा में नही था।

अप्रैल १९४४ में मैं भारत वापस आया। दो मास बाद मेरी नियुक्ति खडकी में हो गई। सुदूरपूर्व का युद्ध अभी पूर्णतया बन्द नही हुआ था। मैंने अधिकारियो से प्रार्थना की था कि मुझे उस मोर्चे पर भेज दिया जाय। परन्तु जब तक उस प्रार्थना पर विचार हुआ तबतक द्वितीय विश्व युद्ध का अन्तिम अक भी पूर्ण हो चुका था। अत मुझे खडकी में ही रहना पडा।

मै जिस विभाग मे काम करता था उसमें पजाब प्रान्त के लोग अधिक सख्या में थे। १९४६-४७ में नेताओ के पग देश विभाजन की ओर बढ रहे थे। बगाल, पजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त इत्यादि स्थानो पर दगे आरम्भ हो गये थे। अपने प्रान्त का क्या होगा, अपने घरबार का क्या होगा इसकी चिन्ता पजाबवासियों को लगी रहती थी। अपने नेताओ पर विश्वास कर कई लोगो ने अपने घरवालो को लिखा था, 'आप वही रहिये, यह तूफान थोडे ही दिनो मे शान्त हो जावेगा। आगे की सोचे समझे बिना क्या अपने नेता लोग इस प्रकार का कोई निर्णय करेंगे ?''

परन्तु क्या हुआ ? अपने आत्मीयो का सहार अथवा उन्हें बल से भगाने का समाचार उन लोगो को सुनने की बारी आई थी। तब उन घरो मे से पुरुषो की गालियो का और महिलाओ के शापो का रुख नेताओ की ओर होने लगा था। ये नेतागण ही इस खाई मे सामान्य लोगो की भाति रह कर क्यो नही दिखाते,

हमारे कुटुम्बों के साथ ऐसी एकात्मकता के ये प्रयोग क्यों हो रहे हैं ? इस प्रकार की बातें उनकी आह के विषय हुआ करते थे।

कभी किसी के घर से दु खद घटनाओ से परिपूर्ण पत्र आता था अथवा किसी से मिलने के लिये कोई नरसहार से बचकर आया हुआ व्यक्ति आ पहुँचता था। उस पत्र द्वारा अथवा उस व्यक्ति द्वारा पजाब मे हो रही घटनाओं का वृत्त सम्मुख रहते ही सुननेवाले के रोंगटे खड़े हो जाते थे और आक्रोश से मन भर जाता था। ४०-५० परिवारो की उस बस्ती में ५-७ घरो मे मैंने ऐसे प्रकरण उन दिनो देखे थे। किन्तु जिन पर ऐसी बीत रही थी उनको हम ढाढस भी बँधाते तो किस प्रकार ? यही कारण था कि हम सब कुछ देख तथा सुनकर भी हम उन लोगों को ढाढस नही बधा पाते थे। चादर को जोड (चिप्पी) लगाई जा सकती है आकाश को नही।

यही कारण है कि स्वराज्य प्राप्ति का आनन्द वे परिवार अनुभव नही कर सके। किसी का पैर टूटा हुआ हो तो उससे यह कहना कि "तुम्हारा पैर लगडा है इस तथ्य को भूल ही जाओ, इससे तुमको दु ख नही होगा।" ऐसा परामर्श देने से वह तथ्य मिट नही सकता। विभाजन के कारण जिनके घर बार लुट गये, जिनके परिजनो के प्राण गये, उनकी समझ में यह बात आ ही नही सकती थी कि धर्मों के भेद भाव मिटाकर, अहिंसा द्वारा हमने स्वराज्य प्राप्त किया है। पाकिस्तान से जो लोग बच कर भारत आये थे वे एक प्रकार से अपने परिजनों, सम्बन्धियो एव सहोदरो की लाशो पर पैर रख कर ही आ पाये थे। अहिंसा, विविध धर्मों की एकता इन शब्दो के जो अर्थ उन्होने पढ एव समझ रखे थे आज की परिस्थिति में उनके जो अर्थ लगाये जा रहे थे उनमे बहुत बडा अन्तर था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी आसपास के घरो में बडा आक्रोश का वातावरण कभी-कभी छा जाता था। अपने पड़ोस मे होनेवाली इन घटनाओ का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पडा था। सहस्रो निरपराध व्यक्तियो की हत्यायें हो रही हैं और मैं मात्र उसका द्रष्टा अथवा श्रोता बनकर रह गया हूँ, यह विचार मेरे मन को निरन्तर कचोटता रहता था। मास की प्रथम तिथि को वेतन लेना, उदर भरण की व्यवस्था करना और सन्तानो की सख्या में वृद्धि को गिनते रहना, क्या बस इतनी ही अपने जीवन की इति कर्तव्यता है ? यह प्रश्न बार-बार मन में उठता था। मनुष्यत्व का लक्ष्य केवल मात्र अपनी गृहस्थी पहचान लेना नहीं उसके बाहर के ससार को समझ उसके प्रति भी अपने दायित्व को समझना होता है। उसकी कुछ तो अनुभूति अपने को होनी चाहिये। पडोसी का पेट चीरकर उसकी आँत बाहर निकाल दी गई है, अपनी आँत तो सुरक्षित है ? दूसरो के घरो मे आक्रोश मचा है, अपना घर तो शान्त है न ? इस प्रकार

की अकर्मण्य विचार प्रणाली में अपनी राष्ट्रीय एकात्मकता, आपस का बन्धु-भाव यह भावनायें भर चुकी है ऐसा मुझे प्रतीत होता था। और तब मन ऊब जाता था। इसी के कारण मेरे मन मे गाधी के प्रति कटुता बढती गई। गाधी का अस्तित्व अब नही चाहिये, राष्ट्र की अब और अधिक हानि नही होने देंगे, अहिंसा के नाम पर राष्ट्र के शरीर मे भीरुता नही भरने देगे, क्योकि सामान्य जन कायरता को ही अहिंसा मान कर आत्मवंचना करता है, ऐसी मेरी धारणा बन गई थी। उस समय की परिस्थिति के निरीक्षण और अपने आस पास की प्रत्यक्ष घटनाओ के आधार पर मैं इस निष्कर्प पर पहुँचा था कि इस विनाश के लिये गाधी जी प्रमुखरूपेण उत्तरदायी है। अत आगे चलकर गाँधी वध से जो मेरासम्बन्ध जोडा गया वह वस्तुस्थिति से विसवादी नही कहा जा सकता।

परदु ख का इतना विचार करके भी नथूराम का इस घटना मे सम्बन्ध न हो ऐसा विचार मन में आने का कारण था उसके परिणामस्वरूप नथूराम पर आने वाली आपत्तियो की कल्पना। परन्तु ऐसा लगता है कि मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा होता है। एक अन्य घटना से मुझे इसकी प्रतीति हुई।

जब तक नथूराम का नाम प्रकट नही हुआ था, तब तक लोग तर्क करते थे। कही वह अपनो में से ही तो नही है ?' इस प्रकार विचार कर निर्वासित-जन चिन्तातुर हुए थे। बाद में नथूराम का नाम प्रकट हुआ। लोगो ने यह भी सुना कि न तो वह पजाबी है, न बगाली, न सिंधी, वह निर्वासित व्यक्ति भी नहीं है। यह सब जानकर उन लोगो ने सुख की साँस ली। किसी के द्वारा भी क्यो न हो उनके शाप को किसी ने सिद्ध कर दिया और इस पर भी अपने पर किसी प्रकार की आपत्ति आने वाली नही इससे वे लोग द्विगुणित आनन्द का अनुभव करते थे।

अमृतर, अबाला, कलकत्ता, कानपुर आदि नगरो में आनन्द व्यक्त किया गया। गाधी बध के ८-१० दिन बाद अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए प० नेहरू ने उस पर दु ख व्यक्त किया था और उस आनन्द की अभिव्यक्ति पर टीका करते हुए उन्होने उसे लज्जास्पद बताया था। पण्डित नेहरू को इससे जो दु ख हुआ वह स्वाभाविक था और उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती थी। उनकी गाधी जी पर, (दिखावे के लिये ही सही) अपार भक्ति थी। वास्तव में हिन्दू मन ऐसा क्रूर होता भी नही। परन्तु यदि इतिहास की दृष्टि से हमें जब कभी तर्क प्रस्तुत करना होगा तो हमें कहना पडेगा कि विभाजन के कारण घर-घर में हुए अत्याचार, नरसंहार और पलायन तथा उसके बाद भी गाधी जी द्वारा किया गया अनशनरूपी दुराग्रह इन सब के कारण उत्पीडितो के मन मे

उनके प्रति बहुत कटुता भर गई थी।

मैंने स्वय देखा कि गाधी की मृत्यु पर सेना मे जो शोक प्रदर्शित किया गया वह मात्र प्रदर्शन था, उसमें वास्तव मे कही दु ख का लेश भी नही था, गाधी वध के बाद चार पाँच दिन तक, जब तक मैं पकड़ा नही गया, उस अवधि में सैनिक शिविर के लोगो से मेरा मिलना जुलना जारी था। अग्रेजी शासन की ईसाई पद्धति के अनुसार दिन भर वे बाँह पर शोकचिह्न बाधते थे किन्तु रात्रि के समय उन शोकचिन्हो को अपनी जेबो मे ठूँस लेते थे और दिन भर जिन भावनाओ को अनिच्छा से दबाकर रखते थे उन्हे मुक्त रूप से व्यक्त करने लग जाते थे। वे कहते 'कश्मीर में लड़नेवाली अपनी सेनाओ का अब उत्साह भग नही होगा।'

मैं पाठको को यह स्मरण करा देना चाहता हूँ कि यह सारी बात कहते समय मेरा अभिप्राय गाधी जी का अनादर करना किंचित-मात्र भी नही है। आज हम शस्त्र का उत्तर शस्त्र से देते है। यदि किसी ने आक्रमण करने की ठानी तो समय पर हम उसके गढ में घुसकर रणभेरी बजाने का दावा करते हैं। शत्रु का विनाश करनेवाले का गौरव-गान हम गाया करते है। आक्रमक को उसीकी भूमिपर खदेड मारने वाले वीरवर लाल बहादुर शास्त्रीका चित्र आज घर घर में टगा दिखाई देगा। अपनी इन कृतियो से हम गाधी जी के प्रति अनादर-भाव व्यक्त करते है, यदि कोई ऐसा समझता है तो यह उसकी भूल होगी। उसी प्रकार उस समय होने वाली घटनाओ को भी उचितरूपेण परखनेवाले को यह कहना कि वह गाधी का अनादर करता है यह भी भूल ही थी। अमुक लडाई में मराठो की हार हुई ऐसा पढते समय, अथवा उस पराभव की ऐतिहासिक छान-बीन करते समय हम इतिहासकार को दोषी नही सिद्ध करते।

उस दिन कार्यालय मे चल कर एक घटे में अपने माता पिताजी के घर पहुँच गया था। लोगो का आना-जाना जारी था। कभी मैं भी बाहर चला जाता था। रात्रि के दस साढे दस बजे तक घर मे चर्चा यही चलती रही, बाद में सब सो गये।

मैं बाहर के कमरे में लेटा था। मन की अस्वस्थता के कारण मैं उठा और बाहर निकला। कही पर मैंने कान लगा कर सुना तो विदित हुआ कि नथूराम का नाम प्रकट किया जा रहा है। अब तो तर्क करने का अवसर नही रह गया था। बात स्पष्ट सम्मुख आ गई थी।

मैंने अपने मन को समझाया। अपने प्राणो पर अपना अधिक मोह होता है। किन्तु स्वेच्छा मे सती व्रत ग्रहण करनेवाली स्त्री कभी इस बात मे नही डरती कि उसके शरीर को जीवित दागा जावेगा। निष्ठा पर उसकी जो एकाग्रता है वह उसको शारीरिक वेदना से परे ले जाती है। विचार करके दुस्साहस करने वाला मनुष्य परिणाम की सिद्धता पहले ही कर लेता है। दैव के पासे कैसे पडेंगे

यह नही कहा जा सकता। नथूराम के स्थान पर यदि मैं होता तो ' ?

मेरा विचार उस काल्पनिक प्रश्न पर ही रुक गया। कल्पना की सीढी को चाहे कितनी ही उचाई पर चढा लो उसका कही अन्त नही होता। मेरे मन की अस्वस्थता अब कुछ कम होने लगी थी। उसका कारण वस्तुस्थिति का ज्ञान ही था। जब तक मन अस्वस्थ था तभी तक तर्क के लिये भी अवसर था।

जब तक मैं रात्रि में घर वापस आया मेरे माता पिता सो चुके थे। मैंने उन्हे नही जगाया। उनको अभी तक वस्तुस्थिति का कोई ज्ञान नही था, इस कारण उसी प्रकार वे शान्त निद्रा में लीन थे। आज रात उनकी अन्तिम शान्त निद्रा की रात्रि थी। कल से तो उनको दिन और रात समान अस्वस्थता में व्यतीत करने होगे।

उस रात मैं ठीक प्रकार सो नही पाया। रात को दो-तीन घटे ही नीद आई होगी। प्रात शीघ्र ही उठ बैठा। मैं समझता था कि पुलिस तलाशी के लिये आवेगी अथवा पकडने के लिये भी आ सकती है। मैं यह विचार कर ही रहा था कि किसी के दरवाजे तक आने की टोह लगी। तब भोर के साढे चार बजे होगे।

मैं उठा, दरवाजा खोला। देखा आरक्षक नही है, दो परिचित जन है। वे अन्दर आ गये। उन्होने कहा, "रात के लगभग दस बजे आकाशवाणी पर नथूराम का नाम लिया गया।" तब तक माता पिता भी जाग चुके थे। उन्होने भी इस बात को सुन लिया था।

इस घटना से नथूराम के भविष्य का विचार कर घर में शोक की लहर दौड गई थी। वे परिचित थोडे ही समय तक वहाँ रहे और सान्त्वना के कुछ शब्द कहकर फिर चले गये। अब माता-पिता को समझने और सान्त्वना देने का बोझ मुझ पर आया। परन्तु मुझे वह अवसर नही मिल सका।

दस पन्द्रह मिनट में ही पुलिस आ पहुँची। उनमे से कई जवानो ने घर को चारो ओर से घेर लिया। कई पुलिसवाले अन्दर आ गये और उन्होने तलाशी लेनी आरम्भ कर दी।

वे अपना कर्तव्य कर रहे थे। इस सब क्रिया में उन्होने सारा घर उलट पुलट कर लिया किन्तु किसी प्रकार की अभद्रता अथवा औद्धत्य का व्यवहार उन लोगो ने नही किया। न जाने क्यो, ऐसा लग रहा था कि उन्हे इस घर मे सहानुभूति-सी हो गई थी। मानो उन्हें ऐसा लग रहा था कि इस शोक मग्न घर की तलाशी का दुष्कर कृत्य उनके हिस्से आया है। शासनतन्त्र एक यन्त्र के समान होता है यह सत्य होने पर भी वह यन्त्र मानवी यन्त्र होता है। उस स्थानाधिष्ठित व्यक्ति की मनोधारणा के ऊपर आपस के सम्बन्ध निर्भर रहते है। अपने अनेक

वर्षों के बन्दीजीवन में मैंने शासकीय व्यक्तियो के विभिन्न स्वभाव देखे है। कभी कभी मुझे शासन के ऐसे लोग भी मिले, जिनमें मैं 'मनुष्य' पा सका। इस तलाशी के प्रसग मे मुझे ऐसे मनुष्य स्वभाव का प्रथम अनुभव हुआ।

तलाशी में दो-ढाई घटे लगे। उनको किसी प्रकार की कोई आपत्तिजनक सामग्री अथवा साहित्य नही मिला। कुछ तो भी ले जाना ही चाहिये, इसलिए पहसुल, छुरी, बट्टा आदि चीजें कदाचित आपत्तिजनक श्रेणी में मानी जाय ऐसा निर्णय करके उन्हे ले जाने का दिखावा भी उन्होंने नहीं किया। तलाशी पूर्ण हो जाने के बाद वे मुझे और मेरे छोटे भाई गोविन्द को अपने साथ थाने मे ले गये।

हमें लगभग तीन घटे वहाँ रक्खा। हम दोनो को अलग-अलग बुलाया गया। कुछ प्रश्नोत्तर हुए। वे प्रश्न बिल्कुल ऊपरी तौर के थे। नाथूराम कहाँ काम करते है? क्या काम करते है? कितना वेतन है? विवाह हुआ कि नही? बच्चे हैं अथवा नही? कितने भाई बहिन हैं? इसके अतिरिक्त भी अन्य कोई रहने का स्थान है क्या? नथूराम घर कब आये थे? क्या जाते समय वे कुछ कह गये थे? वे कौन से कपडे लेकर गये? आदि, आदि। गोविन्द के पास छिपाने के लिये कुछ भी नही था। और यदि देखा जाय तो इन प्रश्नो के विषय में तो मेरे पास भी छिपाने के लिये कुछ नही था। प्रश्नो को सुनकर ऐसा लगता था कि पूना की पुलिस को कोई विशेष आदेश उस समय तक नही मिला था। वे साधारण रीति से ही अपना कर्तव्य निभा रहे है। तलाशी की कोई विशिष्ट दिशा उनकी नही थी। इसलिये प्रश्नोत्तर होने के बाद भी उन्होंने हमें वहाँ बहुत देर तक बैठाये रखा। और बाद में मुक्त कर दिया तब तक कई लोगो को वे ला चुके थे।

बाहर आने पर मुझे खडकी के घर जाने का विचार आया। पुलिसवालो को मैंने अपना रहने का वह स्थान बता दिया था। इसलिये वहाँ तलाशी होने की सम्भावना थी। मुझे ऐसा लगा कि ऐसे समय मेरा वहाँ उपस्थित होना आवश्यक है। गोविन्द को घर जाने के लिये कह कर मैं खडकी जाने के लिये निकला।

परन्तु मेरा हेतु इतना सरल नहीं था। घर में अनेक कागज-पत्र थे उनमें आपत्तिजनक तो कुछ भी नही था। परन्तु कौन से पत्र का कब कैसा सम्बन्ध जोड़ा जाता है इसका कोई भरोसा नही किया जा सकता था। अत मेरा विचार था कि यदि अवसर मिला तो इस प्रकार के सन्देहास्पद पत्रो को नष्ट कर दूंगा, इसीलिये मैं उस ओर जाने के लिये निकला था।

उस ओर सब सन्नाटा था। आस पास के घरो में नित्य की भाँति सब कारोबार हो रहा था किन्तु धीमे धीमे। नित्य की सी गडबड, चिल्लाहट अथवा शोर नही। मेरी ओर देखने की पडोसवालो की दृष्टि कुछ विचित्र सी लगती थी। नथूराम मेरा भाई है उस समय तक उनको यह बात विदित हो चुकी थी।

उनका मेरे पास आना जाना है यह भी उनको ज्ञात था।

मैंने इन सब बातों पर कोई ध्यान नही दिया और दरवाजा खोलकर सीधे भीतर चला गया। भीतर जाकर दरवाजा भीतर से बन्द कर दिया। पत्रो का तार-फाइल निकालकर अन्दर के कमरे में गया। सभी पत्रो को गौर से देखने परखने का समय नही था। सरसरी तौर पर जिन पत्रो को मैं सन्देहास्पद समझता था उनको तार में से फाड कर बाहर निकाला और स्नानगृह में पानी गरम करने के बहाने उनको जला डालने के लिये स्नान गृह में जाकर दो उपलो पर तेल डाला, पत्रो को बम्बे के पास रख लिया। सारे पत्र एक साथ डालने से धुआँ हो जावेगा यह विचार कर थोडे थोडे कागज डालने का निश्चय किया।

यह सब एकत्रित कर लेने पर देखा कि ढूढे से भी दिया सलाई नही मिल रही है। विगत तीन चार दिन से मेरा भोजन पूना में ही हो रहा था। चूल्हा जलाने का अवसर नही आया था। नित्य के स्थान पर दियासलाई नही थी। चूल्हे के डिब्बे में देखा तो एक दियासलाई की डिब्बी अधूरा मुख खोले पडी है। घर में तो दियासलाई थी नही और पडोस में जाकर या बाहर जाकर दिया सलाई ले आने की हिम्मत मुझ में नही थी।

परन्तु मुझे एक विश्वास था। मेरी पत्नी आवश्यक वस्तुओ का सचय घर में रखती है। घर में दिया सलाई होगी ही यह तो मैं जानता था किन्तु वह कहाँ मिलेगी बस इतना ही प्रश्न था। मैंने खोजना आरम्भ किया। सब खुले स्थान देख लेने के बाद डिब्बे खोलने आरम्भ कर दिये। मसाले की एक डिब्बी में दिया सलाई की तीन डिब्बिया दिखाई दी। दो बन्द, एक खुली।

इस सब कार्य मे मुझे पाच मिनट से अधिक नही लगा होगा। परन्तु पत्र नष्ट करने का कार्य शीघ्र करने का है इस विचार से ही उस पाच मिनट के विलम्ब के कारण मेरे मन पर तनाव आ गया था।

दियासलाई लेकर मैं बम्बे के पास आया। सलाई जलाने ही वाला था कि द्वार पर दस्तक सुनाई दी। मैं न केवल सहम गया अपितु डर भी गया। मन-दुविधा मे पड गया। दियासलाई जलावें अथवा नही, इसी सकट में खडा-सा रह गया। यदि उनको अधजले पत्र मिल गये तो वे समझेंगे कि मैंने जरूर कुछ छिपाने का यत्न किया है। इससे उनके सन्देह को पुष्टि मिलेगी। पत्रो को यदि वैसे ही छोड दिया तो भी वे समझेंगे कि मै इनको नष्ट करने के प्रयत्न मे था इससे उन पत्रो को अनावश्यक महत्व मिलेगा।

मेरा विश्वास था कि पत्रो में कुछ भी नही था। मैं पत्र क्यो जला रहा था इसका स्पष्टीकरण देने की जब मेरी सिद्धता हुई तो मै द्वार की ओर बढा। बाहर के कमरे में लकडी की जाली लगी थी उसके छिद्र से बाहर देखा जा सकता

था। पुलिस जैसी वर्दी नही दिखाई देती थी। मुझे कुछ धीरज बधा। तभी द्वार पर पुन दस्तक हुई और साथ ही मेरा नाम भी लिया गया। मैंने आवाज को पहचानने का यत्न किया, कुछ परिचित-सा स्वर प्रतीत होता था। मैंने द्वार खोला। देखा तो मेरा एक पजाबी मित्र रामनाथ द्वार पर खडा है। मैंने उसको भीतर बुलाकर द्वार पुन बन्द कर दिया।

रामनाथ ने किसी प्रकार की लम्बी चौडी भूमिका नही बाधी। सीधी बात प्रारम्भ कर दी। बोला, "गोपाल जी! तुम्हारा भाई है न वह ?"

"हाँ।"

आश्चर्य एव प्रशसा के से कुछ उद्गार उसने व्यक्त किये। किन्तु तब तो मेरी मन स्थिति प्रशसा सुनने की भी नही थी। मेरे मन पर तनाव था। मैं सोचता था कि रामनाथ जितनी जल्दी यहा से हो सके चला जाय तो अच्छा है। इसलिए मैंने उससे कहा, "रामनाथ! मैं पूना जाने की शीघ्रता में हूँ।"

रामनाथ समझ गया। बोला, "मुझे भी शीघ्र ही जाना है। मैं एक काम के लिए आया हूँ।"

"ऐसे विचित्र समय मे क्या काम आ गया आपको ?"

"···क्या इस घटना से आपका कुछ सम्बन्ध है ?" उसने मुझसे प्रश्न किया।

"नही। मेरा कोई सम्बन्ध नही है। क्यो ?"

"कुछ नही, कुछ दिन पूर्व तुम गाव गये थे। जो भी हो। मैं जो कह रहा हूँ उसे उसे शान्ति मे सुनो। बीच में टोका मत करो। क्योकि समय मेरे पास भी कम है।"

वह जो कुछ कह रहा है उसका मेरी दृष्टि से कोई महत्व नही है ऐसा निर्विकारी भाव दिखाते हुए मैंने कहा, "बोलो"

"मेरा कहना यह है कि यदि तुम्हारा इससे कोई सम्बन्ध है तो तुम्हें यहाँ से शीघ्र ही निकल जाना चाहिये। यदि दिल्ली जाना हो तो मैं अपने एक परिचित के नाम पत्र दे दूगा। आपके निवास एव भोजन की वहाँ व्यवस्था हो जावेगी। किन्तु आपको दिल्ली मे भी अधिक नही रहना चाहिये। आस पास असख्य निर्वासित रहते हैं उनमे घुलमिल कर रहना। मुँह से मराठी का उच्चारण मत करना। तुमको पजाबी आती है, वह भी कम मे कम बोलने का यत्न करना। किसी को मिलने आदि के लिये सन्देशा मत भेजना और न ही किसी को पत्र लिखना। आपको इस तरह कम मे कम छ मास तक रहना होगा। आपको निकलने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो इसके लिये मैं डेढ सौ रुपया लाया हूँ, वह आप अपने पास रखिये। यह समय बडे महत्व का है। आगामी चार-छ घटो मे

आपको यहाँ से कम से कम ५० मील दूर होना चाहिये। किसी भी मार्ग से जाओ। नित्य के रास्ते से मत जाना। आगे फिर भगवान की मर्जी है।"

मेरे मन मे उठनेवाले विचारो को रामनाथ गति प्रदान कर रहा था। किन्तु मैं जानता था कि जो लोग भूमिगत हो जाते है उनके परिजनो को बहुत परेशान किया जाता है। इसलिये मैंने दूर जाने का निश्चय नही माना था। रामनाथ के कथन से भी मेरा निश्चय बदला नही। रामनाथ मेरी ओर एक दृष्टि से देख रहा था। अतरग की गहन तरगे सम्भवतया मेरे मुख पर प्रकट हो रही थी।

"मेरा इस घटना से कोई सम्बन्ध नही है" सम्भवतया इतने स्पष्ट शब्दो में इसे अस्वीकार कर नही पाऊँगा। ऐसा मुझे लगता था। मैंने रामनाथ से कहा, "इस घटना से मेरा सम्बन्ध जोडा जावेगा अथवा नही, इसका मुझे ज्ञान नही है। परन्तु किसी भी अवस्था मे भूमिगत न होने का मैंने निश्चय किया है।"

"आपकी इच्छा" इतना कहकर रामनाथ चुप हो गया। वह जाने के लिये उठा। जाते हुए उसने कहा, "तुम यदि मुक्त भी रहो तो भी तीन-चार माम तक मुझसे मत मिलना और मैं भी तुमको नही मिलूगा। कल रात भी मै यहा आया था किन्तु मकान में ताला लगा था। प्रात एक प्रयत्न और करने की दृष्टि से आया था, आपसे भेंट हो गई अच्छा ही हुआ। अब मैं जाता हूँ।"

रामनाथ निकल गया। मैंने द्वार बन्द किया और बम्बा जलाया। समय-समय पर द्वार की ओर झाक लेता था। कान बाहर की ओर ही थे। एक-एक कर मैंने सभी पत्र जला डाले थे।

दोपहर तक कोई नही आया। तीन बजे के बाद मैं पूना जाने के लिए निकला।

पाच छ दिन बाद मेरे घर की तलाशी हुई। उस समय पुलिस ने एक पत्र अपने अधिकार में किया। बिलकुल ही साधारण पत्र समझ कर मैंने उस पत्र को तार मे ही छोड दिया था। उस पत्र मे पुलिस को कोई सन्देहास्पद बात यदि दिखाई दी तो केवल यही कि पत्र लेखक ने अन्त में "युवर्स ब्रदर्ली" लिखा था। अटोनी नामक मेरे एक ईसाई मित्र का वह पत्र था। इस पत्र के आधार पर उस मित्र को भी तलाशी की कठिनाई भुगतनी पडी थी।

मैं पूना पहुँचा। गाधी वध के कारण लोगो के मनो मे क्षोभ था। उस मन क्षोभ के कुछ अवशेष घर मे दिखाई दिये। गाधी जी के नाम पर घर की वस्तुओ को उठाकर ले जाने के खुल्लमखुल्ला अवसर का लोगोंने लाभ उठाया था। उनकी कृतियो के अवशेष दिखाई दे रहे थे। जो मनक्षोभ हुआ, उसका क्या अर्थ था, उसके पीछे क्या हेतु था, ये बातें महाराष्ट्र के जानकार लोग भली भाति जानते है। परन्तु उस समय गाधी जी के नाम पर सब कुछ

खप गया था।

मेरी माता जी ने तनिक उग्रता दिखाई थी। लूट मचाने के लिये आये हुए झुण्ड को थोडा बहुत रोकने में उनको सफलता मिली थी। गोविंद तो भीड़ में अटक गया था। उसको मारा पीटा भी गया था।

श्री स० गो० बर्वे उस समय वहा के जिलाधिकारी थे। उन्होंने हमारे माता पिता जी की सुरक्षा की दृष्टि से उनको थाने में बुलवा लिया था। दो दिन तक वे वहीं रहे। बडे भाई दत्तात्रय को पकड लिया गया था। अन्य भी अनेक लोग पकडे गये थे। उस समय यही सुनने में आया था कि दत्तात्रय तथा अन्य १०–१२ लोगो को भारतीय दण्डविधान की धारा ३०२ के अन्तर्गत पकडा है। कुछ दिन बाद उन पर से धारा ३०२ का आरोप हटा लिया गया था और प्रतिबन्धक स्थानबद्धता के आधार पर उनको बन्दी बनाये रखा गया था।

दि० ३१-१-४८ को रात्रि से कर्फ्यू लगा दिया गया था। मेरी पत्नी शनि-वार पेठ में अपने मायके में थी। उस दिन मैं उसके पास गया था। मेरा विचार था कि गोविन्द उस दिन 'उद्यम' मे ही होगा। (उद्यम इजिनियरिंग मेरे बंधु दत्तात्रय का उद्योगालय है।)

रविवार १–२–४८ को दिन भर कर्फ्यू रहा। सोमवार को कुछ समय के लिये हटाया गया। उस दिन प्रात पत्नी से विदा होकर मैं घर से बाहर निकला। मुझे कभी भी पकड़ लिया जा सकता है, इनकी उसको भी कल्पना थी। मैं खडकी को काम पर जाने के लिए निकला। अभी आधा घण्टा शेष था अत खडकी में अपने घर हो आऊ यह विचार कर मैं उस ओर गया।

घर के सामने पहुँचते ही दो तीन आरक्षक द्वार पर तैनात देखे। उन्होंने मुझे बन्दी बना लिया और खडकी की चौकी पर ले गये। वहा मुझसे पूछताछ की गई। मुझे पकड कर रखने का आदेश उस चौकी को नहीं मिला था इस कारण न तो मुझे पकड कर रखा गया और न ही मुझे वहा से जाने दिया गया। तीन चार दिन तक लगभग मुझे बन्दी जैसा ही रखा। काम पर जाता था। खडकी में ही कहीं पर भोजन कर लेता था। पुलिस मेरे साथ होती थी और रात को मुझे चौकी पर ही सोना पडता था।

"क्या आप लोगो ने मुझे गिरफ्तार किया है?" मैंने पुलिसवालो से पूछा तो उन्होंने इनकार कर दिया। तब मैंने कहा कि मुझे अपने मार्ग पर जाने दीजिए। दो तीन दिन से लगातार मैं उनसे यही कहता था। अन्त मे मैंने उनसे कहा कि मुझे समीप के गाव उकमाण जाना है मुझे जाने दिया जाय। उनकी ओर से अनुमति मिलते ही मैंने वरिष्ठ अधिकारियो को अवकाश का आवेदन देकर उसे स्वीकृत करा लिया। दि० ५–२–४८ को दोपहर खडकी स्टेशन से कामशेत

जाने के लिये निकला । स्टेशन तक आरक्षक साथ आये थे ।

बम्बई गुप्तचर विभाग ने गाधी वध काण्ड की तलाशी का काम अपने हाथ में लिया था । गुप्तचर विभाग का कार्यचक्र बडे वेग से चक्रायित होने लगा । गुप्तचर विभाग का एक दल मेरी खोज के लिये पूना पहुच गया । उन्हें विदित हुआ कि खडकी की चौकीवालो ने मुझे अनधिकृत रूप में कैद करके रखा है । वे खडकी चौकी पर पहुँचे । वहाँ जा कर उनको विदित हुआ कि अभी एक घण्टा पूर्व ही उन्होंने मुझे मुक्त किया है ।

मैं कहाँ जा रहा हू कौन सी गाडी से जा रहा हूँ, कहाँ जा कर उतरनेवाला हूँ, इसकी जानकारी खडकी चौकीवालो को थी । बम्बई के गुप्तचर विभाग ने उसी दिशा मे अपना चक्र घुमाया ।

मैं कामशेत उतरकर उकसाण गाव की ओर जा रहा था । वह मार्ग दस मील का था । आधा मार्ग तय करने के बाद मैंने देखा कि पीछे पुलिस की गाडी आ रही है । उन्होंने मुझे अपनी गाडी में बैठा लिया । उनका कहना था कि कुछ पूछताछ करनी है ।

पूछताछ करना कोई अच्छा लक्षण नही, इस कल्पना से ही मेरे मन मे फिर भय समा गया । पुलिसवाले बम्बई के गुप्तचर विभाग के थे इसकी उस समय मुझे जानकारी नही थी । मुझे वापस कामशेत लाया गया । एक घर जा कर मुझे बरामदे की एक बेंच पर बैठने के लिये कहा गया । चाय काफी के बारे में पूछा तो मैंने चाय के लिये कह दिया ।

चाय पीने तक किसी ने कुछ नही पूछा । बडी शान्ति थी । तूफान से पूर्व की सी शान्ति । उस समय दोपहर के चार बजे होंगे । मेरे चाय समाप्त करते ही एक पुलिस अधिकारी ने कहा, "आप अब बन्दी है" ।

जो होनेवाला है, वह हो चुका है । यह विचार कर मेरी चिन्ता दूर हुई और मन पर से एक प्रकार के बोझ उतरने का भाव सहज ही मेरे मुख पर आ गया । अधिकारी ने आगे कहा, "यह कैद गाधी वध से सम्बन्धित है" । इस क्षण से मेरा बन्दीजीवन आरम्भ हो गया ।

और कौन कौन इस प्रकरण मे बन्दी बनाये गये है, इसकी जिज्ञासा मेरे मन में उठ रही थी । परन्तु इस विषय मे पूछने का अर्थ होगा स्वयं ही कुछ बात प्रकट करना । अत मैं चुप ही रहा । मैं समझता था कि कुछ ही समय में सारी परिस्थिति विदित हो जावेगी ।

पुलिस चौकियो पर हावालातियो की दुर्दशा होती है ऐसा सुनने तथा पढने मे आया था । कभी कभी चित्रपट पर भी उस प्रकार का स्वरूप देखने मे आ जाता था । विधान का नियम है कि आरोपी के साथ मारपीट न की जाय । किन्तु

प्रत्यक्ष में मार पीट से कदाचित ही किसी कैदी को मुक्ति मिली हो। ऐसा क्यो होता है, यह जानना बडा रुचिकर है।

आरक्षक और आरोपी के परस्पर हित सम्बन्ध विरोधी होते है। एक को अवैध घटना के तन्तु खोजने होते है। दूसरा अपनी गर्दन बचाने का यत्न करता है। कोई भी अवैध कार्य करने तक आरोपी भले ही यशस्वी पुरुष रहा होगा। किन्तु पुलिस के हाथ में पड जाने पर उसका वह कुछ तुच्छ हो जाता है। केवल कैद करने मात्र से ही पुलिस का कर्तव्य पूर्ण नही हो जाता। कैद किया हुआ व्यक्ति घटना से सम्बन्धित है अथवा नही, यह देखना उसका काम होता है। यदि वह व्यक्ति उस घटना से सम्बन्धित है तो उसको न्यायालय में सिद्ध करना भी पुलिस का कार्य होता है। न्यायालय का नाम आते ही प्रमाणो का प्रश्न उपस्थित हो जाता है और ऐसे प्रमाण उपलब्ध करने का निकटतम साधन होता है कैदी व्यक्ति।

वह व्यक्ति चुप रहनेवाले स्वभाव का हुआ तो उसको बोलनेवाला बनाना पडता है। उसने अमुक बात छिपाई है, यह बात ध्यान मे आते ही वह गुप्त बात उससे किसी न किसी प्रकार निलकवा लेनी होती है। आज या कल कभी न कभी तो कैदी उस छिपाई हुई बात को बता ही देगा, तब उसको तग करने से क्या फायदा ? कैदी का हृदय परिवर्तन हो जायेगा, ऐसा विश्वास यदि आरक्षक अधि-कारी करने लगे तो सौ घटनाओ में से एक घटना को भी न्यायालय में सिद्ध करना उनके लिये सम्भव नही हो पावेगा। मार पीट करना अवैध एव दण्डनीय है इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि पुलिस को भी मार-पीट का भय बना रहे जिससे कि मार-पीट एक निश्चित सीमा तक ही की जा सके।

कई घटनाओ में पुलिस को आसानी से प्रसग-सूत्र उपलब्ध हो जाते है अथवा कैदी स्वय ही उनको बता देता है। तब मार पीट करने की आवश्यकता नही होती। केवल धौंस जमाने के लिये दो-चार तमाचे लगा दिये, इस प्रकार नही किया जाता।

अनेक बार तो ऐसा भी होता है कि घटना से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्धित व्यक्ति कोई अन्य होता है मारा पीटा जानेवाला व्यक्ति सर्वथा निर्दोष होता है। सतारा के जलमन्दिर के चोरी के प्रकरण में ऐसा मैंने पढा था। चोरी किसी अन्य ने ही की थी, किन्तु पकडा किसी अन्य को गया था और उनके साथ थाने में दुर्व्यवहार किया गया। वास्तविक चोर बहुत बाद में पकडा गया था।

गाधी के वध निमित्त स्थान स्थान पर अनेक लोगो को पकडा गया था। उनमें से अनेको को बिना कारण मारा पीटा गया था। कही कही पर तो पुलिस ने अथवा तथाकथित गाधीवादी काग्रेसियो ने अपने व्यक्तिगत वैर का बदला भी इस अवसर पर लिया था।

गाधी वध के प्रसग में जिनको प्रत्यक्षकर्ता माना गया उनके साथ बिना सोचे विचारे मार पीट नही की गई। पुलिस को घटना का सूत्र ढूढना आवश्यक था। किन्तु जहाँ से भी वे मिलें वही मार पीट का प्रश्न नही था। यदि सूत्र मिलने में कही कुछ कठिनाई हुई तो फिर पुलिसवाले ने अपने शस्त्र का प्रयोग किया था।

नथूराम को देहली पुलिस ने पकडा था। रात्रि को उनकी जाच शुरु हुई। जाच की पद्धति के अनुसार कुछ प्रथमोपचार किये गये। लाला हृपिकेश दिल्ली पुलिस के एक वरिष्ठ अधिकारी थे। उन्होने मध्यरात्रि के समय नथूराम की जाँच को अपने हाथ में लिया। लगभग पौन एक घण्टा उन्होने नथूराम से प्रश्नोत्तर किये।

उन प्रश्नोत्तरो मे प्रत्यक्ष घटना और उसके कारण आदि पर अधिक जोर दिया गया था। नथूराम ने इस प्रसग में लाला हृपिकेश को वताया, "यदि आप सम्वन्वो का विवरण पूछने वैठे तो मैं समझता हूँ कि इस समय मेरी मन स्थिति ऐसी नही है कि मैं सव कुछ सुसगत वता सकूँ। वह तो तभी सम्भव होगा जव एक दो दिन वाद मेरा मन सुस्थिर हो जावेगा। हा, यदि आप समझते हो कि मार-पीट के विना वह सव मिलनेवाला नही है तो उसके लिये आप स्वतन्त्र है। मुझे उस विपय में कुछ भी नही कहना है।"

अधिकारी गण भी यह समझते थे कि इस मनुष्य को शारीरिक कष्ट देकर इससे कुछ उगलवाया नही जा सकता है। अपनी विशाल हृदयता का परिचय देते हुए लाला हृपिकेश ने अपने अधीनस्थ कर्मचारियो को आदेश दिया था कि नथूराम को किसी प्रकार की शारीरिक यातना न दी जाय। न केवल इतना उन्होने यह भी ध्यान दिया कि उनको आज्ञा का ठीक पालन होता है अथवा नही, कही उसका उल्लघन तो नही किया जाता। नथूराम को किसी प्रकार का कष्ट पुलिस ने नही दिया। आगे चलकर वम्बई पुलिस एव गुप्तचर विभाग ने उनको किसी प्रकार की यातना नही दी। उनके साथ पुलिस अधिकारियो का व्यवहार सौजन्यपूर्ण ही रहा। उनके मुख से कुछ निकलवा लेने के लिये भी पुलिस के पास कुछ वचा नही था।

दिगम्वर रामचन्द्र वडगे को पूना पुलिस ने दि० ३१-१-४८ को कैद किया था। वाद में वम्वई पुलिस ने उसको अपने अधिकार में ले लिया था। वडगे से वातें कहलवा लेने मे पुलिस को वहुत कठिनाई हुई थी। वात वताने मे पूर्व वडगे को भी वहुत कष्ट हुआ था। 'मूक करोति वाचालम्' पुलिसवालो के पास इतनी शक्ति थी। वडगे ने जव वोलना प्रारम्भ किया तो गोला वारूद के सग्रह वाहर निकलने लगे और आगे चलकर वडगे को क्षमा का साक्षी वनाया गया।

गाधी वध के दस दिन पूर्व मदनलाल पाहवा को बन्दी बनाया गया था। प्राथमिक जाच मे उनसे जो ज्ञानकारी मिली उसमे अधिक कुछ वह बाद में नही दे सके। क्योकि उनको बहुत ही कम जानकारी थी और उनके पास छिपाने के लिये भी कुछ नही था।

जब तक मुझको पकडा गया था तब तक तो पुलिस को बहुत कुछ सूत्र विदित हो गये थे। मेरा इन वध से कुछ सम्बन्ध है इसकी पुष्टि ही मुझसे करवाने मात्र का कार्य पुलिस को मुझसे रहता था।

उनको यह बताया गया था कि मैं २० जनवरी को दिल्ली में था और उस समय मेरे पास एक रिवाल्वर भी था ऐसी उनकी जानकारी थी। मेरे पकडे जाने के बाद ५-२-४८ को मेरे खडकीवाले घर की तलाशी हुई थी। रिवाल्वर नही मिला था वह किसी प्रकार बाहर आ जाय इसके लिये पुलिस ने मुझे तग किया। मैंने उसे फेक दिया, और कहाँ फेका इसका मुझे ज्ञान नही मैंने इस प्रकार का आग्रह किया था किन्तु मैं उस पर टिक नही सका।

गाधी वध के ८-१० दिन पूर्व मैंने एक थैला अपने एक मित्र को दिया था। गाधी का वध हुआ, उसमें नथूराम का नाम प्रकट हुआ ऐसी अवस्था में वह थैला अपने पास रखना उपयुक्त नही ऐसा विचार कर मेरे उस मित्र ने उस थैले को अपने एक अन्य मित्र को देकर कहा कि इसको नष्ट कर दिया जाय। उस तृतीय मित्र ने अपने मित्र के निर्देशानुसार उसे सुदूर कही सडक के किनारे उस थैले को फेंक दिया था। मित्रो के ये सब कृत्य मेरी अनुपस्थिति में हुए थे और मेरी जानकारी के बिना हुए थे। जो मैं कह सकता था वह इतना ही कि मैंने एक थैला अपने पहले मित्र को दिया था।

ऐसा बताने पर पहले और दूसरे मित्र को सकट झेलना पडा था। अपनी विवशता पर मुझे बहुत दु ख हुआ और खेद भी। उन दोनो में भी दूसरे को कुछ कम कष्ट हुआ था। क्योकि थैला मिल नही पाया था। छिपाई हुई वस्तु बल प्रयोग से ऊपर आ सकती है परन्तु जो वस्तुस्थिति ही है अर्थात् जिसमें छिपाने की कोई बात नही उसमें से और क्या सत्य बाहर आ सकता है? अन्त मे १३-३-१९४८ को अर्थात सवा दो मास उन दोनो मित्रो के मजिस्ट्रेट सम्मुख शपथपूर्वक वक्तव्य लिये गये और भविष्य में उनकी साक्षी भी हुई। उसका साराश इतना ही था कि मैंने गाधी वध से पूर्व अपने पहले मित्र को एक थैला दिया था, उसमें एक रिवाल्वर और चार पाच गोलियाँ थी। उस मित्र ने गाधी वध के दो चार दिन बाद वह थैला एक अन्य मित्र को दिया उस दूसरे मित्र ने गोलिया तो कचरे के डिब्बे में डाल दी और रिवाल्वर रास्ते के किनारे फेंक दिया था।

मुझ पर एक और बात लादी गई थी जिससे मुझे बहुत कष्ट हुआ। अधिकारियो

कारियो का कहना था कि मैं सावरकर जी के यहाँ होकर आया था। और उसका प्रमाण उनके पास था। उनके पास प्रमाण होने की बात अविश्वसनीय है, इसका मुझे ज्ञान था परन्तु किसी ने मारपीट टालने के लिये मेरा सम्बन्ध सावरकर जी से जोड दिया होगा तो मैं कह नही सकता था। मुझ पर पुलिस के प्रयोग हुए। मैं कह देता कि प्रमाण प्रस्तुत किजिये मै उससे आपकी शका का निवारण कर दूंगा। परतु विवाद के लिये अथवा प्रमाणो की सत्यासत्यता सिद्ध करनेवाला वह न्यायालय तो था नही उनके कहने से जो संकेत मिलता था वह यह था कि १९-१-४८ को दिल्ली से सावरकर सदन में टेलीफोन आया था वह मेरे लिये था।

मैं सावरकर जी के यहाँ नही गया था। मुझे सावरकर सदन ज्ञात नही था। मेरा वहाँ के किसी व्यक्ति से परिचय भी नही था। यह बात धीरे धीरे अधिकारियो को जचने लग गई थी। परतु इतने में ही किसी ने अनर्थ कर दिया। मेरे घर की तलाशी के समय मेरे घर की दीवार पर सावरकर जी का हाथ से खीचा हुआ एक टगा हुआ चित्र किसी पुलिसवाले ने देखा था और उस चित्र पर सावरकर जी के हस्ताक्षर थे। उस व्यक्ति ने इस बात का निर्देश किया।

कितना सबल प्रमाण था यह। मानो सावरकर जी का और मेरा गहन सम्बन्ध सिद्ध करने के लिये वह अकाट्य तर्क अथवा प्रमाण था। मैं बहुत ही विवश अवस्था मे था परन्तु उस अवस्था मे भी प्रस्तुत किये गये उस प्रमाण पर मुझे हसी आये बिना नही रह सकी।

मेरे मुह से निकल गया बस ?' और मै हंस पडा था इससे अधिकारियो ने अनुमान लगाया कि मै कुछ तो भी छिपा रहा हूँ। और फिर नये सिरे से मुझ पर प्रयोग चालू किये गये।

मै गिडगिडाया, 'मेरी कुछ सुनते हो क्या ?'

''आपसे कुछ जानने के लिये हमारे प्रयत्न हो रहे है, आपको कष्ट देने की हमारी तनिक भी इच्छा नही है।"

"मेरी हंसी के कारण आपको नया आवेश आया है। आप समझते है कि मै अभी भी कुछ छिपा रहा हूँ। आपको 'बादरायण न्याय' मालूम है ?'

अधिकारियो ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो मैंने बडी आतुरता से कहा, "अस्माक बदरी चक्र" यह श्लोक पढा। तो वे कहने लगे इसका तुरन्त अर्थ करो। मैंने उन्हें कहानी सुनाते हुए कहा कि किसी अतिथि को बैलगाडी का पहिया बैर की लकडी का बना था और चूंकि आतिथेय के घर मैं बैर का पौधा विद्य-

मान था, इसलिये अतिथि और आतिथेय का निकट का सम्बन्ध सिद्ध हो गया। इसे वादरायण का तर्क कहते है।"

इससे कुछ विशेष तो नही हाँ मुझे अधिक कष्ट नही दिये गये। मुझे ऐसा लगा कि अधिकारियो को यह भास हो गया है कि उन दिनो सावरकर जी से मेरी किसी प्रकार की कोई भेंट नही हुई है। उन्हे अन्य कोई प्रमाण इसकी पुष्टि में मिला नही अत मेरे शब्दो पर कदाचित उन्होंने विश्वास कर लिया हो। अगले दिन प्रात उस प्रश्न के लिये मुझे नीचे प्रयोगशाला में नही ले जाया गया। यह जान कर मुझे प्रसन्नता हुई कि चलो इस प्रश्न से मुक्ति मिली। उस समय तक मेरी स्थिति ऐसी हो गई कि शरीर का ऐसा कोई भी अग खोजने से भी प्राप्त नही हो सकता था कि जो दुखता न हो।

इस प्रकार एक मास बीत गया होगा कि एक दिन उसी प्रश्न को लेकर अधिकारियो की स्मृति फिर बौखला उठी। मैं समझता हूँ कि सावरकरजी के विरुद्ध आरोप सिद्ध करने योग्य कोई प्रमाण हाथ में न आने के कारण और किसी न किसी प्रकार सावरकर जी को कैद में रखना ही चाहिये ऐसा ऊपर के अधिकारियो का आदेश समझकर अधिकारीगण प्रयत्नशील होगे।

वह प्रश्न फिर उपस्थित जान कर तो मेरे तो होश उड गये। अभी अभी मेरे अगो में थोडा-थोडा सुधार होने लगा था। अब पुन नये सिरे से उस प्रश्न को उठाने से बहुत ही कठिन अवस्था हो जावेगी, इसका मैं अनुमान लगाता था। मारपीट टालने के लिये "मैं सावरकर जी के पास गया था' इतना कहना ही पर्याप्त नही था। फिर तो यह भी कहना पडता कि वहाँ जाकर क्या बात की, किस वाहन द्वारा वहाँ पहुँचे थे, वह समय कौन-सा था इत्यादि सभी प्रासगिक प्रश्न उस एक बात से उठ खडे होते। किन्तु प्रश्नोत्तरो की वह माला गूथना मेरे लिये सम्भव नही था।

जाच के लिये मुझे प्रयोगशाला में ले जाया गया। किन्तु कहना चाहिये कि मेरा दैव ही बलवान था। ऐसा ही कहना पडेगा। जिस अधिकारी को उस जाच के लिये नियुक्त किया गया था उसे वरिष्ठ अधिकारियो ने तुरन्त बुला लिया था। उसने आदेश दे दिया "इनको जाच के लिये दोपहर को ले आना" और इतना कहकर वे चले गये। किन्तु वह दोपहर फिर कभी नही आई। सम्भवतया वरिष्ठ अधिकारियो ने यह आदेश दिया हो कि इस प्रश्न पर गोपाल को तग मत करो। किन्तु मेरे सिर पर तो जाच की वह तलवार सदा वैसी ही लटकती रही। इन सभी यातनाओ में मुझे अन्त में सन्तोष हुआ तो इतना ही कि सावरकरजी को फसवाने अथवा वहाँ अटकाने का दोष कम से कम मेरे सिर पर तो नही था।

उनकी और मेरी भेंट हुई अथवा नही, यह बात आजकाल के उदर में - लुप्त हो गई है।

इस सम्बन्ध में सर्वश्री अप्पा कासार, गजानन दामले आदि अन्य कई व्यक्ति जो सावरकर जी के समीप के थे, कष्टप्रद यातना से नही बच सके। किन्तु सावरकर जी के यहाँ आकर जाने का प्रमाण उनसे भी प्राप्त नही हुआ।

शकर किस्तैया बडगे का नोकर था। बडगे कहाँ होगा यह ज्ञान उसको प्राप्त करना था। किसी ने उसको बताया कि आजकल बडगे बम्बई गुप्तचर विभाग के कार्यालय मे रहता है। उसको बडगे से अपना वेतन लेना था।

पता लगाता हुआ वह दि० ६-२-४८ को सीधा गुप्तचर विभाग के कार्यालय मे आया। उसने गुप्तचर विभागवालो से कहा कि उसके मालिक से उसको वेतन के पैसे दिलवाये जायें। पुलिस तो शकर किस्तैया की खोज में थी ही। उन्होने उसका नाम-धाम पूछा और फिर कहा कि उसे ही बडगे से मिला देते है ऐसा कह कर उसके खान पान और रहन सहन का प्रबन्ध भी वही कर दिया। उसको इस प्रकार क्यो पकडा गया है इस विषय में वह उनसे तडक भडक कर लेता था किन्तु जब उसको बडगे के ही कमरे मे रखा गया तो उसको तनिक सान्त्वना मिली।

शकर किस्तैया से जब पुलिसवालो ने पूछा तो उसको जो कुछ भी ज्ञात था सब सीधे सीधे बता दिया। जाच के लिए जब उसको दिल्ली लाया गया तो जो कुछ सामग्री छिपा कर रखी गई थी, वह भी उसने निकाल कर दी।

सबसे बाद में पकडे गये थे नाना आपटे और करकरे। १३-१४ फरवरी को उनको बम्बई मे पकडा गया था। उनमे सम्बन्धित सब सूत्र केवल उनसे ही प्राप्त करने शेष थे। अन्य जाच तो लगभग समाप्त-सी हो गई थी इसलिये उन दोनो को अन्यो से सम्बन्धित किसी विषय के लिये तग करने के योग्य कुछ बाकी नही रह गया था।

सावरकर जी को कैदी के रूप में बन्द किया गया था तो भी उनको आर्थर रोड बन्दीगृह में रखा गया था। पुलिस ने उनका भी वक्तव्य लिया था। वह वक्तव्य बहुत ही सक्षिप्त था। परन्तु उनसे इससे अधिक कुछ और भी कहलवा लेना सम्भव नही था।

ग्वालियर के डाक्टर परचुरे को ग्वालियर में ही कैद करके रखा गया था। वहाँ के किले में उनकी बडी ही विचित्र दशा की गई थी। इस कारण उनको मजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित होकर स्वीकारोक्ति सूचक वक्तव्य देने के लिये बाध्य होना पडा। डा० परचुरे को जिस अवस्था में रखा गया था उस अवस्था का विचार करके पजाब उच्च न्यायालय ने उनकी स्वीकारोक्ति को स्वीकार नही किया और उन्हें मुक्त कर दिया गया।

ग्वालियर के तीन अन्य आरोपी श्री सूर्यदेव शर्मा, श्री गंगाधर दण्डवते और श्री गंगाधर जाधव को पकडा ही नही गया था। डाक्टर परचुरे पजाब उच्च न्यायालय से मुक्त होने के वाद वे तीनो अभियुक्त स्थानीय न्यायाधीश मे स्वाधीन हो गये थे उनपर से अभियोग हटा लिया गया था।

गुप्तचर विभाग के कार्यालय में रखे हुए हम लोगो अर्थात् नथूराम, आपटे, करकरे, वडगे, शकर, मदनलाल और मैं, हमलोगो के साथ अन्यथा अच्छा व्यवहार किया गया। हमें कोठरी मे न रखते हुए कार्यालय के कमरो मे रखा गया था। दिनभर वहाँ कार्यालय का काम चलता था।

बाहर के किसी व्यक्ति से हमें मिलने नही दिया जाता था। इसका अपवाद इतना ही था कि अधिकारी ही कभी-कभी किन्ही प्रतिष्ठित व्यक्ति को लेकर आ जाते थे। उस समय अधिकारियो की इच्छानुसार हम कुछ शब्द बोल भी सकते थे। इन प्रतिष्ठित व्यक्तियो में श्री स० का० पाटिल और श्री अच्युत पटवर्धन मुख्य है।

हमारे लिये माधवाश्रम से भोजन मगवाया जाता था। भोजन अच्छा होता था। चाय और धूम्रपान की भी सुविधा थी। घर के लोग जब मिलने के लिये आया करते थे तो उस समय वे कुछ खाद्यपदार्थ भी लाया करते थे।

नथूराम के लिये एक बिजली की केतली लाकर रखी गई थी। उनके कमरे मे कॉफी की सामग्री एकत्रित कर दी गई थी। वे समय-समय पर कॉफी बनाते और बीच-बीच मे हम लोगो के पास भी भिजवाया करते थे।

पुलिस अधिकारियो मे से अनेक जनो में 'पेय' का अर्थात् मद्यपान का प्रमाण अधिक मात्रा में दिखाई देता था। अनेक अधिकारी तो ऐसे थे कि जिन्होंने पानी का ही त्याग कर दिया था। उनकी जेब मे हमेशा चादी की चपटी बोतल हुआ करती थी। गाधी वध की खोज में अनगिनत पैसा बहाया जा रहा था। व्यय के लिये कोई बन्धन नही और न शायद हिसाब देने की आवश्यकता थी।

हम आरोपियो को परस्पर मिलने और बातचीत करने की मनाही थी। हमको कभी समीप लाया ही नही जाता था। इसलिये किसने किस प्रकार के बयान दिये है, इसकी जाच करने का अवसर ही नही मिलता था। कुछ प्रसगो में हमे आमने-सामने लाया जाता था। परन्तु यह तभी होता था कि जब अधिकारियो को यह कहलवाना होता था कि "अमुक" यह कह रहा है, तुम यह कहते हो। तुम दोनो के वक्तव्यो में मेल नही है। तब सच क्या है इसकी छानबीन करने के लिए दोनो को एकत्रित लाया जाता था।

ज्यो-ज्यो तलाशी का काम पूरा होता गया त्यो-त्यो हमारे बन्धन ढीले होते गये। कडाई कम होती गई। फिर भी पुलिसवालो के बिलकुल समीप होने के

कारण इस सम्बन्ध में हम किसी प्रकार की बातें नही कर सकते थे। मुझे नथूराम से मिलने दिया जाता था, हम बोला करते थे। कभी घर से मिलने के लिये कोई आते थे तो हम दोनो साथ आते थे।

तफतीश जब जारी थी तो उस समय हमारे चारो ओर जो सूत्र गूथा गया था उसकी विचित्र कहानिया हमें सुनने को मिलती रहती थी। नथूराम कभी किसी गाव में किसी सज्जन के घर पर ठहरे थे इस प्रकार का किसी का पत्र पुलिस वालो को मिलता था। उस पत्र का आशय पूर्णतया झूठ होने का भास अधिकारियो को होता था। क्योंकि अभियुक्तो की तिथिश दिनचर्या अधिकारियो के पास लिखित रूपेण विद्यमान थी और उसकी उन्होने पूर्ण जाच कर ली थी। परन्तु नये से प्राप्त इस समाचार का निपटारा करना भी एक काम है यह विचार कर फिर नये सिरे से छानबीन होती थी और जब वह असत्य सिद्ध हो जाता तो उसके विषय में अपना अभिमत वरिष्ठ अधिकारियो को भेज दिया जाता था।

नथूराम के एक ही दिन, एक ही समय पर, अनेक ग्रामों मे होने तथा अनेक व्यक्तियो से मिलने का समाचार गुप्तचर विभाग के पास आता था। उस समाचार के सम्बन्ध मे बीच बीच में हम लोगो से पूछा जाता था। एक दिन मे नथूराम के अनेक स्थानो पर विद्यमान, वार्तालाप एव भाषण की सूचना पुलिस अधिकारियो के पास होती थी। यहाँतक कि हमें एक दिन पूछा गया था कि एक दिन नथूराम नासिक था, उसी दिन वह हिजरावाद थे, मिरज थे और नागपुर भी थे। उसी दिन उसका भोपाल में व्याख्यान हुआ था। उसी दिन इटारसी के मित्रजनो ने उसको फलहार दिया। उसी दिन इन्दौर के मित्रोने उनको विदा दी। उसी दिन किसी गाडी में यात्रा कर रहे होते थे। उनके पास लोहे के दो सन्दूक थे जिन पर एन० वी० गोडसे नाम अकित था, झाँसी के निकट किसी ने उनको इन प्रकार देखा था तब उनके साथ साथ उस यात्रा मे एक-दो महिलायें भी थी।

इस प्रकार का असम्भाव्य समाचार छानबीन के लिये आने पर हमें लोगो की मनोवृत्ति पर आश्चर्य होता था। परन्तु इस सब मे छानबीन करनेवाले अधिकारियो का मनोरजन होता था। एक दिन एक अधिकारी हंसी मे नथूराम से बोले, "नथूराम! जिन लोगो ने तुम्हे कभी देखा भी नही होगा उन्हे भी तुम सर्वत्र दिखाई देते हो। नथूराम एक समय पर एक ही स्थान पर हो सकता है जनता की बुद्धि में यह बात बैठाने का कार्य हमारे ऊपर आ पडा है।"

उस विशिष्ट दिन के सम्बन्ध मे अधिकारियो के पास प्रमाण होता था और उसमें उनको किसी प्रकार का अब सन्देह नहीं रह गया था। उस निश्चित दिन

नथूराम हवाई जहाज से बम्बई से दिल्ली गये ऐसा उनके पास सप्रमाण उल्लेख होता था। नथूराम के कथन से जो वृत्त मिलता था वह भी अंकित होता था।

कभी कभी दूर-दूर के अधिकारी भी अपने पास कुछ जानकारी है और उसे तुरन्त बम्बई गुप्तचर विभाग के पास पहुँचाना चाहिये ऐसा कहकर बम्बई की यात्रा का प्रबन्ध करते थे। अनेक बार उनकी सैर पुलिस की दृष्टि में निरर्थक सिद्ध होती थी।

सामान्यतया लगभग १४ दिन बाद तफतीश के और अधिक अवसर प्राप्त करने की दृष्टि से हमें बम्बई के चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उपस्थित किया जाता था। सभी अवसरो पर न्यायाधीश श्री आस्कर ब्राउन इस प्रकार का अवसर पुलिस को देते थे।

साक्षीगण आरोपियो को ठीक प्रकार से पहचान सकें इसके लिये भी हमें बीच बीच में न्यायालय मे ले जाया जाता था। हम पूर्ण रूप से अधिकारियो के अधिकार मे थे। हमें कोठरी या बन्दीगृह में नही रखा गया था। हमारे अनजाने साक्षीगण कभी हमे इस प्रकार देख कर गये होंगे और न्यायालय में जाकर उन्होने पहचानने का नाटक किया होगा तो इसका भी हमें ज्ञान नही हो सकता था। अन्यथा पौने दो, दो या ढाई मास बाद कोई रेलवे कर्मचारी, कोई बूट पॉलिशवाला अथवा कोई तांगेवाला ठीक व्यक्ति पर किस प्रकार उँगली रख सकता था। गलती से भी निश्चित उत्तर मिलने की कभी कभी सम्भावना होती तो है। किन्तु यह अपवाद अपवाद ही हो सकता है, सदासर्वदा का नियम नही बन सकता।

जाँच-पडताल का काम जब पूर्ण हो पाया मई मास आ गया था। न्यायालय कहा बैठाया जाय, किस न्यायाधीश की नियुक्ति की जाय, अभियोग कौन प्रस्तुत करे इत्यादि बातो पर सरकार के उच्चाधिकारियो में विचार विमर्श चल रहा था।

बम्बई प्रान्त ने १९४७ में एक एक्ट लागू किया था। उसकी विशेषता यह थी कि विशेष न्यायालय प्रस्थापित करना, एक न्यायाधीश की नियुक्ति करना, नियमित्त प्रथा छोड़ कर उसी न्यायाधीश से आरोप-पत्र तथा आरोपियो के वक्तव्य लेना, हत्या के प्रयत्न के लिये भी आरोपी को मृत्युदण्ड अथवा आजन्म कारावास के दण्ड का पात्र सिद्ध करना, अभियोग का कार्य अविरत और शीघ्रता से जारी रखना, इस प्रकार का उपबन्ध उस एक्ट में था। 'उसे बम्बई पब्लिक सेक्युरिटी एक्ट ऑफ १९४७' नाम दिया गया था और मई १९४८ में उसकी सीमा इस अभियोग के लिये दिल्ली तक बढा दी गई थी। ५-६ वर्ष बाद सर्वोच्च न्यायालय ने उस एक्ट के अनुसार नियुक्त किये जानेवाले न्यायपीठो को असंवैधानिक

घोपित किया था। परन्तु उसका परिणाम पहले घोपित करने से उसने भी इन्कार कर दिया था और पहले से परिणाम घोपित कर देना सम्भव भी नही था।

दि० ४-५-४८ को श्री आत्माचरण आई० सी० एस० को गाधी वध काण्ड के लिये विशेप न्यायाधीश नियुक्त किया गया।

दि० १५-५-४८ को लाल किले के एक भाग को हम लोगो के निवास के लिये 'वन्दीगृह' वनाया गया।

लाल किले में ही न्यायालय का कार्य संचालन की योजना थी। लालकिले में इस प्रकार का न्यायालय स्थपित करने की यह तीसरी वारी थी। पहली वार १८५७ में क्रान्ति के अवसर पर वहादुर शाह पर यहाँ अभियोग चलाया गया था। उसके वाद १९४६ में आजाद हिन्द सेना के अधिकारियो पर इस लालकिले में ही अभियोग चलाया गया था। और तीसरी वार गाधी वध काण्ड का अभियोग भी इसी लालकिले में चलाया जा रहा था।

हम लोगो ने सुना कि शीघ्र ही हम लोगो को दिल्ली ले जाया जायगा। किन्तु स्पष्ट रूप से किसी ने हमको वताया नही था। इतने दिनो से एक ही स्थान पर वधे से हम लोगो को आने जाने में कुछ स्वतन्त्रता मिलेगी, वाहर का वातावरण देखने को मिलेगा, इसकी सम्भावना से कुछ हम लोगो को आनन्द ही होता था।

दि० २५-५-४८ को वम्वई गुप्तचर विभाग में रखे हम आरोपियो को दो वार में वायुयान द्वारा दिल्ली लाया गया। सावरकर जी का स्वास्थ्य उन दिनो अच्छा न होने के कारण उन्हें दूसरे दिन अर्थात् २६-५-४८ को आर्थर रोड वन्दी गृह से दिल्ली लाया गया।

डेढ दिन तक हमको अलग अलग पुलिस की कोठरियो में रखा गया। दि० २७-५-४८ को प्रात काल हमें लाल किले के वन्दीगृह के द्वार पर लाया गया। इसी स्थान पर सभी ने सावरकर जी, डा० परचुरे आदि को एक स्थान पर एक साथ देखा था।

वन्दीगृह में हमें चाय पिलाई गई और कहा गया कि चाय पीकर तुरन्त ही न्यायालय के लिए प्रस्थान करना होगा। तदनुसार ही हमने न्यायालय को जाने की तैयारी की। यह न्यायालय आज प्रथम वार ही खुलनेवाला था। वन्दी गृह से न्यायालय किसी विशेप अन्तर पर नही था। हमारे जाने के लिये फिर भी मोटर की व्यवस्था की गई थी। प्रात लगभग दस वजे हम लोग न्यायालय में पहुचे थे।

* * *

ग्यारह

प्रकाश से अंधकार की ओर

एकान्तता के घुटन भरे वातावरण से हमने न्यायालय के मुक्त वातावरण में प्रवेश किया। यह बात दि० २७-५-१९४८ की है। समय प्रातःकाल नौ बजे का था। एक डेढ घंटे पूर्व ही हम सब बन्दियो को लालकिले के विशेष बन्दीगृह में एकत्रित किया गया। प्रथम भेंट में हम एक दूसरे से केवल ऊपर-ऊपर की ही बात कर सके थे। तो भी हमारी बातचीत में अब किसी प्रकार का बंधन नही था। इस प्रकार हमने प्रथम बार यहाँ पर मुक्तता का सुख अनुभव किया था।

न्यायालय का वातावरण इससे भी अधिक मुक्त था। उस दिन प्रथम बार ही हमको प्रकट रूप में लोगो के सामने लाया जा रहा था। जाँच के दिनो में हमें कभी दिल्ली, कभी पूना, कभी ग्वालियर लाया, ले जाया तो गया था किन्तु वह सब बन्द अवस्था में ही हुआ था। यदि हवाई जहाज से भी ले जाया गया हो तो भी आसपास पुलिस का पहरा रहता था। हमें कभी मुक्त नही रखा गया था इसलिये सदा ही मन पर एक प्रकार का बोझ और ग्रन्थियो में तनाव बना रहता था। लोगों को हमें देखने की जितनी उत्सुकता रही होगी उतनी ही उत्सुकता हमें मुक्त समाज देखने की थी।

न्यायालय लगभग सौ फीट लम्बा और बाईस फीट चौडा इस प्रकार का एक लम्बा प्रकोष्ठ था। वह पहली ही मंजिल पर था। उसके एक ओर न्यायपीठ और उनके ईर्द-गिर्द उनके कर्मचारी लिपिक तथा स्टेनोग्राफर आदि के बैठने की व्यवस्था थी। उस भाग को प्रकोष्ठके शेष धरातल से ऊंचा रक्खा गया था।

न्यायमूर्ति की दाहिनी ओर साक्षीगणो के लिये स्थान बनाया गया था। और उनकी बायी ओर अभियुक्त का स्थान बना था।

न्यायासन के सम्मुख न्यायाधीश की दाहिनी ओर शासकीय वकील और



अभियुक्त : निर्देशित (१) नथुराम

उनके सहायको के बैठने का स्थान था। आरोपी अपने अपने वकीलो ने बोल सके इस दृष्टि से न्यायाधीश की बाई ओर वकीलो के बैठने का प्रबन्ध था।

दोनो वाजुओ के वकीलो की कुर्सियो के पीछे दर्शको के लिये कुर्सियाँ और वेंच विछे थे। उनमें सवसे आगे पत्र-प्रतिनिधि वैठा करते थे।

प्रमुख न्यायालय के समीप दोनो ओर के कमरो को अन्य कार्य के लिये उपयोग में लाया जाता था। न्यायपीठ के समीप के कमरे को न्यायाधीश का वेश्म (चैम्वर) वनाया गया था। पास के कमरे में साक्षीगण लाकर वैठाये जाते थे। उसके पास के कमरे में शासकीय वकीलो के वैठने का कमरा था।

आरोपी के वकीलो के लिये अलग कमरा था। आरोपी के यो ही वैठने के लिये वरामदे के एक कमरे में प्रवन्ध किया गया था।

हमको दि० २५-५-४८ को दिल्ली में लाकर अलग अलग पुलिस कोठरियो में डाल दिया गया था। पुलिस अधिकारी न्यायालय के प्रवन्ध में इतने व्यस्त थे कि हमारे लिये भोजन के अतिरिक्त वे अन्य किसी प्रकार की सुविधा आदि नही जुटा सके। हमको जिन कोठरियो में रखा गया था वे वहुत ही गन्दी और दम घोटनेवाली थी। स्नान नही, मुह पोछना नही, हमें अपनी अवस्था स्वय ही वडी मलिन प्रतीत होती थी। एक ही दिन का प्रश्न होने के कारण उसमें शिकायत के लिये भी कोई गुजाइश नही थी।

शरीर की वाह्यावस्था कैसी भी क्यो न हो, इससे हमारे मनो को एक नया रग मिला था। मैं सोचता हूँ कि पुलिस के उत्पीडन से अव मुक्ति मिल गई है अन्तर्मन की यह वात ही वाह्य मन को प्रफुल्लित कर रही थी। इसलिये हमारे मुखो पर भी उस मुक्ति की तरग दृष्टिगोचर होती होगी। गाधी वध काण्ड रूपी नाटक का 'तफतीश अक' पूर्ण होकर अव 'न्यायालय अंक' प्रारम्भ हुआ था। कल की चिन्ता करने की मन स्थिति नही थी। कल का कल देखा जावेगा। आज तो यह समारोह देखने को मिल रहा है यह कल्पना मन को पुलकित कर रही थी।

न्यायालय में अनेक दर्शक वैठे हुए थे। उस ओर दृष्टि दौडाई तो कई परिचित लोग दिखाई दिये। कुछ लोगों ने मन्दस्मित आविर्भाव से और कई लोगो ने नमस्कार से परिचय दिखाया। वम्वई, पूना के लोग भी उनके मध्य में दिखाई दिये।

गाधी वध की जितनी गहनता थी उतनी ही भव्यता गाधी वध के अभियोग को प्राप्त हुई थी। उसका एक कारण यह था कि जिस क्रान्तिकारी ने अपने जीवन मे स्वतन्त्रता के लिये भारत और उससे वाह्य भी संगठन खडे किये थे, उसके लिये जिसने अतुलनीय कष्ट सहे, जिसने हिन्दू राष्ट्र का तत्वज्ञान प्रसृत करके हिन्दुओ में स्वाभिमान की जागृति की, उस अन्तर्राष्ट्रीय कीर्ति के कर्मवीर को,

अर्थात् स्वातन्त्र्यवीर सावरकर जी को, सत्ताधारियो ने इस अभियोग में एक अभियुक्त के रूप में प्रस्तुत किया था। अन्य घटक उस मात्रा में गौण थे। क्योकि अन्य आरोपियो की महानता अर्थात् उनकी शिक्षा, उनका चारित्र्य उनकी योग्यता, उनकी क्षमता आदि बातें अभी तक लोगो के सम्मुख आई नही थी।

हमारा अभियोग यदि बन्द न्यायालय में (इन कैमेरा) चलाया जाता तो कदाचित् यह हमको स्वीकार्य न होता। क्योकि गाधी वध जैसा कृत्य इन व्यक्तियो ने देश की कौन सी परिस्थिति में किया और तब उनकी ऐसी कौन सी मनस्थिति थी इसको बन्द न्यायालय में अभियोग चलाने से कोई समझ नही सकता था और न ही किसी की गलत धारणा का इस प्रकार निराकरण ही हो सकता था। तदपि उस समय तो शासन की इच्छा ही सर्वोपरि थी अभियुक्तो की नही। अभियोग अप्रकट रूप से चलाया जाता तो हमारे पास उसके प्रतिवाद के लिये कोई चारा नही था। इसलिये जब हमने यह सुना कि अभियोग प्रकटरूप से चलाया जावेगा तो हमें प्रसन्नता हुई। हमारे विरुद्ध लगाये आरोपो के समर्थन में प्रमाण एकत्रित कर प्रस्तुत करना और उसके द्वारा हमारा अपराध सिद्ध करा कर हमें दण्ड दिलाने का सारा कार्य शासन की ओर से ही होनेवाला था। इस बात का ज्ञान होने पर भी हम खुले न्यायालय में अभियोग चलाया जानेवाला है यह जानकर शासन के प्रति हमने मन ही मन आभार ही प्रकट किया।

हम सभी अभियुक्तो को क्रमाक के अनुसार तीन पक्तियो में अभियुक्तो के पिजडे मे बैठाया गया था। प्रथम पक्ति में नथूराम, नाना आपटे और करकरे, दूसरी पक्ति मे मदनलाल, दिगबर, बडगे और शकर किस्तैया तथा तीसरी पक्ति में वीर सावरकर, डा० परचुरे और मैं था। आगे चल कर इस क्रम में परिवर्तन हुआ था। सावरकर जी को प्रथम पक्ति में बैठाने का प्रबन्ध किया गया।

न्यायालय में जो कुछ बोला जा रहा है, वह सबको भली भाँति सुनाई दे, इसके लिए स्थान-स्थान पर ध्वनिविस्तारक यन्त्र लगाये गये थे। अभियुक्तो की प्रत्येक पक्ति में भी एक एक यन्त्र लगा हुआ था। दोनो ओर के वकीलो के लिए, गवाहो के लिए और न्यायाधीश की मेज पर भी यन्त्र लगे हुए थे।

बचाव पक्ष के वकील कम ही थे। सर्वश्री अण्णाराव भोपटकर, जमनादास मेहता, लाला गणपतराय, कुजविहारी भोपटकर तथा इनामदार अपने अपने स्थान पर बैठे थे।

शासन की ओर से प्रमुख वकील श्री दफ्तरी थे। उनकी सहायता के लिए श्री पेटीगारा, श्री शाह और श्री ज्वाला प्रसाद थे। वे भी अपने अपने स्थान पर बैठे थे।

प्रेस फोटोग्राफरो को उस दिन फोटो खीचने की अनुमति प्राप्त थी। हमारे

ऊपर स्थिरचित्र और चलचित्र खीचनेवाले सभी प्रकार के यन्त्र ताने गये थे। न्यायमूर्ति के आने की देर थी।

दस बजने मे जब आधा मिनट रह गया तो न्यायालय के रजिस्ट्रार ने न्यायाधीश के आने की सूचना सुनाई। वातावरण शान्त हो गया और सभी स्थिर एव सावधान होकर वैठ गये।

ठीक दस बजे न्यायाधीश श्री आत्माचरण न्यायालय में प्रविष्ट हुए। उनके अभिवादन के लिये सभी खडे हो गये। न्यायाधीश न्यायपीठ के समीप आये, उन्होने सबका अभिवादन स्वीकार किया और प्रत्याभिवादन कर सभी को वैठने का सकेत करते हुए स्वयं भी पीठासीन हुए।

चित्रकारो ने अपने यन्त्र साधे। आँखो को चकाचौंध करनेवाले स्फुर प्रकाश-फ्लैशलाइट-एक के बाद एक जगमगाते और बुझते रहे। चलचित्रकारो के प्रकाश में तो न्यायालय सूर्य के प्रकाश से भी अधिक जगमगा सा गया था। चित्रीकरण अथवा फिल्मीकरण का यह कार्य चार-पाँच मिनट तक जारी रहा।

प्रेस न्यूज एजेन्सी अथवा फिल्म्स डिविजन ने देश के छविगृहो में प्रदर्शन के लिए उस दिन फिल्माये गये चित्रो की प्रतियाँ तैयार कराकर वितरित की। न्यूजरील के रूप में उनको दिखाया जाने लगा था। उस न्यूजरील के दिखाये जाने पर अनेक छविगृहो मे अभियुक्तो के जयघोष होने लगे तो सरकार ने उसमें हस्तक्षेप कर उनको दिखाने पर प्रतिबंध लगा दिया।

इस बात पर यदि निष्पक्ष अभिमत व्यक्त करना हो तो मैं कहूँगा कि शासन ने उस पर प्रतिबन्ध लगा कर कोई अनुचित कार्य नही किया। किसी एक प्रकरण की छानबीन का विषय जब न्यायालय को सौंप दिया जाय तो उसके बाद न्यायालय किसी भी एक पक्ष के प्रति पूर्वग्रहलिप्त न हो इसकी सावधानी बरतना शासन के लिए नितान्त आवश्यक है। किसी एक व्यक्ति पर यदि कुछ आरोप आया हो तो उसकी न्यायालयीन कार्य विधि जारी रहते हुए उसके निषेध के लिए किसी सभा का आयोजन करना न्यायदान की दृष्टि से हानिकारक होता है। दण्ड सहिता के आधार पर वह आक्षेपार्ह भी होता है। उसी प्रकार उसके पक्ष में आयोजित की गई किसी सभा के विषय में भी यही समझना चाहिये। उन दिनो हमारा न्यायालय अभियुक्तो की छानबीन कर रहा था। न्याय का कार्य जारी रहते हुए शासन ने उस वृत्तचित्र पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो मेरी दृष्टि में कोई अनुचित कार्य नही किया।

इसके विपरीत सरदार पटेल ने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। जिन दिनो हम पर न्यायालय में अभियोग चल रहा था उन्ही दिनो सरदार पटेल ग्वालियर

गये और उन्होने वहाँ एक सभा मे भाषण करते हुए कहा, "जिस शस्त्र से गाधीजी का वध हुआ है, वह शस्त्र ग्वालियर से गया था। यह वात ग्वालियर को कुख्यात करनेवाली है।

सरदार पटेल के इस कथन पर बचाव पक्ष के वकीलो ने आपत्ति प्रकट की थी।

गाधी जी का वध जिस शस्त्र से हुआ था वह क्या ग्वालियर से गया था ? और क्या जो शस्त्र ग्वालियर से (यदि गया था तो) गया उसी से गाधी जी का वध हुआ है ? इन प्रश्नो पर अभी न्यायालय में छानवीन हो रही थी। न्यायालय ने इस विषय पर तव तक अपना मत निर्धारित नही किया था इस दृष्टि से सरदार पटेल के उस भाषण से न्यायालय के अधिकारो पर अधिक्षेप होता था। यह सारी वात बचाव पक्ष के वकीलो ने न्यायालय के सम्मुख स्पष्ट की थी। परिणाम स्वरूप इस प्रकार का कोई भी विवादास्पद वक्तव्य या भाषण किसी भी मन्त्री ने फिर कभी नही दिया।

चित्रीकरण की प्रक्रिया समाप्त हुई। सभी अपने अपने स्थान पर वैठे। शात गहरे वातावरण में श्री दफ्तरी खडे हुए। उन्होने न्यायमूर्ति का अभिवादन किया। अभियुक्तो के विरुद्ध लिखे गये आरोप पत्र-चार्ज-शीट को उन्होने पढकर सुनाया और तदनन्तर उसे न्यायमूर्ति को सौप दिया।

इसके वाद बचाव पक्ष की वारी थी। परन्तु अभियुक्तो के वकीलो का प्रवन्ध नहीं हो पाया था। श्री सावरकर और डा० परचुरे इनके ही वकील आ पाये थे। जो अभियुक्त 'न्याय सहायता समिति' की ओर से वकील चाहेंगे उनके लिये वकीलो की व्यवस्था करने की दृष्टि से श्री भोपटकार ने न्यायालय से समय मागा।

न्यायधीश ने अभियुक्तो से वकीलो के विषय मे पूछा। दिगम्वर वडगे ने कहा, "मुझे वकील नही चाहिये।" यह वात पहले ही ज्ञात हो गई थी कि वह सरकारी गवाह होनेवाला है। शकर किस्तैया ने न्यायपरामर्शक-अमीकस क्यूरी की माँग की। अभियुक्त अपना वक्तव्य समाप्त कर सके, अपने पर लगाये गये अभियोग का वह विरोध कर सके अथवा अभियोग को निराधार सिद्ध कर सके, इसका अवसर देने के लिये न्यायालय वकील की व्यवस्था करना चाहता है। इस प्रकार के वकील की नियुक्ति करने के वाद भी वह देखता है कि वकील अभियुक्त का हित कर रहा है कि नही।

श्री भोपटकर ने भेंट की सुविधा के सम्वन्ध में न्यायालय से पूछा। न्यायालय ने आदेश दिया कि वन्दीगृह के अधिकारियो अथवा जिलाधिकारियो से मिलकर इसकी व्यवस्था हो जानी चाहिये।

न्यायालय ने यह भी आदेश दिया कि दि० २-६-४८ तक गवाहो के कथनो का साराश बचाव पक्षके वकीलो को मिल जाना चाहिये। उस दिन निश्चय किया गया कि दि० ३–६-४८ को न्यायालय फिर बैठेगा और दि० १४-६-४८ को अभियोग प्रारम्भ हो जावेगा। यह सब निश्चित करने के बाद उस दिन का न्यायालय का कार्य पूर्ण घोषित किया गया।

हमको वन्दीगृह में लाया गया। हमारे लाने, ले जाने की व्यवस्था बम्बई पुलिस किया करती थी। देहली का वन्दीगृह पजाब वन्दी विभाग के अन्तर्गत था और इस विशेष वन्दीगृह का प्रवन्ध भी उसी विभाग के कर्मचारियो के अधीन था। वन्दीगृह के रक्षक पुलिसवालो को केवल बम्बई से लाया गया था। एक रसियन (रूसी) नागरिक श्री मास्कोविच उस टुकडी के अधीक्षक और श्री भगतराम वन्दीपाल नियुक्त किये गये थे।

बम्बई पुलिस और दिल्ली पुलिस मे आपस में कुछ मनमुटाव था। उसका स्वरूप अनेक बार हम लोगो के देखने में भी आता था।

वन्दीगृह के कमरो के सामने ही रसोई घर था। एक रसोइया था और उसको एक सहायक दिया गया था। उसी अहाते के एक भाग में प्रहरियो का निवासस्थान था।

भोजन के लिये हमें एक थाली, एक बरतन और एक कटोरी दी गई थी। सोने के लिये धागे की बुनी चारपाई थी। प्रत्येक को एक मेज और एक तिपाई दी गई थी।

गरमी प्रतीत होने लगी थी। कमरे की दूसरी ओर खिडकी नही थी। पिछली दीवार उस किले की अन्तिम दीवार थी इसलिये वह बहुत चौडी थी। प्रत्येक कमरे के द्वार के निकट एक एक बिजली का पखा लगाया गया था।

न्यायालय से वापस आने पर हमने कमरे में अपना-अपना सामान लगाया और फिर बाद में आराम से वातचीत करने के लिये बैठ गये। प्रारम्भ में तो किसके विरुद्ध क्या क्या प्रमाण एकत्रित किये गये है इस विषय के अतिरिक्त हमें अन्य किसी विषय पर बातें करने का अवकाश ही नही मिला था।

सप्ताह भर की छुट्टी थी। न्यायालय न होने पर हमको दोपहर के बारह से तीन बजे तक कमरो में बन्द करके रखा जाता था। रात को बन्द करने का समय शाम को ६ बजे हुआ करता था और प्रात ६ बजे खोला जाता था।

कमरे में बन्द हो जाने पर हमको बराबर के कमरे वालो से बात करने के लिये जोर-जोर से बोलना पड़ता था। दिन को ताश या शतरज खेल कर समय बिताया करते थे। अभियोग का काँटा हर किसी के मन मे कही न

कही खटकता तो अवश्य ही होगा परन्तु सभी एक ही नाव के यात्री होने के कारण उस प्रकार का तनाव ऊपर से व्यक्त नही हो पाता था।

समवयस्क लोग परस्पर मिलजुल कर और अवस्थानुसार धीगामस्ती एवं ऊधमवाजी करते हुए समय व्यतीत करने के अभ्यस्त हो गये थे।

हम अभियुक्तो का अभी दण्ड के साथ किसी प्रकार का प्रणयन नही हुआ था। मैं तो मुक्त हो ही जाऊँगा इस प्रकार मन के मोदक खाते हुए दु.ख की छाया भी हमारे पास फटकने नही पाती थी। वन्दीगृह के वातावरण से हम धीरे धीरे अभ्यस्त हो रहे थे। और खेलने कूदने का आनन्द अनुभव कर रहे थे।

किसी अधिकारी के मन मे किसी नियम का विलकुल ठीक अर्थ कव और कैसे उत्पन्न हो जावेगा इसकी कोई कल्पना नही कर सकता था। सावरकर जी को वम्वई आर्थर रोड वन्दीगृह से दिल्ली लाया गया था। वम्वई में उनको स्नान के लिये एक लगोटी दी गई थी। जव वे दिल्ली आये तो तव तक वह उनके पास थी।

जाँच-पडताल की विधि जारी थी कि सहसा वन्दीपाल की दृष्टि तार पर सूखने डाली गई लगोटी पर गई। उनको उसके साथ लगा नाडा खटकने लगा। उनके मन में नियम के शब्द खडे हो गये कि अपनी जान को हानि करनेवाली किसी प्रकार की भी वस्तु वन्दी के पास नही होनी चाहिये।"

वडी नम्रता से उन्होने सावरकर जी से उस लगोटी की माग की।

सावरकर जी वोले, "मुझे तो वह स्नान की सुविधा के लिये दी गई है।"

"हमारे नियमो अर्थात् पजाव कारागार नियमो के अन्तर्गत इस प्रकार की लगोटी देना वर्जित है।"

सावरकर जी ने कहा, "यदि आप उसके वदले कोई दूसरी व्यवस्था कर सकें तो उस लगोटी को ले जाइये।"

"आप इसे अन्यथा न समझें। मैं लगोटी का नाडा निकाल लेता हूँ और लगोटी वापस भेज देता हूँ।"

अनजाने में यह वार्त्तालाप विनोद का स्वरूप ग्रहण कर रहा था। सावरकर जी ने हसी में कहा, "लगोटी को कमर में चिपकाये रखने के लिये क्या आप मुझे लेई या गोद देंगे?"

वन्दीपाल को कुछ सूझ नही रहा था। विवश किन्तु कुछ खेद सा व्यक्त करते हुए वे वोले, "हमारे नियमो में लगोटी का कोई उल्लेख नही है।" परन्तु तुरन्त ही उसे सुधारते हुए वोले, "इसके विकल्प में नियमो में क्या सुविधा आपको प्राप्त

हो सकती है, यह मैं नियमो का अध्ययन कर अथवा वरिष्ठ अधिकारियो से इसकी जानकारी प्राप्त कर आपको सूचित करूंगा।"

वन्दीपाल चले गये। प्रहरी लगोटी लेकर चला गया और उसका नाडा तोड कर उसने वैसे ही उसको सुखाने डाल दिया।

शाम को किसी कार्य से वन्दीपाल हमारे पास आये थे। सुबह का विषय उस समय तक उनके मन से निकल गया था। वे सावरकर जी के कमरे के पास खडे हुए बोल रहे थे। थोडी बहुत बातचीत के बाद सावरकर जी ने उनको कमरे में आने के लिये कहा।

सावरकर जी ने चारपाई पर से चद्दर उठा कर उनको दिखाते हुए कहा, "देखिये।"

"क्यो, क्या खटमल है? चारपाई तो नयी है।" वन्दीपाल ने कहा।

"नही खटमल तो अभी नही हुए। किन्तु वह रस्सी?"

चारपाई के पायताने में पचीस-तीस फिट की रस्सी होती ही है। सावरकर जी फिर बोले, "किसी एक शरीर में यदि दस जाने भी होगी तो उन सभी को नष्ट करने के लिये यह रस्सी पर्याप्त है।"

वन्दीपाल उलझन में पड गये। उन्हे प्रतीत हुआ कि नियमो मे कही निश्चित गलती हैं। लगोटी का डेढ फीट नाडा उनके मन में खटकने लगा। परन्तु उनको नियमो का ज्ञान अच्छा था। वह बोले, "चारपाई नियम के अनुसार बनवाई है और यह रस्सी भी उन्ही नियमो के अन्तर्गत है।"

इस मजाक में हम सभी को भाग लेने की इच्छा होने लगी। हममें से कोई एक बोला, "अर्थात् नियम के बाहर के साधन से हानि कर लेने पर प्रतिबन्ध हैं, यही कहना हुआ न आपका?"

वे बोले, "नियम के अनुसार तो ऐसा ही दीखता है।" फिर सावरकर जी से कहने लगे, "मैं आपकी लगोटी पर नाडा लगवा कर भेज देता हूँ।"

सावरकर जी बोले, "आप यदि नियमो का ठीक प्रकार से भी पालन करें तो इसमे कुछ बिगडता नही। परन्तु "अन्धी पीसे, कुत्ता खाय" "इस प्रकार के नियमो की कार्यवाही नही होनी चाहिये, मेरा इतना ही निवेदन है। नियम तो हमारी परस्पर सुविधा के लिये है। नियमो का उपयोग करते समय इस हेतु को ध्यान में रखना चाहिये।"

"मेरी मनसा आपको अथवा आपके किसी साथी को असुविधा प्रदान करने की नही है। किन्तु कुछ नियम विचित्र होते है, यह सच है।"

हसी मजाक के उस वार्त्तालाप का उपसहार करते हुए सावरकर जी ने कहा, "फिर कभी कभी नियम और सिर का मेल किया जाय।"

वन्दीपाल भी लगता है विनोदप्रिय थे वडी गम्भीरता से उन्होने इसके उत्तर में कहा, "परन्तु वैसा नियम तो है ही नही ?"

इससे जो हसी का फव्वारा छूटा उसमें वे भी सम्मिलित हो गये। उपरि-लिखित घटना को यदि छोड भी दिया जाय तो भी यह देखा गया है कि कुछ नियम दोषपूर्ण बनाये गये है। कभी कभी इन नियमो के एक से अधिक अर्थ भी निकाले जा सकते है। उस समय कौन सा अर्थ उपयुक्त है यह उस अधि-कारी की बुद्धि पर निर्भर रहता है। कभी दुराग्रह से विशिष्ट अर्थ भी लगाया जाता है। इससे जो सुविधा शीघ्र ही प्राप्त होनी चाहिये उसके लिये लम्बा पत्र-व्यवहार करना पडता है। और उसमे छ मास तक लग जाते है। मुझे नवम्बर १९६४ में स्थानवद्ध किया गया था, उस समय भी ऐसी एक घटना हुई थी।

कितने दिन का बन्दीवास है यह निश्चित नही था। मेरी स्थानवद्धता भारत सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत हुई थी। मै घर के कपडे पहनता था। कपडे फटने लगे थे। नियम द्वारा शासन को ही वस्त्र देने चाहिये थे। परन्तु उस नियम मे कुछ शर्तें रहती है। वह शर्तें (प्रोविजी) दोषपूर्ण है यह वात मेरे ध्यान में आई।

मैंने अपने लिये वस्त्रो की प्रार्थना की। कुछ मास वाद उत्तर आया "शासन की ओर से वस्त्र नही दिये जावेंगे। घर के लोग या मित्रगण वस्त्र देंगे।"

घर की स्थिति मुझे ज्ञात थी। सत्यनारायण काण्ड के वदियो से भेंट करना और न्यायालय में उनके आवेदन प्रस्तुत करने में मेरी पत्नी को कितनी कठिनाई हो रही थी इसका मुझे ज्ञान था। मेरे लिये कपडे सी कर लाने का अतिरिक्त भार मैं उसके ऊपर डालना नही चाहता था।

यदि मैं माग करता तो कोई भी हितेच्छु मुझे कपडे दे सकता था। परन्तु दूध का जला तो छाछ भी फूक-फूक कर पीता है। १७ वर्षो के वाद मैं मुक्त होकर आया था। मेरा समाज मे स्थान वनाने के लिये मित्रो ने सहायता का हाथ आगे वढाया था। उस सहायतारूपी यज्ञ में उनके हाथ भी जले थे।

अन्न और वस्त्र ये मनुष्य की मूलभूत आवश्यकतायें है। यदि सरकार ने किसी को अपने आधीन किया है तो उसकी ये मूलभूत आवश्यकतायें तो पूर्ण होनी ही चाहिए ऐसा मेरा मत था। और मैं यह भी देख रहा था कि अन्य वन्दियो को कपडे दिये गये थे और अभी भी दिये जा रहे थे। किन्तु सरकार ने मुझे जो उत्तर दिया था वह दुराग्रहपूर्ण था यह मेरी धारणा थी।

मैंने वम्बई के उच्च न्यायालय में आवेदन किया। मैंने न्यायालय से आग्रह किया कि वन्दी की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति शासन को ही करनी चाहिये। नियमो में जा विसंगति है उसको ठीक किया जाय।

यदि पत्नी द्वारा कपडे दिये जाने की शासन अपेक्षा करता है तो फिर भोजन की भी उससे ही अपेक्षा करे और उसके लिये शासन को चाहिये कि वह मुझे मेरी पत्नी के आधीन कर दे। अर्थात् मुझ पर उसकी वन्दीपाल के रूप में नियुक्ति कर दे।

मेरा तर्क प्रथम दर्शन में तो उनके मस्तिष्क में आया। सुनवाई के लिए उन्होंने तिथि निश्चित कर दी। किन्तु इस सुनवाई होने से पूर्व ही दि० ३०-११-६५ को मुझे मुक्त कर दिया गया। नियत तिथि पर आवेदन न्यायालय के सम्मुख आया। न्यायालय ने आवेदन के व्ययस्वरूप शासन से मुझे १०२ रुपये दिलवाये। इन मूलभूत आवश्यक्ताओ के लिये वन्दियो को हम तक पहुँचने का प्रसग ही क्यो आता है? इस प्रकार का प्रश्न न्यायालय ने शासन से किया था। अस्तु—

न्यायालय द्वारा दि० २७-५-४८ को दिये गये आदेश के अनुसार हमें दि० ३-६-४८ को न्यायालय में ले जाया गया। तलाशी जारी रखने के दिनो में हमें ऊपर की श्रेणी के वन्दी के समान समझा जाता था। जब हमको वन्दीगृह में रखा गया तब उस प्रकार की आज्ञा नही दी गई थी। इसलिये हमें उच्च श्रेणी प्रदान की जाय इसके लिये हमने न्यायालय में प्रार्थना की थी।

अभियोजको को इसमें कोई आपत्ति नही थी। उन्होंने अपना मत दिया कि सभी को "व" श्रेणी दी जाय। न्यायालय के आदेश से हमे "व" श्रेणी दी गई।

सरकारी पक्ष ने साक्षीदारो के वक्तव्यो की एक प्रति श्री भोपटकर जी को दी। उस दिन सर्वश्री आपटे, करकरे और मेरे लिये श्री जी० के० दुआ की अस्थायी वकील के तौर पर नियुक्ति की गई। परन्तु सभी का प्रबन्ध अभी तक नहीं हुआ था। इसलिये श्री भोपटकर ने और समय की माग की। न्यायाधीश ने आदेश दिया कि इसके वाद न्यायालय पुन १४-६-४८ को वैठेगा और उसके वाद २२-६-४८ से अभियोग के काम का अविरत आरम्भ होगा।

दि० १४-६-४८ को विशेष कार्य नही हुआ। नथूराम के लिये श्री वी० वी० ओक और मेरे लिये श्री एम० वी० मणियार इन दो वकीलो की नियुक्ति श्री भोपटकर जी ने की थी। इस दिन ये दोनो वकील न्यायालय में उपस्थित थे।

दि० २२-६-४८ को न्यायालय पुन वैठा। इसी वीच १४-६-४८ को भारत सरकार ने एक राजपत्र प्रकाशित किया तदनुसार क्षमा के साक्षी को क्षमा करने

का अधिकार विशेष न्यायाधीश को प्रदान किया गया था। बडगे सब कुछ कहने के लिये तत्पर है, उसको इस शर्त पर क्षमा किया जाय इस प्रकार का आवेदन सरकार ने १७-६-४८ को न्यायाधीश के सम्मुख प्रस्तुत किया। बडगे ने २७ जून को अपना वक्तव्य न्यायाधीश के सम्मुख प्रस्तुत किया। यदि वह सब कुछ सच-सच कहेगा तो उसको क्षमा कर दिया जावेगा ऐसा आश्वासन न्यायाधीश ने उसको दिया था।

श्री एन० आर० मेहता, शकर किस्तैया के लिए वकील नियुक्त किये गये। श्री नवलकर और कुमारी कमलम्मा को क्रमश मराठी और तेलुगु भाषा के दुभाषिये के रूप में दि० १९-६-४८ को नियुक्त किया गया।

बीच में आने वाली लम्बी-लम्बी छुट्टियो से हम परेशान हो जाते थे। अभियोग प्रारम्भ होने के बाद कभी वकील कोई वाद उपस्थित करते और यदि उसका निर्णय उनके विरुद्ध होता तो वे उसका निराकरण उच्च न्यायालय से करा लेने के लिये एकाध मास का अवसर मागने थे। इस अभियोग का निर्णय शीघ्र ही हो जाय; इस प्रकार की हमारी आकाक्षा का वकीलो के लिए कोई महत्व प्रतीत नही होता था। हम जब वकीलो से इस विषय में पूछते तो वे कहते कि अनेक मूलभूत प्रश्नो का तुरन्त उच्च न्यायालय से निपटा लेने से अभियोग पर अच्छा परिणाम होने की सम्भावना होती है। दूसरे यदि अभियोग अधिक दिन चला तो कालावधि बीत जाने से उस घटना की कठोरता क्षीण होती जाती है। किन्तु हमको यह सब नही सुहाता था। हम सभी अवसर मागने का विरोध किया करते थे।

समय व्यतीत करने के लिये हमारे पास अनेक पुस्तकें तथा खेलने की अनेक सामग्री एकत्रित होने लगी थी। मैंने हाल ही में नाना आपटे से शतरज खेलना सीख लिया था। मदनलाल भी खेलता था। उस खेल मे मन ऐसा एकाग्र होता था कि श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर के विनोदी वर्णनो की याद आये।

एक बार मैं और नाना शतरज खेल रहे थे। चाय का समय हो रहा था। खेलते हुए अपने अपने बरतनो मे से चाय के घूट ले रहे थे। नथूराम बीच में ही आकर खेल देखने लगे। कभी कभी वे चाल चलने के लिये दोनो को बताते भी रहते थे। उन्होंने भी अपनी कॉफी हमारी मेज पर ही रख ली थी। उसी प्रकार वे भी बीच में घूट लेते रहते थे।

"तुम्हारी चाय समाप्त हो जाय तो मुझे बताना।" नथूराम ने मुझसे कहा। मैंने चौंक कर उनकी ओर देखा। नथूराम मेज पर रखे बरतन की ओर देख रहे थे। मैंने उस ओर देखा। नथूराम की कॉफी मैं ही समाप्त कर रहा था। मेरा

चाय का बरतन वैसे ही पड़ा था। खेल में इतना रम गया था कि मुझे चाय कॉफी के स्वाद का भी अन्तर ध्यान में नहीं आया।

कोई गलत चाल चल देने पर बाद में इतना पश्चात्ताप-सा होता था कि मानो अपना राज्य ही नष्ट हो रहा है। मैं मदनलाल से कुछ अच्छा खेलने लग गया था। एक बार हम खेल रहे थे कि उसका 'प्रधानमन्त्री' मेरे घेरे में आया। मैंने सीधे अपनी गोटी उसके खाने में रखी और उसको उठाने लगा। मदनलाल ने मेरे हाथ से अपना मन्त्री छीन लिया और बोला, "नहीं नहीं। वह नहीं लिया जा सकेगा।" तब तक मैंने उसे हाथ से छोड़ा नहीं था।

"मैंने उसको नियम बताते हुए कहा, "जिस गोटी को हाथ लगाया जाता है फिर उसी को उठाया जाता है।" फड़पर की स्थिति दिखाते हुए मैंने उसको कहा, "मन्त्री को कहीं पर भी रख दो, वह मेरे घेरे में ही आता है। मुझे उसको मारने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं है।"

वह कहने लगा, "मैं नहीं दूंगा। कैसे मारते हो मैं देखता हूँ। इतना कह वह भाग कर स्नान घर की ओर चला गया। सावरकर जी स्नान करके बाहर आ रहे थे। उन्होंने पूछा, "क्यो क्या बात है?"

मदनलाल तनिक लज्जित सा हुआ। वह बोला, "कुछ नहीं, वह मेरे मन्त्री को मारता है।"

"कौन?"

"गोपाल।"

"पर तुम्हारे यहाँ भाग कर चले आने से तो उसको मारने का खुला अवसर मिल जावेगा।"

मदनलाल ने अपना हाथ खोल कर दिखाते हुए कहा, "यह देखिये, अब कैसे मरेगा। मैं तो उसको लेकर यहाँ आ गया हूँ।"

सावरकर जी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। हम तो पहले से ही हँस रहे थे। मदनलाल के सिर पर शतरंज का भूत सवार था। उसे उतरने में कुछ मिनट लगे।

'मुझसे लड़कपन हो गया,' ज्यों ही उसको इसका ज्ञान हुआ तो वह तुरन्त भाग कर अपने कमरे में आ गया और उसने सबके सम्मुख प्रतिज्ञा की कि वह भविष्य में मेरे साथ शतरंज नहीं खेलेगा। और उस प्रतिज्ञा का उसने दूसरे दिन शाम तक पालन भी किया।

ताश के खेलो में प्रायः नाना, और विष्णुपंत करकरे भागीदार हुआ करते थे। सदैव ही भागीदार बनने से अपने कुछ चिन्ह अथवा तंत्र निश्चित कर लिये जाते

हैं। मैं और नाना एक वार भागीदार वन गये। करकरे और मदन हमारे विपक्षी थे। खेलते खेलते मुझे मेज के नीचे किसी का पैर लग गया। मैंने पैर चटोरा और पलथी मार कर वैठ गया। थोडी देर वाद करकरे एकाएक वोले, "नाना! आपने मेरा पैर दवाया ?"

खेल के साधन होते हुए भी कई वार खेल वहुत सुस्त लगने लगता था। जिसका प्रमुख कारण था मर्यादित क्षेत्र मे हमारा रहना। यद्यपि यह स्थान वम्बई में जो कोठरी थी उससे खुला था। किन्तु न्यायालय जाने में तो उस कोठरी से भी मुक्ति मिल जाती थी, इसका हमें दु ख रहता था कि तिथि विलम्व से क्यो दी जाती है। इसके कारण न तो पैरो में हलचल ही होती है और न मन को आनन्द ही होता है। केवल वन्दीगृह की सीमित जगह में घूमना कष्टकर प्रतीत होता था।

उस यातना का विश्लेषण मैं आज कर सकता हू। स्वतन्त्रता मनुष्य का सहज स्वभाव है। परतन्त्रता प्राप्त होने पर स्वतन्त्रता का मूल्य समझ मे आने लगता है। स्वतन्त्र मनुष्य वार वार घटो तक स्वय को स्वेच्छा से एक कमरे में वन्द कर लेगा। किन्तु यदि उस पर उसी प्रकार प्रतिवन्ध लादा गया तो उसको पराधीनता की यातना होने लगती है। किसी को वन्दीगृह में डाल कर वहाँ उसके सुख के लिए कितने भी साधन उपलब्ध कराये जाने पर भी उस वन्दीवास में उसके मन की जो स्थिति होती है उसकी भरपाई नही हो सकती।

दि० २२-६-४८ को न्यायालय वैठा। उस दिन मदनलाल के वकील श्री वनर्जी को छोड कर शेप सव उपस्थित थे। वचाव पक्ष के लिए वकीलो की नियुक्ति इस प्रकार हुई थी। नथूराम के लिये श्री ओक, नाना आपटे के लिये श्री मॅगळे, करकरे के लिये श्री डागे, मदनलाल के लिये श्री वनर्जी, शकर किस्तैया के लिये श्री मेहता, मेरे लिये श्री मणियार, सावरकर जी के लिए श्री भोपटकर और डा० परचुरे के लिये श्री इनामदार। कुछ दिनो वाद श्री मणियार वीमार पड गये तो मेरा पक्ष भी श्री इनामदार देखने लगे। श्री भोपटकर सावरकरजी के लिए होने पर भी सर्वमान्य वचाव पक्ष की दिशा का मार्गदर्शन वही करते थे। श्री गणपतराय और श्री जमनादास मेहता आदि वकील सावरकरजी के वचाव के अतिरिक्त सभी अभियुक्तो की सहायता करते थे।

इस अभियोग के अभियुक्त के साथ न्याय हो और उसके लिये हमारा भी सहयोग उनके साथ है इसके प्रकटीकरण के लिये अनेक प्रान्तो के वकील समय समय पर न्यायालय में आकर अपना वकालतनामा प्रस्तुत करते रहते थे। यहा आकर वे वचाव पक्ष के वकीलो से विचार विमर्श करते और वहाँ रहना आवश्यक नही है यह जानकर वाद में वापस चले जाया करते थे। वगाल के श्री

मित्र और मद्रास के श्री गणपति भी इसी प्रकार अपनी उपस्थित लगाने के लिए आये थे। श्री पी० आर० दास ने तो सावरकर जी के पक्ष में न्यायालय में तर्क भी किया था। संयोग की बात यह थी कि इन्ही दास महोदय के भाई ने श्री अरविन्द घोष का अभियोग किया था और उनको निर्दोष मुक्त करवाया था।

दि० २२-६-४८ को न्यायालय ने हम पर आरोप प्रस्तुत किये। करकरे और शकर किस्तैया को उनके दुभाषियो ने आरोप समझाये। न्यायमूर्ति ने प्रत्येक व्यक्ति से आरोप के विषय में पूछा तो सबने एक स्वर मे उन आरोपो को अस्वीकार कर दिया।

आरोप का उत्तर देने के लिए मदनलाल ने अपना लिखित वक्तव्य प्रस्तुत किया। उनका कहना था कि गाधी जी पर आघात करते हुए कोई षडयंत्र रचा ही नहीं गया था। गाधी जी की मुस्लिम परस्ती की नीति मे हिन्दुस्तान भर जो असन्तोष फैला था उसके प्रतीकात्मक निदर्शन के रूप में दि० २०-१-४८ को स्फोटक (बम) विस्फोट किया गया था।

आरोप का इन्कार करते हुए डा० परचुरे ने कहा, "मैं ग्वालियर का निवासी हूँ। दि० ३०-१-४८ को जब गाधी जी का वध हुआ था तबतक ग्वालियर भारत में विलीन नही हुआ था। मुझे वन्दी बनाने के लिए भारत सरकार ने एक्स्ट्राडिक्शन वारेंट (अर्थात् प्रत्यर्पण-अधिपत्र) लिया ही नही था। अत मेरी इस न्यायालय में उपस्थिति मूलत. अवैध है, यह मेरा साग्रह निवेदन है।"

अभियुक्तो ने जब अभियोग को अस्वीकार किया तो फिर श्री दफ्तरी ने अभियोग की भूमिका पर प्रकाश डालना आरम्भ किया। दिन का काम पूर्ण होने पर उन्होंने न्यायाधीश से घटनास्थल का निरीक्षण करने की प्रार्थना की।

सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये कई बार घटनास्थल का निरीक्षण करना आवश्यक हो जाता हैं। इस प्रकार का आग्रह कभी अभियोजको की ओर से किया जाता है तो कभी बचाव पक्ष की ओर से। कभी कभी न्यायालय स्वय भी इस कार्य को अपनी सुविधा के लिये आवश्यक समझता हैं।

दि० २०-१-४८ को प्रार्थना सभा में जब विस्फोट हुआ था वह स्थल और गाधी जी जहा पर बैठा करते थे उस स्थल का अन्तर न्यायाधीश के ध्यान में लाया जाय और २० जनवरी की घटना से ३० जनवरी की घटना का कोई सम्बन्ध नही हैं ऐसा तर्क सम्भव हो सके इसके लिये बचाव पक्ष भी न्यायाधीश को घटनास्थल दिखाने में रुचि प्रकट करता था।

अभियुक्त यदि चाहें तो वे भी घटनास्थल पर चल कर देखें, इस दृष्टि से

न्यायाधीश ने अभियुक्तो से इस विषय में पूछा। नथूराम ने उत्तर दिया "(आई एम नॉट पर्टीक्युलर) मेरी कोई विशेष रुचि नही है।"

नाना आपटे से जब पूछा गया तो उन्होने पर्टीक्युलर शब्द के ही आधार पर उत्तर दिया, "(आई एम वेरी पर्टीक्युलर) मैं देखना ही चाहूगा।"

करकरे, मदनलाल और मैंने भी घटनास्थल देखने की इच्छा व्यक्त की। शकर किस्तैया, परचुरे और सावरकर जी ने अनिच्छा व्यक्त की।

दि० २४-६-४८ को प्रात १० बजे घटनास्थल देखना निश्चित हुआ। न्यायमूर्ति ने हमारे वहाँ ले जाने के प्रबन्ध के लिये आदेश प्रसारित किया।

हमारे पहुँचने से पूर्व न्यायाधीश, सरकारी पक्ष के वकील और विपक्षी वकील सभी वहा पहुँचे हुए थे। हम चारो अभियुक्तो को पुलिस की गाडी में वहा ले जाया गया था। घटनास्थल का सभी दृष्टियो से निरीक्षण आरम्भ हुआ।

हमारे विरुद्ध लगाये गये आरोपो को सिद्ध करने के लिये अभियोजक जो तर्क प्रस्तुत करेंगे उसका क्या क्या खण्डन और किस प्रकार हमें करना है इस दृष्टि से हम घटनास्थल का निरीक्षण कर रहे थे। हमारे लिये तो यह बहुत मामूली सी बात थी क्योकि इस प्रकार तर्क विचार करने का कार्य तो हमारे वकीलो का था। जिस प्रकार कोई तटस्थ व्यक्ति उस स्थल का निरीक्षण करता क्या उसी प्रकार हम उसका निरीक्षण कर रहे थे? मैं समझता हू कि नही। वह स्थल जिस घटना के कारण प्रसिद्ध हुआ था उसकी पार्श्वभूमि में हम लोग थे। यही कारण था कि उस स्थल का निरीक्षण करते समय उक्त विचार हमारे मन में आता रहता था।

यह वह स्थल था जहा भारत के इतिहास का एक अध्याय समाप्त हुआ था। भारत की वर्तमान कायरता की राजनीति पर जिस व्यक्ति ने अनेक वर्षो तक अपना प्रभाव स्थापित किया था उस व्यक्ति का जीवन यहाँ समाप्त किया गया था।

हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की घातक नीति के कारण रक्त से लथपथ हुए समाज की करुणा कहानी गाधी जी को सुनाने के लिये जहाँ लाया गया था यह वह स्थल था। देश विभाजन से आहत हुए व्यक्तियो के प्राणो को जहाँ मलहम लगाने की अपेक्षा कुरेदा जाता था, यह वह स्थल था। इसके विपरीत यही वह स्थल भी था जहाँ चाटुकार जन आपकी अहिंसा की विजय हुई है रक्तहीन क्रान्ति द्वारा आपने देश को स्वतन्त्र करवाया ऐसी स्तुति के द्वारा गाधी जी की प्रशसा करने के लिये एकत्रित होते थे। पाकिस्तान से हिन्दुस्तान में आये हुए निर्वासितो को पुन निर्वासित बनाकर हिन्दुस्तान से पाकिस्तान चले गये हुये मुसलमानो को पुन· यहाँ लाकर उनके घरबार उन्हें वापस देना चाहिये ऐसा मौलाना आजाद ने गांधी

जी से वहलाया, यह वह स्थल था। भारत की खून पसीने की कमाई को जबर-दस्ती पाकिस्तान को दिलाने के लिये गाधी जी ने अपना दुराग्रहपूर्ण अनशन किया था, यह वही स्थल था।

हम वह स्थल देख रहे थे और निकट अतीत का इतिहास हमारी दृष्टि में स्पष्ट होता जा रहा था। वह निकट अतीत हमें विशुद्ध नही प्रतीत होता था। वह नि शोणित अतीत नही था, वहाँ का वायुमडल ही जैसे हमें रक्त से भरा हुआ प्रतीत होता था। स्वराज्य की प्राप्ति के लिये वहाये गये रक्त के कण हमें उसमें विद्यमान प्रतीत होते थे। देश विभाजन के कारण हुए रक्तपात की भूमिका उसमें विद्यमान थी। परिणामस्वरूप गाधी जी का रक्त भी उसी वातावरण में कणरूप में हलचल करता-सा हमें दिखाई दे रहा था। और शायद उसकी समाप्ति के लिये उन कणो को और भी रक्तिम करने के लिये हममें से किसी का रक्त जा कर उनमें मिलनेवाला था।

यह सब रक्त हमने स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये गिराया है ऐसा विचार हमारे मन में आया था। केवल ध्वजान्तर से सत्तान्तर की प्रक्रिया पूर्ण नही हुई थी। स्वराज्य के भीतर विभाजन था, विभाजन के भीतर रक्तपात था, रक्त-पात के भीतर गाधी जी के प्राण थे और उनके प्राणो के भीतर हम अभियुक्तो में से न जाने कितने व्यक्तियो के प्राणो की आहुति सम्भावित थी। जब हम यह कह सकते है कि 'विना रक्तपात के स्वराज्य प्राप्ति हुई' तो हम उन सभी हुतात्मा वीरो से लेकर जिन्होने अपने जीवन इसके लिये होम दिये, उन क्रान्तिवीरो के, जिन्होने इसके लिए असीम यातनायें भुगती, गाधी जी के रक्त तक का अपमान करते है। यह वात भले ही हमारे ध्यान में न आती हो क्योकि हम आत्मवचना करते है, हम स्वार्थी है। किन्तु इतिहास की वास्तविकता यही है।

आज अनेक लोग उस घटनास्थल को देखने के लिये जाते है। उसे ऐति-हासिक स्थल का स्वरुप देने का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर मैं सोचता हूँ कि गाधी जी के उन अन्तिम दिनो में जब उनको अत्यन्तिक निर्णय लेने पडते थे उसके लिये प्रवृत्त करनेवालो के नाम और उसके लिये प्रमाण भी वहाँ संग्रहीत किये जाँय। उससे गाधी जी सदृश एक प्रभावी व्यक्ति के वध के लिये किस प्रकार पृष्टभूमि का निर्माण हुआ इसका ज्ञान भी प्रेक्षको को होगा और उस स्थल से सम्बन्ध रखनेवाला इतिहास भी एक ही दृष्टि से देखने का अवसर प्राप्त होगा।

जिस समय हम उस स्थल का निरीक्षण कर रहे थे तो बीच बीच में हम अपने वर्कीलो से कुछ प्रश्न करते रहते थे और कुछ जिज्ञासा की पूर्ति करते

रहते थे। यह वातचीत सभी के सामने होती थी। न्यायाधीश ने हमसे कहा था कि हम जो प्रश्न चाहें पूछें किन्तु इस वात का ध्यान रखें कि अभियोजको को आरोप सिद्ध करना है। इसलिये किसी प्रकार का स्वीकारदर्शक विधान न करें। निरीक्षण समाप्त हुआ। हम अपने वन्दीगृहो को वापस आये। दोपहर को दो वजे न्यायालय लगनेवाला था। तदनुसार निश्चित समय पर सभी अभियुक्त न्यायालय में पहुँचाये गये और वहा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

किस दिन कितना कार्य न्यायालय मे हुआ कौन क्या क्या वोला आदि सभी कुछ न्यायालय की दैनिकी में अक्षरश अकित किया जाता है। कौन सा साक्षी क्या वोला कितना समय वोला, वह सच वोला या झूठ, प्रति परीक्षण (जिरह) किसने किया आदि वातोको जो महत्व रहता है वह केवल तात्कालिक स्वरूप का रहता है। अभियोग के कर्म का सारही केवल प्रस्तुत विषय के लिए पर्याप्त होगा।

अंकन का यह कार्य दि० २४-६-४८ से ६-११ ४८ तक जारी रहा। अभियोजको ने १४९ साक्षी प्रस्तुत किये थे। उनमें से मन्त्रियो से लेकर मजदूरो तक और नेताओ से लेकर अभिनेताओ एव अभिनेत्रियो तथा भाष्यकारो से लेकर चर्मकारो तक सभी स्तर के व्यक्ति थे। उनके वक्तव्यो के ७२० पृष्ठ हुए। शासकीय वकीलो ने प्रमाण के रूप से ४०४ कागजपत्र और ८० वस्तुयें प्रस्तुत की थी।

वचाव पक्ष ने ११९ कागजपत्र प्रस्तुत किये थे। दि० ८-११-४८ से दि० २२-११-४८ तक आरोपियो के वक्तव्य हुए। जो २५० पृष्ठो में समाये दि० १-१२-४८ से ३०-१२-४८ तक वहस जारी रही। श्री पी० आर० दास ने सावरकर जी की ओर से बहस की थी। नथूराम ने अपना अभिवक्तव्य स्वय प्रस्तुत किया था।

अभियोग के मध्य तक अर्थात् सितम्वर के प्रारम्भतक का व्यय देखा तो विदित हुआ कि तवतक शासन के चार लाख रुपये व्यय हो चुके थे। श्री दफ्तरी को प्रतिदिन के १५०० रुपये दिये जाते थे। इसी प्रकार श्री पेरीगारा और श्री शाह प्रत्येक को ६०० रुपये, श्री ज्वाला प्रसाद को २५० रुपये प्रतिदिन दिये जाते थे। इसके अतिरिक्त वम्वई में किये काम के वदले प्रति घटे के हिसाव से रुपये दिये गये थे। न्यायालय और वन्दीगृह के निर्माण के लिये ४७०० रुपये लगे थे। साक्षियो के भोजनादि पर ६००० रुपये तथा न्यायालय के कर्मचारी आदि अन्य लोगो के लिये दि० १७-५-४८ से ८-९-४८ के सवा तीन मास में १९००० रुपये व्यय हुए थे। ये कुछ मोटे मोटे आकडे है। इससे इस अभियोग के स्वरूप की स्थूल कल्पना की जा सकती है।

३० दिसम्वर १९४८ को वहस समाप्त हुई थी। वह दिन हमारे लिये विशेष

स्मरणीय सा था। महाविद्यालय की पढाई समाप्त होते समय विद्यार्थी और प्राध्यापक परस्पर विदाई लेते हैं। वे जानते हैं कि अब भविष्य में इस प्रकार नित्य मिलना नही हो पावेगा। इसके साथ ही अतीत के सम्बन्ध एव सम्पर्क के कारण उत्पन्न प्रेम एव लगन का भी स्मरण हो आता हैं। उस अवधि में कोई कटुता भी उत्पन्न हुई होगी तो उस समय वह विलुप्त हो जाती है। भावुकतापूर्ण वातावरण में एक दूसरे से बात करके एक दूसरे से विदा होने का वह समारोह होता हैं।

हम सभी अभियुक्त, दोनो पक्षो के वकील, न्यायमूर्ति, दुभाषिये, पुलिस जन, तथा अन्यान्य कर्मचारी सात मास तक परस्पर मिलते रहे। प्रत्येक की भूमिका पृथक थी फिर भी मनुष्य मनुष्य के पास आ जाने पर सहज ही निर्माण होनेवाली भावनायें प्रत्येक के मन में निश्चित ही वास करती थी। जब न्यायालय का कार्य जारी था तो परस्पर पक्षविपक्ष में वाद-विवाद हुआ करता था, किन्तु इस समय वह सब विलुप्त हो गया था। अब हम यदि मिलेंगे तो निर्णय के दिन, अब यह समुदाय फिर इस रूप में एकत्रित नही होगा, ये ही सब लोग इस प्रकार पुनः मिलेंगे ऐसी सम्भावना नही है इस विचार से उस दिन के अन्त में न्यायालय को एक प्रकार से विदाई लेने-देन का स्वरूप प्राप्त हुआ था।

अभियोग के जारी रहते हुए न्यायमूर्ति की शान्ति ध्यान में रखने योग्य थी। किसी भी धारा पर वकीलो मे परस्पर विवाद छिड जाता था, वह विवाद कभी तूल भी पकड लेता था। उसमें कटुता न बढे इसके लिये न्यायाधीश पक्ष-विपक्ष के दोनो वकीलो को अपने वेश्म में बुलाकर उनका समाधान करते थे। वकील भी विवाद तक ही उत्तेजित रहते थे। बाद में वे भी शान्त हो जाया करते थे।

एक बार दो वकीलो का विवाद तीव्र हुआ था। न्यायमूर्ति को कहना पड़ा था कि उन लोगो को ज्ञान होना चाहिये कि यह न्यायालय है। यदि उनको लड़ना हो तो न्यायालय से बाहर जा कर लडें। तब एक वकील ने कहा था—, "बाहर जा कर हमे एक साथ चाय पीनी होती है। उस मिठास में हम कडवाहट मिलाना नही चाहते।"

न्यायालय हसी से गूज गया। सभी के मन का बोझ हलका हुआ। चढा हुआ पारा उतर गया।

सामान्यतया अभियोजको ने अपने भाषणक्रम में एक विशिष्ट ऊँचे स्तर का अवलब किया था। किन्तु शाब्दिक सघर्ष अनेक बार हुआ करते थे। वकीलो के ही इस शाब्दिक सघर्ष में एक बार सरकारी वकील श्री दफ्तरी के मुख से इस दुर्घटना के उपलक्ष्य "अनैतिक अपराध" शब्द निकला था। नथूराम ने जहाँ तक मुझे स्मरण है, अपने वक्तव्य में उसका खडन किया था। अपने वक्तव्य में उसका इस प्रकार खण्डन किया था —

"कम से कम इस प्रकरण में नीति अथवा अनीति की जांच करने का अधिकार अभियोजको को नही हैं और न ही उस प्रश्न का निर्णय करने का अधिकार इस न्यायालय को हैं। यह उसके क्षेत्र से बाहर है। नीति की व्याख्या, समाज-समाज मे, देश-देश में सदा सर्वदा से पृथक-पृथक होती रही हैं। किसी समाज में महिलाओ का परदे में न रहना अनैतिक कहलाता है, किसी देश में मद्यपान तक अनैतिक नही समझा जाता। किसी युग में ब्राह्मणेतरो को वेद विद्या विहित नही थी। किन्तु समयानुसार सब स्थानो पर यह सब बदलता गया। इस आधार पर नीति-अनीति का कोई त्रिकालाबाधित स्थिर नियम निर्धारित नही किया जा सका है।

यदि "हत्या" को अभियोजक अनैतिक घटना मानते है तो मैं कहूँगा कि आज शासन जितना अनैतिक व्यवहार करता है कदाचित ही कोई अन्य इस प्रकार करता हो। क्योकि उनको अनेक बार गोली चलानी पड़ती है इसमें अगणित हत्यायें होती है। "हत्या" अनैतिक है यदि इसको तत्व अथवा सिद्धान्त मान लिया जाय तो फिर हमें अपने सभी देवी-देवताओ को अनैतिक मानना पड़ेगा। जिन देवी देव-ताओ को हम आज तक गर्व से मुरारि, त्रिपुरारि अथवा महिषासुरमर्दिनी आदि विशेषणो से विभूषित करते हैं, अब से भविष्य में उनको अनैतिक मान हत्यारे विशेषणो से सम्बोधित करना पड़ेगा। तब तो हम यही कहेंगे कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिये नही अपितु हत्या के लिये प्रवृत्त किया था। उसका निष्कर्ष हमको यह निकालना होगा कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अनीति सिखाई। निति-अनितिका निष्कर्ष निकालते समय हमें घटना के मूल में निहित भूमिका को ध्यान रखना होगा। मैं इसी को सिद्धान्त की बात मानता हूँ।

मेरा यह भी कहना हैं कि अभियोजको का नीति अथवा अनीति का प्रश्न सामने लाना न तो नियमानुकूल है और न ही उनको इस प्रकार का कोई अधिकार प्राप्त हैं। अमुक वकील अमुक पक्ष की ओर से कार्य कर रहा है अत वह सत्य का पक्षपाती हैं, ऐसा मान कर चलना उपयुक्त नही। शासकीय पक्ष के वकीलो को जो शुल्क मिलता है, यदि उससे अधिक शुल्क बचाव पक्ष की ओर से दिया जाता तो वही वकील बचाव पक्ष की ओर से बहस कर सकते थे। ऐसी स्थिति मे उन्होने नीति का पक्ष छोड दिया है ऐसा नही कहा जा सकता। अत. वकीलो की नीति अनीति की जाच करने का इस न्यायालय को अधिकार नही है।

"सम्बन्धित घटना कानून के अन्तर्गत निषिद्ध अथवा दण्डनीय हैं या नही इतना ही न्यायालय के सम्मुख वकील प्रस्तुत कर सकते है। नीति-अनीति की छान-बीन के लिये हमारे देश में धर्म या व्यासपीठो की कमी नही है। यह उनका काम है वे करते रहेंगे। विधान की सीमा लिखितरूपेण निहित है। उसी लिखित

विधान के अंतर्गत इस न्यायालय की सीमा निर्धारित है। इसलिये यह न्यायालय केवल घटना की वैधता अथवा अवैधता पर ही विचार एवं निर्णय कर सकता है। यह धर्मपीठ नही है। इसलिये घटना, धर्म अथवा अधर्म या नैतिक या अनैतिक है इसका निर्णय न्यायालय नही कर सकता।"

श्री दफ्तरी ने नथूराम के इस आलोचनात्मक वक्तव्य पर आपत्ति प्रकट की थी। तब नथूराम ने न्यायमूर्ति को कहा था, "श्री दफ्तरी के 'अनैतिक' शब्द के प्रयोग पर मुझे यह टीकाटिप्पणी करनी पडी थी। यदि वे उस अनुपयुक्त शब्द का प्रयोग न करते तो इस प्रकार का विवाद ही नही उठता। "अवैध" शब्द का यदि उन्होने प्रयोग किया होता तो मैं उस विषय में मौन रहता।" इसके बाद नथूराम तुरन्त ही अभिवक्तव्य के अन्य विषयो की ओर मुड गये थे।

समय समय पर इस प्रकार से उत्पन्न कटुता अन्तिम दिवस समाप्त हो गई थी। अभियोजक, पुलिस अधिकारी आदि सभी ने उस दिन उदारता का परिचय देते हुए परस्पर विदाई ली थी। सबको विदित था कि एक दिन पुन हम सब इस प्रकार एकत्रित होगे, किन्तु उस दिन का वातावरण ही भिन्न होगा। वह दिन होगा निर्णय का दिन।

ऐसा अनुमान किया जा रहा था कि लगभग एकमास बाद निर्णय की तिथि विदित हो जावेगी। उस दिन तिथि निश्चित नही की गई थी। हम नित्य की ही भाति, खेल-कूद, पढने आदि में अपना समय बिता रहे थे। जिन वकीलो ने इस अभियोग में हमारी सहायता की थी उन सभी को हमने बन्दीगृह के अधीक्षको की अनुमति से धन्यवाद के पत्र लिख दिये थे। कभी कभी हम न्यायालय में हुई विचित्र घटनाओ पर चर्चा किया करते थे। कुछ दिन बाद हमको सूचना मिली कि दि० १०-२-४९ को निर्णय सुनाया जावेगा।

ज्यो-ज्यो निर्णय का दिन समीप आता जाता था त्यो-त्यो हमारे मनो में तनाव सा बढता जाता था। परन्तु वह सह्य था। उसके दो कारण थे। एक तो हम अनेक व्यक्ति एक ही नाव के नाविक थे और दूसरे यह कि हमने अपने बचाव के लिये भले ही बहुत कुछ कहा होगा फिर भी हमारा अन्तर्यामी यह तो जानता था कि उस अवैध घटना की परिधि में हम कहा खडे हैं। इसलिये सजा हुई तो कोई अनपेक्षित बात होगी अथवा अन्याय होगा ऐसा हमारे किसी के मन में नही था। यह बात दूसरी है कि यदि सजा हुई तो हम उसका प्रतिवाद उच्च न्यायालय में करेंगे, ऐसा हमने भले ही मन में सोचा हो।

हमें आत्मवचना का कोई कारण नही था। हमारे मनो की अबतक यह स्थिति हो गई थी कि जिसे प्रतिकूल कहा जाता है वही हमारा देव है। इस कारण मन पर तनाव आते हुए भी उससे वेदना नही होती थी।

दि० १०-२-४९ का सूर्य उदित हुआ। सभी अभियुक्त एक प्रकार की त्वरा एव उत्सुकता से दैनिक कर्म मे प्रवृत्त एव उससे निवृत्त हुए। और फिर न्यायालय जाने की बाट जोहने लगे। उस दिन पुलिस का विशेष सुरक्षा-प्रबन्ध था।

न्यायालय भर गया था। वकीलगण भी बैठे थे। नित्य न्यायालय में उपस्थित रहने से कई लोगो को हम पहचानते थे। आज भी उनमें से अनेक जन यहाँ उपस्थित थे। स्मितो का आदान-प्रदान हुआ। वकीलो का अभिवादन एव परस्पर कुशलक्षेम पूछना भी हुआ।

न्यायमूर्ति के आने की घोषणा से न्यायालय में पुन. सन्नाटा छा गया। उस शान्ति में गभीरता थी। विधि किसके जीवन से कैसा खेल खेलता है यह सुनने के लिए मानो सभी ने साँस रोक ली थी।

ज्यो-ज्यो एक एक करके प्रत्येक अभियुक्त के विषय में न्यायमूर्ति निर्णय सुनाते गये त्यो त्यो अभियुक्तो के मन का तनाव शान्त होता गया। उनके मानस को निश्चिन्तता प्राप्त होती गयी। निर्णय का साराश इस प्रकार था :-

नथूराम—मृत्युदण्ड, अन्य दण्ड कुल १९ वर्ष।

नाना आपटे—मृत्युदण्ड, अन्य दण्ड कुल १७ वर्ष।

करकरे—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड कुल १७ वर्ष।

मदनलाल—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड कुल १५ वर्ष।

शंकर किस्तैया—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड १२ वर्ष।

गोपाल गोडसे—आजन्म कारावास, अन्य दण्ड कुल १५ वर्ष।

सावरकर—निर्दोष, अतएव बन्धनमुक्त।

डा० परचुरे—आजन्म कारावास।

बड़गे—क्षमा का साक्षी, शर्तो की पूर्ति की, अत बन्धनमुक्त।

दण्डितो को दिया गया दण्ड, सभी सजाएँ साथ साथ ही भुगतने का विधान था।

जो आरोप लगाये गये थे उनमें से कुछ आरोप सिद्ध नही हो पाये थे। नथूराम और नाना आपटे को न्यायमूर्ति ने कहा था कि अन्य आरोपो से आप लोगो को मुक्त किया जाता है। इसी प्रकार अन्य अभियुक्तो को भी जो आरोप उन पर सिद्ध नही हो सके थे उनसे मुक्त घोषित किया था।

शंकर किस्तैया का दण्ड ७ वर्ष कर दिया जाय, ऐसा अभिमत न्यायाधीश ने अपने निर्णयपत्र में व्यक्त किया था।

निर्णय पत्र ११० पृष्ठो में टाइप हुआ था। उसके ११० मुद्रित पृष्ठ हुए थे।

हमने अपना दण्ड सहज से स्वीकार तो कर लिया था, किन्तु उससे हमारा समाधान नही हुआ था। उस सहजता का प्रदर्शन करने की हमारी बहुत इच्छा थी। प्रकटरूप से अभियोग चलाने में ही वह हमारे लिये सम्भवनीय था।

जिस समय निर्णय सुनाया जा रहा था, हम सब शान्ति से उसको सुन रहे थे। जब निर्णय सुनाया जा चुका तो स्तब्धता छा गई। तब हम अभियुक्तो ने एक स्वर से निनाद किया—"स्वातन्त्र्य लक्ष्मी की जय, हिन्दूराष्ट्र की जय, अखण्ड भारत अमर रहे, वन्दे मातरम्।"

इस प्रकार इस नाटक का पटाक्षेप हुआ। आजतक जिस रगमंच के प्रकाश में हम अभिनय करते रहे थे उससे अन्धकार में विलीन हुए। वह अन्धकार कितने समय तक रहेगा, यह तो केवल विधि ही जानता था।

* * *

बारह

अँधेरे पथ की यात्रा

दि० १०-२-४९ को गाधी वध अभियोग सम्बन्धी न्यायालय का निर्णय सुन कर हम में से यदि कोई व्याकुल हुआ होगा तो वह दिगम्बर बडगे हो सकता है। यद्यपि वह हम में नही था, किन्तु हमारे सम्मुख ही था। निर्णय सुनकर वह रोया था।

बडगे की भावनाओ का विश्लेषण किया जा सकता है। यदि वह क्षमा का साक्षी नही होता तो अभियुक्तो की पंक्ति मे खडा होता। उसको भी इसी प्रकार कोई दण्ड मिल जाता। उस पर सरकार ने जो शर्त लगाई थी उसका उसने भली प्रकार पालन किया था अत: उसको क्षमा प्राप्त हो गई थी। उसको एक दिन का भी कारावास भुगतना नही था। सम्भावित संकट मे मैं बिलकुल बच गया यह जान कर कोई भी सुख की साँस लेगा, आनन्दित होगा, उल्लास के अश्रु भी प्रवाहित कर सकता है।

परन्तु बडगे के अश्रु उस प्रकार उल्लास के अश्रु नही थे। जिस षड्यन्त्र को सिद्ध करना अभियोजको के लिए अत्यन्त कठिन कार्य था उस षड्यन्त्र को सिद्ध करने में बडगे की साक्षी ने महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की थी। अपने मन से वह जिनका सहयोगी बना था उन्ही सहयोगियो को अँधेरे में ढकेलने में उसने सरकार की सहायता की थी। और उसके प्रतिदान स्वरूप उसको मुक्ति प्राप्त हुई थी। बडगे जानता था कि उसकी वह मुक्ति कलंकित मुक्ति है। उस मुक्ति से मिलनेवाला आनन्द विशुद्ध नही था। उस मुक्ति से उसके मन को सुख नहीं मिलता था।

बडगे के सम्बन्ध में निर्णय सुनकर अथवा उससे पूर्व भी जब वह क्षमा का साक्षी बना था, हमारी भावनायें कलुषित रही होंगी, ऐसा सोचा जा सकता है। किन्तु वस्तुस्थिति वैसी नही थी।

दण्ड सुनाने के बाद हम लोगो को कहाँ रखा जायेगा, यह सम्भवतया पहले ही निश्चय हो गया था। निर्णय सुनाने के एक घण्टे बाद हमको वहीं लाल किले के कारावास में ले जाया गया और मध्यान्ह के अल्पाहार के रूप में मिलने वाले चने दिये गये। हम सोचते थे कि दण्ड के कार्यवहन का प्रारम्भ तो बुरा नही है बाद का देखा जावेगा।

शाम तक दण्डितो के कपडे, बरतन और बिस्तरे आदि वस्तुयें आ गई। श्रेणी का निदेश न होने के कारण हमको 'सी' श्रेणी में रखा गया था। अर्थात् हमारे कमरो में से मेज, चारपाई आदि निकाली गई और भोजन भी उसी श्रेणी का दिया गया।

उन दिनो की बात है जब हम न्यायाधीन अर्थात् अण्डर ट्रायल थे। कही से एक बिल्ली का बच्चा आ कर चारदीवारी के काँटेदार तारो में उछल कूद करने लगा। मनोरजन के लिए हमने उसको अपने समीप बुला लिया। तनिक आश्वासन पाने पर वह बाडे के अन्दर आ गया। हमने उसको दूध पिलाया। उसको वह स्थान भा गया। तब से वह हमारे साथ ही रहने लगा। किन्तु अभियुक्त बन कर नही। जब उसका जी करता वह अंगो को सिकोड, छलाग लगाकर काँटेदार तारो को पार कर बाहर निकल जाया करता था। मानो वह हमें स्मरण कराता हो कि बन्दीगृह का निवासी होने पर भी मैं स्वतन्त्र हूँ।

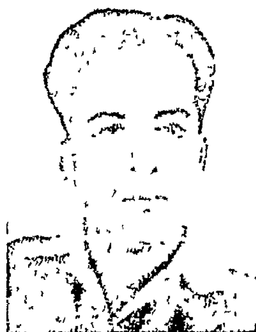
लाल किले के कारागार में नथूराम और मैं एक ही कोठरी में रहते थे उस बिल्ली का निवास भी वही था।

निर्णय की रात को भी नित्य की ही भाँति बिल्ली हमारे कमरे में आई, परन्तु उसको कुछ परिवर्तन सा दृष्टिगोचर हुआ। ऐसा उसके हाव भाव से प्रतीत होता था। कमरे में उस समय मैं अकेला ही था। नित्य की भाँति वहाँ चारपाई नही थी। मानो उसको लगा होगा कि उसकी अब वहाँ आवश्यकता नही है। उसकी 'ब' वर्ग की श्रेणी सम्भवतया छीनी गयी है।

मैंने उसको अपने समीप बुलाया, उसकी पीठ पर हाथ फेरा। उसको अपने बिस्तर के भीतर कर ढक दिया और वह आराम से सो गई।

थोडी देर बाद मैं अपने सहज भाव से मुडा तो बिल्ली एकाएक चौंकी और बिस्तर से बाहर निकल कर भाग गई, मानो उसके सिर कोई भूत सवार हुआ हो। मुझे भी पाँवो में बेड़ियाँ होने के कारण, जिनका कि अभी अभ्यास हुआ नहीं था,

नथूराम विनायक गोडसे



नारायण ऊर्फ नाना आपटे



स्वातन्त्र्य वीर

बॅ० विनायक दामोदर सावरकर

आवाज से असुविधा होती थी और उसी आवाज से चौंक कर बिल्ली भी वहाँ से भागी थी। सोने से पूर्व हमारे कमरे खोले गये थे और हमारे पावो में बेडियाँ आदि ठीक करके फिर कमरे बन्द किये गये थे।

रात को ग्यारह बजे इधर उधर घूमकर बिल्ली को नथूराम का कमरा भी मिल गया। वहाँ उसको कुछ सुरक्षा की सी भावना हुई। वह स्थान उसको सुरक्षित प्रतीत हुआ। उस कमरे मे घुस कर म्याउँ-म्याउँ करती वह नथूराम के बिस्तरे में घुस कर सो गई।

निर्णय सुनाने का दिन एक तो उस दिन के नये पन के कारण अथवा एक के बाद एक इस प्रकार स्थितियो में निरन्तर एव शीघ्र होनेवाले अन्तर के कारण ऐसा लगा कि दिन शीघ्र ही बीत गया है। दूसरे दिन प्रात हम उठे तो एक नये ही ससार में आने की सूचना सी हमें प्राप्त हो रही थी। सारा क्षेत्र उदासी से भरा-सा लगता था। हमारे चेहरे की क्या स्थिति है यह देखने के लिए हमारे पास साधन नही था, क्योकि हमारे आइने पहले ही दिन ले लिये गये थे। परन्तु मन की दशा बुरी है इसकी प्रतीति मन ही मन होती थी। रात्रि को नीद भी भली प्रकार इसलिये नही आई थी कि पाँवो में बेडिया पड गई थी। उससे नीद में रुकावट आती थी। तनिक करवट बदलो तो बेडी खनखनाती थी मानो कह रही हो, "मैं हूँ सभालो मुझे"। पैर वह सदेश मस्तिष्क को देते थे। इस प्रकार वह समस्त शरीर को झकृत कर नीद बिगाड देती थी। जैसे किसी निद्रालु प्रसूता को उसका बच्चा रोने पर उसकी सास या मा जगा कर उस बच्चे को सम्भालने के लिये कहती है ठीक वैसे ही इन बेडी रूपी बच्चे को सम्भालने के लिये मस्तिष्क रूपी सास बन्दी रूपी प्रसूता को जागृत कर देती थी।

तदपि शान्ति से सोये थे नथूराम और नाना आपटे। उनको बेडी नही डाली गई थी, हमें उनके प्रति इससे छद्म ईर्षा सी होती थी। हमें तुकाराम का अभग विपरीतार्थक के प्रतीत हो रहा था। बचपन हमें प्राप्त हुआ था किन्तु अंकुश की मार भी हम पर ही थी। उलटे बडप्पन उनके हिस्से आया था और सुख की नीद के क्षण भी वही चख रहे थे। वास्तव में वे भाग्यवान थे।

हमारी अवस्था कैसी भी क्यो न हो किन्तु हमें एक सुख था। अपनी दय-नीय अवस्था को कोई न देखे, विशेष कर निकटस्थ परिजन तो न ही देखें, ऐसा हम चाहते थे। मनुष्य कभी कभी रास्ते पर जब गिरता है तो उसको चोट पहुँ-चती है किन्तु उसकी चोट तब और बढ जाती है जब वह अनुभव करता है कि उसके गिरने को अन्य लोगो ने देखा है और फिर वह चोट की पीडा भूल लज्जा बचाने के लिये झट से उठ कर अपने मार्ग पर चलने लगता है।

उन चार दिनो में रिश्तेदारो में से कोई भी मिलने के लिये न आये, ऐसा मन में विचार आता था। क्योकि हमें सन्देह होता था कि कही मन की वेदना चेहरे पर अकित हो गई तो ? जब मन स्थिर हो गया है ऐसा स्वय को विश्वास हो जाय तो फिर घरवाले मिलने के लिये आवें तो अच्छा है। किन्तु बाद में हमने अनुभव किया कि हमारा भय अकारण था।

पुनरावेदन– अर्थात् अपील–के लिये हमारे वकीलो की दौड जारी थी। दो तीन दिन के अन्दर ही उन्होने हमसे भेंट की। हमारे मन के दु ख का प्रकटीकरण किसी के भी सम्मुख नही हुआ। हमको धीरज देने की आवश्यकता नही है ऐसा देखकर वकीलगण को सान्त्वना मिली। अल्प समय में ही उन्होने पुनरावेदन के प्रारूप तैयार किये और फिर १४-२-४९ को हमारे आवेदन पजाब उच्च न्यायालय में प्रस्तुत कर दिये गये।

बन्दागृह के हमारे अधिकारी भी वही थे। हम भी वही थे, स्थान भी वही था। रुपान्तर हुआ था तो केवल नियमो में। कल जो अभियुक्त थे, वे आज दण्डित बन गये थे। कलतक जिन पर सन्देह था अब उसकी पुष्टि हो गई थी। अब हम सब दोषी थे, अपराधी थे। और तदनुसार कारावास भोग रहे थे।

दो चार दिनो में हमारा दैनिक कार्यक्रम भी स्थिर हो गया। हमें लिफाफे बनाने का काम दिया गया। उस विशेष बन्दीगृह में और कुछ काम देना सम्भव भी नही था।

प्रात उठने के बाद प्रातविधि होने के अनन्तर दस बजे तक काम लिया जाता था। उसके बाद एक घटा भोजन और विश्राम के लिये होता था। फिर ग्यारह से चार बजे तक काम। उसके बाद बरामदे में टहलना होता था। पाच बजे भोजन आता था। भोजन के बाद कमरा बन्द होता था। हर दिन कमरा बदल दिया जाता था।

रात्रि के समय मल-मूत्र आदि त्याग के लिये एक मिट्टी का कुण्डा रखा रहता था। उस समय हम अकेले ही थे। कमरे में यदि दो हो तो मूत्रत्याग में भी सकोच होता था। अन्य उपाय न होने पर धीरे धीरे कर बाद में उसका भी अभ्यास हो गया। निर्लज्ज बनने की शिक्षा कारावास में मिलती है।

हमने अपने लिये उच्च श्रेणी मिलने के लिये आवेदनपत्र दिये। कुछ दिन तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त मदनलाल ने अनशन आरम्भ कर दिया। पाच - छ दिन बाद उसने अनशन समाप्त कर दिया। श्रेणी मिलने सम्बन्धी कुछ पत्र समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुए थे। लगभग एक मास के बाद शकर किस्तैया को छोड कर शेष सभी को 'ब' श्रेणी मिल गई थी। यदि सक्षेप मे कहा जाय तो यही कहना होगा कि सरदार वल्लभभाई पटेल ने गाधी वध की पृष्ठभूमि को

ध्यान में रख कर हमारी श्रेणी में परिवर्तन करवाया था। पक्षपातरहित हो कर उनकी उदारता की प्रशसा मैं करना चाहता हूँ।

दण्ड सुनाये जाने के बाद भी दो मास तक हमको उसी लालकिले के वन्दी गृह में ही रखा गया था। अपना आवेदन स्वय प्रस्तुत करने की अनुमति नथूराम को मिल गई थी।

अप्रैल के मध्य में हमको मोटर मार्ग से दिल्ली से अम्बाला कारागार मे ले जाया गया था। नियम के अनुसार यात्रा के समय नथूराम और नाना आपटे के पैरो में भी बेडी डाली गई थी। अम्बाला पहुँचने पर वह निकाल दी गई। मोटर से हम नीचे उतरे, खुला आगन देखा। यद्यपि उस आगन में हम मुक्त सचरण नही कर सकते थे तदपि उतना विशाल आगन देखने का अवसर तो आखो को सुलभ हुआ था। उस दर्शन मात्र से मन को तृप्ति सी हुई। नथूराम और आपटे को फाँसी की कोठरी में ले जाया गया। हम शेष बन्दियो को हमारे लिये निर्धारित कोठरियो में ठूँसा गया।

हमारे अहाते के भीतर जो आगन था उसमें घूमने फिरने की हमको अनुमति थी। सामने लकडी का द्वार था। उस द्वार के मध्य में दो इच व्यास का छिद्र था। जिससे बाहर का दृश्य थोडा सा देखा जा सकता था।

सुबह के समय सामने के आगन में कार्यालय का कार्य सम्पन्न होता था। नये आये वन्दियो के अधिपत्र अर्थात् वारट की जाच करना, उनकी अपनी वस्तुओ की सूची बनाना, उनका भार तौलना, उनकी उचाई आदि नापना, शरीर पर अकित चिन्हो को रजिस्टर में अकित करना, उनका काम आदि लिखना, इस प्रकार का कार्य उस कार्यालय में हुआ करता था। वन्दो को तुरन्त वस्त्रालय में भेजा जाता था। उसको दण्डितो के वस्त्र प्रदान किये जाते थे।

चार-छ दिन अम्बाला वन्दीगृह में भी हमारा कार्यक्रम स्थिर करने में लग गये। हमें कुर्सियाँ बुनने और वास की तीलियों के परदे बनाने का कार्य दिया गया। वह काम हम शीघ्र ही सीख गये और हाथो में गति भी आ गई। उसके प्रतिदानस्वरूप अधीक्षको ने हमें विशेप छूट दी। विशेष अर्थात् जो सामान्यतया दी जाती थी उससे चार दिन अधिक। दिन का अधिकाश समय काम में व्यतात होता था। शेप समय विताने में विशेप कष्ट नही होता था। उस समय के लिये भी कुछ साधन हमको दिये गये थे।

बाहरी ससार में, किसको क्या शोभा देता है, इनके कुछ सकेत निर्धारित होते है। प्रथम श्रेणी में जो यात्रा करता है उसके वस्त्र धोवी के धुले एव व्यवस्थित होने ही चाहिये यह मनुष्य की धारणा होती है। ऊलजलूल सा प्रतीत होनेवाला

कोई व्यक्ति यदि प्रथम श्रेणी में देखा जाय तो उसके विषय में सन्देह होना स्वाभाविक माना जाता है। वह हमें विरोधाभास सा प्रतीत होता है। हम यह भी सोच लेते है कदाचित कि वह मनुष्य गलती से वहा बैठ गया होगा।

यदि किसी घर में हमें बैडमिटन की रैकेट टंगी दिख जाय तो उसके अनुरूप हम उसके विषय में तर्क अथवा कल्पना करते है। उसके हत्थे पर पडनेवाली मुट्ठी कितनी कोमल होगी, वह किसी युवती की मुट्ठी होगी, तो वह युवती सुन्दर होगी, प्रसाधनो में लिपटी होगी, आधुनिक वेशभूषा और केश सज्जा से सज्जित होगी, इस प्रकार का तर्क मन में उठने लगता है। अधिकाश तर्क सत्य भी सिद्ध होते है। किन्तु जब कभी वस्तुस्थिति इससे विपरीत दिखाई देती है तो अपने तर्क लडखडाने लगते हैं।

जिसे लडकियो का खेल माना जाता है, वही बैडमिटन का खेल अर्थात् उसकी सामग्री हमें दी गई थी। शरीर पर जेल के खद्दर के कपडे, पैरों में लोहे की बेडिया और हाथ में बैडमिटन के रैकेट जैसा नक्शा यदि किसी ने देखा तो वह विभिन्न वेश की स्पर्धा में सर्व प्रथम आनेवाले व्यक्तियो में उन खिलाडियो की गिनती करेगा, हम तो अनेक दीवारो के भीतर बन्द थे, वहां बाहर का कोई व्यक्ति दर्शक बन कर कैसे आ सकता था, पारितोषिक लेने का अवसर प्रतिदिन खोया जाता था। हम खेलते थे।

मन मे तर्क कुछ भी उठता हो, फिर भी सन्ध्या के समय उस खेल को भी बडे मनोयोग से खेलते थे। बेडी की ताल पर खेलने की धीरे धीरे हम लोगो को आदत पड़ गई थी। कभी असमय पर वर्षा होने से आँगन मे कीचड़ हो जाया करता था। उस फिसलन में झुकाव संभाल कर खेलने में अपना एक विशेष ही आनन्द था। अपने को सम्भालने के प्रयत्न में ही यदि कोई गिर गया तो जो कोई दो चार पुलिसवाले वहाँ खडे रहते थे उनको मनोरंजन का अच्छा साधन मिल जाता था। कहते थे, फिर से!

अभिलेखो के ग्रंथ मुद्रित हो रहे थे, पुनरावेदन सुनने की शीघ्र ही शिमला मे व्यवस्था होनेवाली थी। ग्रन्थ की एक एक प्रति हमको दी गई थी। नथूराम स्वय ही अपना आवेदन प्रस्तुत करनेवाले थे इसलिए उनको एक अतिरिक्त प्रति भी दी गई थी। प्राय. ऐसे पुनरावेदनो के लिए न्यायपीठ पर दो न्यायमूर्ति बैठा करते थे। इस अभियोग के अभिलेखो की व्याप्ति और अभियोग का महत्व ध्यान में रखकर इस प्रकरण में न्यायासन पर तीन न्यायाधीशों की योजना हुई थी।

दि० १४-४-४९ को अभिलेख ग्रन्थ हमारे हाथो में आये थे। १५ दिनो बाद न्यायालय में उपस्थिति का दिन था। नथूराम ने अभ्यास करना और टिप्पणी

करना आरम्भ कर दिया था। दि० २ मई को शिमला उच्च न्यायालय मे सुनवाई प्रारभ हुई।

समाचार पत्रो में प्रकाशित होनेवाली वार्त्ताओ से हमको शिमला मे चलने वाले काम काज का अनुमान था। ९ या १० जून को अभिवक्तव्य पूर्ण हुए थे। कुछ दिनो बाद विदित हुआ था कि निर्णय दि० २१-६-४९ को सुनाया जावेगा।

उस दिन शिमला में सुनाया जानेवाला निर्णय उसी दिन हमको अम्बाला में विदित हो इस प्रकार की व्यवस्था कर दी गई थी। शाम तक हम निर्णय के वृत्त की राह देख रहे थे। शाम को हमको विदित हुआ कि निर्णय एक दिन बाद अर्थात् २२-६-४९ को प्रकट किया जावेगा। हमें कुछ विचित्र सा लगा। इतने दिन तो हमने प्रतीक्षा ही की थी एक दिन और प्रतीक्षा करने में क्या बिगड़ सकता था। क्या हम यह सोचते थे कि उच्च न्यायालय से हमें मुक्ति मिल जावेगी ? जो हो, मन को कुछ बुरा सा ही लगा।

इस अवस्था में हमें मनुष्य स्वभाव की एक विशेषता को विचार करना पडेगा। जो कुछ प्रतिकूल है वही हमारे भाग्य मे लिखा है ऐसी मन की धारणा होने पर और उस प्रतिकूलता के लिये मन की सिद्धता होते हुए भी मन लालची होता है, इस तथ्य को भूलाया नही जा सकता। कदाचित्त विधाता अनुकूल हो हो जाय इस प्रकार की आशा मन में स्थान बना लेती है कदाचित उसी मे जीवन की प्रेरणा होती है। अथवा प्रतिकूलता में से भी कुछ अनुकूलता का अवसर प्राप्त होगा, आज न सही कल ही सही कुछ तो परिस्थिति बदलेगी इस आशा पर वह राह देखता हुआ दिन काटता है।

उस एक दिन के विलम्ब से मन बहुत ही व्यग्र हुआ था। काल अपनी गति से चलता है। घडी की सुइयो को तो आगे पीछे सरकाया जा सकता है किन्तु काल के चक्र में हम किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही कर सकते। शनै शनै दिन भी बीतता गया। दूसरा दिन उदित हुआ। शाम तक आशका चरम सीमा तक पहुँचनेवाली थी और फिर अपना अपना भवितव्य समझ कर तब हमारे मन उस नई परिस्थिति में स्थिर होनेवाले थे।

निर्णय की घोषणा हुई। नथूराम, नाना आपटे, करकरे, मदनलाल और मेरे आवेदनों को अस्वीकार कर लिया गया। शेष बचे डा० परचुरे और शकर किस्तैया।

डा० परचुरे ने तो ग्वालियर के न्यायाधीश के सम्मुख स्वीकारोक्ति दी थी। लाल किले के विशेष न्यायाधीश ने डा० परचुरे को दोषी ठहराया था। उनको भी आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया था। उच्च न्यायालय के तीनों न्यायाधीशो को वह स्वीकारोक्ति अग्राह्य प्रतीत हुई। विशेष न्यायाधीश का

निर्णय उनको अयुक्त प्रतीत हुआ। और उन्होने अपने निर्णय में डा० परचुरे को मुक्त कर दिया।

कहाँ तो आजन्म कारावास का दण्ड और कहाँ निर्दोष निर्मुक्ति। इन दोनो के अन्तर की गणना किसी प्रकार भी नही की जा सकती। कष्टमय वन्दीसा एकाकी जीवन बिताते हुए कभी शरीर थक जाने से कभी मन को आघात पहुचने से मृत्यु का ग्रास बन जाना, यह आजन्म कारावास की परिणति तो हो सकती है। इसके विपरीत स्वतन्त्र जीवन विताने का अधिकार प्राप्त होना यह निर्दोष मुक्ति का परिणाम होता है। सजा के रूप में ४-४½ मास का कारावास ही डा० परचुरे को भुगतना पडा था।

और शकर किस्तैया। किसी एक झुड में अटका हुआ परन्तु वाद में उस झुण्ड के साथ पैर रखनेवाला यह पद्मशाली जातिका लड़का। कद में मझोला, रग से काला शरीर से मजबूत और खुरदरा। शोलापुर से दक्षिण के तेलुगु भाषी प्रदेश में कही उसका घर होगा। उसे अपने मा वाप की याद तो आती थी, किन्तु उसका आज का स्थान ही ऐसा था कि वहा पर वह उनकी याद के अतिरिक्त और कुछ कर भी नही सकता था। जब तक उसको दण्ड घोषित नही किया गया था तबतक उसको दूर ही रखा गया था, हमसे भी नही मिलने दिया जाता था। इससे उसकी पूछताछ करना हमारे लिये भी सम्भव नही था। वडगे के पास नौकरी क्या की उस भयकर षडयन्त्र में उसको फसा लिया गया। विना पतवार की नौका की भाति नियति की तरगो के साथ वह लहराता था। मुझे कहा जाना है, मेरी दिशा कौन सी है, किस वाहन से यात्रा की जावेगी, नौका का कर्णधार कौन होगा इस में से किसी भी वात का उसको ज्ञान नही था। उसको जब सजा सुनाई गई तो उसका भी अनुवाद उसको उसके दुभाषिये अर्थात् श्रीमती कमलम्मा ने उसकी तेलुगु भाषा में बताया था। परन्तु अनुवाद का अभिप्राय अर्थ तो नही होता। सीधी साधारण सजा से भी ब्रह्माण्ड स्मरण हो आता है शायद ब्रह्माण्ड के परे पहुँचाने वाली इस सजा का अर्थ समझना सरल बात नही थी। मैं कभी मुक्त नही होऊगा, सदा वदीगृह मे ही रहूँगा इतना तो अर्थ उसकी समझ में तुरन्त आ गया क्योंकि पुलिसवाले हमारे साथ ही उसको वन्दीगृह की ओर ले जा रहे थे।

मुझे दण्ड क्यो दिया गया है? मैंने क्या किया है? वह सदैव अपने मन से और दूसरो से इस प्रकार के प्रश्न पूछा करता था। उसने स्वय वडगे से प्रतिप्रश्न किये थे। न्यायालय की ओर से उसको इस प्रकार की अनुमति प्राप्त हुई थी। शकर ने प्रत्येक प्रश्न बहुत ही सुसगति से पूछा था। वडगे स्वय को धोखा दे रहा है, इस प्रकार मुझको फसा कर वह स्वय खिसक जानेवाला है, ऐसी उसकी

धारणा बन गई थी। अपना विषाद यद्यपि वह प्रकट नही कर सकता था तथापि दु ख तो उसको बहुत हुआ ही था।

मुझे सजा हो गई है और बडगे मुक्त हो गया है, यह भी शकर ने देखा। इतने दिन दूर रहनेवाले शकर को अब हमसे सहारा प्राप्त हो रहा था। दण्ड सुनाये जाने के बाद पुनरावेदन का भी कोई मार्ग होता है यह बात उसको हमारे सम्पर्क में आने पर विदित हुई थी। हमने उसको यह भी बताया था कि यदि उच्च न्यायालय की समक्ष में यह बात आ जाय कि वह उस काण्ड में निर्दोष है तो उसको मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है। इससे उसको कुछ ढाढस बधा। थोडे ही दिनो में उसने अपना भवितव्य भी अपने साथी दण्डितो के प्रवाह के साथ मिला दिया।

जब शकर को यह विदित हुआ कि उच्च न्यायालय ने उसको मुक्त कर दिया है तो इससे वह प्रफुल्लित हो गया। बाहर जा कर उसको क्या करना है, इसको समझाने के लिये वह अपने हाव भाव प्रकट करता था और कभी कभी बोल कर भी दिखाता था।

डा० परचुरे को मुक्त तो कर दिया था। किन्तु फिर भी उनको एक दु ख था। उन्हें इस घटना का अन्वयार्थ ज्ञात था। उन्होने भी अपना जीवन हिन्दू सघटन के कार्य में व्यतीत किया था। विभाजन के दिनो में शेष भारत में भी अनेक स्थानो पर हिन्दुओ पर आक्रमण हुए थे। ग्वालियर में भी इस प्रकार का आक्रमण होने का सम्भावना थी किन्तु उसको रोक दिया गया था,। इसका प्रमुख श्रेय डा० परचुरे को था। नथूराम की फासी की सजा किसी प्रकार उससे कम होगी इसकी सम्भावना नही थी। क्योकि उन्होने उस दण्ड के विरुद्ध किसी प्रकार का पुनरावेदन किया हुआ नही था। नाना आपटे की हार्दिक इच्छा थी कि उनका मृत्यु दण्ड आजीवन कारावास आदि में परिवर्तित हो जाय, किन्तु वैसा नही हो सका। यही वेदना डा० परचुरे के मन में रह गई थी।

'शासन विशेष दयादान के अपने अधिकार को गोपाल गोडसे के सम्बन्ध में उपयोग करे' ऐसा अभिमत अपने निर्णय में उच्च न्यायालय ने व्यक्त किया था। किन्तु मेरा अनुमान है कि इस अभिमत से शासन का क्रोध ही बढा होगा। न्यायाधीश पर किसी प्रकार का आरोप नही लगाया जा सकता था किन्तु उनके अभिमत की उपेक्षा तो की जा सकती थी ? शायद इसी कारण शासन ने अपने दयादान के विशेष अधिकार का भी मुझ पर जो उपयोग किया वह पक्ष में नही अपितु विरोध में। सरकार ने न्यायाधीश के अभिमत का प्रतिशोध मेरे साथ दुर्व्यवहार करके किया। ज्यो ज्यो दिन बीतते जावें त्यो त्यो घटना की तीव्रता कम होती जानी चाहिये। किन्तु मेरे साथ जो व्यवहार किया गया उसके आधार

पर यही कह सकता हू कि ज्यो ज्यो मेरी मुक्ति के दिन समीप आते गये त्यो त्यो मेरे साथ क्रूरता बढती गई। यदि न्यायाधीश मेरे सम्बन्ध में सहानुभूतिपर अभिमत व्यक्त न करते तो कदाचित शासन मेरे साथ इतना दुर्व्यवहार न करता।

न्यायालयीन पद्धति के अनुसार उच्च न्यायालय का निर्णय प्रथम उस न्यायालय के समीप गया जिसने हमको सजा दी थी और उसके बाद अम्बाला बन्दीगृह में गया। इस प्रक्रिया में ३-४ दिन लग गये। डा० परचुरे और शंकर किस्तैया को मुक्त होने में इसी कारण ३-४ दिन लग गये। वे दोनो इस अभियोग में से निर्दोष मुक्त हो गये। अब हम पाच ही शेष रहे। नथूराम और आपटे तो फासी की कोठरी में रहते थे और मदनलाल, करकरे और मैं आजन्म कारावास के बन्दी अलग कोठरी में रहते थे।

इगलैंड की प्रिवी कौसिल उस समय अवशिष्ट अर्थात् खण्डित भारत का सर्वोच्च न्यायालय था। उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध वही पुनरावेदन किया जा सकता था। कम से कम अपने सम्बन्ध मे पुनरावेदन न करने का नथूराम का विचार था। उनकी धारणा थी कि यदि उन्होने पुनरावेदन नही किया तो सरकार को मुझे फासी देने का अधिकार बना रहेगा। किन्तु उनकी यह धारणा गलत थी। क्योकि यदि अन्य अभियुक्त सर्वोच्च न्यायालय में पुनरावेदन करें तो उसके निर्णय होने तक प्रत्येक मृत्यु दण्डित का दण्ड अस्थायी रूप से स्थगित कर दिया जाता है। फासी को रोक दिया जाता है और अन्य सामान्य सजा चलती रहती है।

दिल्ली के लाला गणपत राय एडवोकेट यद्यपि हमारे अभियोग में सावरकर जी का काम देखते थे, तथापि वे सभी कामो में अग्रसर रहते थे। हमारे रिश्तेदारो की भेंट आयोजित कराने से लेकर हमारी आवश्यकताओ की पूर्ति तक का वे ध्यान स्वय करते थे। आजकल वे सर्वोच्च न्यायालय के एडवोकेट है।

शिमला उच्च न्यायालय का निर्णय हो जाने पर लाला गणपतराय ने दि० २९-७-४९ को अम्बाला जेल में हम से भेंट की। उन्होने नथूराम को यह जचा दिया कि सभी का पुनरावेदन करना उचित होगा। यह बात नथूराम ने भी स्वीकार कर ली। पहले की ही भाति दण्ड विधान की धारा ३०२ के अन्तर्गत सिद्ध हत्या का आरोप और उसके प्रतिकार में प्राप्त दण्ड के विषय में किसी प्रकार का आवेदन न करते हुए अन्य आरोप और उनके प्रतिकार में दी गई सजा के विरुद्ध पुनरावेदन किया। अन्य सभी अभियुक्तो ने भी पुनरावेदन किया। लंदन की दो विधि सस्थाओ ने इस सम्बन्ध में हमारी बडी सहायता की। ये सस्थायें थी—डब्ल्यु० डब्ल्यु० वाक्स एण्ड क० तथा वैतेरी। केसरी के लदनस्थित

सम्वाददाता श्री द०वि० ताम्हणकर ने अगस्त के प्रारम्भ में लाला गणपतराय को इस विषय में सूचना दी थी। लन्दनस्थित हमारे वकीलो ने दि० १५-९-४९ तक आवेदन प्रस्तुत किये थे। दि० १२-१०-४९ का दिन पूर्व श्रवण के लिये नियत किया गया था। विधि सस्था की ओर से श्री मँगा कार्य देख रहे थे। श्री दफ्तरी भारत सरकार की ओर से काम देखते थे।

दि० १२-१०-४९ को पूर्व श्रवण में ही प्रिवीकाउसिल ने पुनरावेदन वापस कर दिये थे। हमारी सजा पूर्ववत् रही। नथूराम तथा आपटे को मृत्युदण्ड घोषित करने के बाद भारत के अनेक समाचार पत्रो ने इस सम्बन्ध में जनमत सग्रह करने का उपक्रम किया था। इस प्रकार के समाचारो को हमने दिल्ली के कुछ समाचारपत्रो मे पढा था। तब हमने देखा था कि अधिकाश मत फाँसी के विरोध में थे। उसके अनेक कारण भी प्रस्तुत किये गये थे। सहसा पाठको के इस प्रकार के पत्रो का प्रकाशन उन समाचार पत्रो ने बन्द कर दिया था। यदि सरकार ने फासी देने का निर्णय कर लिया हो तो लोकमत के आधार पर स्थिर शासन लोकमत के विरुद्ध व्यवहार करता है, कही यह बात बल न पकड जाय इस दृष्टि से सरकार ने सम्भवतया इस प्रकार के पत्र प्रकाशन प्रक्रिया को बन्द करवा दिया होगा।

इस सम्बन्ध में 'हरिजन' के उस समय के सम्पादक स्वर्गीय श्री किशोरीलाल मशरूवाला ने भी कई लेख लिखे थे। उनका भी यही कहना था कि नथूराम को तो मृत्युदण्ड दिया जाय किन्तु नाना आपटे की सजा को दूसरी सजा मे परिवर्तित किया जाय। मुझे लगता है कि अपने निष्कर्ष में दो तर्क उन्होने प्रस्तुत किये थे वे पूर्ण नही थे। 'हरिजन' का प्रकाशन गाधीवाद के प्रचार के लिये किया जाता था। गाधीवाद की भूमिका में यह कहना कि फासी का निर्णय न बदल दिया जाय एक प्रकार से असगत है। गाधी जी के जीवन काल में ही इस प्रकार का एक उदाहरण हो चुका था। अब्दुल रशीद ने स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या की थी। अब्दुल रशीद को फासी न दी जाय इस प्रकार का मत गाधी जी ने अभिव्यक्त किया था। 'आई प्लीड फॉर श्री अब्दुल रशीद' ऐसे शब्द गाधी जी ने ढाका काग्रेस में कहे थे। उनके द्वारा उसके लिये प्रस्तुत कारणो के तत्व के रूप में स्वीकार किया जाय तो उन्हे गाधीवाद के क्षेत्र के भीतर ही माना जावेगा। स्वर्गीय किशोरीलाल मशरूवाला उस तत्व के अनुसार नथूरामको फासी न दी जाय, इस प्रकार का निष्कर्ष निकाल सकते थे।

गाधीवाद के अर्थ क्या है ? जिनको गाधी जी ही समझ सके वही। इस प्रकार की आलोचना गाधी जी के जीवन काल में भी होती थी। गाधी जी के बाद उनके शिष्य समुदाय ने फासी प्रकरण की जो सगति लगाई वह किसी भी तत्व के

अनुसार नही थी यही कहना होगा। और यदि वह गाधीवाद प्रणीत थी, ऐसा कहना हो तो जो गाधीवाद गाधी जी के सम्मुख ही जितना विसंगत था उतना ही वह उनके बाद भी विसगत रहा इस तथ्य का भी स्मरण रखना होगा।

गाधीवाद के क्षेत्र में हृदय परिवर्तन यदि कोई परिपाटी थी तो उसका प्रयोग तभी सिद्ध हो सकता था कि जब फासी का दण्ड अमान्य करवा दिया जाता। नथूराम को सजा में किसी प्रकार की छूट अथवा सान्त्वना की भी आवश्यकता नही थी। वह तो स्वय ही फासी पर चढने के लिये तत्पर थे। अत वार्त्तालाप द्वारा उनके मन को परिवर्तन करना और उनके पूर्वग्रह को बदलने के लिये उनको विवश करने की कम से कम चेष्टा करना तो सहज साध्य था। गाधी जयन्ती के अवसर पर 'गाधी जी के तत्त्वो के अनुसार व्यवहार करो। इस प्रकार का उपदेश देने का अधिकार उन लोगो को प्राप्त हो सकता था। किन्तु वह भी नही रहा। अवसर होने पर भी उन्होने उस अधिकार को खो दिया। केवल सूखा उपदेश उनके लिये शेष रह गया। और उपदेशक यह भूलते हैं कि उस उपदेश के पेट में भी एक व्यंग्य भरा रहता है। वह अर्थात् "तुम्हारा व्यवहार तो नीति युक्त होना चाहिये। हम भले ही किसी प्रकार का भी व्यवहार करें। और हमारे व्यवहार के विषय में किसी को कुछ पूछने का अधिकार नही है।" ऐसा दर्पपूर्ण मन का प्रभाव उस उपदेश पर अंकित रहता है।

इस तुलना की दृष्टि में गाधी जी के पुत्र श्री रामदास गाधी के प्रयत्न सच्चे और आस्थायुक्त प्रतीत होते है। नथूराम और आपटे को फासी न दी जाय ऐसा वे मन से चाहते थे। उनका लगातार पत्रव्यवहार जारी था। गांधी जी के तत्वो के ठेकेदारो की नथूराम से विचार विमर्श हो ऐसी उनकी इच्छा थी। किन्तु शासन ने उनके उद्देश्य की पूर्ति नही होने दी। कदाचित शासन को लगा होगा कि "गाधीवाद" नामक कोई सिद्धात उच्चारण के लिये भले ही हो किन्तु व्यवहार के लिये नही। अथवा फासी देने से ही हम गांधी जीके सच्चे अनुयायी सिद्ध होगे ऐसी उनकी धारणा रही होगी। किन्तु दोनो ही भूमिकाओ में विसं-वादित्व था, यह आज भी स्पष्ट है।

नथूराम या नाना आपटे मश्रूवाला के अभिमत पर अथवा रामदास गांधी के प्रयत्नो पर निर्भर नही करते थे। दूसरो के भरोसे उन्होने अपनी जान को खतरे में नहीं डाला था। कोई तो भी हमको बचा ही लेगा ऐसी धारणा मन की दुर्बलता को व्यक्त करती है। और ऐसी धारणा के आधार पर जो प्राण हथेली पर रखते है, जब कोई उनकी सहायता के लिये नही आता है तो फिर उनकी स्थिति दयनीय हो जाती है। उनकी एक निष्ठा थी, उस निष्ठा के लिये अपने प्राण भी उनको तुच्छ प्रतीत होने लगे थे। उस निष्ठा के लिये इस सीमा तक वे उससे:

एकरूप हो गये थे। वह निष्ठा गलत थी अथवा सही था कैसी भी थी उसके विषय में विचार विमर्श के लिये यह उपयुक्त अवसर नही है और मेरा उस पर किसी प्रकार का कथन उपयुक्त भी नही होगा। क्योकि मैं स्वय गाधी वध काण्ड का एक अभियुक्त था। अत मेरा उस पर किसी प्रकार का कथन पक्षपात रहित नही समझा जावेगा। यद्यपि नथूराम अथवा आपटे की उस समय की घटनाओ पर उनकी भूमिका को जिस प्रकार भी हम देखते है वह केवल इतिहास के रूप में ही देखते है।

दया की याचना करना अर्थात् अपनी दैनदिन मृत्यु की याचना करना, इस प्रकार के उस समय नथूराम के उद्गार हुआ करते थे। दि० ११-११-४९ को नथूराम को माता पिता की ओर से एक आशीर्वादात्मक तार प्राप्त हुआ था। उनकी इच्छा थी कि माता पिता जी को एक सान्त्वनात्मक पत्र भेजा जाय। पत्र यदि हिन्दी या अग्रेजी मे लिखा गया हो तो उसकी तुरन्त जाच हो जाती और उसे गन्तव्य स्थल पर भेज दिया जाता था। किन्तु मराठी में लिखा गया पत्र पहले जाच के लिए बम्बई शासन के पास भेजा जाता था वहा से वापस आने पर फिर उसको गन्तव्य स्थान पर भेजा जाता था। इस प्रकार इस प्रक्रिया में दो-तीन सप्ताह लग जाया करते थे। इस बात को ध्यान में रखते हुए पत्र शीघ्र निकल जाय इस विचार से उन्होने हिन्दी में लिखने का निश्चय किया।

नथूराम के पत्र लिखने का उद्देश्य था पुत्र शोक के अवसर पर माता पिता को कुछ आश्वस्त करना। नथूराम का हृदय परिवर्तन करने की दिशा मे कोई कार्य नही किया गया था। करने की आवश्यकता भी नही थी। अपना कृत्य अवैध है और उसका दण्ड मृत्यु है यह जितना सत्य है उतना ही सत्य यह भी है कि वह कृत्य विचारपूर्वक किया गया है और उसकी सजा भुगतने का सामर्थ्य भी उनमें है, यह बात अपने माता पिता के मन में धँसाने के लिए ही उन्होंने पत्र लिखा। अधिकारी वर्ग ने पत्र की जाच की और उसे तुरन्त ही अपने गन्तव्य की ओर भेज दिया। पत्र इस प्रकार था।

अम्बाला

दि० १२-११ ४९

परम वन्दनीय माता जी और पिता जी,

अत्यन्त विनम्रतापूर्वक अन्तिम प्रणाम।

आपका आशीर्वादात्मक तार प्राप्त हुआ। आपने अपने स्वास्थ्य और वृद्ध अवस्था को दृष्टि में रखते हुए, यहा तक न आने की मेरी विनती को स्वीकार कर लिया, इससे मुझे बडा सन्तोष हुआ। आपके छायाचित्र मेरे पास है, उनका पूजन करके ही मैं ब्रह्म मे विलीन हो जाऊगा।

व्यवहारिक और लौकिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो आपको इस घटना से बहुत दु ख होगा। इसमें सन्देह नही। किन्तु यह पत्र मैं किसी प्रकार के दु.खावेग अथवा दु ख की चर्चा के लिये नही लिख रहा हूँ। आप गीता के नियमित पाठक हैं, पुराणो का अध्ययन भी आपने किया हुआ है। जिन श्री कृष्ण ने गीता ज्ञान की गगा प्रवाहित की उन्ही श्रीकृष्ण भगवान ने राजसूय यज्ञभूमि अर्थात् युद्धभूमि पर शिशुपाल जैसे राजा का अपने सुदर्शन चक्र से वध भी किया है। किन्तु क्या कोई कह सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध कर कोई पापकृत्य किया? न केवल शिशुपाल का ही अपितु अनेक अहंकारी असुरो का वध भी उन्होंने विश्वकल्याण की भावना से किया और फिर गीता उपदेश द्वारा उन्ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने वन्धु बान्धवो की हत्या के लिये प्रवृत्त किया था।

पाप और पुण्य मनुष्य की कृति में नही उसकी मनोभावना में परखा जाता है। दुष्टो को दान देना पुण्य नही समझा जाता, उसे अधर्म माना गया है। केवल एक सीतामाता के कारण रामायण की कथा बन गई और एक द्रौपदी के कारण महाभारत का इतिहास बन गया। सहस्त्रावधि महिलाओ का शील हरण हो रहा था और शीलहर्ता राक्षसो की हर प्रकार से सहायता के यत्न हो रहे थे। इस स्थिति मे अपने प्राणो के भय से अथवा जननिन्दा की शका से डर कर कुछ भी न कर मूकद्रष्टा बने रहना मुझसे सहन नही हुआ। मैं समझता हू कि उन सहस्त्रावधि महिलाओं के आशीर्वाद आज मुझे प्राप्त हैं।

मैं अपनी मातृभूमि के चरणो पर अपना बलिदानी मस्तक प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरे इस कृत्य द्वारा मेरा अपना कुटुम्ब और उसके साथ कुछ अन्य कुटुम्बों की दुर्दशा अवश्य हो गई है। किन्तु मेरी दृष्टि के सम्मुख छिन्न-विछिन्न मन्दिर, मुण्डित मस्तको की शृखला, बालकों की निर्मम हत्या, रमणीयो की विडम्बना हर समय विद्यमान रहते है। आततायी और अनाचारी दुष्टो को मिलनेवाला साहाय्य नष्ट करना मैंने अपना कर्तव्य समझा था।

मेरा मन शुद्ध है और मेरी भावना भी उसी प्रकार अत्यन्त शुद्ध थी। कहने वाले भले ही कुछ कहते रहें किन्तु मैं समझता हूँ कि एक क्षण के लिये भी मेरा मन विक्षुब्ध नही हुआ है। यदि ससार में कोई स्वर्ग नाम का स्थान है तो मेरा स्थान वहा सुरक्षित है, ऐसी मेरी धारणा है। उसके लिये मुझे किसी प्रकार की विशेष प्रार्थना करने की आवश्यकता नही होगी। यदि कही मोक्ष है तो उसकी कामना मुझे है।

दया के नाम पर अपने जीवन की याचना करना मुझे तनिक भी रुचिकर नही। और भारत सरकार को धन्यवाद देता हू कि उसने स्वत ही मुझपर किसी प्रकार की दया का दर्शन कर मेरे मृत्यु दण्ड को नही घटाया। दया की भिक्षा के

आधार पर जीवित रहने को मैं वास्तविक मृत्यु मानता हूँ। मृत्यु दण्ड देनेवालो मे मुझे मारने की शक्ति नही है। मेरा बलिदान मेरी मातृभूमि अत्यन्त प्रेम से स्वीकार करेगी। मृत्यु मेरे सामने नही आई अपितु मैं स्वय ही मृत्यु के सम्मुख जा कर खडा हो गया हूँ। मैं मृत्यु की ओर प्रसन्नवदन दृष्टिपात कर रहा हूँ और वह भी एक मित्र की भाँति मेरा आलिंगन करने के लिये आतुर है।

आपुले मरण पाहिले म्या डोळा
तो जाहला सोहळा अनुपम।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुव जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहायेऽर्थे नत्व शोचितुमर्हसि ॥

गीता के तो श्लोक-श्लोको में जीवन और मृत्यु की समस्या का विवेचन भरा हुआ है। ज्ञानी मनुष्य को शोक विह्वल करने की शक्ति मृत्यु में नही है। मेरे शरीर का तो नाश हो जावेगा परन्तु मैं विद्यमान रहूँगा। आसिन्धुसिन्धु पर्यन्त भारतवर्ष को पूर्णतया स्वतन्त्र करने का मेरा ध्येय-स्वप्न मेरे शरीर की मृत्यु मे मिटना सम्भव नही।

सरकार ने आपको मुझे मिलने की अन्तिम स्वीकृति नही दी। सरकार मे किसी भी प्रकार के सद्भावना की अपेक्षा न रखते हुए भी यह कहना पडेगा कि अपनी सरकार किस प्रकार मानवता के तत्व को अपना रही है।

(माता पिताजी वृद्ध हैं, वे लोग पूना में रहते हैं। उनका इतनी लम्बी यात्रा कर मुझसे मिलने के लिये आना सम्भव नही है। अत उनसे मिलने के लिये एक बार मुझे वहा ले जाया जाय जिससे कि वे मुझसे मिल सकें और फिर वही यरवदा जेल में मुझे फासी दे दी जाय, इस प्रकार की विनती नथूराम ने सरकार से की थी। उसको सरकार ने स्वीकार नही किया। इसी का सकेत उन्होंने अपने पत्र मे ऊपर किया है।)

मैं समझता हूँ कि आपको इससे अधिक लिखने की आवश्यकता नही है। मेरे मित्रगण और चि० दत्ता, गोविन्द, गोपाल आदि आपको कभी भी मेरा अभाव खटकने नही देंगे।

इस देश मे लाखो मनुष्य ऐसे होगे जिनके नेत्रों से इस बलिदान से अश्रु प्रवाहित होगे। वे लोग आपके दुःख में सहभागी हैं। इसमें सन्देह नही है कि आप भी स्वय को ईश्वर की निष्ठा के बल पर सम्हाले रहेंगे।"

अखड भारत अमर रहे। वन्दे मातरम्।

आपके चरणो का सहस्र प्रमाण।

आपका · नथूराम

नाना आपटे के जीवन में यदि यह घटना न हुई होती तो वे आज एक बहुत कुशल प्रशासक के रूप में होते। अर्थात् किसी भी प्रकार का कोई व्यापारिक सस्थान उनके सदृश कुशल प्रशासक के लिये अपर्याप्त कार्यक्षेत्र था। उनकी आकाक्षा देश के प्रशासन में सहायता करने की थी। शासन के पास उनका एक प्रबन्ध है। किसी भी दृष्टि से उसे "आपत्तिजनक" नही माना जा सकता। उसका महत्व द्विगुणित है। फासी की छत्रछाया में रहते हुए उन्होने उसे लिखा था और उसमें उन्होने कई मूलभूत तत्वो को समाविष्ट किया है। शासन उस ग्रन्थ को कभी मुक्त करेगा। मै उसके लिये प्रयत्नशील हू। किन्तु मेरे प्रयत्न एकाकी है। कभी कोई गुणो का पारखी सरकारी अधिकारी उस ग्रन्थ को परखेगा तो निश्चित ही उसको जनोपयोग के लिये मुक्त करेगा और कदाचित उसका सम्मान भी होगा, इसमें मुझे सन्देह के लिये स्थान नही प्रतीत होता। केवल किसी प्रकार किसी सुयोग्य व्यक्ति का ध्यान मात्र उस ग्रन्थ की ओर चला जाय, इतना ही करने की बात है।

नाना आपटे ने भी अपने अन्तिम दिनो में कई पत्र लिखे है। श्री करकरे को लिखा उसका पत्र तो बहुत ही मर्मस्पर्शी है। सभी पत्रो में नाना की दृढता का परिचय प्राप्त होता है। किसी दिन यदि वे पत्र मेरे हाथ में आवें तो पाठको को भी उनको पढने का सुअवसर सुलभ होगा।

दोनो ने कई पुस्तको पर कुछ न कुछ सन्देश अथवा पत्र भी लिख कर रखें है। उन पुस्तको की जाच करके उनको उनके सम्बन्धियो को दिया गया है। गुरुगोविन्द सिंह के चरित्र ग्रन्थ पर नथूराम ने मुझे एक छोटा-सा पत्र लिखा है। इस समय वह पत्र मेरे पास है। उसमें उन्होने लिखा है—

चि० गोपाल को —

कुरुक्षेत्र और पानीपत की पावन भूमि से चल कर आनेवाली हवा में अन्तिम श्वास ले रहा हू। पजाब गुरुगोविन्दसिंह की कर्मभूमि है। भगतसिंह, राजगुरू, और सुखदेव का यहा बलिदान हुआ। लाला हरदयाल तथा भाई परमानन्द इन त्यागमूर्तियो को इसी भूमि ने जन्म दिया था।

उसी पजाब की पवित्र भूमि पर मैं शरीर त्याग रहा हू। इस बात का मुझे सन्तोष है। जब खण्डित भारत पुन अखण्ड भारत बनेगा तब उस समय खण्डित पजाब भी पहले की भाति पूर्ण पजाब हो जावेगा। यह सुकार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो, यही अन्तिम इच्छा है।

१४-११-४९

तुम्हारा

नथूराम वि० गोडसे

गुरुगोविन्दसिंह के चरित्रग्रन्थ में एक समर्पण-पत्रिका का पन्ना है। उस पन्ने के सादे भाग पर लिखा है नथूराम का उपरिअंकित पत्र। उस पन्ने पर

अंकित समर्पण पत्रिका के शब्दो का अनुवाद इस प्रकार है-जिन पुण्यवान सतियो ने और अश्राप बालको ने धर्मकी निष्ठा के कारण प्राणार्पण किये और जिन सहस्रावधि वी वरोने गुरु गोविन्दसिंह का जयघोष कर मानवता की रक्षा के लिये पंजाब की भूमि पर शरीर त्यागे उन पवित्र आत्माओं को।

दूसरे दिन अर्थात् दि० १५-११-४९ को प्रात काल ८ बजे यथाविधि नथूराम और नाना आपटे को फासी दी गई। दाह सस्कार कारागार के भीतर ही किया गया। क्रिया कर्म कारागार के एक ब्राह्मण अधिकारी ने किया। जिनको फासी दी गई उनकी कोई भावना हो अथवा न हो किन्तु उनसे सम्बन्धित व्यक्ति, जिनमें कारागार के अधिकारी भी आ जाते हैं, की कुछ भावनायें थी। इस सम्बन्ध में शासन ने जितनी गु जाइश रखी थी उसकी परिधि मे ही उन भावनाओ का प्रदर्शन हो ऐसा उनका मत था। इसलिये कई लोगो ने स्वय आगे बढकर क्रिया-कर्म करना स्वीकार किया। प्रेतो का दहन कारागार के एक खुले मैदान में हुआ। दहन करने पर उस भूमि को खोदा गया और उसमें घास के बीज बोये गये। उस स्थान पर दो वृक्ष लगाये गये। यह सब वृत्तान्त तत्कालीन वहाँ के बन्दियो ने मुझे दिल्ली बन्दीगृह में मिलने पर बताये थे। मैंने अपनी आखो से स्वय यह सब नही देखा।

दोपहर के एक डेढ बजे बन्दीगृह खुला। सुबह का भोजन किसी ने भी नही किया था। भोजन पकाया गया था और बाँटा भी गया था। रजिस्टर में यह नही अंकित किया गया कि भोजन की हडताल की गई अपितु यही अंकित किया गया कि भोजन बाटा गया। बन्दीगृह भी एक प्रकार से परिवार का स्वरूप ही बन जाता है। बन्दीजन सुख दु ख के साथी बन जाते हैं। ऐसे प्रसगो में बन्दीगृह के सभी बन्दियो पर दु ख की छाया व्याप जाती है। कारावास के अधिकारियो एव कर्मचारियो को फासी देने का कार्य यदाकदा करते रहना पडता है। इस कारण उनका मन पक्का हो चुका होता है, इस प्रकार की यदि किसी की धारणा हो तो मैं समझता हूँ कि यह विसगति ही है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत होती है। फासी के दिन किसी किसी बन्दीपाल के घर पर भी चूल्हा न जलने के उदाहरण मुझे ज्ञात हैं।

अधिकारी वर्ग के साथ नथूराम और आपटे के बहुत अच्छे सम्बन्ध थे। यद्यपि बन्दीगृह का यह नियम है कि अधिकारीगण बन्दियों और विशेषतया फासी की सजा प्राप्त बन्दियो से निकट सम्पर्क स्थापित न करें, उस पर भी यह तो राज-नीतिक प्रकरण था। अत इसके बन्दियो से तो काम से काम इतना ही सम्बन्ध नियमानुसार होना चाहिये। किन्तु नियम ही सब कुछ नही होते। बन्दी का व्यवहार और उसका सम्भाषण इसका अधिकारीगणो पर बहुत प्रभाव पडता है।

काम से काम का तात्पर्य यह है कि किसी अन्य व्यवहार के कारण दण्डित किसी प्रकार चिढ न जाय और अधिकारीगण की प्रतिष्ठा को ठेस न पहुचाये। परंतु दोनो ओर इस प्रकार के नियम का उल्लघन होने की सम्भावना है अथवा नही यह वे लोग वन्दी के व्यवहार से जान जाते है। कारागार के अधिकारीगण अपने सुदीर्घ नौकरी के जीवनकाल में मनुष्य स्वभाव के अनेक प्रकारो का अनुभव एवं निरीक्षण किये हुए होते है। अपने उस अभ्यास एव अनुभव के आधार पर ही वे नये आनेवाले वन्दियो के स्वभाव एव व्यवहार का वर्गीकरण करते रहते है।

जब वे अनुभव कर लेते है कि वन्दी का स्वभाव अच्छा है, वृत्ति चिड़चिडी नही है तो वे भी वन्दी से नियम के विपरीत दो चार अधिक और अच्छे शब्दो का प्रयोग कर लेते है। इस प्रकार बोलते बोलते ही उनका वन्दी से परिचय बढता जाता है। एक दूसरे के मनो को समझने का अवसर आता है। कम से कम अधिकारी तो वन्दी के मन को समझने का यत्न करते ही है।

निरीक्षण की जितनी उत्सुकता अधिकारीगण को होती है उतनी ही वन्दी को भी होती है। वह भी अब तक के अपने अनुभव के आधार पर अधिकारियो का वर्गीकरण करता है। इस प्रकार शनै- शनै परिचय बढ जाने पर परस्पर स्नेह सम्बन्धो का निर्माण होता है। नथूराम और नाना आपटे को अम्बाला वन्दीगृह में लगभग नौ-दस मास रहना पडा था। उस सुदीर्घ अवधि में अधिकारियो ने उन दोनो को भली प्रकार परखा था और उसी के आधार पर उनसे सम्बन्ध बढे थे। उनके प्रति उनकी भावनायें बहुत ही नरम थी। इसमें ऐसा कुछ भी नही समझना चाहिये जो कि मनुष्य स्वभाव के विपरीत हो।

नियम यही है कि शासकीय कर्मचारी राजनीति से पृथक ही नही अपितु अलिप्त रहे। वन्दीगृह के कर्मचारी इसका अपवाद नही हो सकते। नियमो की अपेक्षा तो यही थी कि अम्बाला वन्दीगृह के अधिकारीगण नथूराम और आपटे से अधिक बोलचाल न रखें।

क्या मनुष्य स्वभाव के अनुसार कोई भी कर्मचारी कभी राजनीति से अलिप्त रह सका ? देश विभाजन के कारण उन अधिकारियो के घरो पर भी उन घावो की कसक विद्यमान थी। राजनीति के कारण जो चीरफाड़ हुई थी वह यदि कही कोरिया अथवा वियतनाम में हुई होती तो सम्भवतया ये कर्मचारी अथवा अधिकारीगण उससे अलिप्त रह सकते थे। किन्तु उनका दृष्टिकोण कैसा भी क्यो न हो, उनकी किसी प्रकार की कोई राजनीतिक विचारधारा हो अथवा न हो, राजनीति उनके घर पर आकर धमकी थी, उसका प्रहार न केवल उनके घरो पर अपितु उनके शरीरो पर भी हुआ था क्योकि वे शासकीय सेवा में भले ही नियुक्त हो किन्तु ये तो वे हिन्दू ही। उनकी अपनी पैतृक भूमि पर उनका अस्तित्व

समाप्त होता जा रहा था। अत जिस मार्ग से भी और जिस उपाय से भी सम्भव हो उससे, पाकिस्तान बने पंजाब से, उन्होने भारतीय पंजाब में आकर सहारा खोजा था। इस प्रकार ये अधिकारीगण अनिच्छा से किन्तु अनिवार्यरूपेण राजनीति में नहाये हुए अपने अग पर लगे घावो के विषय में यदि नही बोलेंगे तो क्या करेंगे ? मार्ग गलत हो अथवा सही तदपि उन फासी की सजा प्राप्त बन्दियो ने कुछ तो उनके आसुओ का बदला लेने का यत्न किया था, ऐसी उनकी धारणा क्यो नही हो सकती ? विभाजन के समय पजाब में क्या हुआ इसका विवरण उन अनेक पत्र पत्रिकाओं, पुस्तको अथवा ग्रन्थो से उतना उपलब्ध नही हो सकता जितना कि हमे उन अधिकारियो की वेदना भरे स्वरो को सुनकर हुआ। वे दिल खोल कर हमें सब बताते थे।

नथूराम और आपटे को भी उद्विग्न मन की उस उद्गाथा को सुनने में अत्यधिक रुचि थी। उसे वह स्वय पर बीती घटना जैसा ही समझते थे। यही कारण है कि शिमला में जब उच्च न्यायालय में नथूराम ने अपना वक्तव्य दिया था तो वहा पर उपस्थित दर्शको के मनो को भी उन्होंने उद्विग्न कर दिया था। दर्शको को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे ये कोई उनके सहभागी ही हो। श्रोतागणो को भी नथूराम ने अपने वक्तव्य से सहभागी करा लिया था। यदि उस श्रोतवृन्द को न्यायदान का सुकृत्य सौंप दिया जाता तो मुक्तकण्ठ से वे लोग उनको निर्दोष घोषित कर देते। यह मेरी अपनी ही धारणा नही है। उस समय न्यायपीठ पर आसीन श्री खोसला ने इसी प्रकार के भावो का अपनी पुस्तक में एक स्थान पर उल्लेख किया है। मेरा कहने का अभिप्राय तो केवल इतना ही है कि प्रत्यक्ष परिस्थिति का चित्र नथूराम और आपटे की भावना को समझता और सराहता था।

ऐसा प्रतीत होता था कि अपनी भावना व्यक्त करने के लिये अधिकारीगण को नथूराम और आपटे के रूप में उपयुक्त श्रोता उपलब्ध हो गये है। यही कारण था कि सरकारी नियम का अपवाद वे सिद्ध हुए। पाठक इससे सहज ही अनुमान लगा सकते है कि जब उनके हाथ से ही नथूराम और आपटे को फासी दी गई तो उनको कितना दु ख हुआ होगा।

दो एक घटे के पश्चात् जेल के मुख्य अधिकारी श्री अर्जुनदास और उनके सहायक अधिकारी हमारी-अर्थात् करकरे, मदनलाल और मेरी-कोठरी मे आये। उनका उद्देश्य हमें सान्त्वना देना था। यह कार्य उनकी कर्तव्यतालिका में अकित नही था। किन्तु थे तो वे भी मानव प्राणी ही। फिर नथूराम और आपटे से उनके सम्बन्ध जितने घनिष्ठ थे उतने ही हमारे साथ भी थे।

श्री अर्जुनदास कुछ समय तक तो हमारे सम्मुख खड़े के खड़े ही रहे। सम्भव-

तया वे शब्द खोज रहे होगे। बोलने के लिये उनके अधरो में स्पन्दन तो हुआ किन्तु शब्द बाहर नही निकले। उनके गले की नसो की क्रिया से ऐसा लगता था कि उन्होने मुह पर अटके थूक को निगला है। उन्होने एक बार पुन प्रयत्न किया किन्तु सफलता नही मिली। तीसरी बार उनके मुख से जो स्वर निकला वह किसी प्रकार का कोई शब्द न हो कर केवल एक सिसकी ही थी।

कौन जाने कि क्या बात थी, किन्तु हम तीनो में से किसी के भी आँसू नही निकले थे। "नियति के नियमों में हम क्या परिवर्तन कर सकते है ?" केवल इतना ही मैंने उनसे कहा था। अर्जुनदास और निकट आये। उन्होने हमारी पीठ पर हाथ फेरा और बिना कुछ एक शब्द भी मुख से निकाले वे वापस चले गये। मैं समझता हूँ कि मेरे कथन से उनको ही सान्त्वना सी मिली थी। मुझे लगा कि उन्होने अपने सहकारी से कहा, 'हम आज व्यर्थ ही आये। हमें एक दो दिन बाद आना चाहिये था।' किन्तु इतना निश्चित है कि उनके आ जाने मात्र से ही हमको भी एक प्रकार से सान्त्वना सी प्राप्त हुई थी और उससे हमारा दु खभार कुछ हलका हुआ था।

हमारे लिये वह दिन उदासी का दिन था। फासी का दण्ड दिये जाने तक तो हमारे चित्त स्थिर थे। बहुत ही विचित्र वातावरण में बहुत प्रात काल हमारी नथूराम और आपटे से भेंट हुई थी। प्रात चाय कॉफी हमने साथ ही पी थी। थोडा बहुत हास्य विनोद भी हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि उस समय हमारे मनो पर किसी प्रकार का बोझ है ही नही। मानो वे लोग भूल गये हो कि उनको थोडे समय बाद ही फासी मिलने वाली है और उसी प्रकार उन्होने हमको भी यह तथ्य भूलने के लिये विवश किया था।

निसर्ग नियमानुसार हमारा दु ख शनै शनै कम होनेवाला था।

करकरे और मैं प्रात काल उठकर कुछ पठन-पाठन किया करते थे। गीता के अनेक अध्याय हमने कण्ठस्थ किये थे।

किसी भी प्रकार के विचार व्यक्त करने के लिये मनुष्य के पास बहुत बडा शब्द भण्डार होना चाहिये। इस अभिलाषा से हमने लघु अमर कोष भी कण्ठस्थ किया था। अनेक सूत्र और अनेक स्तोत्र हम पढा करते थे। उनके अर्थ समझने का हम प्रयत्न करते थे। करकरे को यदि अशिक्षित कहा जाय तो अयुक्त न होगा। मराठी अथवा गुजराती की ४-५ कक्षा तक भी उनकी शिक्षा नही हुई था। परन्तु शिक्षा और व्यवहार का सदा परस्पर सम्बन्ध होना ही चाहिये, यह युक्तियुक्त नही है। कम से कम करकरे तो इसके अपवाद थे ही।

करकरे की विवेचन पद्धति बुद्धियुक्त होती थी। कदाचित् वह आयु के कारण

हो। उस समय उनकी आयु ४२ वर्ष की थी। उन्हे व्यवहार-ज्ञान अच्छा था। उनकी उच्च शिक्षा नही हुई अथवा उन्हे अग्रेजी का ज्ञान नही है इसका उन्हे दु ख होता था। उनको पढने की इच्छा थी और हम दोनो के पास समय भी था। उन्होने कारागार में अग्रेजी शिक्षा ए० बी० सी० का आरम्भ किया था। दो वर्षो में ही वे टाइम्स अथवा फ्री प्रेस के अग्रलेख पढने लग गये। न केवल पढने अपितु समझने और समझाने भी लग गये थे।

हमारा नित्य क्रम चल रहा था और हमारा विचार उसको चालू रखने का ही था। हमारी सजा हमारे सामने थी, उसको पार करना था। मन ही मन यह विश्वास था कि एक न एक दिन हमारी मुक्ति होगी ही। किन्तु आगे चल कर वह विश्वास डगमगाने लग गया। किन्तु सजा के मध्य में तो हमें यह व्यथा नही थी।

नित्य की ही भाति हम दूसरे प्रात उठे, प्रातर्विधि और स्नान आदि किया। मन की खोज न लेते हुए भी मन को खिन्नता का अनुभव होता था। हम गीता पढने के लिये बैठे। खिन्नता में शब्द भी ठीक प्रकार से उच्चरित नही हो पाते थे।

मैं अपनी चित्तवृत्ति को केन्द्रित करने का यत्न कर रहा था। मैं श्लोक के बाद श्लोक पढता जा रहा था। दूसरे अध्याय के बीसवें श्लोक पर हम आये—

देहो नित्यमवध्योऽय देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्व शोचितुमर्हसि॥

यदि मेरी चित्तवृत्ति केन्द्रित हुई तो वह इस श्लोक के भावार्थ पर नही। अपितु नथूराम और आपटे को मृत्यु को घटना से। 'न त्व शोचितुमर्हसि,' यह कैसे सम्भव है? क्या स्थितप्रज्ञता इतनी सरल बात है? मेरी आखें भर आई। पठन रुक गया। लगभग आध पौन घण्टे तक मैं खुले मन से रोया था।

दोपहर को घर के लोग मिलने के लिए आनेवाले थे, फिर मेरा बांध टूटेगा, ऐसी शङ्का मुझे सदैव बनी रहती थी। भेंट हुई और काफी लम्बी हुई। मन में जमा सारी बातें मैं बोल गया था। मन उदास होने पर भी दु खावेग रुदन के रूप में प्रकट नही हुआ। हमारे घर के लोगो ने अधिकारियो से विनती की कि उनको नथूराम और आपटे की दहन भूमि दिखाई जाय और दहन की मिट्टी लेने दी जाय। किन्तु अधिकारी उस प्रार्थना को स्वीकार नही कर सके। इसके लिए उन्होने खेद व्यक्त किया।

जो बात उन अधिकारियो के अधिकार में नही है उसके लिए आग्रह करने का कोई अर्थ नही, ऐसा विचार घर के लोगो ने किया। जो अपने अधिकार में है

और जिसके लिए अधिकारी रुकावट नही डालेंगे, वह हमें करना चाहिये, इस प्रकार का उन्होने निश्चय किया।

नथूराम और नाना की वस्तुएँ उनके सम्बन्धियो को सौंपी गई। पुस्तक और कागज-पत्रो की जाँच पहले ही कर रखी थी। वह भी वापस किए गए।

घर की मण्डली वन्दी गृह के वाहर निकली। मेरी पत्नी सिन्धु, दन्नु दत्तात्रय और गोविन्द इन सभी ने वन्दीगृह को साष्टाग प्रणाम किया। सिन्धु ने अञ्जलि भर धूल अपने आचल में वाँध ली। भावनाओ की इस चरमसीमा पर तत्रस्थ सभी सिपाहियो एव अधिकारियो की आँखें भी भर आयी।

जहाँ ये लोग ठहरे हुए थे वहाँ सैकडो लोग एकत्रित हो गये थे। पजाव की उस समय की भावना में यह एक इतिहास है। वहाँ एकत्रित जनसमुदाय ने उस धूल को अपने मस्तक पर लगाया। नथूराम और नाना आपटे के सम्बन्धियो को विदाई देने के लिए अम्वाला स्टेशन पर सहस्रो की संख्या में नर-नारी एकत्रित हुए थे।

हमारे नैमित्तिक कार्यक्रम जारी थे। किन्तु अव हमें अम्वाला वन्दीगृह में कोई रस नही रह गया था। मेरा और करकरे का वन्दीगृह परिवर्तन की प्रार्थना करना सम्भव था अत हमने वम्वई प्रात में जो अव महाराष्ट्र वन गया है, भेजे जाने के लिए प्रार्थना की थी।

नथूराम से भेंट नही हो सकी, इसका माता–पिता जी को दु ख रहा। अव जीवन भी कितने दिन का है, कम से कम गोपाल से हा भेंट हो जाय इस दृष्टि से उस वृद्धावस्था में भी उन्होने अम्वाला तक की यात्रा करने का निश्चय किया। वे कहते थे कि यात्रा के कष्ट से स्वास्थ्य विगड जाय और उससे मृत्यु भी हो जाय तो कोई हानि नही, इस स्थिति तक उनका निश्चय पहुँच गया था। तीन-चार मान वाद छोटे भाई गोविन्द को साथ लेकर वे अम्वाला आये और मुझसे भेंट की।

अधिकारी वर्ग ने एक नीति अपना ली थी। उनका कहना था कि तुम लोग महाराष्ट्र के हो। आज नही कल तुम्हारा स्थानान्तरण महाराष्ट्र के किसी वंदीगृह के लिए हो जावेगा। वहाँ जाने पर तुम हमारे विषय में क्या धारण रखते हो, यह सदा स्मरणीय वात होगी। तुम लोग सभी नियमो का विधिवत पालन करते हो, अत तुमको किसी प्रकार का कष्ट होना हमारे लिए कलक की वात है। हमने तुम्हारे साथ भला व्यवहार किया था इसकी तुलना तुम वहाँ जाकर कर मको, ऐसा हम चाहते है। हमारी अपेक्षा इतनी ही है कि यहाँ रहते हुए हमने आप लोगो के साथ अच्छा व्यवहार नही किया ऐसी भावना आपके अथवा आपके रिश्तेदारो के मन मे हमारे सम्वन्ध में न आवे।

एक बार यो ही हमने अधिकारियो से पूछा कि हमारे गाधी वधकाड के अभियुक्त होने पर भी आपका हमारे प्रति बडा सौजन्यपूर्ण व्यवहार रहता है। क्या इससे आप लोगो पर किसी प्रकार का आक्षेप नही आयेगा ?

वे बोले, "अभी तक तो आया नही, यदि आया होता तो हम उसी क्षण अपना रुख बदल लेते। किन्तु हमें दूसरी प्रकार की ही सूचनाएँ है उनसे हम अपने को सुरक्षित अनुभव करते है।

"कैसी सूचना ?

"बदी यदि ठीक प्रकार से नियम का पालन करे तो नियमानुसार जो कुछ उनके साथ किया जा सकता है वह सब करना चाहिये। उनके साथ किसी भी प्रकार की द्वेष की भावना मत रखो। न केवल इतना बल्कि कुछ नियम ऐसे होते है जो लचीले अथवा द्वर्थक होते है। उनका उपयोग हम निर्भयता से करते है। इससे हम अपने को सुरक्षित समझते है।"

मैं सप्रमाण तो सिद्ध नही कर सकता किन्तु इस सबके मूल मे सरदार पटेल थे, ऐसा मेरा अनुमान है। वास्तव में यदि वे जीवित रहते तो आगे चलकर हमारी जो दुर्गति हुई वह न हुई होती। और हमें मुक्ति भी ५-६ वर्ष पूर्व ही मिल जाती।

अधिकारियो के सौजन्य के कारण माता-पिताजी से मेरी जो भेंट हुई वह बडी ही शाति से हुई। वे अपने सुख दु ख की बातें कर सके और मैं उन्हें सात्वना के कुछ शब्द कह सका। भेंट के बीच में ही कॉफी का समय हुआ तो मैंने उनको कॉफी बना कर दी। वे बडे आश्वस्त से हुए।

कुछ दिनो के उपरात मैंने गीता के ११वें और १८वें अध्याय का मराठी में समश्लोकी रूपातर कर माता पिताजी को भेंट स्वरूप भेजा था।

मेरी पत्नी अपने पत्रो में लिखा करती थी कि 'मैं पञ्जाब की जेल से स्थानान्तरित होकर न आऊँ। कम से कम स्वय से मैं इस प्रकार का कोई प्रयत्न न करूँ। स्व० श्रीराम भाऊ मण्डलीक एकबार मिलने के लिए आये थे। तब उन्होंने भी उसी प्रकार की सम्मति दी थी।

दिल्ली सरकार ने हमें 'ब' श्रेणी दी थी। परन्तु हमारी कल्पना थी कि महाराष्ट्र मे स्थानान्तरित होने पर इस स्थिति में कोई अन्तर नही आयेगा। ऐसा भी हमे लगता था कि घर के लोगो को मिलने आने के लिए महाराष्ट्र का कोई भी बदीगृह सुविधाजनक होगा। परतु इससे भी अन्य एक प्रलोभन था, जिससे मैं प्रभावित हुआ था। अर्थात २ वर्षो के बाद मिलनेवाला अवकाश अर्थात् फर्लो के नाम से कही जाने वाली चौदह दिन की घर जाने की पूरी छूट हमें मिला

जाएगी, ऐसी आशा प्रतीत होती थी। इसलिये हमने प्रार्थना पत्र दिये थे और उनको वापस लेने के लिये हमने किसी प्रकार की कार्यवाही नही की थी।

अम्बाला जेल में रहते हुए हमें ट्रिब्यून, हिन्दुस्तान टाइम्स और स्टेट्समैन समाचार पत्र मिला करते थे। प्रताप, मिलाप और एक दो हिन्दी भाषा के प्रादेशिक पत्र भी मिला करते थे। वन्दियो की सख्या के अनुपात से ही समाचार पत्र दिये जाते थे किन्तु परस्पर अदल बदल कर हम उन समाचार पत्रो को देख लिया करते थे।

हम चारो बन्धुओ मे यदि पढने का चस्का नही था तो वह मुझी को नही था। मैं बहुत धीरे से पढता था। अग्रेजी पढने में मैं बहुत अटकता था। हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद मैं कॉलेज में पढने के लिये नही गया था। अब पढने का अवसर प्राप्त हुआ है, इसलिये वाचनक्षमता बढानी चाहिये ऐसा मैंने सोचा। किन्तु आलस्य की आदत को सहसा बदलना कठिन था। धीरे धीरे मैंने पढने की आदत डाली।

एक दिन सहसा हमारे स्थानान्तरण के प्रार्थना पत्र पर स्वीकृति मिल गई। मदनलाल पजाब का ही था, इसलिये उसके स्थानान्तरण का प्रश्न नही था। वह वही रहनेवाला था।

अम्वाला वन्दीगृह में हमने जो काम किया वह मन से किया था। उसमें हमारा स्वार्थ था इसमें किसी प्रकार का सन्देह नही। क्योकि उसमें हमारा समय अच्छा बीत जाया करता था। और जो काम किया जाय वह ठीक प्रकार से किया जाय ऐसी चाह होने के कारण किया हुआ कार्य अच्छा ही होता था।

हम कुछ दिनो मे ही अपने प्रान्त में जानेवाले है, इस समाचार से मन मे प्रसन्नता हुई थी। अनपेक्षित रूप से एक दिन अधिकारियो ने हमारी प्रसन्नता भर डाली। सुबह का दौरा जारी था। अधिकारी हमारे पास आये। हमारी रिपोर्ट बुक्स हमारे पास थी। प्रमुख अधिकारी ने उन्हें हाथ में लिया, उस विभाग के वन्दीपाल का निर्देश कर वे बोले, "शर्मा जी! तुम कोई ध्यान नही देते। इतना अच्छा काम इन्होने किया, क्या इसके लिये इन्हें विशेष छूट नही देनी चाहिये? आप मेरे पास इनकी किताबें रख दीजिये।"

अधीक्षको का अधिकार है कि वे वर्ष भर में तीस दिन की छूट दे सकते है। ४-५-६ दिन की विशेष छूट हमको दी गई थी। अधीक्षक ने हमारी रिपोर्ट बुक्स में बीस दिन की छूट अकित की। इसमें हमें सन्तोष हुआ। हमने छूट की अपेक्षा मे काम किया था अथवा नही, किन्तु अधिकारियो ने हमारे कार्य का मूल्यांकन किया है इससे हमें सन्तोष था। हमने मन मे निश्चय किया कि और

उत्तम काम करेंगे, जिससे कि हम विशेष छूट के पात्र सिद्ध हो सकें। और फिर उसी प्रकार का कार्य करने का अभ्यास हो गया।

तब तक हमको दो बार बडी छूट दी गई थी। २६-१-१९५० को भारत गणतन्त्र घोषित किया गया था। इस उपलक्ष्य में हमें ४० मास की छूट दी गई थी, मार्च १९५० में पजाव के कारावास विभाग के प्रमुख अम्बाला वन्दीगृह में आये। उनको वर्ष में ६० दिनो की छूट देने का अधिकार था। वन्दी का व्यवहार अच्छा हुआ तो मास में ५ दिन की छूट देने का उनका अधिकार था। और तदनुसार ही उन्होने वहा अधिकारियो को आज्ञा दी थी। इससे हमको ५ दिन की छूट मिल गई। इस आधार पर हमको ये सजा दोनो ओर से जलनेवाली मोमवत्ती सी प्रतीत हुई। एक ओर तो एक एक दिन करके हम उसको जला रहे थे और दूसरी ओर कभी नियम के अनुसार और कभी वैकल्पिक अधिकार से तो कभी राज्य के किसी विशेष आनन्दोत्सव के कारण हमें छूट दे कर अधिकारी उसको जला रहे थे। बीच में ही कही सजा रूपी यह मोमवत्ती जल जावेगी और हम मुक्त हो जावेंगे इस कल्पना से ही हम मुक्ति का सा आनन्द ले लेते थे।

हमारा स्थानान्तर होनेवाला था। तीनो का विच्छोह होगा। इस दृष्टि से मदनलाल ने एक छोटे से समारोह का आयोजन किया था। अधिकारियो ने भी हमें विदाई दी थी। उनके द्वारा हमारे अचल में डाली गई छूट भविष्य में हमारे काम में आनेवाली वस्तु थी, उसका हमारे लिये वहुत मूल्य था।

हमारे लिए अमृतसर से पिंजडे के आकार प्रकार का एक स्वतन्त्र रेल डिब्बा मँगाया गया। आज कल उस प्रकार के डिब्बे देखने मे नही आते। ब्रिटिश काल में उनको प्रिजनर्स बोगी कहते थे। दि० १६-५-१९५० को हमारी प्रस्थान तिथि निश्चित हुई। उस दिन दोपहर को हम निकले थे। उस डिब्बे को पैसेंजर गाडी से जोडा गया था। इस प्रकार दि० १९-५-१९५० को शाम को हम नासिक वन्दीगृह में पहुँचे थे।

* * *

तेरह

अंधकार ! अंधकार

शुक्रवार दि० २०-१०-५० को दशहरा था। नासिक बन्दीगृह में वह हमारा पहला ही दशहरा था। हमको जिस विभाग में रखा गया था वहाँ से (खानेदार) मक्षवली में छठे विभाग (वराकी) में उस दिन जाने के लिये कहा गया।

बन्दियो के पास वस्तुयें तो सीमित ही होती है, अत उन्हे समेट बटोरकर दूसरे स्थान पर ले जाने में कोई अधिक समय नही लगता। मैंने और करकरे ने सामान बटोर और निर्दिष्ट स्थान पर रहने के लिये गये। हमारी आज तक की मर्यादा सीमित थी।

नासिक बन्दीगृह १९३० के लगभग बनाया गया था। आज भी अन्य वन्दीगृहो की अपेक्षा वह बन्दीगृह अच्छा प्रतीत होता है। उसकी रचना अच्छी की गई है। सुरक्षा और सुन्दरता दोनो की ही ओर विशेष ध्यान देकर उसका निर्माण किया गया है।

बन्दीगृह के प्रमुख द्वार के दोनो ओर कार्यालय है। अन्दर के द्वार से बन्दीगृह में जाने पर बायी ओर रुग्णालय का आगन और दायी ओर विरोध विभाग अर्थात् Quaran'ina वार्ड और धान्यागार है। प्रमुख रास्ते पर और सामान्यतया बन्दीगृह के मध्य भाग में एक गोलाकार तीन मजिली वास्तु है। उसको स्तूप कहते हैं। बाईं ओर अर्द्ध गोलाकार मैदान पर एकातियो के दो विभाग है। प्रत्येक विभाग में ३३ और २२ कमरो की दो पक्तिया है। दाई ओर के ऐसे ही अर्द्ध गोलाकार के मैदान पर उसी प्रकार के ६ कक्ष है। उसमे हाल और बैरक है। उसमें से चार विभागो को अब दो मजिला किया गया है।

स्तूप पार करके आगे बढने पर पीछे की दीवार के समानान्तर उद्योग-शालायें है।

नये वन्दी के आने पर उन्हें प्रथम दस दिन निरोध विभाग मे रखने की प्रथा है। यदि कोई वन्दी किसी प्रकार का कोई सासर्गिक रोग लेकर आया होगा तो वह दस दिनो मे भली प्रकार विदित हो जावेगा और रोग अन्दर नही फैल पावेगा। निरोध विभाग में दस कमरो की तीन पक्तिया है।

प्रत्येक विभाग में पानी रखने के लिये सीमेंट के हौज बने है। कपडे धोने के लिये ढलुए पत्थर लगे है। शौचस्थल शुद्धावन के है (फ्लश लगे हुए है)। पानी का संचय अपर्याप्त होने के कारण शुद्धावन (फ्लश का) उपयोग नही हो पाता।

वन्दीगृह के अपने कई दुधारू पशु है। कई जोडिया वैलो की है। वन्दीगृह के वाहर वाग है। उसमे तरकारिया वोई जाती है। कभी ज्वार भी वोई जाती है। अन्दर की खुली जगहो पर भी जानवरो के लिये घास रखा जाता है।

डेढ सहस्र लोगो के रह सकने की व्यवस्था नासिक कारागृह मे है। दो मजिली वन जाने से और भी अधिक वन्दी रह सकते है। कुछ वर्पो में वन्दीगृह में सामान्यत २००० से २२०० तक लोग रहने लगेंगे।

सीधा पद्धति का (रेशन) परिमाण वन्दीगृह के भोजन पर भी हुआ करता था कई वर्ष लाल ज्वार की रोटिया सदैव होती थी। उसी ज्वार के आटे की काजी अर्थात् तनिक नमक डाल कर पकाया हुआ पतला पदार्थ, सुवह दिया जाता था। रोटी के साथ एक वार दाल और एक वार तरकारी हुआ करती थी। अन्न-पूर्ति के लिये दलहन का साग एक वार दिया जाता था।

सप्ताह में चौदह भोजन। उनमें से एक भोजन चावल था। और एक चपाती का हुआ करता था। इतवार को दो औंस गुड और तेल दिया जाता था।

सुवह का भोजन दस वजे और और शाम का भोजन चार वजे होता था। कमरे में या वैरक में भोजन ले जाना वर्जित था।

वार वार आनेवाले वन्दियो के लिये नासिक वन्दीगृह चुने जाने से वहा उसी वर्ग के लोग हुआ करते थे। वम्बई को लक्ष्मी का निवास माना जाता है, इसलिये वार वार चोरी करनेवालो का भी वह मैका है। वहा से दण्डितो की विदाई वे नासिक के लिये करते थे।

दि० १९-५-५० को हमको नासिक वन्दीगृह में लाया गया था। निरोध विभाग केवल हमारे लिए नियुक्त किया गया था। अधीक्षक, प्रमुख वन्दीपाल और उस विभाग के वन्दीपाल इनके अतिरिक्त और कोई हमारे पास न जावे ऐसा नियम था। हमारे साथ उस विभाग में एक मेहतर का काम करनेवाला वन्दी

रखा गया। विभाग के द्वार पर बारी बारी से सिपाही तैनात रहते थे। प्रातः काल डाक्टर आया करते थे। हमारी डाक लाने ले जाने का काम उस विभाग के वन्दीपाल किया करते थे। सप्ताह में दो बार अधीक्षक चक्कर लगाया करते थे।

अम्बाला वन्दीगृह में हमने कई मास बिताये थे। उसके बाद हमारे पैरो की वेडिया उतारी गई थी। अम्बाला से नासिक की यात्रा में सुरक्षा की दृष्टि से हमारे पैरों में वेडियाँ डाली गई थी। नासिक पहुँचने पर दूसरे दिन अर्थात् २०-५-५० को वह निकाली गई थी।

हममें "क्रिमिनल्म" का अस्तित्व नही है, यह बात थोडे ही दिनो में निरीक्षण करने पर नासिक के अधिकारियो को भी विदित हो गई थी।

हमे यदि वहाँ अनुभव होता तो केवल इस बात का कि वहाँ के लोगो में हमारे सम्बन्ध मे अनेक भ्रान्त धारणायें अथवा पूर्वाग्रह थे। जैसे जैसे उनकी हमसे प्रत्यक्ष बातचीत होती गई, तनिक परिचय बढा वैसे वैसे एक एक करके पूर्वग्रहो का लोप होता गया। तब अनजाने में की गई कल्पना और वास्तविकता में जो अन्तर है वह उनकी समक्ष में आने लगता था।

निरोध विभाग में ही हमको काम दिया जाता था। प्रथम हमको हाथ से कपडे सिलने का काम दिया गया। बाद में निवाड बुनने का काम हमने किया। वेतन पद्धति शुरु हो गई थी। काम के परिमाण में वेतन मिलता था। इस वेतन का परिमाण बाहर काम करने पर मिलने वाले वेतन का पाचवा हिस्सा होता था। परन्तु यह सूची जब तय हुई उस समय की स्थिति आगे चलकर सदैव बदलती रही मात्र वन्दीगृह मे परिमाण वही स्थिर रहा। हमको दिन में कभी दो आना और कभी चार आना वेतन मिलता था।

जो भी कार्य दिया जावेगा वह सब करने और उसमें अपनी कुशलता दिखाने के प्रयत्न हमारे सदैव रहते थे। अधिकारी गण भी हमको वैसा अवसर देते रहते थे। उन दिनो श्री लटूस नामक एक विदेशी सज्जन उस वन्दीगृह के अधीक्षक थे। उन्होंने एक दिन मुझसे पूछा कि क्या मैं लकडी का फ्रेटवर्क कर सकूगा। मैंने उनसे कह दिया कि मैं प्रयत्न करके देखूगा। उन्होने उस कार्य की सामग्री दिलवा दी। आठ दिन बाद उस काम में मेरी प्रगति देखकर उन्होंने मुझे उत्साहित किया। यह सब निरोध विभाग मे ही हो रहा था।

हमको वहाँ आये पाँच मास हो गये थे। कुछ समय बाद हमारे ऊपर के बन्धन कुछ-कुछ शिथिल होने लगे थे। बीच-बीच मे कोई वन्दी भी हमको कपडे सीना अथवा निवाड बुनना सिखाने के लिये आया करते थे।

रक्षाबन्धन का दिन वास्तव में वन्दी के लिये मानसिक यातना का दिन हुआ

करता हूँ। क्या अपनी अनुपस्थिति में घर के लोगो को यह त्योहार अच्छा लगेगा ? यदि हम लोगों को कुछ मिठाई खानी भी पड़ जाती थी तो उस समय घर के लोगो की याद आये विना नही रहती थी। क्या आगे का त्योहार हम घर के लोगो में वैठकर मना सकेंगे ? एक, दो नही अपितु अनेक विचारो से मन व्यग्र हो जाता था। परन्तु यह सव प्रारम्भ में ही होता है। क्योंकि सजा की मर्यादा वन्दी को स्मरण रहती है, अत , वह उन भावनाओ को अपने विवेक से दवाकर रखने का प्रयत्न करते-करते अभ्यासी वन जाता है। भावनावश सभी वन्दी त्योहार के दिन इस प्रकार की व्यग्रता दिखाते है, कुछ वन्दियो को हमने रोते भी देखा है। परन्तु ऐसे वन्दियो को भी ऐसी परिस्थिति में आनन्द प्राप्त करने की आदत वन जाया करती है।

वन्दियो को मिलनेवाला गुड, घी, तेल, वेसन चावल आदि पदार्थों का सग्रह करके त्योहार के दिन उनसे पक्वान्न वनाना, प्राय ऐसी प्रथा सभी वन्दीगृहो मे है। प्रत्यही का अन्न वन्दी के लिये पर्याप्त होता है। परन्तु नित्यप्रति उसी प्रकार का भोजन खाने से उसके प्रति मनमें अरुचि उत्पन्न हो जाती है। फिर दो सहस्र वन्दियो का भोजन दिन-रात वनाना पडता है, इसलिये उस पकाये हुए अन्न में किसी प्रकार की रुचि नही रह जाती। सुवह दस वजे वटनेवाली रोटियाँ जव प्रात ६ वजे वनकर तैयार होगी तभी अन्य चीजो को पकाने के लिए अवसर मिल सकता है। इसलिए कभी कच्ची, कभी जली तथा कभी कुछ अन्य प्रकार की हुआ ही करती है। इसलिये एक दिन के परिवर्तन से कुछ तो अच्छा लगता ही है। उसमें भी कुछ आनन्द आता ही है।

वन्दीगृह में विक्री केन्द्र खोलने की योजना कार्यान्वित हुई थी। उस विक्री केन्द्र में या कैंटीन में खाद्यपदार्थ रखे जाते थे। मिलने वाले वेतन का दो तिहाई भाग वन्दी उसके लिय व्यय कर सकता है। त्योहार के दिन जलेवी, वूदी, चिवडा जैसे पदार्थ भी उस विक्री केन्द्र मे प्राप्त होते थे। परन्तु विक्री केन्द्र का प्रमुख उद्देश्य वन्दी को वीडी, सिगरेट आदि मिले यही था। त्योहार के दिन मात्र वन्दी खाद्यपदार्थ पूरक अन्न के रूप मे लेकर त्योहार मनाया करते थे।

वन्दी को एक जगह से दूसरी जगह वदलने के लिये कोई कारण ही देना पडता हो ऐसी वात नही है। आन्तरिक प्रवन्ध की दृष्टि से इस प्रकार के परिवर्तन एकाएक करने पड जाया करते हैं। हमारा यह स्थनान्तर भी इसी प्रकार के प्रवन्ध के अन्तर्गत था। हमारे न पूछने पर भी हमारे कानो में कारण की भनक पडी थी।

यह दशहरा हम और अलग ढग से मनायें यह वात कई वन्दियो के मन में

आई थी। उन्होने योजना वनाई, सामग्री एकत्रित की। सम्वन्वित उद्योगशालाओ में सामग्री वनवाकर लाये। निरोध विभाग और वहार दीवार के वीच घास वढवाया था। उसके परे धोवी घाट था। काम के निमित्त उस भाग में भी वन्दियो का आना-जाना होता था। ऊपर के उत्साही वन्दियो ने उस घास में एक उपयुक्त स्थान देखा और सीधे वहा शराव की एक हाथ भट्ठी लगाई।

उन्होंने दशहरा मनाया भी होता। परन्तु उनका दुर्भाग्य आडे आया। एक वन्दी को उसके श्रम के लिये एक वोतल मिलनी चाहिए थी। उसको चौथाई दे कर विदा कर दिया था। मामला तूल पकड गया। पोल न खुल जाय इसके लिए उसको अधिक दिया।

दशहरा दूसरे दिन था। किन्तु जिस दिन हाथ में वस्तु हो उसी दिन त्योहार इस विचार से प्रेरित होकर कुछ वन्दियों ने उसी दिन उस शराब को हजम कर लिया। तव उसको स्मरण हुआ कि उस पर अन्याय हुआ है। झगडा करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नही हो सकता, वैध मार्ग से ही न्याय प्राप्त करना चाहिये ऐसा विचार करके वह सीधे जमादार के पास गया और उसने जमादार को यह वात समझा दी कि वास्तव में उसका एक वोतल का अधिकार किस प्रकार वनता है।

जमादार ने माग की कि सारी उसके अधीन कर दी जाय। परन्तु उसने कहा कि वह तो समाप्त हो गई है। उसके सास से भी इस वात की पुष्टि होती थी। जमादार अपने अधिकारियो को वहा लाये। शास्त्रशुद्ध पद्धति की उस हाथ-भट्टी के अन्तर्गत व्यवस्था में पचनामा हुआ। कब्जे में आये वन्दियों को वन्दकर दिया गया। अन्यो को यह समझने में विलम्ब नही हुआ। उन्होने अपने रखे प्रमाण को तुरन्त उदरस्थ करके नष्ट कर दिया।

उन आठ दस रसिक मण्डली को वन्द रखने के लिये निरोध-विभाग को हमसे खाली करवाया गया था। इसलिये उस दिन हमारी विदाई वराकों के छठे विभाग के लिये हुई थी।

उस दो सहस्र वन्दीजनो की वस्ती में शराव की भट्टी मिलना, वास्तव में सनसनी का विषय था।

शराववन्दी निर्बन्ध की कार्यवाही तीव्रता से होने लगी। मद्य का व्यापार, उपयोग और व्यवहार छिप कर करनेवालो पर आतक जमाने के लिये अनेको पर अभियोग किये जाते थे। उसके लिये पुलिस पार्टी वढाई गई थी। अनेक सशितो को सजा दी जाती थी और उनको चार दीवारी के भीतर किया जा रहा था। इस आतक से लोगो का नैतिक मूल्य वढे, उन्हें शराव के व्यवहार से भय लगे ऐसी उस एक्ट की अथवा एक्ट वनानेवालो की अपेक्षा थी।

मोरारजी मन्त्री थे। अब इन दण्डित सशयितो का क्या होगा ? और सबसे अधिक आचार्य अत्रे का अगर इस गृहमन्त्रालय के गर्भगृह को हाथभट्टी की केवल गन्ध आई तो मोरार जी का क्या होगा ? इस कल्पना से ही पेट में खलबली मच गई थी। यद्यपि उस प्रकरण से हमारा किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नही था।

बन्दीगृह की सनसनाहट की घटनाओ का प्राय. जिस प्रकार निपटारा होता हैं उसी प्रकार उस हाथभट्टी काण्ड का हुआ। बन्दियो को सजा के अन्तर्गत सजा हुई। और सनसनाहट का मद कम हुआ।

बराकी के छटे विभाग में अन्य भी कई बन्दी रखे गये थे। वह मैदान बडा था। हम उसमें फिर सकते थे। उन बन्दियो के साथ बोल सकते थे।

कई दिनो बाद हमको शिक्षा वर्ग चलाने का काम दिया गया। वाचनालय की व्यवस्था देखने का काम भी हमको दिया गया। सब काम हम नई नई कल्पनाओ का उपयोग करके ही किया करते थे। अधिकारियो ने भी समय समय पर हमको उत्साहित किया। हमारा समय काम में अच्छी तरह कटता था। समारोह के समय पर कुछ सास्कृतिक कार्यक्रमो की आयोजना करके हम उस समारोह को सम्पन्न किया करते थे।

शैक्षणिक वर्ग के लिये पैसे या छूट अर्थात् रेमिशन मिलता था। हम छूट लेते रहे।

नासिक बन्दीगृह में आये हमें दो वर्ष हो गये थे। दि० १०-५-५२ को हमको "ब" श्रेणी से निकाल कर "सी" श्रेणी में रख दिया गया। हमको "ब" श्रेणी दिल्ली सरकार से मिली थी। वर्गीकरण के झगडे के लिये भगतसिह और उनके सहयोगियो के कारण भिडन्त हुई थी। जतीन्द्रनाथ ने आमरण अनशन किया था। उसमें उसका अन्त ही हो गया था। उस समय के शासन ने राजनैतिक आन्दोलन के बन्दियो के वर्गीकरण का विचार किया। राजबन्दियो को आगे चल कर जो सुविधाये मिलती गई उसका प्रारम्भ एक बलिदान से हुआ था। ऐसा हमे इतिहास के क्रम से विदित होता हैं।

जिस समय हमको श्रेणी दी गई थी उस समय इस अभियोग का स्वरूप राजनीतिक माना गया था और हमको उस के प्रमुख घटक माना गया था। चार वर्षो के बाद वे घटक तो बदल नही गये थे बदल गई थी तो केवल बम्बई राज्य के प्रमुखो की दृष्टि।

हमको वर्ग दिये जाने की बात को हमारे अभिपत्र पर (चारट पर) अकित किया गया था। उसमें यह भी लिखा गया था कि किसके अधिकार से और कौन

से पत्र के आधार पर हमको यह श्रेणी दी जा रही है। बम्बई राज्य हमारे इस वर्गीकरण में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करे इसका कोई कारण दिखाई नही देता था। हमारा सारा ध्यान हमको दिये गये कार्य पर केन्द्रित रहता था। अधिकारी गण द्वारा हम पर रखे गये विश्वास का प्रतिदान हम उसी प्रकार दे रहे थे।

मदनलाल पंजाब का होने के कारण उसको अम्बाला, फिरोजपुर, जालंधर आदि बन्दीगृहो में रखा गया। उसको भी हमारे साथ ही "ब" श्रेणी मिली थी। बाद में हमको विदित हुआ कि उसकी "ब" श्रेणी हटाने की चेष्टा भी बम्बई सरकार ने की थी, किन्तु इसमें उसको सफलता नही मिली। संविधान ने सभी को समान न्याय का अधिकार दिया है। बम्बई राज्य ने इसका अर्थ शायद सभी को समान अन्याय होना चाहिये ऐसा किया और मदनलाल का वर्ग तोड़ने के लिये "अव्यापारेषु व्यापार" चरितार्थ किया।

पंजाब राज्य की दृष्टि बम्बई राज्य की भांति दूषित, कलुषित अथवा प्रति-शोधात्मक नही हुई थी। उन्होंने मदनलाल की श्रेणी को नही बदला। कम से कम अपने चंगुल में फंसे बन्दियो के साथ हम छल करें इस विचार से बम्बई राज्य ने हम पर यह अन्याय किया था।

इसके प्रतिकार के लिये हमने केन्द्र शासन को पुनरावेदन प्रस्तुत किया था। परन्तु बम्बई राज्य का किया हुआ और हम पर लादा गया निर्णय बदला नही गया। ऐसे समय में सरदार पटेल की स्मृति आना अपरिहार्य था। तब तक उनका देहान्त हो चुका था। बम्बई राज्य के प्रतिशोध से जलने-वाले व्यक्तियों को मनमानी करने का अवसर प्राप्त हो गया था। गांधी जी की सुरक्षा के सम्बंध में तो दुर्लक्ष्य किया, ऐसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष आरोपो का परिमार्जन इस प्रकार होगा ऐसी भावना भी इस प्रतिशोधात्मक कृति के पीछे शासकीय अधिकारियों की हो सकती है।

जब हमको नासिक लाया गया तो प्रथम ५-६ दिनो में मुझे अपनी पत्नी की ओर से एक दो पत्र प्राप्त हुए। उनमें से एक तो अम्बाला से नासिक को पुन. प्रेषित किया हुआ ही था। पंजाब छोड कर मत आओ, यहा आपके साथ अच्छा व्यवहार नही होगा, ऊपर के अधिकारीगण छोटे मन के है यही उस पत्र का साराश था। नासिक के पते पर भेजे पत्र में भी पत्नी ने इसी बात का संकेत किया था कि यहा के शासकगण हमारे साथ छल करेंगे।

पत्र देते हुए बन्दीपाल ने मुझसे पूछा, 'तुमसे प्रतिशोधात्मक व्यवहार होगा, इस प्रकार की आशंका तुम्हारे घर के लोगों को क्यों है? पंजाब में आपलोगो को क्या अधिक मिलता था और यहा क्या कम मिलेगा?'

इसके उत्तर में मैंने इतना ही कहा, "यहा आये तो मुझे थोडे ही दिन हुए है। मेरी पत्नी का भय झूठा सिद्ध हुआ तो अच्छा ही है।"

हमारी श्रेणी छीनना प्रतिशोध का यह प्रथम प्रहार हम पर किया गया था। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि अन्याय का प्रतिकार होना सम्भव नही तो वह उस अन्याय को निगल कर विद्यमान परिस्थिति में स्वय को सुव्यवस्थित करने की चेष्टा करता था। 'सी' श्रेणी मिलने पर हम उसके अनुसार अपने को व्यवस्थित करने (सघाने) लगे।

बम्बई राज्य में समान श्रेणी के बन्दियो को उपलब्ध होनेवाली सुविधायें हमको भी मिलने लगेंगी, ऐसी हम आशा करते थे। लम्बी सजा के बन्दी के दो वर्ष की सजा भुगतने पर उसको दो सप्ताह के लिये घर जाने की छुट्टी दी जाती है। उस छुट्टी को प्रावकाश अर्थात फर्लो कहा जाता है। यह सुविधा जिनको प्राप्त है, उस वर्ग के बन्दियो में ही हमारी गणना थी। उसके अनुसार मैंने भी प्रावकाश के लिये आवेदन प्रस्तुत किया था।

उसके उत्तर में कहा गया, "आपके प्रावकाश पर घर आने पर शान्ति को खतरा है अत: आपको प्रावकाश नही दिया जा सकता।

शान्ति को खतरा, यह बात जितनी ही सन्दिग्ध थी उतनी ही अतिव्याप्त भी। तदपि सम्बन्धित अधिकारियो का ऐसा ही अभिमत था। उनका सब्जेक्टिव सैटिस्फेक्शन ही (आत्माधिष्ठित निर्णय ही) प्रमाण माना जाता है और उस पर निराकरण के लिये अवसर नही होता।

नियमित अवधि आ जाने पर मैंने पुन आवेदन किया। अप्रैल १९५४ में उत्तर आया—"गाधी वध अभियोग के वन्दी होने के कारण आप का प्रावकाश आवेदन स्वीकार नही किया जा सकता।" स्थानीय परिस्थिति के सम्बन्ध में सम्बन्धित अधिकारियो को जैसा लगता है और जिसको वे कारण के रूप में प्रस्तुत करते है, उससे यह सर्वथा भिन्न और परे था। 'गाधी वध" अभियोग के दण्डित "इस प्रकार का एक नया वर्ग शासनाधिकारियो ने निर्माण कर लिया था। वह किसी वैध आधार पर नही था और न ही विधान सभा से इस प्रकार की कोई स्वीकृति प्राप्त थी, परन्तु अन्याय करने का अधिकार हमको मिला है उसका उपयोग हम करेंगें इस भावना के आधार पर हमारे साथ वह व्यवहार किया जा रहा था। ज्यो-ज्यो दिन बीतते जायेंगे त्यों-त्यो शासन की दृष्टि न्याय विमुख होनी जावेगी इसकी आशका पहले से ही थी।

वाचनालय, शिक्षा वर्ग, सास्कृतिक कार्यक्रम ये एक प्रकार से शिष्ट कार्य थे। इस सिलसिले में वन्दियो से सदैव सम्बन्ध आता रहता था। समाज के विभिन्न

स्तरो से आये हुए वन्दियो के स्वभाव विशेष परखने का अवसर प्राप्त हुआ था। क्या अपराध प्रवृत्ति सभी में समानरूपेण विद्यमान होती है इसका अनुभव भी हुआ। अपराध क्यो होते है अथवा किये जाते हैं इस विषय का भी कुछ कुछ ज्ञान हुआ।

स्वय को यश मिले यह मनुष्य की सहज इच्छा होती है। किन्तु यह भी वह जानता है कि यश गुणो के कारण ही मिलता है। वन्दी के विशेष गुणो को सराहा गया, उसको प्रोत्साहित किया गया तो वन्दी भी अनेक सराहनीय कार्य कर सकते है। एक चित्रकार किसी की हत्या के अपराध में दण्ड भुगत रहा था। वन्दीगृह मे उसके उस गुण को अवसर दिया गया। उसने उत्तम गलीचो का निर्माण किया। और उनमें से एक गलीचे को लन्दन में एक प्रदर्शनी में रखा गया था।

हस्तलिखित पत्रिका प्रकाशित करना यद्यपि पाठशाला के विद्यार्थियों का कार्य समझा जा सकता है। किन्तु वन्दियो की तो श्रेणी ही विभिन्न होती है। नासिक के वन्दियों ने इस प्रकार का एक हस्तलिखित पत्र निकालने का उपक्रम किया। किसी का सुन्दर सुलेख, किसी की चित्रकला, किसी की लेखन कला, किसी की कविता रचना इन गुणो को किसी एक स्थान पर अवसर प्राप्त हो इस उद्देश्य की इस हस्तलिखित पत्रिका की योजना की गई थी। इस विषय में अधिकारियो का दृष्टिकोण अनुकूल था। कई अक निकाले गये। उसकी प्रशसा ऊपर तक के अधिकारियो में हुई थी।

मेरे सान्निध्य में एक चित्रकार वन्दी था। उसकी सहायता से चित्रकला सीखने का विचार मेरे मन में आया। उसके लिये सामग्री मगवाई गई। मैंने रेखायें खींचना आरम्भ किया तो मैं सोचने लगा कि मेरी इस दिशा में बहुत प्रगति हो रही है। एक हस्तलिखित पत्रिका में मैंने महर्षि कर्वे का चित्र बना कर दिया। नाम नही लिखा था। क्योंकि उन दिनो समाचार पत्रो मे महर्षि कर्वे के अनेक चित्र देखने में आया करते थे।

मेरी प्रशसा हो इस दृष्टि से मैंने उस चित्र को अपने एक जानकार को दिखाया। उसने उस चित्र को क्षण भर तक देखा। मैं आतुर था कि वह कहे 'चित्र बहुत ही सुन्दर है, पहला ही प्रयत्न होने पर भी किसी सुप्रतिष्ठित कलाकार की कला ही इसमें उतर आई है, तुम अच्छे चित्रकार हो।' और इस प्रकार की प्रशसा मैं सुनू।

उस जानकार व्यक्ति ने मुंह खोला और बोला 'मेरा ख्याल है कि टैगोर की दाढी को थोडा लम्बा दिखाना चाहिये।" मैंने उसकी हा में हा मिलाया और

शीघ्रता से चित्र उसके हाथ से ले लिया। और फिर उसके बाद चित्रकला के चक्कर में नही पडा।

वन्दियो के गुणो की सक्रिय प्रशसा करने के साधन अधिकारियो के हाथ में होते हैं। शैक्षणिक या सास्कृतिक क्षेत्र के इस हस्तलिखित पत्र के लिये वन्दियो को दो वार पाच दिन की छूट दी गई थी। केवल मुझे वह छूट नही मिली थी। एक नही दो वार मेरी रिपोर्ट बुक में छूट देने के सम्बन्ध में अंकन हुआ था। किन्तु वाद में उसको रद्द कर दिया गया था। करकरे का नाम उस पत्रिका से सम्बन्धित नही था। प्रश्न मेरे तक ही था। अधिकारियो ने झूठे भय के कारण मुझ पर यह अन्याय किया था। इस का मेरे मन पर प्रभाव पडा। मेरे श्रम का उचित मूल्याकन नही हुआ इस प्रकार की भावना जव श्रमिक के मन पर उठती हैं तो फिर वह उतनी तत्परता से श्रम नही करता। इस बात का ध्यान अधिकारीवर्ग ने नही रखा। इस प्रकार के अन्याय से मन में उदासीनता आ जाया करती हैं। परन्तु फिर, क्या वात है। यह तो छोटी सी ही वात हैं इस प्रकार मन में विवेक धारण कर आगे के लिये नये उत्साह से कार्य में मन को प्रवृत्त कर लिया जाता था।

शैक्षणिक सवाद या वोधप्रद नाटक में करकरे अद्वितीय व्यक्ति था। प्रसग उपस्थित होने पर मैं कुछ कुछ पद्यरचना कर लिया करता था। शैक्षिक वर्ग में कई वार कुछ दण्डित उत्तम गायक मिल जाया करते थे। उनका उपयोग कर करकरे उनसे उस पद्य को गवा लेते थे। इस प्रकार दो दो घटे तक चलने वाले कार्यक्रम किये जाते थे। हमारे द्वारा प्रचलित शिक्षा वर्ग भी आदर्श होते थे। इन वर्गो को अथवा हमारे द्वारा आयोजित अन्य कार्यक्रमो को अधिकारीगण वन्दीगृह की दर्शनीय वस्तु मानते थे। वाहर से आये हुए उच्च अधिकारियो के सम्मान में भी हमसे इस प्रकार के कार्यक्रम अधिकारियो द्वारा आयोजित करवाये जाते थे।

उन उपक्रमो के लिये वन्दियो को सदा छूट दी जाती रही और कभी कभी तो वह छूट नौ-नौ दिन तक की भी होती थी। किन्तु हमको उससे सदा वचित ही रखा गया था।

विनोद वुद्धि किसी परिधि में नही रहती। व्यक्तिगत स्वभाव के अनुसार मनुष्य किसी भी परिस्थिति में विनोद का अवसर ढूढ ही लेता है। निरुपद्रवी विनोद अवश्य ही रोचक प्रतीत होता हैं। क्योकि उसमें किसी को व्यग्य का लक्ष्य किया हुआ नही होता।

अधीक्षको का दौरा जारी था। प्रार्थना करनेवाले वन्दी पक्ति में खड़े थे। किसी को छुट्टी के लिये आवेदन करना था तो किसी को घर तार भेज कर भेंट

करने के लिये बुलवाना था। किसी को पुनरावेदन करना था तो किसी को नये कपडे चाहते थे।

यथोचित आदेश देकर अधीक्षक अगले वन्दी के समीप बढ जाते थे। सहसा एक वन्दी ने वडी अधीरता से कहा, "बहुत जुरम होता है साहब!"

इसको कुछ अधिक कष्ट दिया गया है अथवा मारपीट की गई होगी, इस प्रकार की मनोभावना से अधीक्षक ने उससे पूछा, "क्या जुल्म होता है?"

कुछ कहावतें, अनेक सन्त वचन, कुछ उपदेश पूरक श्लोक, इनके फलक बना कर वन्दीगृह में स्थान स्थान पर लगाये गये थे। जहाँ पर वह वन्दी खड़ा था उसके पीछे एक पेड था और उस पेड पर भी इसी प्रकार का एक बोर्ड टांगा गया था। उस पर लिखा था—सदा सच बोलो—उसकी ओर सकेत कर वन्दी बोला, "यहाँ से जाते हुए यह फलक पढना पडता है, इससे बहुत कष्ट होता है।"

वन्दी कही पर भी अपने को खीच कर ले जाता है इसकी अनुभूति अधीक्ष को हुई किन्तु उनको क्रोध नही आया। उन्होने शान्त स्वर से वन्दी से पूछ "तो क्या उस फलक को उतार लें?"

"नही साहब! मेरा अभिप्राय यह नहीं है। मैं समझता हूँ कि इसके शब्द में थोडा परिवर्तन करवा दीजिये।"

"कौन से शब्द और क्यो बदलने चाहिये?"

"यह देखिए साहब! वन्दी गृह में भी इधर उधर से, जेब में नही तो टोपी में, टोपी नही तो तौलिये में हम सदैव चुराकर कुछ न कुछ लाते है। चाहे वह तरकारी की मूली हो, बघार के लिए मिर्च हो और नही तो रसोई घर के चने ही सही। चुराकर लाई गई सूखी टहनियो से हम कोठरी में उसको पकाते है। भोजन कैसा मिलता है यह तो आपको विदित ही है। लाल ज्वारी और वह भी महकनेवाली। गन्दे तेल की भाँति दीखनेवाली तरकारी, गन्दी दाल। इस तरह हडी के विना हमारे दिन किस प्रकार कट सकते है। ('हडी' अर्थात् छिपा कर लाया गया चूल्हा और पकाया हुआ अन्न।) और चोरी विना हडी किस प्रकार लग सकती है। किसी अधिकारी ने कभी पकड लिया तो 'यह मेरा नही' इस प्रकार कह कर हम अपना पिण्ड छुडा लेते है। और अभियोग को टालते है। यदि हमेशा सच बोलना हो तो हमारी सजा भी नही काटी जावेगी और आपको केवल अभियोग चलाने का ही काम करना पडेगा।

फलक के सम्बन्ध में वन्दी को निश्चितरूपेण क्या कहना है, यह जानने के लिए अधीक्षक ने उससे पूछा, "इस फलक में क्या परिवर्तन किया जाय?"

बन्दी बोला, "सम्प्रति तो 'कभी कभी सच बोलो' इतना ही भार हम पर रहने दीजिये। जब वह हजम हो जाय तो फिर यह फलक लगवा दीजियेगा।"

कृत्रिम गम्भीरता से अधीक्षक ने आज्ञा दी, "जमादार! इसको कमरे में बन्द कर दो और इसके कमरे में "कभी कभी सच बोलो" यह फलक लगा दो। जब इसको इतना हजम हो जाय तो फिर इसको इस फलक के नीचे से जाने देना।"

एक वर्ष नित्य से अधिक ठड पडी थी। जाडे के दिनो में दो कम्बल अधिक मिलते थे। परन्तु उससे भी ठड कम नही होती थी। एक ओर कम्बल दिया जाय। इस प्रकार का अभिमत डाक्टर ने व्यक्त किया था। वस्त्रागार मे कम्बल थे भी। परन्तु बडो के आदेश के बिना उनको वितरित नही किया जा सकता था। अधिकारियो ने इसके लिए आज्ञा मागी थी।

४-५ दिन हो गये फिर भी कम्बल नही मिले। कडाके की सर्दी पड रही थी। डाक्टर ने एक ओर कम्बल देने का अभिमत दिया है, यह बात बन्दियो को विदित हो गई थी। एक दिन शाम को कई बन्दी विनती करने के लिए कार्यालय के बाहर आये। अधिकारियो ने कहा "हम प्रमुख कार्यालय के आदेश की प्रतीक्षा में है। उत्तर आने में २४ दिन लग सकते है। यह देखो, तुमसे किसी को अक्षर ज्ञान हो तो कार्यालय को लिखा यह पत्र देख लो। "ऐसा कह कर उन्होनें पत्रो की फाइल बन्दियो के सम्मुख कर दी।

पत्र में लिखा गया था, यह बात सच थी। किन्तु इन्कार लेकर वापस जाने का अभिप्राय था रात को ठड से ठिठुरना। इस भय से एक बन्दी ने कहा, 'साहब! आपने पत्र लिखा है, इसपर तो हमारा विश्वास है। पत्र का उत्तर आने पर उसकी एक एक प्रति हमको दीजिये ताकि उसी को अपने कम्बलो के साथ जोडकर ठड कम होती है या नही यह हम देखेंगे।"

सीमा से अधिक इस प्रकार के वचन बोलने पर अधिकारी उस बन्दी पर क्रोधित हुए। उस बन्दी को कमरे में बन्द कर दिया और उसको तीन के बजाय चार कम्बल दिये गये। प्रात काल तक अधिकारियों का क्रोध शान्त हो गया था। उन्होनें अनुभव किया कि ठड से त्रस्त होकर ही बन्दी के मुख से इस प्रकार के शब्द निकले थे। दौरे पर आते ही उन्होने उस बन्दी को कमरे से मुक्त करवा दिया और फिर शाम को सभी बन्दियो को एक एक अतिरिक्त कम्बल दिया गया।

नासिक बन्दीगृह के बैलो में से एक बैल की बड़ी विचित्र लत थी। खाकी वस्त्रो को देख कर वह चौंक जाया करता था। बन्दियो के मातहत वह चुपचाप

काम करता, परन्तु यदि खाकी कपडे पहना हुआ सिपाही या अन्य कोई उसके समीप आया तो वह बैल उसको मारने के लिये दौडता था।

इसके आधार पर वन्दियो ने एक कहानी की रचना कर डाली थी। उनका कहना था कि पूर्व जन्म मे यह वन्दी रहा होगा और सिपाहियो ने इसके साथ छल किया होगा। उससे वह मर गया होगा। उसके फलस्वरूप अब यह इस जन्म में सिपाहियो से अपना वदला ले रहा होगा और उन्हें अपने नजदीक नही फटकने देता।

परन्तु इससे भी अधिक चुभनेवाला एक व्यग्य दिल्ली के वन्दियो ने रचा था। सर्वोच्च न्यायालय के सिलसिले में मैं दिल्ली आया करता था। भोजन के समय मैदान की दीवार पर बहुत कौवे एकत्रित हो जाया करते थे। भोजन के बाद वन्दी रोटी के टुकडे उनके पास फेंकते और कहते, "आओ, अफसरो। यह रहा तुम्हारा हिस्सा।" उन फेंके हुए टुकडो को कौवे आकाश में ही चोच में उठा लेते थे।

इन शब्दो की पृष्ठभूमि के विषय में अपने मन का जब कौतूहल मैंने व्यक्त किया तो दो चार वन्दियो ने मेरी जिज्ञासा की पूर्ति करते हुए कहा "ये कौवे अपने पूर्व जन्म में इस वन्दीगृह के कर्मचारी थे। उनकी क्षुधा शान्त नही हुई और वेचारे मर गये। अधूरी इच्छा की पूर्ति के लिये उन्होने भगवान से प्रार्थना की कि उन्हें कौवो की योनि प्रदान की जाय। क्योकि मनुष्य जन्म की माग करने पर पुन वन्दी गृह में अधिकारी के रूप में जाने की कोई सम्भावना नही थी। भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली। इस जन्म के कौवे होने से हमारे भोजन के पूर्व वे अपनी क्षुधा शान्त करने की उतावली नही करते। हमारा भोजन हो जाने के बाद उच्छिष्टान्न मे ही उनकी तृप्ति होती है।"

ऐसे ऐसे तीव्र व्यग्य वन्दीगण रचा करते थे। यह जानकर पाठको को भी विस्मय होगा। मनुष्य को यदि वन्द भी कर दिया जाय तो भी उसकी प्रतिभा को वन्द नही किया जा सकता। यथाप्रसंग उसका दर्शन हो ही जाता है। यह बात समझ लेने पर फिर उस प्रकार का विस्मय होने का कोई कारण नही।

हमको जो कार्य दिया जाता उस कार्य की पद्धति और उसमें हमारी प्रगति देख कर हमारा उपयोग उत्पादन उद्योग के लिये किया जाय, ऐसा अधिकारियों को अनुभव हुआ। उस समय अहमदाबाद बम्बई राज्य के अन्तर्गत ही था। वहाँ के वन्दीगृह में साबुन का निर्माण होता था। वन्दीगृह और पुलिस के जिला कार्यालयों को यह साबुन दिया जाता था।

नासिक में यदि साबुन का (फैक्ट्री) उत्पादन किया जाय तो उससे आस पास के जिलों को साबुन देने में सुविधा हो जायगी। इस नीति से नासिक वन्दी-

गृह में १९-८-५५ को इस साबुन उत्पादन का प्रारंभ हुआ। इस विषय के ज्ञाता अधिकारियो ने कई प्रकार के प्रयोग किये। अनेक प्रयोगो के उपरान्त द्रव्यो का परिमाण निश्चित हुआ। और निर्माण कार्य को नियमित किया गया।

जिन दिनो प्रयोग चल रहा था उन दिनो मैं अपने ज्ञान के लिये नोट्स बना कर रख लिया करता था। हाथ में लिये काम की अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिये कुछ पुस्तकें मगाने की अनुमति प्राप्त की। जारी कारखाने और उसके उत्पादन का पुस्तक के आधार पर मिलान किया तब अधिकारियो की अनुमति से आवश्यक हेर फेर किये गये।

बन्दीगृह का सारा कार्य मनुष्य के हाथो द्वारा ही होता था। बहुत से काम अति कठिन और श्रमसाध्य हुआ करते थे। उत्पादन का प्रयोग समय पर हो इसके लिये कभी रात को भी कार्य करना पडता था। कक्षावली विभाग १ में यह साबुन निर्माणी थी। इस निर्माणी में काम करनेवालो की बस्ती सुविधा के लिए उसी कक्षावली में थी। बन्दीगृहो के काम में आने वाला कीटनाशक फिनायल भी इसी निर्माणी में बनाया जाता था। इसका परिमाण बन्दियो ने स्वय प्रयोग द्वारा ही निश्चित कर लिया था।

थाना बन्दीगृह में स्याही की बुकनी बनाने का उद्योग था। थाना में आर्द्रता अधिक होने के कारण स्याही निर्माणी का नासिक को स्थानान्तरण करने का निश्चय हुआ। और उसके अनुसार डेढ वर्ष बाद स्याही का उत्पादन भी नासिक मे आरम्भ हो गया। रासायनिक सभी उद्योगशालायें एक स्थान पर रखने के उद्देश्य से वह निर्माण भी कक्षावली विभाग १ में ही रखी गई।

कच्चे द्रव्यो से स्याही का निर्माण करना पडता था। हर्रे को कूटना, माजूफल का चूर्ण बनाना, हर्रे का छिलका पीसना, यह सब चक्की पर किया जाता था। सब कृति में एक दिन जा कर काम का ठीक प्रबन्ध करा दिया। बन्दी को मिलनेवाला पारिश्रमिक चार आने से कभी रुपया तक हमको भी मिला करता था।

कच्चे माल का हिसाब, परिमाण और स्याही की विभिन्न अवस्थाओ की कृति पूर्ण करते हुए रात हो जाया करती थी। अधिकारियो के कहने पर स्वीकार किये गये दायित्व को पूर्ण करना ही चाहिये यह बात सदैव मन में रहती थी।

ऊपर के उद्योगों के रूप के अलावा अधिक बढोत्तरी बेकरी का उद्योग भी आरम्भ किया गया था। करकरे प्रारम्भ में उस उत्पादन का कार्य देखते थे। मेरे पास हिसाब किताब था। बाद में उस विषय के जानकारो की नियुक्ति की गई। केवल उत्तरदायित्व मात्र हमारा रह गया था। वह निश्चित ही अधिकारियो की ओर से हमको सौंपा गया था।

लम्बी सजा के बन्दियों की प्रत्यक्ष में पाच वर्ष की सजा पूर्ण होते ही उनका प्रकरण उनकी मुक्ति का विचार करने के लिए परामर्शदात्री समिति के सामने रखा जाता था। जिस स्थान में बन्दी रहता हो उस स्थान के पुलिस अधिकारियों का अभिमत, जिलाअधिकारी का प्रतिपत्र, न्यायालय का निर्णयपत्र और बन्दी का सर्वसामान्य वर्ताव यह तथ्य विचार के लिये हुआ करते थे। पाच वर्ष पूर्ण होने के कारण छूट का विचार करना समिति के क्षेत्र में नही हुआ करता था। समिति बन्दी की मुक्ति के लिये शासन को अपना अभिमत लिख कर भेजती है अथवा यह भी लिख देती है कि एक निश्चित कालावधि के बाद इस विषय को पुन प्रस्तुत किया जाय, और इसी बीच यदि चौदह वर्ष का समय पूर्ण हो जाय तो फिर उसके लिये समिति के अभिमत की प्रतीक्षा नही होती।

१९५४ में हमारा विषय परामर्शदात्री समिति के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। समिति ने निर्देश दिया कि इस विषय को दो वर्ष बाद पुन प्रस्तुत किया जाय। १९५६ मे जब विषय समिति के समक्ष रखा गया तो समिति ने पुन एक वर्ष की अवधि निर्धारित कर दी। इसी बीच हमारे १४ वर्ष की कालावधि आ गई।

अवधि पूर्ण होने मे ६ मास पूर्व बन्दी का प्रतिवृत्त शासन को भेजना होता है। इस समय छूट को अत्यधिक महत्व दिया जाता है क्योकि वह १४ वर्षो की गणना में आ जाती है। इसके लिये स्थानीय अधिकारियो का अभिमत और न्यायालय का निर्णय विचारणीय होते हैं। परन्तु यदि समय पर अन्य अभिमत अनुकूल न भी हो तो बन्दी के अपने गुणावगुणो पर भी कार्यवाही करने का अधिकार होता है।

इस समय एक और बात का भी विचार किया जाता है। कारावास के नियमों को यह भी अपेक्षित है कि न्यायालय में जिन विषयो पर चर्चा न हुई हो उनको अभियुक्त कारावास में खुले मन से अभिव्यक्त कर दे। उसका उपयोग दण्डित के विरोध मे नही किया जाता। इसको समाज के हित में, सत्यासत्य की खोज करने के लिये तथा उसी प्रकार की अन्य घटनाओ की परस्पर तुलना की दृष्टि से आवश्यक समझा जाता है। शासन इसका उस प्रकार प्रयोग करता है अथवा नहीं, इसका मुझे ज्ञान नही है। परन्तु बन्दियो के ऐसे वक्तव्य अपराध शास्त्र अर्थात् क्रिमिनलॉजी पर खोज करनेवालो के काम में आ सकते हैं, इसमें सन्देह नही।

हमारा विषय सम्मुख आने पर हमसे इस विषय में पूछा जावेगा, ऐसी हमें अपेक्षा थी। गाधी वध काण्ड ऐतिहासिक महत्व का काण्ड था। न्यायालय के सम्मुख सभी बातें पूर्ण रूप में नही आ पाई थी। कई बातें विकृत रूप में आई थी तो कई असत्यरूप मे आई थी। न्यायालय में अपने बचाव में हमने कहा था

कि हमारा गांधी वध से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। इसलिये ऐसी विकृत या असत्य बातो का निराकरण करने का प्रयत्न हमारे बचाव से सुसंगत सिद्ध होता था। इस प्रतिवृत्त के समय पूर्व घटित घटनाओ का वर्णन करने में हमको किसी प्रकार का भय नही था। हम कितनी ही बातें खुले मन से शासन को बता सकते थे और उनके सत्यासत्य का परीक्षण करने के लिये शासन के पास अनेक साधन थे। उनकी सत्यासत्यता की जाच करने पर शासन उसको अभिलेख के रूप में रख सकता है जिसमे कि जिज्ञासुओ को उसका लाभ प्राप्त हो सके।

किन्तु ऐसा प्रतीत हुआ कि शासन सत्यासत्य निर्णय का उतावला नही था। हमारे १४ वर्षो के प्रतिवृत्त को मगाकर उसके आधार पर हमको मुक्त करने का भी सरकार का इरादा नही प्रतीत होता था अपितु उस नियम का दुरुपयोग करके अपनी दुर्भावना से हम पर अधिक अत्याचार और अन्याय किया जा सके यही सरकार का उद्देश्य था, इसका ज्ञान हमें बाद में हुआ। बन्दीगृह के अधिकारियो को भी इस प्रकार की सूचना होगी इसी कारण उन्होने भी हमारे विषय में स्पष्ट कुछ न लिख कर केवल कार्यवाही की खाना पूरी कर दी थी।

सयोग से पहले गणतन्त्र के दिन हमको दया के रूप मे ४० दिन की छूट दी गई थी। इस प्रकार दयास्वरूप मिली छूट को काटा नही जा सकता, क्योकि उससे छूट देनेवाले का ही अपमान होता है। बन्दो को प्रदत्त अन्य छूट काटी जाने पर भी इस छूट को नही काटा जाता। इस छूट के आधार पर हमारा प्रतिवृत्त ४० मास पहले खिसक आया था।

श्री मोरारजी देसाई ने १९५२ में बम्बई विधान सभा में हमारी मुक्ति का दिन १०-२-६० घोषित किया था। उनकी धारणा थी कि यदि किसी प्रकार के नियमोल्लघन के लिये हमारी छूट के अन्य दिन काट भी लिये जाय तो उक्त ४० मास की छूट तो काटी नही जावेगी इस आधार पर ही उन्होने उक्त सम्भावित तिथि की घोषणा की थी। नियमोल्लघन के लिये हमारी ८ दिन की छूट काटी गई थी। इसके अतिरिक्त और कोई छूट नही काटी गई थी। इसलिये हमारा विश्वास था कि मोरारजी भाई ने जिस सम्भावित दिन को हमारी मुक्ति का दिन बताया था उससे बहुत पूर्व हम मुक्त कर दिये जावेंगे।

अच्छा व्यवहार रखने पर प्रत्येक वर्ष सद्व्यवहार के आधार पर मिलनेवाली सारी छूट हमें प्रतिवर्ष मिलती रही थी। नियत काम से अतिरिक्त काम करने के आधार पर भी हमको छूट दी गई थी। जहा पैसे और छूट का विकल्प होता था वहा भी हमने छूट को ही ग्रहण किया था, वह छूट भी हमारी एकत्रित थी। इस प्रकार की सभी छूटो का शासन ने समय समय पर अनुमोदन भी किया हुआ था। सरकार ने किसी भी एक दिन की छूट के लिये आपत्ति प्रकट नही की थी।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है अत सहजीवन और समाजधारणा के जो नियम होते है उनके पालन की अपेक्षा प्रत्येक व्यक्ति से की जाती है। इस प्रकार के नियम समाज के हित की दृष्टि से समाज ही निर्माण करता है। अपनी किसी कृति से किसी अन्य व्यक्ति को किसी प्रकार की हानि न हो यही इन नियमो का उद्देश्य होता है। उसी प्रकार अन्यो की कृति से हमें भी किसी प्रकार की हानि न हो यह भी मनुष्य अपेक्षा रखता है। नियमानुसार व्यवहार को धर्म बताया गया और नियमोल्लघन को अधर्म्य मान कर उसे दण्डित सिद्ध किया गया है।

उपरिलिखित व्याख्या के आधार पर अपने नियमानुकूल वर्ताव का लाभ अन्यो के नियमानुकूल वर्ताव से भी प्राप्त होता है। इसलिये नियमानुसार वर्ताव करने पर किसी को क्या पुरस्कार दिया जाय ? क्योकि वह तो मनुष्य का धर्म ही है। किन्तु दण्डितो के सम्बन्ध में इस को दूसरी प्रकार से वरता जाता है।

किसी सामाजिक नियम को भग करना सिद्ध हो जाने पर किसी नागरिक को सजा होती हैं तब वह दण्डित कहलाता है। ऐसे व्यक्ति पर स्वाभाविक ही समाज के नियमो के अतिरिक्त भी कुछ और बन्धन लागू हो जाते है। उन अतिरिक्त बन्धनो को तोडने की उसकी प्रवृत्ति रहेगी, उसको नियमानुकूल चलाने के लिये शासन को बल का प्रयोग करना पडेगा, इससे वह ढीठ बन जावेगा अत मनोविज्ञान के आधार पर यह नियम भी बना लिया गया है कि यदि बन्दी ने सद्-व्यवहार किया तो उसको पुरस्कार देने का उपबन्ध भी है। यह पुरस्कार होता है उसके सजा में किसी प्रकार की कुछ कमी।

अनुभवसिद्ध एक बात की ओर सकेत कर दिया जाय कि बन्दी यदि बन्दीवास में सबसे अधिक किसी बात से डरता है तो वह उसकी मुक्ति के दिन को खटाई में पडने में। नियम का पालन किया तो उसकी मुक्ति शीघ्र हो जावेगी और यदि नियमोल्लघन किया तो इससे मुक्ति और भी दूर हो जावेगी, यह भय बन्दी को नियम में बधे रहने में सहायक होता है। सहस्रावधि दण्डित जन अपने दण्ड के दिन जो प्राय शान्ति से बिताते है, उसका मूल कारण यही है। प्रत्यक्ष डडे का उपयोग करने की बारी शायद ही आती है।

हमारा व्यवहार नियमानुकूल था इसमें कोई विशिष्टता है, ऐसा हमारा उद्देश्य नही है। परन्तु प्रलोभन से हम भी मुक्त नही थे। क्योंकि हम भी थे तो दण्डितो की श्रेणी में ही। नियमानुसार वर्ताव के आधार पर मिलनेवाली छूट का हमें भी अधिकार था। शासन ने हमको इस छूट से वर्जित नही किया था। यही कारण था कि हमको वह छूट मिलती रहती थी और समय पर शासन की ओर से उसकी पुष्टि भी होती रहती थी।

दयास्वरूप दी गई और हमारे द्वारा अपने वर्ताव एवं अन्य प्रकार से अर्जित

छूट यह सब मिलाकर हमारी सजा के ८ वर्ष पूर्ण हो जाने पर हमारे १४ वर्ष का प्रतिवृत्त भेजा गया था। नियमानुसार छूट सजा के एक तिहाई से अधिक नही होनी चाहिये। यदि वह अधिक हो जाय तो उसके लिये शासन की विशेष पुष्टि करवाई जाती है, ऐसा नियम है। परन्तु गणतन्त्र घोषणा के उपलक्ष्य मे दया-स्वरूप प्रदत्त छूट का हमारे प्रतिवृत्त पर कोई प्रभाव होनेवाला नही था, हाँ हमारे द्वारा अर्जित छूट हमारे वर्ताव का प्रकटीकरण था। व्यवहार नापने का यह यन्त्र सरकार द्वारा ही निर्धारित था अत उसके सत्यासत्य का प्रश्न ही नही उठता था।

पजाव उच्च न्यायालय ने शासन को परामर्श दिया था कि मेरे विषय में दया का भाव वरता जाय। प्रतिवृत्त पर विचार करते समय यह तथ्य भी सम्मुख आना चाहिये इत्यादि। इन सब वातो को ध्यान में रख कर मुझे आशा थी कि मुझे समय से वहुत पूर्व ही मुक्त कर दिया जाना चाहिये। हम निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इसी मध्य १९-१२-५६ को करकरे के स्वास्थ्य का परीक्षण किया गया। विगत सात-आठ दिनो से उनमे क्षय की प्रकार के कुछ लक्षण से दिखाई देने लगे थे। जाच करने पर विदित हुआ कि उन्हें फुफ्फुस फोडा जिसे अग्रेजी में लग एब्सेस कहते है, उसके लक्षण है। उनको चिकित्सा के लिये अस्पताल मे रखा गया। ५-१-५७ को उन्हे वाहर के रुग्णालय में रखा गया।

करकरे की पत्नी सौ० सरस्वती वाई की अवस्था वहुत ही दयनीय हो गई थी। हमें वन्दीगृह में जो कष्ट भुगतने पड रहे थे उसका उनको वार वार अनुभव सा होता था। कभी कभी तो मिलने आये लोगो को वीच मे ही छोड कर हमें काम के लिये वुलावा आ जाता था तो हमें काम करने के लिये जाना पडता और तीन चार घण्टे तक जव तक कि हम काम पूरा करके न आ जावें तव तक भेंट करनेवालो को भी प्रतीक्षा करनी पडती थी। इस ढाली हुई आत्मीयता का फल जव हाथो के समीप आने को है किन्तु क्रूर नियति उसको भी छीनती सी प्रतीत हो, इस प्रकार करकरे की अवस्था होना सम्भवनीय लगता था।

करकरे की दशा का ध्यान कर सौ० सरस्वती वाई ने सरकार से प्रार्थना की कि उनके पति को पैरोल पर छोड दिया जाय। एक वर्ष वाद करकरे फिर वीमार पडे। उस समय उनको मधुमेह का विकार होने लगा। इसके साथ ही मलद्वार पर भी एक फोडा हो गया था। उनको निरन्तर पथ्य पर रखा गया किन्तु वीमारी वढती गई। तभी सौ० सरस्वती वाई ने उनकी तुरन्त मुक्ति के लिये

प्रार्थना की थी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि हमको अंधेरे में बन्द कर दिया है और अंधेरे मे ही हमारा अन्त भी हो जायगा। शासन की ओर मे प्रतिशोध की ऐसी ज्वाला सी धधकती स्पष्ट दिखाई दे रही थी। यही कारण है कि सौ० सरस्वती बाई की किसी भी प्रार्थना पर सरकार ने कभी भी दया का भाव नही दर्शाया।

नासिक वन्दीगृह में उस समय डा० चह्वाण चिकित्सक थे और सिविल सर्जन थे डा० थत्ते। इन दोनो द्वारा किया गया उपचार ही करकरे को अच्छा होने के प्रमुख कारण कहे जा सकते हैं।

तीन सप्ताह बाद करकरे को बम्बई के वन्दीगृह में भेजा गया। क्योकि वहा से उन्हें बम्बई के प्रख्यात जे० जे० अस्पताल में चिकित्सा के लिए रखना था। एक मास के लगभग वहा रहकर करकरे को वापस नासिक भेज दिया गया। वापस आने पर भी कई मास तक वे वन्दीगृह के रुग्णालय में ही थे।

कई वर्ष तक मैंने वन्दीगृह में हिन्दी का अभ्यास किया। महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा की प्रवेशिका परीक्षा से प्रारम्भ कर १९५६ में पण्डित परीक्षा उत्तीर्ण की। अन्तिम परीक्षा की पढाई के दिनो में तो काम का बोझ बहुत ही बढता था। प्रात होते ही फैक्ट्री का कार्य प्रारम्भ हो जाता था। ३ ४ मास बाद ही सरकार का आर्थिक वर्ष पूर्ण होने वाला था। कच्चे माल की प्रभूत सामग्री आकर पडी थी। नियत अवधि में ही सरकार की माग को पूर्ण करना था। रात्रि को नौ बजे के बाद जेलर के समीप बैठकर सभी फैक्ट्रियो का हिसाब किताब करना पडता था। इस कार्य में ग्यारह-बारह बजना तो साधारण सी बात है किन्तु कभी कभी तो भोर भी हो जाती थी। काम करने में उत्साह लगता था। क्योकि स्वय को व्यस्त रखने से सजा का जो तनाव मन और मस्तिष्क पर रहता था वह भूला सा रहता था।

इसके साथ ही यह भी लगता था कि इससे कुछ अर्जन भी कर रहे हैं। प्रमुख कार्यालय ने मेरी पढाई की सुविधा के लिये एक दीपक और एक डेस्क की व्यवस्था करवा दी थी। मेरी इच्छा थी कि यहाँ रहते हुए पढाई के द्वारा किसी प्रकार की कोई उपाधि ही ग्रहण कर ली जाय। किन्तु पढाई के लिये मिलनेवाला समय अपर्याप्त था।

परीक्षा में ८ दिन बाकी थे। तब मैंने एक दिन अधीक्षक से कहा, "या तो आप मेरे वन्दीपाल को ८ दिन का अवकाश दे दीजिये या फिर इतने दिन के लिये उन्हे उन विभाग में आने से मना कर दीजिये।"

अधीक्षक को मेरी कठिनाई समझ में आ गई। उन्होने वन्दीपाल से कहा," इनको पढाई के लिये समय नही मिल रहा है। अत रात की पाली बन्द कर दो।

पढाई के लिये समय मिलना ही चाहिये। ये इस परीक्षा को उत्तीर्ण करले यह अपने लिये भी सराहनीय ही है।"

सचमुच ही आठ दिन तक बन्दीपाल उस ओर आये ही नही। केवल अत्यावश्यक कार्यों का निपटारा करके मैं अपनी पढाई में लग जाया करता था। एकान्त की दृष्टि से कभी कभी मैं स्तूप की पहली मंजिल पर जाकर बैठता था। परीक्षा के लिए बाहर के केन्द्र पर जाने की स्वतन्त्रता नही मिली थी। समय पर पैरो में बेडी डाल कर भेज देते तो मैं इसके लिए भी उद्यत था। किन्तु इसे भी स्वीकार नही किया गया। तब राष्ट्र-भाषा सभा ने बन्दीगृह में ही मेरे लिये एक केन्द्र खोला और उसको नासिक केन्द्र के साथ सम्बद्ध कर लिया गया। इस प्रकार मैंने परीक्षा दी। परीक्षा समाप्त करते ही अब तक जमा हुआ सारा काम मैंने पहले समाप्त किया। वह शीघ्र ही समाप्त भी हो गया, क्योंकि अब पढाई की चिन्ता मन से हट गई थी। मैं परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। एक अधिकारी को तो इससे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसने नियमो को ताक में रखकर मुझे दो पेढे दिये।

अधिकारियो की आज्ञा से मैं हिन्दी परीक्षा देनेवाले कर्मचारियो की सहायता कर दिया करता था।

दि० ११-४-५७ को हमारे १४ वर्षों के प्रतिवृत्त का निर्णय आया। उसमे लिखा था—"पन्द्रह वर्ष प्रत्यक्ष सजा भुगतने के बाद ही मुक्ति के प्रश्न पर विचार किया जावेगा।" अंग्रेजी के शब्द थे—दि क्वेश्चन ऑफ रिलीज विल बि टेकन अप आफ्टर कम्प्लीटिंग फिफ्टीन इयर्स एक्चुअल इम्प्रिजनमेंट।

यह निर्णय वास्तव मे आघात पहुँचानेवाला था। उस निर्णय में प्रतिशोध की भावना झलकती थी, उसमें क्रूरता थी, अमानुषता थी। कम से कम विधान सभा की प्रतिष्ठा के लिये ही सही श्री मोरार जी भाई ने जिस दिन का उल्लेख किया उसके आस पास ही छोडने की बात करते।

इस आधार पर १९६४ में हमारे प्रतिवृत्त पर विचार होगा। अर्थात् सात वर्ष बाद। सम्प्रति हमको मिली हुई छूट मिला कर १४ वर्ष, उनके बाद सात वर्ष का और बन्दीवास और उस बन्दीवास में मिलने वाली न्यूनतम २½ वर्ष की छूट तथा कभी कभी शासन द्वारा दी जानेवाली अन्य छूट यह सब मिला कर लगभग २५ वर्ष बाद हमारी मुक्ति का विचार किया जावेगा। कारागार[illegible] की किसी भी प्रचलित प्रणाली के अनुसार यह नही था। इसका अभिप्राय तो एक ही प्रतीत होता था कि यदि उस समय तक हम मर गये तो ठीक है, अन्यथा अवधि और बढाते बढाते हमारी सजा का अन्त होने से पूर्व हमारा अन्त

देखना शासको के मन में था। गाधी वध के निमित्त न्यायालय ने दो बलिदान मांगे थे, वे यथाविधि दे दिये गये थे। किन्तु अपने दया के अधिकार का विपरीत प्रयोग कर पृष्ठद्वार से यदि हम इसके लिए और अधिक बलि ले सके तो उससे हम गाधीजी के सच्चे पुजारी सिद्ध होगे। ऐसी गध गाधीभक्त शासकों को प्रतीत होती थी। इसीलिये उतनी ही क्रूर भावना से हम पर अत्याचार किये जा रहे थे। अपने प्रतिवृत्त पर दिये गये निर्णय के बाद जब जब भी देश मे शासकीय नेताओ के 'सदा सत्य बोलो' इस विषय के भाषण पढा करता था तो मेरे मन में आता था "शासन द्वारा दीवारो के भीतर मुझ पर लादा हुआ असत्य का अँधेरा क्या कभी मैं जनता के सम्मुख प्रदर्शित कर सकूंगा? क्या उस प्रदर्शन के लिये मैं जीवित भी रहूगा?"

वृद्धत्व से दुर्बल एव चिन्ता से व्यग्र मेरे माता पिता ने जब इस निर्णय के बारे में सुना तो उनके मन में जो प्रतिक्रया हुई वह यही कि अब उनके जीते-जी उन्हें गोपाल के स्वतन्त्र जीवन के दर्शन नही होगे। उन्हें जो यह आशा थी कि न्यायालय के अभिमत का विचार १४ वर्ष के प्रतिवृत्त के समय होगा, उनका इस निर्णय ने प्रतिवाद कर दिया था। और इस निर्णय के आधार पर अब उस वचन का अथवा घोषणा का भी कोई अर्थ नही रह गया था जिसके आधार पर विधान सभा में यह कहा गया था कि हमको फरवरी १९६० में मुक्ति मिल जावेगी। क्योंकि वह पाकिस्तान को दिया हुआ आश्वासन तो था ही नहीं कि जिनका पालन करने के लिये शासन बाध्य होता है।

पाठक कृपया यह न समझें कि उपरिलिखित टिप्पणी में किसी प्रकार के क्रोध या केवल कल्पना के आधार पर की है। काग्रेसी विचारधारा के कट्टर समर्थक भी मेरे लेखो को पढते है और जब कभी उनसे भेंट होती है तो वे अपना अभिमत व्यक्त करते हुए मुझसे कहा करते हैं कि मेरे लेख संतुलित होते है। उनकी इस सराहना से मुझे प्रसन्नता होती है। मैं चाहता हूँ कि उनकी वह धारणा दृढ रहे, इसलिये मेरे मन मे यह रहता है कि मैं किसी प्रकार का एकांगी वर्णन न करू। मैंने जो भी उदाहरण यहाँ दिये है, यदि किसी को उन पर-सन्देह हो तो वह शासन के उस प्रकार के बर्ताव की जाँच कर सकते है। शासन से पूछ कर और उसकी सत्यासत्यता की जाँच पडताल कर जब उनको यह विश्वास हो जाय कि वह सच है तो फिर वे अपने शासन द्वारा अपने ही नागरिकों की, न केवल नागरिको की अपितु विधान सभा की भी अनुचित रीति से उपेक्षा की है इसके लिये वे सरकार की प्रतारणा करें जिससे कि भविष्य मे इस प्रकार की दुर्नीति की पुनरावृत्ति करने का दुस्साहस किसी भी सरकार अथवा उसके कर्मचारी को न होवे।

मीरदाद जरदाद नाम का आजन्म कैदी था। विभाजन से पूर्व ही वह भारत आ गया था, इसलिये वह भारत का नागरिक था। भारत में ही उससे अपराध हुआ और भारत के न्यायालय ने उसको दण्ड दिया। अपने १४ वर्ष के प्रतिवृत्त में उस पर होनेवाले अन्याय की शिकायत वह किससे करेगा? शासन से अथवा किसी भी न्यायालय के सामने? ऐसा ही उसको करना भी चाहिये था। किन्तु उसने शिकायत की तो किसको? पाकिस्तान के उच्चायुक्त को। हिन्दुस्तान के मुसलमानों का हित देखने का कार्य भारत के शासन का है। पाकिस्तान के किसी नागरिक पर यदि भारत में अन्याय होता है तो उस अवस्था में पाकिस्तान का उच्चायुक्त उस विषय में कार्यवाही कर सकता है। वह सरकार से शिकायत कर उसका उपाय कर सकता है।

किन्तु विभाजित भारत में भी मुसलमान समाज शेष समाज से पृथक् अंग है और उसके घटकों का हितचिन्तन करना भी अपना कर्तव्य है, सदैव ऐसी धारणा रखनेवाले पाकिस्तान के उस उच्चायुक्त ने भारत सरकार के पास मीरदाद के साथ हुए अन्याय के लिये लिखा पढ़ी की। उसके उत्तर में "मीरदाद भारत का नागरिक है, हमारे भीतरी प्रशासन एवं अनुशासन में हस्तक्षेप करने का आपको कोई अधिकार नहीं है, मीरदाद को शिकायत करने के लिये यहाँ के न्यायालय खुले हैं।" ऐसी दो टूक किन्तु युक्तियुक्त बात कहने की अपेक्षा सरकार ने उत्तर में लिखा—"यदि यहाँ से दया स्वरूप उसको छूट दी गई तो उससे मीरदाद की सजा की अवधि में कमी हो जावेगी और तदनुसार उतनी जल्दी उसको मुक्ति भी प्राप्त होगी।"

आगे चल कर एक प्रसंग पर दयास्वरूप छः मास की छूट दी गई। परन्तु छूट के उस आदेश के परिपत्र में लिखा गया था कि पहले जिनके सम्बन्ध में निर्णय दिया गया है उन पर यह छूट लागू नहीं की जावेगी।

परिपत्र के इस 'शर्त' के कारण मीरदाद अटक गया। तब मीरदाद ने शासन को स्मरण कराया, "आपने पाकिस्तानी उच्चायुक्त को जो आश्वासन दिया था क्या आप उसको भूल गये हैं?"

शासन को होश आया। बात तो सच है। हम अपने हिन्दू नागरिकों को दिये गये आश्वासनों को झुठला सकते हैं, क्योंकि हिन्दू का तो कोई राष्ट्र नहीं है, इसलिये उनका कोई आयुक्त भी नहीं। हम विधानसभा में उच्चारित शब्दों को समयानुकूल उलट-पलट सकते हैं, क्योंकि विधानसभा कोई विदेशी सत्ता तो है नहीं। हम अपने किसी न्यायालय के अभिमत को भी ठुकरा सकते हैं, क्योंकि न्यायालय हमारे अधीन होते हैं, हम उनसे श्रेष्ठ हैं। परन्तु एक मुसलमान नागरिक के सम्बन्ध में पाकिस्तानी उच्चायुक्त को दिये गये आश्वासन को यदि हमने

कार्यान्वित नही किया तो, हमारा व्यवहार झूठा सिद्ध हो जावेगा, इससे मुस्लिम विश्व में हमारी कुख्याति होगी, ससार में अपनी अप्रतिष्ठा होगी, अत उसका पालन होना ही चाहिये।

इसलिए शासन ने अपने परिपत्र की अवहेलना की। चुपचाप मीरदाद को कहा गया, 'देखो, परिपत्र की विद्यमानता में भी हम तुमको उस दया का लाभ दे रहे हैं।' इस प्रकार उसको छ मास की छूट देकर उसको समय से पूर्व मुक्त कर दिया गया।

यदि हम क्षण भर के लिए यह भी मान लें कि वह पाकिस्तान का नागरिक था। तो भी परिपत्र की अवहेलना कर उसको जो छूट दी गई थी वह भारत के नागरिक अन्य वन्दियो को क्यो नही दी गई। क्या वे भारत के नागरिक किसी विदेशी उच्चायुक्त के पास सहायता के लिए नही दौड पाये इसलिए उनके साथ यह अन्याय किया गया ? आज वह बात एक प्रकार से इतिहास की बात बन गई है परन्तु इतिहास पढा अथवा सुनाया भी इसीलिए जाता है कि जिससे उन गलतियो की पुनरावृत्ति न हो सके।

गोपाल से एक बार अन्तिम भेंट कर लें, इस बेचैनी से दि० २९-४-५७ को मेरे माता-पिता नासिक बदीगृह में आये। उनके साथ छोटा भाई गोविन्द और कुछ रिश्तेदार भी थे।

उनकी भेंट में अश्रुकण यद्यपि नही थे, किन्तु करुणा का क्रन्दन था। वह दबा हुआ था। मैं प्रत्यक्ष में ऐसा ही उनको दिखाता था कि मेरा जीवन साधारण चल रहा है जिससे कि उनको दु ख न हो। उसी प्रकार मुझे लगा कि वे भी अपनी अन्तर्वेदना छिपाते हैं जिससे कि मैं उनकी दशा से दु खी न हो पाऊँ। इस प्रकार की सावधानी दोनो ओर से बरती जाती थी।

माँ घिसट-घिसट कर सीढियाँ चल पाई थी। मैं सोचने लगा कि क्या उसकी यह बीमारी अन्तिम सिद्ध होगी ? माँ मेरे लिये अगूर लेकर आई थी। किन्तु नियम आडे आ गया। तब माँ को मैंने-"माँगने पर हमें यहाँ भी अगूर मिल जाते हैं।" यह कहकर समझाया। बाहर से आये हुए टोकरी भर अँगूर और माँ के दिये हुए गिने हुए चार अगूरो के अन्तर को मैं समझता था। परतु अधिकारियो से विनती करना और उनके द्वारा असमर्थता में खेद प्रकट कर अस्वीकार कर देना मुझे सह्य नही था। यदि पजाब में होता तो चार दाने अगूर ही क्या मैं भोजन भी ले सकता था।

अपनी भावनाओ को दबाकर हमने उस दिन की भेंट समाप्त की। विदाई लेते समय भी किसी ने किसी प्रकार का दु.ख प्रदर्शित नही किया। घिसट कर ही माँ बाहर गई। इस यात्रा से उसको बहुत कष्ट हुआ था, वह बम्बई जाकर

गोविन्द के पास ही रही। ६-५-५७ को उसके देहान्त होने का पत्र मुझे देहान्त के दूसरे दिन प्राप्त हुआ था।

दि० ९-५-५७ को मेरे बडे भाई दत्तात्रय माँ की अस्थी लेकर आये। उनके साथ अन्य भी अनेक जन थे। मुझे विशेष अवकाश देने का कोई मार्ग अधिकारियो के पास नही था। शासन का हृदय पसीज सकता है यह भी नितान्त असम्भव बात थी। फिर भी प्रयत्न किये गये किन्तु जब सफल नही हो सके तो अस्थि-कलश बंदीगृह के भीतर लाया गया, जिससे कि मैं अन्तिम दर्शन कर सकू। अस्थि दर्शन करते हुए वे मेरे आँसू टपक पडे और वे अस्थियो पर गिर पडे थे।

दस दिन पूर्व ही माँ मुझसे मिलने के लिए आई थी, तब उसकी इच्छा गोदावरी स्नान करने की थी। उसके लिए उठना बैठना भी असम्भव हो गया था इसलिए बिना स्नान किये ही वह वापस चली गई थी। और अब उसके अस्थि अवशेष को गोदावरी में विसर्जित किया जा रहा था।

माँ के देहान्त होने के बाद मेरी पत्नी रुग्ण हो गई। एक के बाद एक इस प्रकार से अनेक आघातो से उसका मन और मस्तिष्क विकल हो गया था। शरीर शिथिल पड गया। उपचार के लिए उसको अस्पताल में प्रविष्ट कराया गया। वह बेहोश हो जाती थी। उस बेहोशी की स्थिति में बहुत कुछ बडबडाती रहती थी। और उसमें वह एक ही बात कहा करती थी, 'शासन ने अन्याय किया'। इस बीमारी में वह दो मास तक पडी रही।

इसके कुछ मास बाद मेरे पिता जी का भी देहान्त हो गया। शासन के निर्णय से वेदना होने का एक मुख्य कारण यह भी था कि हमको सश्रम कारावास की सजा तो मिली थी किन्तु जो श्रम हमको करने के लिए दिया जाता था उससे कही अधिक श्रम हम करते थे, किन्तु उसका न किसी कागज पत्र मे लेखा जोखा था और किसी के मन-मस्तिष्क पर ही। हमने यह काम किसी प्रकार की दीन भावना से नही अपितु अपने लिए किसी आशा से किया था। कठिन श्रम का तो वह काम था ही किन्तु ऐसी बुद्धि, चातुरी का भी काम था कि कोई भी न्यायप्रिय व्यक्ति हमारी करनी को देखकर आश्चर्यचकित हो जाय। हमने कैसा काम किया इसका विवरण मैंने १९५९ में अपनी पत्नी को लिखे एक पत्र में किया था।

हुआ यह कि हमारे विरुद्ध निर्णय के बाद भी कार्य का विस्तार कम नही हुआ था। और हमने भी काम से हाथ नही खीचा था। अधिकारी समय समय पर बदलते रहते थे। मात्र हम ही खूँट की भाँति वहाँ अचल थे। दो वर्ष बाद बदल कर जो अधिकारी आये उनमें और हममें उत्पादन के काम के सम्बन्ध में एक प्रकार से तीव्र विवाद उत्पन्न हो गया था।

कुछ भी हो, उसका उत्तरदायित्व हमारा नही अपितु अधिकारियो का था। किन्तु हम पर उसका उत्तरदायित्व दे कर हमारे साथ अन्याय किया गया था। अपने आन्तरिक वल के आधार पर उस अन्याय को दवाया जाता था। हमने काम करना छोड दिया। हमको अलग विभाग में वन्द कर दिया गया। वहा रह कर भी हम इस आन्तरिक अन्याय के लिये अधिकारियो से झगडने लगे। इसी अवधि में अधीक्षक का भी स्थानान्तर हो गया और उसके स्थान पर दूसरा अधीक्षक आ गया। और उनके आते ही एक वात ऐसी हो गई कि हमारे विपय मे उनका प्रथम प्रभाव हमारे लिये अहितकर सिद्ध हुआ।

यह वात जुलाई १९५९ की है। मेरी पत्नी दि० ८ को मुझसे मिलने के लिये आई थी। भेंट करने के उपरान्त वह अधीक्षक से मिली। उन्होने उसको कार्यालय में वुलवाया, उनमें परस्पर कुछ वार्त्तालाप हुआ।

मुझे ३ ४ दिन वाद पत्नी का पत्र मिला। उसने मुझे लिखा था कि अधिकारी अच्छे है, और मुझे नियमो का पालन करना चाहिये। अधीक्षक के साथ हुई भेंट का विवरण भी उसने दिया था।

अधीक्षक का पक्ष क्या है यह तो उसको विदित हो गया है किन्तु उसे मेरा पक्ष भी तो समझना चाहिये ऐसी मेरी धारणा थी। अधिकारियो के द्वारा ही यह समझा जाय तो अच्छा हो ऐसा भी मैं समझता था। दि० १४-७-५९ को मैंने उसके लिये एक पत्र लिख कर अधिकारियो को दिया। उसको वह पत्र मिल भी गया। उस समय के हमारे विवाद और काम के विपय में मैंने लिखा था। पत्र इस प्रकार था—

कारावास दि० १४-७-५९

प्रिय सिन्धु,

पर्यवेक्षक से भेंट करने पर तुमको अनेक वातो की जानकारी प्राप्त हुई, इसकी मुझे प्रसन्नता है। यद्यपि इस वात को लगभग चार-एक मास हो गये हैं, किन्तु मैंने स्वयं ही तुमको वताना उचित नही समझा था। उसका कारण यही था कि इससे मैं तुम्हारी चिन्ता को और अधिक वढाना नही चाहता था। मेरे मानसिक तनाव के विपय में तुम्हें मेरे पत्रो में थोड़ा वहुत तो आभास मिलता ही होगा।

दो व्यक्तियो अथवा पक्षो में हुए तनाव अथवा खिचाव के वातावरण को शान्त करने के लिये अनेक व्यक्तियो की सहायता की आवश्यकता होती है। समय भी महत्वपूर्ण होता है। इसके साथ ही एक दूसरे से समझदारी से वातचीत करने में प्रमाद हो जाय तो विवेक वुद्धि से काम लेना और उस प्रमाद को दूर करना भी एक कारण वन सकता है। किन्तु जब दोनो पक्ष जानवूझ कर और अपने मन में

यह धारणा बना कर कि 'मेरा पक्ष ही सच है' चलें तो उस भ्रान्ति को तीसरा पक्ष ही दूर करने में सहायक हो सकता है।

दूषित वातावरण ठीक हो, उसके लिये कोई प्रयत्न करे और उसमें किसी प्रकार का विघ्न आ जाय और उस विघ्न को महत्व दे कर वातावरण को अच्छा किया जा रहा है, यह कहना किसी को भी उपयुक्त नही प्रतीत होता। इससे मूल वातावरण में अर्थात् दूषित वातावरण में और वृद्धि होती है।

इस प्रकार के सोद्देश्य अथवा निरुद्देश्य प्रयत्नो से किसी भी व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन बिगड सकता है और फिर मैं तो एक ऐसा बन्दी हूँ, जिसके साथ निरन्तर अन्याय ही किया जाता रहा है। हाँ, यदि कोई विकृत मस्तिष्क वाला व्यक्ति अर्थात् पागल हो तो उसको इन बातो से किसी प्रकार का सुख-दु ख नही होगा। स्वस्थ मस्तिष्क के व्यक्ति पर इसको प्रतिक्रिया होगी और दु खातिरेक से वह पागल भी हो सकता है। इन चार महीनो में मेरे मन पर पागल बनने जितना अतिरेकी परिणाम नही हो पाया इसका श्रेय मन स्थिति जाननेवाले और सुदूर की सोचनेवाले अधिकारियो को है।

किन्तु, सहिष्णुता समाप्त होने पर मनुष्य जो मार्ग खोजता है, जिन उपायो का अवलम्बन लेता है उससे क्या यही अनुमान लगाया जाता है कि उसका सन्तुलन बिगड गया है ? यदि यह मान लिया तो फिर यह भी देखना होगा कि सहिष्णुता समय से पूर्व ही समाप्त हुई है अथवा समयावधि बीत जाने पर। यदि वह समयावधि बीत जाने के बाद ही हुआ है और अवलम्बित मार्ग भी उचित ही सिद्ध होता है तो फिर उसको तो समर्थन ही मिलना चाहिये। महाभारत का उदाहरण सम्मुख है। यद्यपि यहाँ पर यह उदाहरण बहुत बडा है फिर भी मैं संकेत कर रहा हूँ। कृष्ण और पाण्डव उस युद्ध में विजयी हुए इसी कारण उनका चरित्र स्थिर रह पाया था। उनका पक्ष न्याय का पक्ष था यह इतिहास की साक्षी है। युद्ध से पूर्व कृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था, यह भी हम मानते हैं। गीता के तत्वो का अवलम्बन कर उनमें निष्ठा रखकर युद्ध किया और विजय प्राप्त की इसलिये हम कृष्ण को द्रष्टा कहते हैं। किन्तु यदि परिस्थिति विपरीत होती तो ? यदि कौरवो की विजय हो गई होती तो ? तब द्रौपदी पर किया गया अत्याचार इतिहास में अंकित नही होता, और धृतराष्ट्र को इतिहास ने नीतिज्ञ का स्थान दिया होता। तथा द्रष्टा कृष्ण न होकर कौरवो का कोई क्रूर सेनापति होता। और शायद इतिहास में फिर यह भी अंकित हो जाता कि बलाबल का विचार न करते हुए, सन्तुलन के अभाव में पाण्डवो ने आततायीपन अंगीकार कर स्वय ही अपना नाश करवा लिया। ऐसा ही निष्कर्ष तत्कालीन इतिहासकारों

ने निकाला होता। इस बात का साक्षी इतिहास ही है कि इतिहासकारो ने सदा शासको का ही समर्थन किया है, विजेताओ को ही महत्व दिया है।

अधिकारियों के अच्छे स्वभाव के कारण मैंने यथोचित से अधिक लाभ उठाया होगा, ऐसी यदि तुम्हारी धारणा है तो वह भ्रान्त है। किन्तु हम बन्दियो के कुछ अधिकार होते है, कई सुविधायें हमारे लिये नियम में निहित होती है। उसमें से कुछ सुविधायें अधिकारियो की इच्छा से दी जाने का विकल्प भी नियमो में है। उनमें से जो सुविधायें अधिकारियो ने स्वेच्छा से मुझे दी उनके विषय में मैंने यह कभी न कहा कि वह मेरा मूलभूत अधिकार था। उसके लिये मैं सदैव सम्बन्धित अधिकारी का आभारी रहा हू। यदि उस प्रकार की वह सुविधा मुझे नही दी गई तो उसके लिये मैंने अपने मन में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया की भावना नही रखी।

ऐसे विकल्प का अनुकूलता से प्रयोग करने के लिये भी कुछ कसौटी होती है। अपने काम की दक्षता के विषय में किंचित् सकेत कदाचित मैंने तुमसे किया है। समस्त भारत के बन्दियो के विषय में तो मैं कुछ नही कह सकता। हा, समस्त बम्बई राज्य में यदि पूर्ण उत्तरदायित्व से और कुशलता से कार्य करनेवाले शीर्पतम ८-१० व्यक्तियो की यदि कोई सूची बनाई जाय तो उनमें हमारा भी स्थान होगा, ऐसा मैं कह सकता हू। विगत साढे तीन वर्षों से प्रतिवर्ष लाखो रुपयो का व्यवहार, उत्पादन वृद्धि और पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए जिसमें कि अधिकारी अणुवत् भी दोष न दिखा सकें, इस प्रकार का काम मेरे हाथो से हुआ है। अतिशयोक्ति रूप में नही अपितु चरितार्थ में कहना पडता है कि दिन रात लगाये बिना यह होना क्या सम्भव था? यह मेरा कोई व्यक्तिगत व्यवसाय तो नही था और न ही इसमें मेरी किंचित पूंजी आदि लगी थी। जिस आशा के साथ अधिकारियो ने विश्वास करके हम पर उत्तरदायित्व सौपा था उसको पूर्ण कर उनके विश्वास को स्थायी बनाने के लिये अपना कण कण सुखा कर हमने यत्न किया और अक्षरश अपना उत्तरदायित्व निभाया। यदि कोई न्यायप्रिय व्यक्ति होगा तो वह इसका समस्त श्रेय हमको देगा। काम में आत्मीयता डालना यह हमारा स्वभाव बन गया था। "जितना दाम उतना काम" इस प्रकार की भावना को हमने कभी पनपने ही नही दिया।

मा के देहान्त का समाचारसूचक पत्र मुझे प्रात. ११ बजे के लगभग प्राप्त हुआ था। परखरे रुग्णालय में थे। मैंने पत्र पढा और जेब में रख लिया। मेरा अन्तर रुदन कर रहा था, उसके लिये मुझे एकान्त की आवश्यकता थी।

यदि मैं बन्दी नही होता और किसी का कर्मचारी होता तो मुझे छुट्टी मिल जाती। किन्तु किन्तु, यहाँ बन्दीगृह में किसको छुट्टी मिलेगी? बैलगाडिया मेरी छाती पर खडी थी। अलग-अलग स्थानो पर साबुन भेजना था। आज नियत काम तक

नियत मनुष्य सीख गये है। किन्तु उस समय सारा दायित्व अकेले मुझ पर था अथवा डाला गया कहो, । जो कुछ भी हैं था वह मुझ पर ही। बैलगाडियां भर दी थी, भट्टी चालू थी, वह विगड न जाय इसकी ओर घ्यान देना नितान्त आवश्यक था। मुझे अकेले व्यक्ति पर आई विपत्ति के लिए मैं ३०-४० व्यक्तियो को उसका शिकार बनाना उपयुक्त नही समझता था और न यह सम्भव ही था।

दोपहर वाद चार वजे से कुछ लेखन कार्य में अधिकारिगो की सहायता करनी पडती है। वह होना बहुत आवश्यक है। अपनी अडचन के लिये क्या मैं उनको असुविधा में डालू ? उसके वाद ही मैंने आसू गिराने का निश्चय किया था।

इसके अतिरिक्त एक कार्य यह भी था कि यदि वेकरी के पदार्थ बाध कर नही दिये जाते तो दूसरे दिन प्रात विक्री के लिये पदार्थ दिये ही नही जा सकते थे। वेकरी मेरी तो थी नही जिसे एक दिन के लिये वन्द कर दिया जाता। अनेक दैनिक वंधे हुए ग्राहक होते है। वे विश्वास पर रहते हैं। उनके कार्य को मैं कैसे टाल सकता था।

यह सब काम समाप्त कर रात्रि को ९ वजे ही मुझे एकान्त प्राप्त होनेवाला था। और वह तभी प्राप्त हुआ भी, उससे पूर्व नही। पत्रको पुन पढने के लिये जेव से निकाला। पढने का कोई कारण तो था नही। मन की वात तो ज्ञात थी ही। आखें भर आईं। एक के वाद एक इस प्रकार अनेक स्मृतियो की कडी हृदय में उमडने लगी। उसी मनस्थिति में मैंने तुमको एक पत्र लिखा था और प्रातः भेज दिया था। क्योकि प्रात फिर मुझे कोल्हू में जोता जानेवाला था। मुझे अवकाश नही था, कोई सान्त्वना देनेवाला नही था।

त्वरा से किया जानेवाला कार्य कितनी ही सावधानी से क्यो न किया जाय किन्तु कही न कही और कभी न कभी उसमें कोई दोष निकल आना स्वाभाविक है। दाहक द्रव्यो के व्यवहार में भी मुझे कुछ इसी प्रकार के अनुभव हुए है। इस उद्योगशाला की प्रयोगावस्था से उसकी ठीक व्यवस्था होने तक की अवस्था में मैंने स्वय कार्य करके उस अनुभव को प्राप्त किया है। एक वार नही तीन वार इस प्रक्रिया में मेरी आखो में कास्टिक का पानी गया था। इससे एक वार तो आख की पुतली में तीव्र व्रण भी हो गया था। उस समय आख से अन्धा हो जाने का भय भी हो गया था। एक वार निचले ओष्ठ के वाहर भीतर गरम गरम कास्टिक का तरल पड गया था, इस्से तीन दिन तक तो मैं मुंह मे कोई वस्तु डाल ही नही सका था। पूरा ओठ छिल गया था और मसूडे भी उससे प्रभावित हुए थे।

अपनी शारीरिक क्षति के लिये क्या मैं किसी से भरपाई की माग कर सकता था ? मैं करू भी तो कोई देनेवाला नही। क्योकि वन्दीगृह के अन्दर के उद्योग

फैक्ट्री एक्ट के अन्तर्गत नही आते। इसलिये उन पर कॉम्पेन्सेशन के नियम भी लागू नही होते। परन्तु यदि कोई अडचन का अथवा कठिन काम हुआ तो उसको स्वेच्छा से स्वय करने का अभ्यास मैंने किया था और उसमें प्रगति भी की थी। इसीलिये दूसरे नये सीखनेवालो को बिना किसी प्रकार की टाल मटोल के काम सिखाना सरल हो पाया। इसी का ही परिणाम है कि इन साढे तीन सालो की अवधि में किसी को किसी प्रकार का कोई तीव्र आघात लगा हो ऐसा एक भी उदाहरण नही है। सबको अपने अपने काम में मैंने सिद्धहस्त बना दिया था।

क्या किसी भी काम में आत्मीयता डाले बिना यह सब सम्भव था? करकरे को जो फुफ्फुस विकार हुआ था उसका कारण भी डाक्टर ने कास्टिक और कारबोलिक की भाप के सदैव सम्पर्क में रहना बताया था।

इन कामो में अपनी आत्मीयता डाल कर कार्य को सिद्ध करते हुए अधिकारियो का विश्वास प्राप्त कर उसके प्रतिदान में यदि उन्होने मुझे कुछ सुविधा देने का विचार किया होगा तो उसके प्रति आभार प्रकट करना जैसा मेरा कर्तव्य है उसी प्रकार उनको भी चाहिये कि वे ऐसा न मानें कि उन्होने मेरे सिर पर किसी प्रकार के उपकारो का बोझ रखा है अन्यथा मैं इसके योग्य तो था ही नही? मैंने जी तोड कर शरीर की क्षति करके अपना काम समझ कर काम किया है उसके बदले में ही उन्होने मुझे कुछ सुविधाएँ प्रदान की होगी, यो ही भावावेश में नही।

वर्तमान विवाद के विषय में तुमको उस ओर से विवरण प्राप्त हुआ है, उसकी चर्चा में नहीं करूगा, क्योकि वह इस समय भी विवाद का विषय ही बना हुआ है। उसकी चर्चा करने से हानि की सम्भावना है।

तुम्हारी एक आशका के विषय में केवल मैं लिखना चाहता हू। मुझसे नियम पालन ठीक प्रकार से होता है अथवा नही, इसके विषय में तुमने मुझसे पूछा है। उसका निश्चित उत्तर तो मैं 'हाँ' के रूप में ही दे सकता हूँ। मैं नियमो का पूर्णतया पालन करता हूँ। तुमने यह प्रश्न क्यो किया है, मैं इस विषय में नही जानता। परन्तु यदि मेरा अनुमान ठीक है तो मैं तुमको अलग शब्दो में लिख रहा हूँ।

एक उदाहरण देता हूँ। यदि किसी बन्दी को बाग की मूली पकाते हुए देख लिया जाय तो उस पर अभियोग चलाया जावेगा। क्यो ऐसा करना नियम विरुद्ध है। परन्तु पूछताछ करने पर यदि ऐसा विदित हो कि उस बन्दी को चार दिन से भोजन ही नही मिला था, उसने इस विषय में शिकायत करने की चेष्टा भी की थी, परन्तु कदाचित किन्ही कारणो से उसकी शिकायत पर ध्यान नही दिया गया, तो क्या होगा? इस समय के अधिकारियो की तो बात ही छोड दो। उनमें पर्याप्त

दया है। परन्तु यदि अधिकारी कठोर होगे और वे न्यायाप्रिय भी हुए तो क्या वे इसकी पूछताछ नही करेंगे कि उसको चार दिन तक भोजन क्यो नही दिया गया? तथा उसने जो मूली खाई तो विवशता में ही खाई इसलिये उस पर किसी प्रकार का नियम लागू कर उसका अपकार करने का कोई अभिप्राय नही। यही तो इसका न्याययुक्त निष्कर्ष हो सकता है?

सिन्धु, मनुष्य मात्र रोटी के टुकडो पर ही जीता है? भोजनमात्र पर तो पशु ही जीते हैं। मनुष्य को तो जीने के लिये कर्तृत्व की लालसा, प्रेम, सहानुभूति, उसकी कृति का मूल्याकन, इत्यादि बातो की भी आवश्यकता होती है। इसके लिये वह सभी सम्भव उपाय करता है। मैंने यह भी पढा है कि कुछ थोडे से प्राणियो को छोड कर अधिकाश प्राणियो में सामूहिक जीवन की प्रवृत्ति होती है। मनुष्य प्राणी तो नितान्त सम्पर्क प्रिय है, वह समूह के बिना रह ही नही सकता। मैं सोचता हूँ कि आदि मानव ने जब समूह बनाये होगे तो वे प्रेम, सहानुभूति, कर्तृत्व और प्रशसा का आदान प्रदान करने के लिये ही किये होगे। एक दूसरे के साथ लडने के लिये निश्चित ही उन्होने समूहो का निर्माण नही किया होगा। किसी को कोई चीज प्राप्त करने का मार्ग अन्याय करके बन्द कर दिया गया है यदि किसी को दिखाई दे तो कौन समझदार व्यक्ति होगा जो इस अन्याय की सराहना करेगा? वह तो उसके निराकरण का ही उपाय करेगा।

क्या मैं स्वत. को अपराधी मान सकता हूँ? किसी को अपराधी मानने के दो लक्षण है। एक वैध और दूसरा नैतिक। वैध यदि कहो तो मैं किसी भी रूप में स्वय को अपराधी नही मानता। नैतिक के विषय में मेरा कहना है मान लो कि 'अ' मेरा अधिकारी है। और 'ब' 'अ' का वरिष्ठ अधिकारी है। मुझे 'अ' से कुछ शिकायत है। वह मैं 'ब' के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ। मेरी शिकायत यदि 'अ' के सामने आने से पूर्व 'ब' के पास गई तो वह निश्चित ही अनुपयुक्त होगी। एक और उदाहरण देता हूँ। तुम जो मुझे प्रेम पत्र लिखती हो उसके विषय में यदि तुम्हारी यह धारणा हो जाय कि अमुक अधिकारी उन पत्रो को पढता है और उस अधिकारी के सम्मुख ही हम दोनो को भेंट का अवसर प्राप्त हो तो तुमको मेरे साथ बात करने में सकोच होगा कि नही? उसी प्रकार कई बातें वरिष्ठ अधिकारियो तक जाने की नही होती। छिपाने की दृष्टि से नही। अपितु साधारण बात होने के कारण मैं ऐसा लिख रहा हूँ। दो मित्र परस्पर जो वार्त्तालाप करेंगे उसका प्रत्येक शब्द ही सुमधुर नही होता।

परन्तु सिन्धु खुले मन के अधिकारियो से खुले मन से बात करने में मुझे कभी भय नही लगता। और न कभी किसी प्रकार का संकोच ही हुआ। वह फिर कोई बन्दीगृह का छोटा सा अधिकारी हो अथवा न्यायालय का न्यायाधीश। मुझे

जो कुछ लगता था वह मैं सम्बन्धित अधिकारियो को उसी समय कह कर अपने मन का बोझ हलका कर लेता रहा हूँ।

अधिकारियो के सौजन्य से मैं अनावश्यक और अधिक लाभ उठा लेता हूँ, ऐसी यदि किसी कि धारणा होगी तो उसको दूर करने का मेरे पास कोई उपाय नही है। तुमको एक बात कहता हूँ। कुछ अधिक सम्पर्क मे ऐसा भी होगा कि कुछ विशेष सुविधाओ के लिये बन्दी चुनने हो तो उनमें मैं निश्चित रूप में आ सकता हू, ऐसा अधिकारी भी सोचेंगे ही।

और उपसहार रूप मे मैं तुमको इतना ही विश्वास दिलाता हूँ कि इस विषय में तुमको किंचित् भी व्यथित नही होना चाहिये। अधिकारियो को मुझ पर कभी कोई एक्शन लेना पड जावेगा, ऐसा कार्य मैं कभी नही करूंगा। न ही मैं कोई ऐसा कार्य करूंगा जिसके लिये मुझे लज्जित होना पडे।

इसी प्रकार का मेरा व्यवहार और प्रवृत्ति रही तो मैं समझता हूँ कि इससे तुम्हें भी सन्तोष ही होगा।

पत्र बहुत लम्बा हो गया है।

सदैव तुम्हारा ही
गोपाल

पूर्ति बुधवार रात्रि ११ बजे
१५-७-५९

इसके बाद अभी मुक्ति नही मिल सकती, इस प्रकार का जब पुन. निर्णय आया तो उससे कुछ दिन तक मन बहुत अस्वस्थ रहा। मैं निरन्तर यही विचार करता था कि मुझ पर जो अन्याय किया जा रहा है उसका प्रतिकार किस प्रकार हो सकेगा। अथवा मैं किस प्रकार इसको प्रकट करू, यही मैं दिन रात सोचता था। क्या इस विषय में न्यायालय में जाया जा सकता है? क्या संविधान में इस सम्बन्ध में अपने लिये कोई सुविधा है? इस विषय में एक्ट की भावना क्या है? कौन से अधिकार के आधार पर अपनी प्रार्थना प्रस्तुत की जा सकती है? इनमें से किसी बात का भी ज्ञान मुझे नही था।

मैं केवल एक बात जानता था। वह यह कि मुझ पर अन्याय हुआ था और न्यायालय में अन्याय का निराकरण होता है। न्यायालय धनी-निर्धन, दण्डित स्वामी-सेवक, शासक-शासित, इस प्रकार का कोई भेदभाव नही करता ऐसा मेरा विश्वास था।

यह प्रश्न ही एक अलग प्रकार का था। आजीवन कारावास का अर्थ क्या होता है? सजा के कार्यवहन में प्रभारी शासन-सस्था का अर्थात् एक्जीक्यूटिव का

कितना अधिकार है ? न्यायालय कहा हस्तक्षेप कर सकता है ? ऐसे प्रश्नो की कदाचित कभी चर्चा मात्र ही हुई होगी बस उतना हो उसके आधार पर मेरा ज्ञान भी था। वकीलो के लिये भी यह सदैव आनेवाले विषयो में से नही था अत स्वाभाविक ही वकील वर्ग भी इससे अभ्यस्त नही हो सकते थे।

अगस्त १९५७ में मैंने अपने वकील के द्वारा बम्बई उच्च न्यायालय में बम्बई प्रत्यक्षीकरण याचिका–हैबियस कार्पस पैटिशन–प्रस्तुत कराई थी। न्याया-लय ने उसे लौटा दिया था। वकीलो का भी दोष नही था। क्योकि उनके लिए भी यह विषय ही नया था। इसलिए उसके सभी प्रकरणो पर भलीभाति विचार नही किया जा सका। किन्तु इससे तो मेरा समाधान सम्भव नही था।

सविधान, भारतीय दण्ड विधान–इडियन पीनल कोड, दण्ड सहिता क्रिमिनल प्रोसिजर कोड, बदीगृह निर्बन्ध-प्रिजन्स एक्ट आदि आदि कई पुस्तके मैंने मगाई। देहली के एडवोकेट श्री गणपत राय से पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क स्थापित किया। अपनी याचिका स्वय प्रस्तुत करूँ, इसके लिए स्वय को तैयार किया और दिसम्बर १९५७ में मैंने अपना पहला आवेदन सर्वोच्च न्यायालय को भेज दिया।

* * *

चौदह

यन्त्रणा

अपनी लिखावट सुधारने के लिये एक एक अक्षर का बार-बार अभ्यास किया जाता है। उसी प्रकार मैं भी सर्वोच्च न्यायालय के विषय में प्रयत्न कर रहा था। कभी न्यायालय बुला लेता और पूर्व श्रवण के उपरान्त पाच मिनट में ही आवेदन वापस कर देता। कभी पूर्व श्रवण के अवसर पर तो आवेदन को स्वीकार कर लेता परन्तु अन्तिम श्रवण के समय कुछ टेकनिकल अडचन उपस्थित कर देता और आवेदन वापस लेना पड जाता। कभी न्यायालय स्वयं आवेदन पढता और उसमें कुछ उल्लेखनीय तत्व न पाकर मुझे बिना बुलाये ही आवेदन अस्वीकार कर देता। कभी तो रजिस्ट्रार महोदय आवेदन को देख कर वापस कर देते। कुछ तकनीकी दोषों के कारण ऐसा सदैव होता रहता था। यह सब यातनाएँ मैं सहन करता था।

मेरा मन स्वस्थ नही था। शासन बलवान हो सकता है, किन्तु वह न्यायशील नही था। किन्तु यह बात सिद्ध करना मेरे वश में नही था।

प्रत्येक पराजय के अवसर पर मेरे ज्ञान में कुछ न कुछ वृद्धि होती। उसकी सहायता से ही मैं आगे का प्रयत्न करता। दिसम्बर १९५७ से अगस्त १९६४ तक की अवधि में मैंने २२ आवेदन पत्र प्रस्तुत किये थे।

वकील के द्वारा यह कार्य कराना मेरे लिये सम्भव नही था। क्योंकि मात्र वकील को खडा करने से ही कार्य सम्पन्न होनेवाला नही था। एक्ट की सूक्ष्म धारायें ध्यान में बैठाना नितान्त आवश्यक था। और किसी भी वकील को इतनी

गहराई से छान वीन करने का अवसर मिलना सम्भव नही था। मुझे यदि अवकाश पर छोडा होता तो तव कदाचित यह सम्भव हो सकता था। क्योकि तव मैं आराम से अवकाश के क्षणो की भाति एक्ट का एक एक अक्षर और एक-एक पंक्ति का गहन अध्ययन कर वकील के ध्यान में लाता रहता। इसके अतिरिक्त आर्थिक प्रश्न भी था। केवल ड्राफ्ट तैयार करने में ही सैकडो रुपये लगते थे। यह सव मेरे लिये सम्भव नही था।

कभी कभी वकीलो से परामर्श कर लिया करता था। किन्तु जव उन्हे विदित होता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक आवेदनो को अस्वीकार कर दिया है तो फिर उनका उत्साह विलुप्त हो जाता और वे आगे कार्य करने के लिये प्रोत्साहन नही देते थे। कोई वकील यह सम्मति दिया करते कि शासन से ही विनती कर मुक्ति का मार्ग खोजा जाय। भले ही उनके कथन में ममत्व हो किन्तु शासन के पास जाने का कोई कारण नही था और न मार्ग ही। मुझे न्याय चाहिये था, उसके लिये कोई सविधान विशेषज्ञ यदि सहायता करता तो वह चाहिये थी। मेरा अधिकार न्यायालय द्वारा प्रस्थापित करा लेने की मेरी इच्छा थी। मेरे सद्व्यवहार एव सौजन्य को मुख्य मान कर उनके आधार पर मुझे मुक्ति चाहिये थी।

दि० २१-११-५७ को मैंने 'पिटीशन इन द नेचर ऑफ हैवियस कौर्पस न० १४४, १९५७ से सर्वोच्च न्यायालय में आवेदन किया था। मैंने स्वय आवेदन प्रस्तुत करने की अनुमति मांगी थी।. उस विनती के अनुसार मुझे न्यायालय में प्रस्तुत करने का आदेश न्यायालय ने भेज दिया था।

पूर्व श्रवण के लिये २३-१२-५७ की तिथि निश्चित की गई। उसके ४-५ दिन पूर्व ही मुझे दिल्ली के वन्दीगृह में लाया गया था। प्रात ९-३० तक न्यायालय पहुँच गया था। उस समय सर्वोच्च न्यायालय संसद भवन के एक भाग में लगा करता था। न्यायालय के प्रागण में पहुँचने पर वास्तुकला का वह नमूना मैंने तव पहली वार ही देखा था। ऊचा न्यायासन, सुन्दर कुर्सियाँ, वकीलगण और प्रेक्षको के वैठने के लिए सामने सजाई गई गद्देदार कुर्सियां, पदचाप न हो एतदर्थ विछाये गये गलीचे, मन्यरगति से घूमनेवाले पखे, अदृश्य दीपो का प्रकाश, इस प्रकार की सजावट थी उसकी। सर्वोच्च न्यायालय का अपना भवन उन दिनो लगभग ८० लाख के व्यय से वनवाया जा रहा था। लगभग ७-८ मास वाद अर्थात् ४-८-५८ को उस भवन का उद्घाटन हुआ और फिर सर्वोच्च न्यायालय को संसद भवन से वहा स्थानान्तरित किया गया था।

सर्वोच्च न्यायालय की भव्यता देखने का अवसर मुझे प्रथम वार ही मिल रहा था। मैं न्यायालय में जा कर वैठा। वकील आ रहे थे। किसी अन्य के कानो में स्वर न पहुँच जाय इतने मन्द स्वर से वे परस्पर वार्तालाप कर रहे थे।

जिस प्रकार मनुष्य कोलाहल से भौंचक्का-सा हो जाता है उसी प्रकार कृत्रिम शान्ति भी अखरती है। स्वभाव के विपरीत लादी गई उस शान्ति से एक प्रकार के तनाव का सा आवरण मेरे मन पर चढ रहा था।

स्वतन्त्र भारत के सर्वोच्च न्यायालय की भाषा अग्रेजी है। अग्रेजी में ही आवेदन स्वीकार किये जाते है, अग्रेजी में ही उसे प्रस्तुत किया जाता है और अग्रेजी में ही तर्क वितर्क किये जाते है तथा अग्रेजी में ही निर्णय सुनाया जाता है। आज तक यही प्रथा स्थिर है।

वकील समुदाय में लगभग ५० वर्ष से अधिक आयु के जन ही दिखाई देते थे। विधान का पठित ज्ञान होने के साथ साथ अनुभव के आधार पर अर्जित ज्ञान भी उनके पास समझा जाता था।

वकीलो की तुलना में मेरा ज्ञान कितना है, मेरी शिक्षा कितनी है, अनुभव कितना है, इन विचारो से मन में उथल पुथल सी होती थी। इस प्रकार के वातावरण में मैं अपने विचारो को ठीक प्रकार से व्यक्त भी कर पाऊंगा अथवा नही इस प्रकार का भय भी मन में उठता था। परन्तु एक विश्वास यही था कि मेरी शिक्षा, आयु, अनुभव और ज्ञान की बातें जान लेने पर भी न्यायालय मेरी तुलना वकीलो से नही करनेवाला था। मैं अपना विषय स्वयं ही प्रस्तुत करने वाला था इसलिये मुझे किसी वकील से स्पर्धा भी नही करनी थी।

मेरे केस में पांच न्यायाधीशो की न्यायपीठ बैठी थी। सवैधानिक प्रश्नो पर प्राय पांच न्यायाधीशों की पीठ का ही विधान है। अपनी शिकायत मैंने उनके सम्मुख प्रस्तुत की। एक एक न्यायाधीश मुझसे प्रश्न पूछते थे मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उनका उत्तर देता था। १५ मिनट की चर्चा के बाद पूर्व श्रवण में ही आवेदन लौटा दिया गया।

मुझे मिली छूट पर शासन ने विचार नही किया और उसका लाभ मुझे नही मिला ऐसी धारणा न्यायाधीश महोदय की बनी किन्तु उसको सिद्ध करने के लिये मेरे पास किसी प्रकार का प्रमाण नही था। मेरी रिपोर्ट बुक मेरे पास विद्यमान नही थी, जिसमें कि वह सब अकित होता है। आवेदन लौटा दिये जाने पर ३-४ दिन में ही मैं वापस नासिक आ गया। तुरन्त ही मैंने दूसरा आवेदन लिखना आरम्भ किया। दि० २-१-५८ को अधीक्षक के हाथ में मैंने आवेदन-पत्र दे दिया और उसके ४-५ दिन बाद प्रतिज्ञापत्र दिया।

उस दूसरे आवेदन में मैंने न्यायाधीश की धारणा की पुष्टि की थी और शका का निराकरण भी। मेरा कथन था कि अवकाश को मैंने अर्जित किया था शासन उसका अपहरण नही कर सकता था। दि० ८-२-५८ को मुझे बताया

गया कि १७-२-५८ की तिथि पूर्व श्रवण के लिये नियत की गई थी। मुझे न्यायालय में उपस्थित रहने का आदेश न्यायालय ने अधिकारियो को दिया था।

दि० १७-२-५८ को २५ मिनट तक चर्चा हुई। न्यायाधीश को मेरी बात समझ में आई तो उन्होने शासन से उत्तर देने के लिये कहा। तथा इसके लिये दि० ३-३-५८ की तिथि निश्चित की गई। यह मेरी अर्जी १९५८ की पिटीशन न० १० थी।

शासन ने नियत तिथि पर अपना उत्तर दिया। उसके आधार पर निर्णय मेरे विरुद्ध हुआ। न्यायाधीश ने अपने निर्णय में जेल के मैनुअल का हवाला देते हुए लिखा कि जेल मैनुअल के नियमो के आधार पर आजन्म कारावास का दण्ड भुगतनेवाले का दण्ड दण्ड-सहिता की धारा ४०१ के आधार पर रोकना पडता है। शासन ही उस अधिकार का प्रयोग कर सकता है। अत आजन्म कारावास के दण्डित की मुक्ति केवल शासन ही कर सकता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि दण्ड सहिता की धारा ४०१ शासन को दया का उपयोग प्रदान करने के लिये है।

उसके बाद भी मैं आवेदन करता रहा। कभी न्यायालय मुझे बुला लेता। परन्तु कारागारसहिता के नियमो को निरुपाय करनेवाला उपाय मेरे पास न होने के कारण मुझे वापस आना पडता था।

दि० ५-९-६० को मेरे सातवें आवेदन के पूर्व श्रवण की तिथि नियत हुई। उस सुनवाई के बाद न्यायालय ने शासन को उत्तर देने के लिये कहा और दि० १२-१०-६० को अन्तिम श्रवण के समय कतिपय टेकनिकल कठिनाइयो के कारण आवेदन को वापस कर दिया गया। तुरन्त दूसरा आवेदन कर उस टेकनिकल कमी को दूर करना आवश्यक था। दिल्ली बन्दीगृह से ही मैंने अपना अगला अर्थात् आठवा आवेदन पत्र प्रस्तुत किया। उसके बाद मुझे फिर नासिक भेजा गया।

दि० १४-१०-६० को उस आठवें आवेदन की पेशी हुई थी। शासन को उत्तर देने के लिए कहा गया था। दि० २३-१०-६० को आवेदन पर दो घंटे चर्चा हुई। तब निर्णय को सुरक्षित रख लिया गया था। मेरा समाधान नही हुआ था, क्योकि मेरा मन कहता था कि यह सुरक्षित निर्णय मेरे विरुद्ध ही जायेगा।

सर्वोच्च न्यायालय ने उसे ही पुष्ट प्रमाण मानकर उसके आधार पर अपना निर्णय दिया। विषय की गहनता को देखने का उन्होने भी यत्न नही किया। उसी निर्णय में न्यायाधीश ने आगे लिखा कि आजन्म निष्कासन या आजन्म कारावास प्रथम-दर्शनी वन्दी की अवशिष्ट आयु तक निष्कासन अथवा बन्दीवास, इस प्रकार का अर्थ ग्रहण करना चाहिये। मृत्यु का दिन किसी को ज्ञात नही हो सकता इस कारण उसमें से छूट नही काटी जा सकती। अत छूट का आधार लेकर दण्ड की अवधि पूर्ण होने का वाद प्रस्तुत नही किया जा सकता। दण्ड सहिता ४०१ के अनुसार आज्ञा प्रसारित किये बिना वन्दी को स्वतन्त्रता का अधिकार नही है। यह उस निर्णय का सार सक्षेप था।

रोग से उसका उपाय जिस प्रकार कई बार अधिक कष्टदायी होता है वैसी ही मेरी स्थिति हो गई थी। धारा ४०१ में तो मात्र दया का ही अधिकार निहित था। उस पर अडे रहते हुए वन्दी को तडफा-तडफा कर मारने का अधिकार शासन को उसके द्वारा प्राप्त हो गया था। वन्दी अच्छा व्यवहार करे अथवा बुरा काम करे अथवा न करे, छूट प्राप्त करे अथवा न करे, अधिकारियो की आज्ञा का पालन करे अथवा न करे, किन्तु उसको मुक्ति शासन की इच्छा से ही प्राप्त हो सकती है। यही मुख्य लक्ष्य रह जाने के कारण वन्दी को दिये जानेवाले सामान्य न्याय प्राप्त करने का भी अधिकार नहीं रह गया।

वन्दी के अपने सद्व्यवहार के आधार पर सजा की छूट प्राप्त कर लेने पर भी यदि कोई अन्य कारण इसमें बाधक बन भी जाय तो भी उसका सद्व्यवहार मुख्य मानकर उसकी मुक्ति में सहायक सिद्ध हो इस प्रकार का कोई नियम ही नही रह गया था। शासन जिसको चाहे दो वर्ष में छोड दे, पाच वर्ष में छोड दे, किसी को सजा प्रारम्भ होने से पूर्व ही छोड दे, किन्तु जिसके प्रति उसकी कुदृष्टि हो गई उसने कितने ही दीर्घ काल तक प्रत्यक्ष कारावास भुगता हो, कितनी ही छूट प्राप्त की हो परतु जब तक उसके तन में प्राण है, हृदय में धडकन है, जब तक उसकी सजा पूर्ण नही हुई और उसको वन्दी बनाये रखने का स्वयं को अधिकार प्राप्त है ऐसा मानकर किसी को मुक्ति की आज्ञा ही न दे इस प्रकार के अन्याययुक्त व्यवहार के लिये शासन को स्वतन्त्रता मिल गई।

शासन रूपी अन्धकार में चलनेवाले अन्याय न्यायालय रूपी प्रकाश में स्पष्ट करने का सामर्थ्य किसी वन्दी में शेष नही रह पाता। यही कारण है कि सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख भी वह बात स्पष्ट नही हो पाई और सम्भवतया मै स्वय ही अपना पक्ष भली प्रकार प्रस्तुत न कर पाया होऊ, यह भी हो सकता है। क्योंकि न्यायाधीश के उस निर्णय से कुछ ऐसा ही आभास भी मिलता था कि मैं अपनी बात उनके सम्मुख स्पष्ट नही कर पाया हूँ।

आजीवन कारावास का अर्थ है किसी की स्वतन्त्रता का अपहरण न कि उसके जीवन का अपहरण। जीवन का अपहरण करने के लिये विधान की एक-एक लिखित धारा है, वह अर्थात् मृत्युदण्ड देने की धारा। आजीवन कारावास उससे कुछ कम ही माना जाता है। इस दूसरी सजा का पर्यवसान पुन स्वतन्त्रता प्रदान करने में हो सकता है मृत्यु देने में नही। क्योकि मृत्यु देने के लिये दूसरा विधान हैं। और मृत्यु दण्ड देने के वाद स्वतन्त्रता प्रदान की गई ऐसा नही कहा जा सकता। इस वस्तुस्थिति और तर्क पर आधारित धारायें विचारणीय थी। क्योकि आजन्म कारावास का अर्थ मृत्युदण्ड नही है अत. इसका विश्लेषण करने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है।

जो जल हमारी आखो को शुद्ध दिखाई देता है उसी जल से रोग भी उत्पन्न होते है, ऐसा सासारिक नियम है। ऐसी अवस्था में सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षण करने के उपरान्त रोग दूर करने के उपाय किये जाते है। इसी प्रकार मेरी स्थिति मे भी न्यायालय उस सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र का कार्य करे, ऐसी मुझे अपेक्षा थी।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से मैंने स्वय को असहायावस्था में पाया। उस निर्णय को किस प्रकार वदला जाय, किसके सम्मुख प्रकट करने से वदला जा सकता है। वन्दी अपनी मृत्यु का दिन नही वता सकता। शासन भी वह दिन नही वता सकता। वन्दी को छूट देना यदि नियमित था तो उस छूट को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व क्या छूट देनेवाले पर नही होना चाहिये? आजन्म कारावास का वन्दी अपनी मृत्यु का दिन नही वता सकता इसलिये उसको प्रदान की गई छूट का प्रयोग उसकी सजा कम करने में नही किया जा सकता, इस वात पर यदि शासन को दृढ रहना था तो फिर उसने हमको यह क्यो कहा था कि हम रक्तदान करें और उसके वदले में छूट अथवा पैसे प्राप्त कर लें, ऐसा आजन्म कारावास के वन्दी को क्यो कहा जाता रहा था। यह किस नियम के आधार पर किया गया था? वन्दी का रक्त लेकर उसको झूठे आश्वासन इस कारण दे देना क्योकि वह विवश है और पूर्णतया शासन के अधिकार में है? कारावास से वाहर यदि इस प्रकार का कोई व्यवहार करे तो शासन उसको दण्ड का भागी मानता है। हमारी स्थिति में शासन वलवान था, किन्तु वह विश्वसनीय नही रह गया था, न्यायनिष्ठ नही रह गया था। सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय को मान्य करना मेरे लिये कठिन हो रहा था और उसे अमान्य कर उसके सम्मुख ही उसके टुकडे कर दू ऐसा सामर्थ्य भी मुझे में नही था।

मैंने जो छूट प्राप्त की थी उसके सम्बन्ध मे न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि "हमें ऐसा नही, प्रतीत होता कि शासन अनुचित व्यवहार करेगा।" उचित

और अनुचित की व्याख्या किये बिना ही न्यायालय ने अपनी सम्भावना को व्यक्त किया था। न्यायालय ने जिस प्रकार की आशा अपने निर्णय में व्यक्त की थी विधान की दृष्टि से वह शून्य के समान थी। पंजाब उच्च न्यायालय द्वारा मेरे विषय में अपने निर्णय में व्यक्त किये गये दयाभाव को शासन ने किस प्रकार ठुकराया था वह मैं जानता था। न्यायालय के शब्द को मान देने का अर्थ है अपने प्रतिशोध की भावना को समाप्त करना, इस विचार से उस समय के शासकों ने न्यायालय के अभिमत को ठुकरा दिया था। इस कारण सर्वोच्च न्यायालय की इस आशा की अभिव्यक्ति को कि "शासन अनुचित रीति से वर्ताव करेगा, ऐसा नहीं लगता" शासन कितना महत्व देगा यह मैं मन ही मन जानता था। फिर मुझे न्यायालय से जो चाहिये था वह दया का पत्र नहीं अपितु मुझे अपनी स्वतन्त्रता का अधिकार चाहिये था। किन्तु सम्भावना यही बढ़ती जा रही थी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के अपने प्रयत्नों में मैं कदाचित अपना जीवन ही खो बैठूं। इसके लिये शासन को कोई अतिरिक्त कठिनाई होनेवाली नहीं थी। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर धारा ४०१ के अन्तर्गत देने की आज्ञा कभी दी ही नहीं जायगी। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा अपना अन्याय छिपाने का बहुत बडा साधन सरकार के हाथ में आ गया था।

इस निर्णय की प्रतिध्वनि समाचार पत्रों में भी उठी थी। किसी ने तो इस प्रकार की आशंका भी व्यक्त की थी कि सरकार को दिये गये इस अनिर्बंध अधिकार का उपयोग कभी अन्यायपूर्ण रीति से भी हो सकता है।

इस निर्णय को सुन कर जितना मैं विचलित हुआ था उतनी ही मेरी पत्नी भी विचलित हुई थी। अपने हृदय के उद्गार निकालने के लिये उसने मराठी भाषी दैनिक "मराठा" में प्रकाशनार्थ एक पत्र भेजा था। आचार्य अत्रे ने वह सम्पूर्ण पत्र २६-१-१९६१ को प्रकाशित किया। मेरी पत्नी की मन स्थिति इस निर्णय से कैसी हो गई थी उसका आभास उस पत्र से मिलता है। पत्र इस प्रकार था —

"दि० १३-१-६१ के अंक में मेरे पति श्री गोपाल विनायक गोडसे को दिये गये दण्ड और मुक्ति के सम्बन्ध में आप द्वारा लिखित सम्पादकीय पढा। अपने इस लेख में आपने मेरे पति पर किये जानेवाले अन्यायों में से एक अन्याय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया, इसके लिये मैं आपकी आभारी हूं।

दुर्भाग्य की बात तो यह है कि सरकार स्वयं को राज्यकर्ता न समझ कर राजा ही समझती है। आजन्म कारावास के किसी बन्दी की सजा को तो हम उसके प्रारम्भ होने से पूर्व ही क्षमा कर उसको मुक्त कर दें और दूसरे को इतनी सजा दें कि जिसे भुगतना हुआ हो वह प्राण त्याग दे। किन्तु इसके सम्बन्ध में

कोई हमसे न पूछे कि ऐसा क्यो किया गया है ? किसी को छोडना अथवा न छोडना यह सब पूर्णतया हमारे विचार करने का प्रश्न है। जिसके ऊपर हमारी कृपा होगी उस वन्दी की छूट को हम सोना और जिस पर अवकृपा होगी उसकी छूट को हम मिट्टी समझेंगे। इस प्रकार का सरकारी व्यवहार होता है, ऐसा हमारा अनुभव है। श्री गोपाल गोडसे के विषय मे पंजाब उच्च न्यायालय के तीनो न्यायाधीशो द्वारा व्यक्त किये गये इस अभिमत को कि उनकी सजा को कम किया जाय जहा सरकार ने कोई मान्यता नही दी वहा उनको वन्दीकाल में उनके सद्व्यवहार के कारण प्राप्त छूट को भी अस्वीकार कर दिया गया। यह क्या आश्चर्य की बात नही ? किन्तु शासन का कृपा प्रसाद प्राप्त करना सरल नही।

जिस समय श्री गोपाल गोडसे को सजा दी गई थी उस समय वे शासको के राजनीतिक दल के चार आने के सदस्य भी नही थे तब उनको किस प्रकार शासन का कृपा प्रसाद हो सकता था ?"

इसके बाद तुलनात्मक दृष्टि से मेरी पत्नी ने एक और उदाहरण दिया था। तीन हत्याओ में आजन्म कारावास की सजा भुगतनेवाले एक व्यक्ति पर शासन ने किस प्रकार कृपा की और उसको कितनी शीघ्रता से मुक्त किया इसका विवरण दे कर उसने यह बताया था कि चूँकि वह व्यक्ति अर्थात् वह अभियुक्त एक तालुका काग्रेस कमेटी का पदाधिकारी था। तब मेरी पत्नी ने लिखा—"उसको मुक्त किया गया, इसमें मुझे कोई रोष अथवा उस व्यक्ति से द्वेष नही है। प्रश्न केवल यही है कि नियमो का किस प्रकार नियमन होता है। किस बात को परख कर बिना दण्ड भुगते वन्दी को मुक्त कर दिया जाता है और किस बात के आधार पर अवधि पूर्ण होने पर भी वन्दी को कारावास में ही रखा जाता है, यह पूछने का अधिकार यदि न्यायालय को भी नही तो फिर जनता को किस प्रकार हो सकता है ? यह तो राजा की मनमर्जी हुई।

"सावित्री ने यम से याचना कर अपना पति पुन प्राप्त कर लिया। उसी प्रकार वर्तमान यम रूपी सरकार से प्रार्थना कर मैं अपना पति पुन प्राप्त कर सकूगी ऐसी मेरी भावना थी। मैंने विनम्र विनती की, मन्त्री और उपमन्त्री के सम्मुख आवेदन किये, वह 'विचार करेंगे, 'शर्त पर छोडेंगे', 'आवेदन भेज दो', इस प्रकार आश्वासन मिलते थे। भोलेपन से आवेदन भेजे, अनेक स्मृतिपत्र भेजे, और छ मास बाद उत्तर आया "आपकी विनती पर विचार नही किया जा सकता।" बम्बई विधान सभा ने उनकी मुक्ति का दिन १०-२-६० घोषित किया था। उसके सम्बन्ध में सभापति को लिखा। उनका उत्तर आया कि "मैं कुछ नही कर सकता। आप इस सम्बन्ध में गृह विभाग से पूछताछ कीजिये।" गृह विभाग से

पूछा तो उसने कह दिया, "वह केवल जैसा तैसा उत्तर था अर्थात् पूछनेवाले को मुँह देखा उत्तर—वह तो वास्तविक उत्तर नही था। इसके लिये केन्द्र सरकार से जानकारी प्राप्त करो। केन्द्र सरकार ही इस विषय में ठीक ठीक उत्तर दे सकती है। इसके साथ ही वन्दी का वर्ताव भी अच्छा होना चाहिये।" वन्दी का वर्ताव अच्छा है इस प्रकार का वन्दीगृह का प्रमाण पत्र लेकर वम्बई राज्य के पास गये तो उन्होने उत्तर दिया, "यह तो ठीक है, परन्तु यह हमारी इच्छा का प्रश्न नही है। और वास्तविकता तो यह है कि हमने केवल उसको अपने प्रान्त में रखा हुआ ही है, वास्तव में तो वे केन्द्र शासन के ही वन्दी है।" इस प्रकार अनेक वर्षो से शासन तथा उसके विभिन्न अंग मेरे साथ छल-कपट का व्यवहार करते रहे हैं। सावित्री की उस पौराणिक गाथा की एक महत्वपूर्ण बात मेरे ध्यान से भूल गयी थी। वह यह कि यम को "हृदय" था। (किन्तु भारत का कांग्रेसी शासन अर्थात् उसके शासक हृदयविहीन अथवा कलुषित हृदय के व्यक्ति सिद्ध हो रहे थे)।

गोपाल के विषय में पंजाव उच्च न्यायालय ने जो अभिमत व्यक्त किया है उस पर यदि इस समय विचार नही किया गया है तो कम से कम उसके आजन्म कारावास के १४ वर्ष पूर्ण हो जाने पर तो विचार किया ही जावेगा, इस आशा से उनके माता-पिता प्राण धारण किये हुए थे। एक पुत्र को मृत्यु दण्ड दिया गया था और दूसरा आजन्म कारावास भुगत रहा था, इन आघातो से वे पहले ही पर्याप्त दुर्वल हो गये थे। ऐसी अवस्था में जव उन्होने यह सुना कि परीक्षण समिति का निर्णय है "१५ वर्ष प्रत्यक्ष अर्थात् छूट के दिनो को भी कारावास के रूप में विता कर २५ वर्ष से अधिक अवधि होने पर १४ वर्षो के प्रतिवृत्त को विचारार्थ भेजा जाय। उसके वाद ही छोडने अथवा न छोडने के विषय में विचार किया जा सकेगा।"

न्यायालय के अनुकूल अभिमत की इतनी प्रतिक्रिया, इतनी उपेक्षा क्या किसी राज्य ने कभी की होगी? न्यायालय के निर्णय रूपी इस पत्थर के सिर पर पडने पर अव गोपाल को स्वतन्त्ररूप में जीवित देखना हमारे लिये सम्भव नही, इस प्रकार की धारणा उनके माता पिता की वनी और १५-२० दिन के भीतर ही उन्होने नासिक वन्दीगृह में उनसे भेंट की। वन्दीगृह की दो तीन सीढिया चढने की शक्ति भी उनकी माता जी में नही थी। २० मिनट उनकी भेंट हुई। वडे निर्विकार रूप से २० मिनट पूर्ण होने पर अधिकारियो ने माता-पिता से उठने के लिये कहा और उनकी माता जी सीढियो से उतरते ही जो नीचे बैठी कि फिर कभी उठ ही नही सकी। ३-४ दिन में ही उनका देहान्त हो गया। गोपाल से स्वतन्त्र रूप में मिलना होता तो अच्छा होता, इसके अतिरिक्त अन्त समय

में उनके शब्द भी क्या हो सकते थे ? माता जी की मृत्यु से पिता जी का दुःख और बढ गया। थोडे दिनो में उन्होने भी शरीर त्याग दिया।

स्वतन्त्रता के उपरान्त आजन्म कारावास के बन्दी को अन्दमान नही भेजा जाता। नियम बदल गये हैं। किन्तु गोपाल के लिये भारत में ही अन्दमान निर्माण किया गया है। माता-पिता जी के जीते जी शासको ने उनको मुक्त नही किया, थोडे दिनो के लिये भी अवकाश नही दिया। नियमो के भीतर रह कर भी किस प्रकार की क्रूरता का बर्ताव कर सकते है, ब्रिटिशर्स की अपेक्षा हम कितने बुद्धिमान है यह सिद्ध कर के शासन ने आसुरी आनन्द का उपभोग किया। उसी शासन ने आज मेरे मुख से उर्मिला के शब्द कहने के लिये बाध्य किया है जिन्हें स्व० मैथिली शरण गुप्त ने अपने काव्य में इस प्रकार सजोया है-

पति को निष्कासन मिला, मुझको कारागार।
मृत्यु दण्ड उस तात को, राज्य तुझे धिक्कार॥

अन्तर केवल इतना ही कि उर्मिला पर आपत्ति आई थी राज्य लालसा के कारण उत्पन्न हुई घटनाओ के कारण, इसलिये उन्होने राज्य को धिक्कारा और मुझ पर जो आपत्ति आई है वह शासको के क्रूर बर्ताव के कारण। इसलिये मुझे राज्य को और क्रूरता का पालन करनेवाली सत्ताान्धता को धिक्कार करना पडा है। न्याय में पक्षपात न करनेवाले राज्यकर्ता राज्य करें।

आपकी
सौ० सिन्धु गोडसे

मैंने पुन निश्चय किया कि सर्वोच्च न्यायालय में जाया जाय। समाचार पत्रो में कभी कभी बन्दियो और वन्दीगृहो के सम्बन्ध में जानकारी आया करती थी। मैं उनको अंकित कर लिया करता था। न्यायालयो के निर्णय प्रकाशित होने पर अपने अनुकूल लगनेवाले टुकडो को भी मैं पढ कर उसको लिख लिया करता था। अब तक के अपने न्यायालयीन प्रयत्नो से भी मुझे थोड़ा बहुत अनुभव हो गया था। उन सभी का उपयोग करके पुन. नया आवेदन पत्र तैयार किया जाय, ऐसा मैंने निश्चय किया।

निर्णय के बाद लगभग ३-४ मास तक मेरा मस्तिष्क उसी दिशा में विचार करता रहा। नित्य के व्यवहार के आधार पर निश्चित ही परिणाम निकलता था अत कार्य में बाधा न डालते हुए मुझे अपना लेखन कार्य चालू रखना था। परतु व्यक्तिगत नित्यक्रमो में मेरा ध्यान नही था। कभी नहाने के लिये जाता और बिना नहाये ही वापस आ जाता और फिर थोडी देर में ध्यान आता कि मैंने तो स्नान ही नही किया। कुछ दिनो मैं बीमार रहा। डाक्टर ने गरम पानी से स्नान

करने के लिए कहा था। एक दिन गरम पानी की बाल्टी मैंने नल के नीचे लगा दी। पानी भरता जाता और मैं बरतन भर भर के अपने शरीर पर डालता जाता। पानी की उष्णता कभी की समाप्त हो चुकी थी फिर भी मैं स्नान किये जा रहा था।

एक बार ऐसा भी हुआ कि विचारो की तन्मयता में ही मैं स्नान कर रहा था कि सहसा उठा और मन में विचार आया कि मन में जो विचार सकलित हुए है उन्हें तुरन्त लिपिवद्ध कर लिया जाय। इस दृष्टि से मैं स्नान करते ही उठा और अपनी कोठरी की ओर चल दिया। मन में मेरी यह कल्पना थी कि मैं वस्त्र धारण किये हुए हूँ। कुछ पग आगे जाने के बाद ध्यान आया कि मैंने तो वस्त्र ही नही बदले है, तब लौटा और वस्त्र बदल कर फिर बाहर आया। पागल की परिभाषा यद्यपि मुझ पर पूर्णतया लागू नही हो सकती थी, किन्तु आज यदि मैं विचार करता हू तो सोचता हूँ कि वह उससे कम की भी कोई स्थिति नही थी। यदि पागल हो जाता तो कम से कम जो यातनायें मन और मस्तिष्क को, शरीर के अतिरिक्त, भुगतनी पड रही थी वह तो नही भुगतनी पडती।

करकरे मेरे साथ ही रहते थे। वे मुझे बलपूर्वक भोजन करने के लिये बैठाते थे। वे मेरे अन्य व्यवहार पर भी ध्यान रखते थे। परन्तु इस प्रकार सडते हुए जीने का क्या महत्त्व है? मरना ही जब है तो दूसरो के लिए तुरन्त स्थान खाली क्यो न किया जाय? किसी का ग्रास हम क्यो खा जाय, ऐसे विचार मन में उठते थे। उसका प्रभाव मेरे लिखने पर भी पडता था।

मनुष्य के मन की एक स्थिति ऐसी भी आती है कि जब उसको मृत्यु का भय भी नही रहता। जीवन और मरण के मध्य का आखेट सरकार मेरे साथ कर रही थी। बन्दी के साथ सद्व्यवहार किया जाय, बार बार उसको उसके अपराध का निर्देश कर उसकी आत्मा का हनन न किया जाय। जिस प्रकार उसका स्वत्व स्थिर रह सके इस प्रकार का व्यवहार उसके साथ किया जाय, उसके अन्तर को सुधारने का अवसर प्रदान किया जाय, उसके गुणोंका मूल्याकन किया जाय, उसका श्रम बिना मूल्य के ग्रहण न किया जाय, उसके साथ छल न किया जाय। इस प्रकार की शिक्षा बन्दीगृह के अधिकारियो को दी जाती है, सम्भवतया ऐसा नियम होगा किन्तु प्रत्यक्ष में तो बन्दियो के साथ क्रूरता का ही व्यवहार किया जाता है। किन्तु बाहर प्रकट यही किया जाता है कि स्वराज्यकाल में बन्दीगृहो की योजना, कार्यप्रणाली और व्यवहार में अन्तर आ गया है। बन्दियो के साथ अब बन्दियो जैसा व्यवहार नही किया जाता उनको सभ्य नागरिकता की शिक्षा दी जाती है। किन्तु कथनी और करनी में अन्तर है। जनता समझती है कि बन्दियो को सुख चैन मिलता है।

इससे पूर्व मैं कह चुका हूँ कि फासी की क्रिया वास्तव में उस दण्ड की भयंकरता नही होती। एक वार मन में यह निश्चय हो जाने पर कि मुझे मृत्युदण्ड प्राप्त हुआ है और वह समय शीघ्र ही आनेवाला है तो फिर भय नही रहता। नियम भी यही कहता है कि इस प्रक्रिया को शीघ्र ही पूर्ण किया जाय। दूसरे के दु ख को ध्यान में रखकर उस नियम में मनुष्यता का आभास प्राप्त होता है। तिल तिल कर तडफाकर मारने की प्रक्रिया नियम में नही है। किन्तु किसी का यह कहा जाय कि तुमको मृत्यु दण्ड दिया गया है और उसके गले में फासी का फंदा न लटकाकर उसके पैर में डोर बाधकर लटकाये रखना और यह समझना कि इससे इसकी मृत्यु हो जावेगी, गले में रस्सी डालने से तो रक्तरजित मृत्यु होगी और इससे रक्तविहीन मृत्यु होगी, अत' यह सजा उससे नरम है, इसीलिये इसका भाव भी दयायुक्त है, किन्तु उस पद्धति से उस व्यक्ति के शरीर को जो वेदना होगी वह वेदना शासन के इस मृदु सजा के तथाकथित दयापूर्ण कार्यवहन से मन को हुआ करती थी। अधिकारियो को तो इस ठगी से कुछ भी वेदना नही होती थी। यह वात नही कि सर्वोच्च न्यायालय की कोई विसगति शासन के ध्यान में नही आई थी, परन्तु मुझ पर अत्याचार करने के लिये उस निर्णयपत्र का सहारा लिया जा सकता था इसलिये उस विसगति को दूर करा लेने की इच्छा शासन को नही थी।

फासी, आजन्म कारावास कालापानी, कारावास, सश्रम कारावास, साधारण कारावास आदि आदि सजाओ की उपपत्ति, उनका कार्यवहन, उनकी स्थिति में अन्तर, न्यू साउथ वेल्स, आस्ट्रेलिया, अन्दमान का निष्कासन के लिये उपयोग, कभी शताब्दियो पूर्व की दण्ड पद्धति, छूट पद्धति का प्रारम्भ; छूट पद्धति का हेतु, मनुष्य की अपराध प्रवृत्ति का उद्‌गम, वन्दीगृह पद्धति का प्रारम्भ, प्रिवी कौंसिल की धारणा के दोष, सर्वोच्च न्यायालय के विधानो की विसगति इस प्रकार की अनेक वातो का उल्लेखपूर्ण आवेदन करने का मेरा निश्चय था। एक के वाद एक अनेक पृष्ठ मैं लिखता जा रहा था। इस प्रकार आवेदन का आकार वढता जा रहा था। सोते, जागते, उठते वैठते मुझे सदा उसका ही ध्यान रहता। कभी समय वे समय रात को मेरी नीद खुल जाती तो तभी उठ कर वैठ जाता और लिखने लगता।

एक प्रकार से एक प्रवन्ध सा तैयार हो रहा था। उसके लिए वहुत सी जानकारी मैंने एकत्रित की थी। अपनी बुद्धि के अनुसार उसकी रचना को व्यवस्थित किया। कभी मुझे ऐसा लगता कि प्रवन्ध के स्वरूप में ही इस आवेदन-पत्र को भेज दूँ। उस प्रवन्ध को मैंने "क्या भारतीय विधान के अनुसार आजन्म कारावास के दण्डित को वन्दीगृह में मरना चाहिये ?" शीर्षक दिया था।

जैसे-जैसे कागज लिखकर पूर्ण होते जाते, वैसे वैसे मैं उनको घर भेज दिया करता। वहाँ से वे टाइप हो कर मेरे पास आते। उसी क्रम में मैंने एक बडी पुडिया भेज दी। मैं समझता था कि ये टाइप होकर लगभग तीन सप्ताह तक वापस आवेंगे। किन्तु इसी बीच एक घटना घट गई। आधा पूना जलमग्न हो गया।

दो तीन दिन बाद समाचार पत्रो में इसके विवरण एव चित्र आदि प्रकाशित होने लगे। मेरे भेजे हुए कागज जहाँ टाइप होने वाले थे वह घर भी जलमग्न हो गया था। यह मुझे वहाँ का मानचित्र देखने से ही विदित हुआ था। मैंने उसी प्रकार चित्र में यह भी देखा कि मेरे बडे भाई श्री दत्तात्रय का घर तथा वह घर जिसमें मेरी पत्नी और बच्चे रहते थे, वे सब भी पानी में डूबे हुए थे। सैकडो प्राणी मृत्यु के ग्रास बने होंगे ऐसा अनुमान लगाया जाता था। समाचार भी इसी प्रकार के आ रहे थे।

डाक व्यवस्था सारी अस्तव्यस्त हो गई थी। घर का समाचार जानने का कोई भी मार्ग नही था। ज्यो ज्यो दिन बीतते जाते त्यो त्यो चिन्ता बढती जाती थी। कुछ कर सकने की अपनी कोई सामर्थ्य थी नही। शाम होने लगती और कमरे में बन्द होने का समय आता कि घर की मण्डली आँखो के सामने सी दिखती। चित्रो में जब यह स्थिति थी तो वास्तव में पूना कैसा होगा, कितना भयानक, कितना उदास। इस प्रकार की मन ही मन कल्पना मे ही रात बीत जाया करती।

कीचड को लाँघकर मार्ग निकालता हुआ सा बहुत दिनो में एक पत्र घर से आया। लिखा था—"हम कुशल से हैं, घर सारा पानी में डूब गया था, दूसरी मजिल पर पानी नही आया। निचली मजिल पानी से भर गई और उसमें रखा अन्नादि सब सडकर नष्ट हो गया। हम सब साथ में रहे हैं, शेप विवरण बाद में लिखा जावेगा। श्री दत्तात्रय का भी पत्र आया। लिखा था—"भवन विद्यमान है, घर में अन्नादि से लेकर वस्त्र तक सभी कुछ नष्ट हो गया है। सभी लोग सकुशल है।"

इसे भाग्य की बात ही समझना चाहिये कि परिवार सकुशल रह गया था। इसके बाद ही तुरन्त दूसरा प्रश्न खड़ा हुआ। मन में एकदम शका हुई, मेरे कागजात का क्या हुआ होगा। यदि कागज नही रहे तो मुझे उसी प्रक्रिया से पुन. लिखना होगा। किन्तु क्या उतनी शक्ति मुझमें अभी अवशिष्ट है? यही विचार मन में आता फिर भी कागजात के विपय में उस समय पूछना उचित नही समझा।

घर को सुव्यस्थित होने में लगभग दो मास लग गये। बीच में एक पत्र

ने यह सूचना मिली कि मेरे भेजे कागज सुरक्षित हैं। पानी आता हुआ जानकर सामर्थ्यानुसार और स्थानानुसार जितनी वस्तु ऊपर समा सकती थी उतनी लेकर सब ऊपर चले गये थे। इस प्रकार वे कागज सुरक्षित रह गये थे।

डेढ़-दो मास व्यतीत होने पर सारा कारोबार जब व्यवस्थित हुआ तो फिर मेरे कागज भी टाइप करवाये गये। कुल मिलाकर १७५ टाइप किये हुए पृष्ठ थे। जिस किसी प्रकार इतना परिश्रम किया ही है तो इन कागजों को मुद्रित कराकर ही भेज दूं, ऐसा मेरे मन में आया। पत्नी ने इसकी सम्भावना के विषय में पूछा। मुझसे जितना हो सकेगा वह सब मैं करूंगी, ऐसी स्वीकृति उसने दी। उसने अनेक स्थानों पर इस विषय में पूछताछ की। मेरे श्वसुर ने कुछ सहायता की। आवेदन मुद्रित होने लगा।

दि० २८-१०-६१ को मैंने प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर किये और एक टंकित प्रति आवेदन के साथ उसको सर्वोच्च न्यायालय के लिये भेज दिया। न्यायालय को सूचित कर दिया गया कि आवेदन मुद्रित किया जा रहा है मुद्रण पूर्ण होने पर वह भेज दिया जावेगा।

दो मास के बाद मेरे हाथ में आवेदन की मुद्रित प्रति प्राप्त हुई। बड़े आकार के १२० पन्ने थे। ३-४ दिन उनको पढ़ने में लग गये। जहां संशोधन की आवश्यकता थी वह किया और फिर उन प्रतियों को सर्वोच्च न्यायालय में भेज दिया। आवेदन में कई नामों का उल्लेख था। उन व्यक्तियों को एक एक प्रति भेजने के लिये अधिकारियों को दे दी।

सर्वोच्च न्यायालय के पहले के निर्णय-पत्र से मुझे अनेक बातें सीखने को मिली। मैंने उनका परीक्षण किया। उसके आधार पर निष्कासन और बन्दिवास ये दोनों बातें एक नहीं हैं इसका भेद मुझे दण्डसंहिता की अनेक धाराओं से विदित हुआ। परन्तु उसके लिये स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी। निष्कासन के बाद खड़ी की गई दीवारों के नीचे नियमरूपी नींव ही नहीं थी। सावरकर जी तथा अन्य क्रान्तिकारी बन्दी एवं उसी प्रकार के अन्य अपराधों में दण्डित बन्दियों को नियमानुसार नहीं अपितु छल-बल के आधार पर अन्दमान आदि दुर्गम स्थानों पर रखा गया था, ऐसा मैंने उल्लेख किया था। उसके लिये संहिता का आधार दे कर उसके द्वारा स्पष्टीकरण भी किया था। यदि बन्दी बनाकर रखना होगा तो वह १४ वर्षों तक ही रखा जा सकेगा और यदि छूट का अधिकार न भी दिया जाय तो उसको १४ वर्ष बाद मुक्त करना ही होगा। अपने इस आग्रह को मैंने नियमों द्वारा पुष्ट किया था। एक्ट की धाराओं का मैंने पृथक विवेचन किया। मेरे दण्ड का कार्यान्वयन किस प्रकार किया जा रहा है इस विषय को मैंने एक पृथक प्रकरण के रूप में समाविष्ट किया था। मैंने न्यायालय से यह दिखाने का

यत्न किया कि जिस प्रकार का व्यवहार शासन कर रहा है उसको उस प्रकार का अधिकार कभी भी दिया ही नही गया था। उस समय मेरी मन की स्थिति कुछ ऐसी थी कि सर्वोच्च न्यायालय को प्रस्तुत किया गया मेरा यह आवेदन अन्तिम ही होगा क्योकि इसके बाद मुझमें वह सामर्थ्य ही अवशिष्ट नही रह पावेगा कि जिसके आधार पर मैं पुन आवेदन कर सकू। इसलिये इस विषय पर जितना अधिक से अधिक स्पष्ट कर सकता था वह करने का मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया था। आज भी उस आवेदन की २५-३० प्रतिया मेरे पास है।

मुझे यह भी आभास हो रहा था कि इसके बाद मैं कार्य में समुचित ध्यान नही दे पाऊगा। पिछले ६ वर्ष से हम अर्थात् करकरे और मैं नासिक वन्दीगृह की रासायनिक उद्योगशाला मे काम करते थे। उस उद्योगशाला के प्रति हमारा एक प्रकार से अपनापा-सा हो गया था। हमारी छूट तो व्यर्थ सिद्ध हो गई किन्तु उद्योगशाला को हमने स्थापित किया, उसको व्यवस्थित किया, वह हमारे प्रयत्नो का फल है, रचना का एक छोटा-सा कार्य हमने किया है, इस प्रकार का मानसिक समाधान हम किया करते थे। हमारी अनुपस्थिति में वह कार्य स्थगित होनेवाला नही था। हमारी छूट भले ही निरर्थक सिद्ध कर दी गई हो किन्तु वह कार्य तो खडा था, और वह कार्य अपने देश का था। भले ही लघुरूप में हो परन्तु शासन की व्यापार विषयक योजना की कार्यान्विति उससे होती थी। हमारी अपनी व्यक्तिगत हानि हुई, हमारे साथ वचना की गई, इसलिये उस उद्योगालय को निर्मूल कर देने की भावना में भले ही वैयक्तिक प्रतिशोधात्मक समाधान होता हो किन्तु मन का विवेक यही कहता था कि इस प्रकार तो देश की हम हानि करेंगे। हमारी राष्ट्रीय वृत्ति का आभास अधिकारियो को था, इसलिये हमारे विषय में कभी वे इस प्रकार की आशका भी नही रख सकते थे।

वन्दी के साथ किये गये धोखे के कारण कार्य में हानि होने के उदाहरण वन्दीगृह में अनेक मिलते है। बढिया गलीचे बनानेवाला एक वन्दी था। वह शीघ्र ही छूटनेवाला था। इसी बीच एक बहुत ही शीघ्रता का कार्य आया और उसे उस वन्दी को सौंप दिया गया। उससे कहा गया कि इस कार्य को तुम निश्चित अवधि में पूर्ण कर दो, तुम्हें दस दिन की छूट मिल जावेगी।

भोजन और विश्राम की ओर भी ध्यान न देते हुए अथक परिश्रम से उस वन्दी ने निश्चित अवधि में उस कार्य को पूर्ण कर दिया। कार्य हो जाने पर अधिकारियो ने छूट देने में आनाकानी की। उसको छूट का जो आश्वासन दिया गया था उसका एक एक दिन बीतने लगा। उसके मन पर जाने कैसा प्रभाव हुआ कि उसके मुक्त होने में आठ ही दिन रह गये थे कि वह वन्दी प्रक्षुब्ध हो गया। वह अधिकारियो के सम्मुख गिडगिडाया कि आज उसे मुक्त कर दिया जाय।

मैं इतने से ही सन्तुष्ट हो जाऊँगा, आपका उपकार मानूंगा, मुझे मेरे बच्चो में और परिवारवालो में जाने दीजिये, वे बेचारे तडप रहे होगे। आपके आश्वासन पर मैं उन्हे अपनी मुक्तता का दिन दस दिन पूर्व का लिख चुका हूँ। पिछले दो दिनो से वे बेचारे राह देख रहे होगे।

न जाने क्यो, किसी भी प्रकार से हो अधिकारियो के मन में विचार आ गया। गलीचे का कार्य पूर्ण हो चुका था। अधिकारी बोले, "और आठ दिनो में क्या अन्तर पडने वाला है? सजा देते समय तुम्हे छूट मिलेगी ऐसा न्यायाधीश ने थोडी कहा था।"

इस प्रकार के कठोर वचन सुन कर व्याकुल मन से वह वन्दी बोला, "विश्राम के समय भी काम करना होगा" यह भी न्यायाधीश ने नही कहा था। आपको आवश्यकता थी और मेरे पास कला थी। आपने छूट प्रदान का आश्वासन दिया और मैंने कार्य किया।"

"ज्यादा बड-बड मत करो। तुम्हें आठ दिन हम भूखा थोडे रखेंगे, खाना मिलता रहेगा, जाओ अपना काम करो।"

इस प्रकार का शूल के समान चुभनेवाला उत्तर सुनकर उसकी व्याकुलता समाप्त हो गई। उसकी नम्रता भी विलीन हो गई। वहा से वह उद्योगशाला में गया और कैंची ले कर उस गलीचे को उसने तिरछा करके काट दिया। इस प्रकार उसने उसे काटा था कि वह किसी प्रकार से भी सुधारा नही जा सकता था।

किन्तु शासन तो शासन ही था। और एक्ट भी उसकी रक्षा करता है। वही हुआ। यहाँ भी एक्ट ने शासन की सहायता की। उस वन्दी को पीटा गया, कमरे में वन्द किया गया, डडा वेडी डाली गई, उसकी छूट को काट कर मुक्ति दिवस को आगे बढाया गया। वन्दीगृह के उत्पातो एव उपद्रवो के मूल पर यदि कोई ध्यान दे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि उसका आधार अधिकारियो का दुर्व्यवहार ही होता है। यदि उस गलीचे बनानेवाले को छूट का आश्वासन न दिया जाता तो निश्चित अवधि मे वह कार्य पूरा नही हो सकता था, इस बात का ज्ञान अधिकारियो को था। जब उन्होने आश्वासन दिया था तो नैतिक ही नही सभी भाति से उसको पूर्ण करने का उत्तरदायित्व उन अधिकारियो का था।

मैं भी अधिकारियो से विवाद करना चाहता तो था किन्तु यह भी चाहता था कि इससे कार्य की हानि न हो। उस विवाद के प्रारम्भ से पूर्व हमने उस उद्योगशाला में एक छोटा सा समारोह किया। विगत ६ वर्षो में किस प्रकार उद्योगशाला निरन्तर प्रगति करती रही है इसका विस्तृत विवरण हमने अधिका-

रियो के सम्मुख प्रस्तुत किया। उत्पादन, वितरण तथा अन्यान्य सभी व्यवस्थाओं का आलेख तैयार कर रखा गया था। दि० ३०-९-६१ को यह समारोह हुआ। मैं अपने मन में यह समझता था कि मैं उस उद्योगशाला से विदाई ले रहा हूँ।

दि० २०-१०-६१ को मेरा आवेदन सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत हुआ। आजन्म कारावास अर्थात् सम्पूर्ण जीवन यह तर्क यदि शासन की ओर से प्रस्तुत किया गया तो शासन के ही नियमो अनुबन्धो की किस प्रकार अवगति हो सकती है, यह सिद्ध करने का मेरा उद्देश्य था। मेरा प्रत्येक विचार लिखित हुआ करता था। मैं जानता था कि यह संघर्ष शासन और उसके विरोधी का विषम संघर्ष माना जावेगा और यह भी मैं जानता था कि मैं स्थानीय अधिकारियों के सम्मुख ही उनके नियमो को दोषी सिद्ध करनेवाला था इसलिये कदाचित मेरे साथ अधिक छल किया जावेगा। और कदाचित उस छल का परिणाम मेरी मृत्यु भी हो सकती है।

बन्दी के परिधान में टोपी के आधार पर उसका वर्ग पहचाना जाता था। पाच वर्ष या उनसे कम की सजा वाले को सफेद टोपी, जिसके पाच वर्ष से अधिक शेष हैं उसको पीली टोपी, विशिष्ट अर्थात् अभ्यस्त दण्डित को काली टोपी और भाग जाने के अपराध में दण्डित को लाल टोपी पहनाई जाती थी।

हमको पीली टोपी पहनाई गई थी। अर्थात् नियमानुसार हमारी सजा पांच वर्ष से अधिक अवशिष्ट थी।

मुक्ति की अन्तिम तिथि से प्रारम्भ की भुगती हुई सजा की गणना के आधार पर अवधि निर्धारित की जाती थी। हमारे विषय में अन्तिम दिन निश्चित नही हो पाया था। क्योंकि शासन ने किसी भी नियम का पालन तो किया ही नही था। न अपने वचनों पर ही टिका रहा। अब तो मृत्यु ही अन्तिम दिन निर्धारित है, शासन ने ऐसा ही अर्थ सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय से लगाया था।

यदि उस निर्णय को मान भी लिया जाय तो न्यायालय ने यह भी तो कहा था कि मृत्यु का दिन पहले से ही कोई निश्चित नही कर सकता। मुझे ५ वर्ष के बाद ही मृत्यु होगी इसका अनुमान शासन ने किस प्रकार लगा लिया? उसके पूर्व भी तो हो सकती है। शासन के वर्ताव के कारण लिखित नियमो में विसगति सिद्ध हुई थी इस कारण मैंने टोपी वापस कर दी और वापस करने का कारण भी स्पष्ट लिखकर दे दिया।

मुझे सफेद टोपी दी गई। उसके आधार पर मेरी सजा की अवधि ५ वर्ष से कम की श्रेणी में आ गई, इस प्रकार लिखकर देने के लिए मैंने अधिकारियो से आग्रह किया। किन्तु वे लिखकर देने के लिए उद्यत नही हुए। क्योंकि लिखित

नियम का और अधिकारियो के लिखित वचन का आधार लेकर मैं सर्वोच्च न्यायालय में जा सकता हू, ऐसा उनका विचार हो सकता था। मैंने सफ़ेद टोपी लेने से भी इनकार कर दिया।

प्रत्येक वन्दी को एक पदक दिया जाता है, उसे वह अपने सीने पर बटन के साथ लगाता है। पहले तो वह लोहे की तार से लटका कर गले मे डाला जाता था। बाद में यह सुधार किया गया। उस पदक पर वन्दी का क्रमाक, उसका नाम, सजा की धारा, सजा का दिन, सजा की अवधि और मुक्ति का दिन अंकित रहता है।

मेरे पदक पर भी मुक्ति का दिन तो अकित था, किन्तु शासन के वर्ताव के आधार पर तो दिनाक निर्धारित करना ही विसगत था। मृत्यु ठीक उसी दिन थोडे ही आनेवाली थी? मृत्यु शासन की सेवक तो नही कि निर्धारित तिथि पर वह उनके सामने आकर हाथ जोडकर खड़ी हो जाती। मैंने पदक (बिल्ला) लेने से भी इनकार कर दिया।

काम करते समय अथवा इधर उधर जाते समय वन्दी को सिर पर टोपी रखना आवश्यक होता है। पदक (बिल्ला) भी लगाना चाहिये यह भी नियम है। मैंने नियम भंग किया इस प्रकार का आरोप लगाकर मेरी छूट काटना आरम्भ कर दिया गया। किन्तु यह उसका उपाय तो नही था। मैंने नियमो मे दोष और शासन के वर्ताव की असम्बद्धता प्रकट की थी। उसका उपाय यही हो सकता था कि उनकी जाच कर उसका निराकरण किया जाय।

छूट काटना तो सजा मानी जाती है। और उतनी अवधि के लिए वन्दी की मुक्ति का दिन आगे टल जाता है। मेरे सम्बन्ध में छूट काटना सजा की विडम्बना थी। शासन अपने को ही झुठलावे, इस प्रकार का यह कृत्य था। सजा में छूट दी गई तो भी मृत्यु के दिन मुक्ति न दी गई तो भी वैसा ही, इस प्रकार अन्धेर नगरी का सा व्यवहार होने के कारण छूट काटने से सजा का एक प्रकार से नाटक सा खेला जा रहा था।

शासन ने नियमो में दोष तो ढूढ लिये, किन्तु बहुत विलम्ब से। उन नियमो में जो सुसगति बिठाई गई वह शासन की कुधारणा के साथ। शासन ने तब निश्चय किया कि मेरे पदक पर मुक्ति का दिन अंकित न किया जाय।

इसके आधार पर पदक न लगाने के कारण मुझको जो छूट काटने के रूप में सजा दी गई थी उसका निराकरण होना चाहिए था, किन्तु वह नहीं किया गया। परन्तु इससे भी मेरा मूलभूत विवाद तो समाप्त नही हुआ था। जिनको केवल सजा ही है और अब शासन की तथाकथित पद्धति के अनुसार मुक्ति का दिन निर्धारित नही उसको पदक लेकर क्या करना था? तुम्हारे पास पदक नहीं है

इसलिए तुमको पुन निकालता हूँ अथवा अपने राज्य में नही रहने दूँगा, इस प्रकार की अनर्गल बात यमराज तो नही कर सकते थे। और मुक्ति का कोई भी दिन निर्धारित न करना भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय-पत्र से नही प्रकट होता था। किन्तु इस प्रकार का वर्ताव करने का अपना अधिकार है, इस प्रकार का गर्वयुक्त व्यवहार शासन ने किया।

मेरा सघर्ष जारी रहते हुए भी एक अन्याय के लिए मुझे सर्वोच्च न्यायालय में जाना था। मेरी शिकायत अधिकारियो के विरुद्ध थी और उन्ही के द्वारा मुझे उसे सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँचना भी था। अधिकारियो ने बीच में अडचन डाली। यह बात मैंने भेंट में पत्नी को बताई। अहस्ताक्षरित आवेदन मैंने उसको भेज दिये। उसने सर्वोच्च न्यायालय को लिखा और उसने शिकायत की कि अधिकारी उनके कार्य में अडचनें डाल रहे हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने आवेदन की प्रतीक्षा की। जब प्रतीक्षा करने के बाद भी आवेदन नही आया तो उन्होने जेल अधिकारियों को आदेश दिया कि यदि इस प्रकार का कोई आवेदन आया हो तो उसे तुरंत भेज दिया जाय। उनको यह भी निर्देश दिया कि इसको भेजने में विलम्ब क्यो हुआ इसका कारण भी स्पष्ट करो। यह भी सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि न्याय माँगने के कार्य में किसी प्रकार की अडचन डालना अनुपयुक्त हैं।

यह बात मेरी पत्नी को किसी प्रकार विदित हुई। इसकी छानबीन की गई तो ज्ञात हुआ कि अधिकारियो के जरिये से ही मेरा पत्र व्यवहार हुआ था। किन्तु इससे यह हुआ कि जिस अन्याय के विरुद्ध मुझे अवभार (रिलीफ) माँगनी थी, उसका महत्व समाप्त हो गया। सत्ता का इस प्रकार का दुरुपयोग शासन की विशिष्ट नीति के कारण हुआ करता था।

* * *

पन्द्रह

स्वाँस के लिये प्रयास

नासिक वन्दीगृह में मेरा विवाद जारी था। शासन ने भी अनुभव किया कि छूट काटने का कोई उपयोग नही है। मुझे वाध्य किया गया तो मैं विवाद नही करुगा, शासन को और अधिकारियो को विचार करने के लिये विवश करनेवाले सरदर्द करनेवाले प्रश्न उपस्थित नही करुगा, शासन के प्रहार चुप चापयग पर झेलते हुए बैठूगा और मृत्यु को राह देखता रहूँगा, इस कल्पना से दि० २०-१-६२ को मुझे नासिक से औरगावाद वन्दीगृह में ले जाया गया।

मेरे विवाद असम्वद्ध नही थे, मूर्खता के भी नही थे और किसी को कष्ट देने वाले भी नही थे। केवल एक एक्ट की व्याख्या को स्पष्ट करने के लिये ही यह सव परिश्रम मैंने किया था। शासन के पास उसका युक्तियुक्त उत्तर नही था। अपना अयुक्तिक व्यवहार प्रकट न हो जाय इसके लिये वलप्रयोग करने का शासन का अत्यन्त 'अपवित्र' व्यवहार होता था। क्योकि पवित्रता का प्रकरण प्रस्तुत हुआ है इसलिये मैंने अपवित्र'' शब्द का प्रयोग किया है।

औरगावाद हम रात के समय पहुँचे थे। उस रात और उसके अगले दो दिनो तक मुझे एक वैरक में रखा गया जो विशेपतया मेरे लिये खाली करवाया गया था। वाद में मुझे उसके पार्श्व में एक कोठरी में रखा गया।

दिन में वन्द हो जाने के लिये मैंने पहले दिन ही विरोध किया था। उसे सजा समझा जाता है और वह सजा किसलिये दी जाती है, यह वन्दी को समझ लेना चाहिये और उस प्रकार का अभियोग लगा कर सजा देने का अधिकार अधिकारियो को है यह वात मैंने छोटे अधिकारियो को स्पष्ट की। सम्भवतया

उन्होंने इस बात को कारागार अधीक्षक को बताया होगा। तब मेरी कोठरी दिन में खुली रहने लगी।

मुझे बन्दियों से मिलने नही दिया जाता था। उसका कारण यह था कि कही मैं उनको भडकाकर उनके अधिकारो से अवगत न करा दूं। मैंने अधिकारियों को स्पष्ट कर दिया कि "अधिक छल सहन करने की शक्ति जिसमें होगी, जिसमें इतना मनोबल अवशिष्ट होगा, वही इस प्रकार के कार्य करेगा,। अपना अपना हित सबको देखना होता है। सिखाने से कोई खडा नही होता।" तब वॉलीवाल और कबड्डी आदि में बन्दियो के साथ खेलने लगा।

नासिक की रासायनिक फैक्ट्री में काम किये हुए अनेक बन्दी भी औरंगाबाद जेल में थे। मेरे वहा लाये जाने का समाचार सुन कर उनको सन्तोष सा हुआ था। यदि इसे आत्मस्तुति न समझा जाय तो कहूंगा कि उन बन्दियो की मेरे प्रति असीम भक्ति थी। उसका प्रमुख कारण था रासायनिक प्रयोगशाला का उनके प्रति किया गया व्यवहार। सर्वोच्च न्यायालय में मिली मेरी असफलता पर उनको दु.ख हुआ करता था।

उन्होने एक विचित्र योजना बनाई। जिस प्रकार किसी की सहायता करने के लिये चन्दा किया जाता है, उसी प्रकार उन्होंने अपनी छूट के दिन जमा करके मुझे नासिक जेल में पत्र भेजा जिसमें उन्होने लिखा कि हम अपनी छूट के दिन आपको देने के लिये उद्यत हैं। न्यायालय अथवा शासन द्वारा उसका उपयोग आपकी मुक्ति के लिये किया जा सकता हो तो कृपया शीघ्र सूचित कीजिये। आपने बहुत भोगा है। दिन रात काम किया है। हम अनपढो को शिक्षित किया है। हमारी यह विनती आप मान लें। आप मुक्त होकर अपने बच्चो के पास जावें।

भोले, किन्तु भावनापूर्ण वे पत्र आज भी मेरे पास विद्यमान हैं। कई मास के बाद अधिकारी पत्र फाड डालते हैं। मैंने जब कहा कि मुझे उन पत्रो को सुरक्षित रखना है तो उन्होंने उनको नही फाडा।

औरंगाबाद के उन बन्दियो को ऐसा आभास तक नही हुआ कि कही मुझे ब्लैक लिस्ट में न डाल दिया जाय। किन्तु वैसा नही किया गया। किन्तु इतना स्पष्ट है कि जिन्होंने मुझे अपनी छूट प्रदान की थी उनको अपना नाम ब्लैक लिस्ट में आने का भय बिलकुल नही था।

बन्दीगृह में आयोजित होनेवाले कार्यक्रमो में मैं भाग लिया करता था। और बन्दियों को जो पथ-प्रदर्शन मुझसे चाहिये था वह भी करता था। केवल शासन के साथ ही मेरा संघर्ष था, और वह यहाँ भी जारी था।

सुव्यवस्था की दृष्टि से मेरे आवेदन पर क्रमाक डाला गया था और वह था

पिटीशन न० १६, १९६२। दि० १२-४-६२ को औरंगाबाद वन्दीगृह में मुझे न्यायालय की ओर से सूचना मिली कि आवेदन वापस किया गया है।

इतने कठिन परिश्रम से किये गये प्रयत्न को न्यायालय ने व्यर्थ सिद्ध कर दिया था। मेरे द्वारा उठाये गये प्रश्नो की गहराई में जाने से सर्वोच्च न्यायालय ने इन्कार कर दिया था। प्रश्न उसी प्रकार अनिर्णीत ही रह गया था।

मेरे मन में और निराशा छा गई थी। मन लगातार घर की ओर दौडने लगा। घर पर भी उदासी की छाया हुआ करती थी। पत्नी द्वारा कभी कभी भेजे गये पत्र उसकी व्याकुल अवस्था का प्रदर्शन करते थे। मेरे मन पर भी उसका परिणाम हुआ करता था। दो वर्ष पूर्व अर्थात् ७-१०-५९ को उसने लिखा था—

"प्रत्यक्ष इच्छा शक्ति के आधार पर तुम कई बातें निश्चित करते हो और उन्हे कर डालते हो। कुछ समय पूर्व तक मैं भी कुछ इसी प्रकार निश्चित करती थी और उसे कर डालती थी। परन्तु अब न जाने क्या हो गया, कुछ समझ मे नही आता। भोर से लेकर रात्रि के ११-१२ बजे तक का समय कहा जाता है, यह समझ में ही नही आता। रात को सोते समय पूरे दिन का हिसाब लगाऊँ तो मैंने कुछ किया है, ऐसा भी दिखाई नही देता। इससे अनेक बार जीवन में आस्था बढने की अपेक्षा मेरी अनास्था बढती जा रही है। सोचती हूँ कोल्हू के बैल की तरह ही यदि जीना है तो फिर उसका लाभ क्या? परन्तु तुरन्त ही दूसरा मन कहता है—'अन्य किसी को यदि तुम्हारे जीने का उपयोग हो न हो परन्तु तुम्हारा गोपाल और वे दो नन्ही चहकती चिडियाँ इनको तो तुम्हारे जीवन की आवश्यकता है। और जो कोल्हू तुम सम्प्रति चला रही हो उसके नियोजित फेरे यदि पूरे न हुए तो फिर अपेक्षित फल किस प्रकार मिलेगा? इससे आज तक जिस स्वाभिमान से तुमने जीने का प्रयत्न किया उसी स्वाभिमान से तुम्हारी लडकियाँ और वन्दीवास से मुक्त होने पर गोपल जी सकेगा, ऐसी परिस्थिति निर्माण करने के बाद ही तुम्हारी जीवन विषयक निराशा पर विचार होना चाहिये। तब तक तो गोपाल, गोपाल, और गोपाल, केवल गोपाल इस एक मन्त्र के आधार पर ही अपनी जीवन यात्रा चालू रखनी चाहिये। अन्यथा आज तक तुम जिसको देव मानती आई हो उसी की पूजा भग होने का पाप तुम्हें लगेगा।'

और इस प्रकार के विचार जिस समय मन में आते है तब मेरे मन में उत्साह का ज्वार आता है और तब मेरे समीपस्थजनो को असम्भव दीखनेवाला कार्य मैं हसते हसते सम्पन्न कर लेती हूँ। गोपाल! इससे मैंने एक निष्कर्ष निकाला है। मनुष्य को कही पर तो भी एक विश्वास और श्रद्धा का मानविन्दु प्राप्त हो जाता है। जिसका विचार मन में आने पर किसी प्रकार का भी साहसिक कार्य उससे

सम्पन्न हो जाता है। ध्येय यदि सम्मुख हो तो निराशा समाप्त हो जाती है परन्तु इतना होते हुए भी नित्य के व्यवहार में अडचनो का सामना करते हुए जी थक जाता है।

इसके बाद पत्र में मिन्नु ने कारखाने के काम का वृत्तान्त दिया है। मैंने उसे एक कविता भेजी थी– 'केवढा दिवस हा' (कितना लंबा दिन है यहाँ) उसकी उसने प्रशसा की थी। उपहार में विदाई जिस प्रकार ली जाती है उसमें उसने लिखा था, "सचमुच गोपाल ! अब तुम घर कब आओगे ? अकेली रहती हुई अब मैं सचमुच बहुत थक गई हू। रोज रात्रि को सोते समय मैं कहती हू-अपने गोपाल के वनवास का एक दिन और समाप्त हुआ और अपने सौभाग्य का एक दिन और समीप आया। –मैं सोचती हू उर्मिला की कैसी अवस्था हुई होगी उसका चित्र हूबहू खीच कर मैं दिखा दूगी। यदि किसी ने कभी इस प्रकार के नाटक का आयोजन किया तो उर्मिला की भूमिका मैं सहज रीति से निभा दूगी।"

मेरी छोटी कन्या उस समय ५-६ में होगी। उसने एक बार बन्दीपाल को एक पत्र भेजा। उसमें लिखा था "आप हमारे बापू को क्यो नही छोडते ? ताई अर्थात मा बीमार है। हमारे बापू का वर्ताव तो अच्छा है न, फिर कारागार क्या अच्छा वर्ताव करनेवालो के लिये होता है ? मुझे जेल में रख लो और मेरे बापू को छोड दो। मेरी सहेलियो के घर में उनके मा बाप हैं, हमारे पिताजी को हमारे घर भेज दीजिये।"

अधीक्षक ने वह पत्र पढा। उनका ८-१० वर्ष का एक पुत्र उन्ही दिनो चल बसा था। उन्होने मुझे असिलता का पत्र दिखाया। पत्र पढकर मैंने वापस कर दिया। तब मैंने देखा कि उनकी आखो में अश्रुकण छलक रहे थे।

बढती हुई कन्यायें कितने दिन उद्विग्न रहें ? पत्नी कब तक कष्ट उठाये ? उसके मन का बोझ कब हलका हो ? घर घर जैसा कब लगने लगेगा ? उनका पारिवारिक जीवन कब सुखमय होगा ? इन्ही विचारो में मैं यह भी सोचता, मैं कब तक दीवार से टक्कर लेता रहूँगा। सत्ता के सम्मुख किसी का सयानापन नही चलता। मुझसे अब यह यातना नही सही जा रही थी।

जिस दिन सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय ज्ञात हुआ उस दिन सारा समय यो ही सोच विचार में ही बीत गया था। इसी प्रकार शाम हो गई। सर्वोच्च न्यायालय ने यदि बुलाया होता तो बन्दी होने पर भी वहा जाने में कुछ तो उत्साह आता ही। किन्तु आज तो मैं पूर्णतया जेल की कोठरी में बन्द होता हुआ भी निराशा की अन्धकारमय काल रात्रि में बन्द सा स्वय को अनुभव करता था। मेरा मन टूट चुका था।

रात को मैंने एक आवेदन लिखा। उसे मैंने राष्ट्रपति को सम्बोधित किया। उसमे मैंने लिखा था—"मुझे छोडने का अधिकार केवल शासन को है। मेरे बन्दी जीवन के १३ वर्ष पूर्ण हो गये है, आठ वर्ष की छूट है, इस प्रकार कुल मिलाकर २१ वर्ष हो गये है। मुझ पर दया कर मुझे जेल से मुक्त किया जाय। मेरे बारे मे यदि यह भी प्रसिद्ध किया गया कि मैं क्षमा माग कर जेल से मुक्त होना चाहता हूँ तो भी मुझे इसमें कोई आपत्ति नही। आप किसी भी शर्त पर छोड़ेंगे तो भी मुझे कोई आपत्ति नही। मुझे किसी भी स्थिति मे मुक्ति चाहिये।"

आवेदन को टाइप करने में विलम्ब न हो इसलिये मैंने जितनी प्रतिया आवश्यक थी, स्वयं हाथ मे लिख कर तैयार कर ली थी। मेरा विचार था कि प्रात उसे अधीक्षक को दे दूंगा। रात को बन्दीपाल गश्त पर आये तो उनके सम्मुख मैंने अपनी मन स्थिति का वर्णन कर दिया।

रात्रिको मुझे नीद शान्ति से आई।

प्रात काल मैं उठा तो सहसा मेरे मुख से 'नही, नही' का चीत्कार सा निकला चीत्कार सुनकर पहरेदार चौक गये। वे मुझसे पूछने लगे कि क्या मैं स्वप्न मे चीत्कार कर रहा हूं ?

प्रतीत होता है कि निद्रा भग के कुछ समय पूर्व ही मेरा मन कार्यप्रवण हुआ होगा। यदि स्वप्न भी आया हो तो मुझे उसका स्मरण नही था। यह कदाचित बाह्य मन की अर्द्ध जागृतावस्था रही होगी। अन्तर्मन ने कही पर किसी प्रकार का आघात किया होगा। निद्रा भग होते ही मुह से "नही नही" के शब्द निकले होगे या अन्तर्मन ने जो आघात किया वह प्रबल रहा होगा। उससे बाह्य मन में और बाह्य मन से स्नायु में हलचल होने से इस प्रकार के शब्द निकले होगे और उन शब्दो के आघात से ही मेरी निद्रा भी भग हुई होगी।

मैं जब इसका विश्लेषण करता हूं तो प्रतीत होता है कि हाथ से कोई ऐसी बात हो गई होगी जिसको मन अपराध समझता होगा। ऐसे अपराध के लिये क्षमा याचना करके उसका अशतः परिमार्जन करने जितना तो मन बडा होना ही चाहिये। उसमे न्यूनता नही समझी जानी चाहिये।

किन्तु मेरा इस प्रकार क्षमा याचना करना मैं समझता हू कि ठीक उसी प्रकार का कृत्य होगा जैसा कि घोर विपत्ति के समय में मानो राणा प्रताप के मन में अकबर के सम्मुख नतमस्तक होने का विचार आया हो। किन्तु तब भी अकबर तो विदेशी था अत उसका राज्य भी विदेशी राज्य ही माना जाना चाहिये और उससे स्वतन्त्रता के लिये राणा प्रताप लड रहे थे, किन्तु वे पराजित हो रहे थे। विदेशी का राज्य ही अन्याय होता है उस अन्याय को दूर करने के लिये किया प्रत्येक सम्भव अथवा असम्भव उपाय देश की दृष्टि से न्याय ही होता है। राणा की

पराजय का अर्थ था उनकी शक्ति का ह्रास। पराजित होना उनका अपराध नही था। राणा का क्षमा याचना करने का अर्थ होता कि उसने स्वराज्य प्राप्ति के लिये जो भी यत्न किये जो सघर्ष किया वह अपराध किया। किन्तु हम समझते है कि उसने ऐसा कुछ नही किया था। इसी कारण स्वाभिमान का देवता मान कर आज हम प्रताप का सम्मान करते है।

किन्तु मेरे पक्ष में, न तो यह राज्य विदेशी था और न ही इसके शासक विदेशी थे। यदि इस राज्य के प्रति किसी अवैध घटना का भी यदि कोई हेतु रहा होगा भी तो वह यही कि अपने देश की सीमायें सुदृढ हो, राज्य में सुख शान्ति रहे, किसी पर राज्य द्वारा किये गये अपमान को सहन न करें, अन्याय न सहें, धमकियो से न डरें, मृगमरीचिका के पीछे न दौडें, इस प्रकार की भावना से अपने ही राज्य का हमने कोई अपराध किया हो तो उससे क्षमा मागने में भी हमारी किसी प्रकार की मानहानि नही होनी चाहिये?

प्रश्न ऐसा था कि राज्य हमारा और राज्यकर्ता हमारे होने पर भी मैंने उनका कोई अपराध नही किया था। यदि मैं क्षमा याचना करता हूँ तो इसमे झूठे ही यह सिद्ध हो जावेगा कि कोई न कोई उनका अपराध है। उनको झूठा सम्मान दिया जाता है और क्षमा प्रदान करने का उनका अधिकार है इस प्रकार उनको झूठा अधिकार प्रदान करना हो जाता है। इनमें से कोई भी बात मन को जचती नही थी। यदि इस विषय में अपराध किसी का था तो वह राज्य का था मेरा नही। शासन ने मेरे साथ अन्याय और अत्याचार कर अपराध किया था।

मेरी सजा निष्कासन होते हुए भी उन्होने मुझे वन्दीगृह में वन्द करके रखा था। नियत समय से अधिक मुझसे काम लिया और उसके लिये मुझे अलग छूट दी। मैंने काम किया था यह तो सत्य था ही। मुझे छूट प्रदान की किन्तु देते समय उसको मन से ही भुला दिया, इस प्रकार का वनावटी व्यवहार किया गया। मुझसे रक्त लिया गया, उसके वदले में छूट दी गई और उस छूट की शासन ने यथा समय पुष्टि भी कर दी किन्तु उसका कोई लाभ मुझे नही मिला। रक्तदान के सम्बन्ध में मैंने अपने आवेदन में शासन की वक्रोक्ति से आलोचना की थी। 'शासन कहेगा, 'न्यायपि! हमने वन्दी का रक्त लिया यह वात सच है। परन्तु उसमें हमने गलती क्या की? वन्दो को यदि अन्दमान भेजा जाता तो वहा उसको जगल काटने का काम करना होता और वहां जगलों के जौंक उसका सारा ही रक्त सोख जाते। हमने तो कुछ शीशी भर ही लिया होगा। इसके साथ ही नियमो से सर्वथा अपरिचित, अनभिज्ञ वे जोकें वन्दी को किसी प्रकार की छूट का आश्वासन भी लिख कर नही दे सकती थी। शासन ने वन्दी की छूट अंकित की उसके छूट के अधिकार से उसको वंचित तो नही किया? अब यह किस वात

की छूट मागता है ? जंगल के उन जन्तुओ से भी क्या वह इस प्रकार के किसी अधिकार की माग कर सकता था ?''

इस आलोचना का परिणाम तो हुआ। केन्द्र शासन ने रक्तदान और उसके विनियम मे छूट के आश्वासन को छानवीन करने के लिये समिति की नियुक्ति कर दी। समिति ने ऐसा निष्कर्ष निकाला कि रक्तदान और तज्जन्य छूट इनका कारागारान्तर्गत नियमो से तनिक भी सम्बन्ध नही है।

समिति के निष्कर्ष के अनुसार शासन को मुझे यह कहना चाहिये था कि "तुम्हारे रक्तदान की छूट का लाभ हम तुमको दे रहे है। क्योकि उसका नियमो के साथ सम्बन्ध नही है। और इसलिये तुम रक्तदान करने के लिये वाध्य नही थे। हमारे कहने पर तुमने रक्तदान किया था, हमने तुमको वदले में छूट दी है और अव हम तुमको उसका उपभोग करने का अवसर दे रहे है।" दूसरे शासन को समिति का यह निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के अध्ययन मे भी लाना चाहिये था। और पहले किया हुआ विधान वापस लेना चाहिये था। और न्यायालय को चाहिये था कि आजन्म कारावास के विषय में दिये गये निर्णय को वापस ले ले। वह सर्वोच्च न्यायालय की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। सभी वातें एक साथ सम्मुख आ कर उन पर ठीक न्याय होना आवश्यक था। मैं उससे मुक्त होता या न होता यह पृथक् प्रश्न था। यह वात गौण थी।

शासन ने वैसा नही किया। प्रतिशोध पूर्ण रूप से लिया ही जाना चाहिये भले ही अपने व्यवहार में असत्यता का आभास रहे, इसी प्रकार की नीति शासको ने स्वीकार की थी। मेरा प्रत्येक विवाद सत्य था और तर्कयुक्त था। शासन को इसकी प्रतीति होती थी परन्तु फिर भी उसने मेरे साथ न्याय नही किया। मैं समझता हूँ कि अपराध शासन का था, मेरा नही।

छूट का महत्व सर्वसामान्य और स्वतन्त्र नागरिक उतनी उग्रता से नही समझ सकता जितना कि वन्दी समझता है। वन्दी भले ही किसी को सोने की मुद्राओ से तौल दे तब भी कानूनन वह एक दिन की भी स्वतन्त्रता नही प्राप्त कर सकता। एक दिन छुट का विनियम पैसे में नही हो सकता। हा, यह भले ही हो सकता है कि यदि अमुक राशि का जुर्माना नही चुकाया गया तो उसके लिये निर्धारित अवधि का कारावास अवश्य मिल सकता है, वह प्रकरण इससे अलग ही है। उसका इस छूट से किसी प्रकार का सम्बन्ध नही। छूट का अर्थ है कि न्यायालय ने जो सजा दी अथवा कानून के अनुसार जो सजा भुगतनी है उस सजा में से कुछ की छूट। दया के पवित्र अधिकार की धारा में छूट पद्धति का उल्लेख है। वह क्षेत्र शासन का है। मैंने जो छूट सग्रहित की थी उसके आधार पर १४ वर्ष पूर्ण होने मे एक दिन पूर्व भी यदि शासन ने मुझे मुक्त किया होता तो मैं शासन

का आजन्म आभारी बन जाता। सरकार के इस उपकार का सदा बखान करता रहूँ, इतना ऋण उसमे सरकार का मुझ पर हो जाता। इसका कारण छूट का अर्थात् मुक्ति का मूल्य क्या है यह मैं जानता हूँ। वह अधिकार कितना पवित्र है यह भी मै जानता था। तब, यदि शासन ने मुझे छूट के आधार पर मुक्त किया होता तो, मेरे मुख मे अनायास ही निकलता "आपके एक दिन और मुझे बन्दीवास में रखने के अधिकार के बावजूद आपने मुझ पर एक दिन की दया की है उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ।"

आज शासन मुझे दया दिखाकर छोड दे इस प्रकार की कृपालुता उसमें अवशिष्ट ही नही रह गई थी। विपरीत इसके मेरी सास अभी तक चल रही है और मैं जीवित हूँ, इसके लिये सरकार मुझे अपराधी समझती है।

निद्रा भग होने से पूर्व मेरे मन में कुछ इसी प्रकार की उथल पुथल सी हुई होगी। अन्तर्मन ने ही पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष का नाटक किया होगा और उसके मध्य कुछ इस प्रकार का विचार मन्थन हुआ होगा :—

"दया की याचना कर और उसे प्राप्त करके तुम क्या करना चाहते हो?"

"इससे मेरी वियोगावस्था समाप्त होगी। घरवालो को सुख एव शान्ति प्राप्त होगी, उनकी क्षण क्षण की वेदना शान्त होगी और मैं स्वतन्त्र जीवन जी सकूगा।

"परन्तु इसे प्राप्त करने के लिये तुम्हें अपने चरित्र का हनन करना होगा।"

"जो हो, मुझसे अब ये यातनायें सही नही जाती।"

"फिर यह व्रत क्यो लिया? किसने तुम्हें बुलाया था? सुख की नौकरी थी, बच्चो के साथ रह कर मौज करता। मन को धोखे में क्यो डाला?"

"उस समय मैं समझता था कि भारत के साथ अन्याय हो रहा है।"

"क्या अब तुम्हें अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हो रहा है?"

"नही। परन्तु यह कहे बिना मुक्ति भी तो नही मिलेगी।"

"असत्यव्यवहार से दुखी होकर तुमने यह व्रत लिया और अब स्वय ही असत्य भाषण के लिये उद्यत हो गये?"

"परन्तु शासन यह बात समझ नही सकेगा।"

"किन्तु तुम्हारा मन? तुम और शासन अलग होगे किन्तु तुम और तुम्हारा मन तो पृथक नही हो सकते। अपने स्वार्थ साधन के लिये यदि तुम मुक्त भी हो गये तो भी अपने मन से अपने इस व्यवहार को किस प्रकार दूर कर सकोगे?"

"परन्तु यह वियोग मै कितने दिन तक सहन करता रहूँगा?"

"तुम यदि याचना करोगे तो उसका उत्तर तुम्हारे अनुकूल ही होगा, ऐसी तुम्हारी कल्पना है क्या?"

"तुम जिद्दी बन गये हो, तुम शासन को दाता मानते हो, तुम दान माग रहे हो। ध्यान में रखो, दान देना अथवा न देना यह दाता का अधिकार होता है। दान मिलना ही चाहिए यह याचक का अधिकार नही होता। एकागी विचार क्यो करते हो ?

"परन्तु मेरी पुकार पर अनुकूल विचार होगा और मैं मुक्त हो जाऊगा।"

"मान लिया। किन्तु बाहर कब जाओगे ? कल ? आज विनती करने से क्या फल अन्तर आनेवाला है ? तुम्हारी कितनी शेष है क्या इसका तुम्हे ज्ञान है ? निर्णय आने से पूर्व ही तुम मृत्यु के ग्रास नही हो जावोगे यह क्या निश्चित है ?"

"अर्थात् कितना भुगतने के बाद मैं मरूँगा ? क्या मैं चार दिनो का स्वातन्त्र्य भी उपभोग नही कर सकूगा ? मेरी इतनी छूट " ।"

"छूट गई गड्ढे मे। मरने के लिये छूट नही मिलती और छूट मिलने पर भी मृत्यु निश्चित ही है। निर्धन भी मरता है, धनी भी मरता है, तुम तब तक मरोगे अथवा नही इस प्रकार की सभी सम्भावनायें विचार करना आवश्यक है तुम अमरपत्र लेकर नही आये हो। मनुष्य मरता है, तुमको भी मरना है। जीवन में सबको सुख का उपभोग करना मिलता ही है, यह तथ्य नही है। कभी मनुष्य क्रूरता करता है और कभी नियति। प्रत्येक क्रूरता का उपाय नही होता। विभाजित पजाब और बगाल की ओर देखो। उन लोगो का क्या अपराध था ? कितने ही लोगो ने अपने जीवन में किसी को शब्द से भी नही दुखाया होगा। वहाँ क्या हुआ ? परिवार के परिवार उध्वस्त हुए। पतिविहीन पत्नी और पत्नी विहीन पति खुले सूर्य के प्रकाश मे निराश्रित पडे रहे। लडके अनाथ हो गये और मा बाप निस्सन्तान हो गये। सहारा खोजने के लिए वे देश भर मे भटकते रहे। क्या उन्हें सुख मिला ? उन्हे जीवन प्राप्त हुआ ?"

"वे शरणार्थी थे।"

"शरणार्थी ? किसकी शरण पाने के लिए ? नही उन्होने तो पौरुष की रक्षा करने के लिए अपने शरीर और मन पर घाव सहे थे। अपना स्वत्व रखने के लिये प्रयत्न किये, स्वय आघात सह कर दूसरे प्रान्तो को उससे बचाया। वे शरणार्थी नही पुरुषार्थी थे, स्वत्वार्थी थे। धर्मान्तर करके भी क्यो न हो परन्तु जीवित रहना है ऐसे जो लोग शरण माँगते है वास्तव में शरणार्थी वे है। क्या तुम भी शरणार्थी बनना चाहते हो ? अकृत अपराधो के लिये क्षमा याचना करोगे ? अपने को व्यर्थ में फँसाओ, स्वय को और अपने शासन को कलकित कर मुक्ति का पथ खोजो।"

"किन्तु मेरे बन्दी होने के कारण मेरा घर घर नही रह गया है।"

"फिर वही बात। अग्नि में हाथ डालते समय विचार करना पडता है कि

इससे हाथ जलता है। हाथ डालने के बाद नहीं। विवाह के अवसर पर तुमने और तुम्हारी पत्नी ने दोनों हाथों से मिलकर अग्नि को आहुति दी थी, एक स्वर से मन्त्रोच्चार किया था। इस प्रकार बन्धन में डाले गये। बाद में स्वत के कृत्य से मैं पत्नी और बच्चों को दु ख में ढकेल रहा हूं, घरबार नष्ट कर रहा हूं ऐसा क्या उस समय तुम्हारी समझ में नहीं आया था? उनके सुख के लिये तुम बाहर जाने का बहाना कर रहे हो? वास्तव में सुख तुमको चाहिये। तुम उनकी आड़ ले रहे हो।"

"उनका आधार क्या है?"

"इतने दिनों तक आधार था? उनका सुख-दु ख विधाता देखेगा। तुम अपना विचार करो। परिवार के परिवार इस प्रक्रिया में झुलसनेवाले थे। जिन थोड़े परिवारों का विध्वंस हुआ है उनमें से एक तुम्हारा परिवार भी है। तुम और तुम्हारे परिवार वाले सुख देखेंगे ही नहीं ऐसा यदि तुम्हारा और उनका कर्मफल होगा तो उसके लिये तुम क्या कर सकते हो? इसे विधाता का विधान समझ कर ही विचार करना चाहिये।"

"क्या सुख प्राप्त करने का प्रयत्न भी मैं न करूं? यह मिलना न मिलना तो मेरे हाथ में नहीं है यह मैं जानता हूं। परन्तु सुख?"

"ऐसा प्रयत्न? विपरीत पथ की यात्रा? जो झूठ है उसे तुम जानते हुए भी करोगे? यदि इस प्रकार तुम्हें मुक्ति मिल भी गई तो दिन रात एक कसक तुमको सताती रहेगी। 'तुमने स्वयं झूठ बोला और शासन को झूठ बोलने के लिये विवश किया।' मुक्ति के बाद उस कसक की यातना इतना कष्ट देगी कि उसकी तुलना में बन्दीवास की यातनायें कुछ नहीं।"

मैं समझता हूँ कि मानो किसी ने इस प्रकार शाप का उच्चारण किया हो। मुक्ति के बाद मानो वह कसक मुझे चुभने लगी होगी ऐसा आभास-सा होने पर ज्ञानी मन ने "नहीं नहीं" कहा होगा।

मैं भली प्रकार जाग गया था। कुछ समय बाद मन में स्वयं ही गीता का निम्न श्लोक उभर कर आया—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन.॥

शय्या का त्याग कर मैं प्रातर्विधि में लग गया। वह समाप्त कर मैं रात्रि में लिखे कागज के समीप आया। उन दिनों मुझ में शक्तिहीनता आ गई थी। अत सरकार ने मेरी सुविधा के लिये एक छोटा सा मेज और एक डेस्क दिया था, इसमें लिखने में सुविधा होती थी। मेरे सम्मुख कल रात्रि का लिखा वह क्षमा याचना पत्र था। उसकी एक एक प्रति ऊपर के दायें कोने से नीचे के बायें

कोने तक और नीचे के दायें कोने से ऊपर के वायें कोने तक दो रेखाये खीच कर उन मोटे मोटे अक्षरो मे अग्रेजी में ही कैन्सल्ड लिख दिया । यद्यपि कागज़ मेरे ही पैसो से दिये जाते थे किन्तु वे गिन कर दिये जाते थे और उनकी गणना रहती थी जो कि अधिकारियो को देनी पडती थी, इस कारण मन की दुर्वलता रूपी उस क्षमा-याचना-पत्रको को मैं फाड नही सका।

अधीक्षक नये ही आये थे। अभी तक उनका और मेरा ठीक परिचय भी नही हुआ था। धीरे धीरे परिचय वढता गया। अधीक्षक के नाते मैंने उनके साथ भी वहुत सघर्ष किया था। इतना होते हुए भी जिन किन्ही अधिकारियो को मैं समझदार, उदार और सम्वेदनशील मानता हूँ उनमें उनका प्रमुख स्थान है। उनका नाम था श्री तोसकर।

मैं उदास हूँ, इसका ज्ञान अधिकारियो को था। दूसरे दिन उनका चक्कर आया। कोई कुछ वोला नही। मैं भी चुप ही रहा। तीसरे दिन की फेरी के समय मैंने अधीक्षक को कई कागज दिये, उनको टाइप करके भिजवाने की प्रार्थना थी।

उन्होने सरसरी तौर पर पृष्ठ पर दृष्टि डाली और फिर प्रश्नभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। वे कागजात सर्वोच्च न्यायालय को भेजे जानेवाले आवेदन के प्रारूप के थे।

"परसो तो आप ?" अधीक्षक वोले।

"हाँ। मैंने उनको वीच में ही टोका। दया के आवेदन का अपना विचार मैंने जेलर के सम्मुख रखा था। उन्होने उस विषय में अधीक्षक को कहा होगा। परन्तु अव जो कागज वे देख रहे थे वे कुछ उससे भिन्न थे। मैंने उनसे कहा "मैंने दया याचना के विषय में विचार किया था किन्तु अव मेरा विचार वदल गया है। यह देखिये" मैंने उनको इस हेतु लिखे कागज दिखाते हुए कहा, "मैंने इस प्रकार के आवेदन को लिख कर फिर उसे रद्द कर दिया है"

"सहसा आपका विचार किस प्रकार वदल गया? उनका प्रश्न था इससे पूर्व में कह चुका हू कि अधिकारी भी वन्दियो के विशिष्ट स्थित्यन्तरो का निरीक्षण करते रहते है। उसका अध्ययन करते रहते हैं। उस के आधार पर वे अपनी धारणायें वनाते रहते है। यही कारण है कि उन अधीक्षक के भाव से परिलक्षित नही होता था कि मुझे दया का ही आवेदन करना चाहिये था।

"मुझे आत्मज्ञान हुआ है?" मैंने काव्यात्मक भाषा में कहा। उतनी ही विनोदप्रियता से वे वोले, "आपको कौन मिले थे?"

"श्रीकृष्ण।"

"क्या कहा उन्होंने ?"

"क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।"

उनको हसी आ गई। बहुत दिनो से मेरे मुख पर की हसी छुप गई थी किन्तु तब मैं भी मुस्कुराया था। मैं पुन तन कर खड़ा हो रहा हूँ इस विचार से होने वाले सन्तोष की सूचक ही मेरी हसी थी। अनेक दिनों तक मेघाच्छन्न रहने के बाद जब आकाश पर सहसा सूर्य की किरण दिखाई देती है उससे जो आह्लाद मन को होता है ठीक वैसा ही मेरा भी आह्लाद था।

आवेदन टाइप करवाया गया। मैंने उस पर हस्ताक्षर किये। प्रतिज्ञा पत्र लिखा और वह सब कागजात सर्वोच्च न्यायालयको भेजने के लिये अधिकारियो के पास दे दिये। सर्वोच्च न्यायालय में कुछ दिनो के लिये अवकाश था। साढे तीन मास के बाद आदेश आया कि दि० ६-८-६२ को बन्दी को न्यायालय में उपस्थित किया जाय।

निश्चित तिथि पर मैं उपस्थित हुआ। आवेदन में मैंने मुक्ति के लिये प्रार्थना नही की थी। शासन से मुझे कुछ बातें समझनी ही चाहिये इस के लिये कुछ सुविधा मागी थी किन्तु एक टेकनिकल आपत्ति के कारण मेरा आवेदन सर्वोच्च न्यायालय ने वापस कर दिया।

क्योंकि इस बार मैंने मुक्ति के लिये कोई याचना नही की थी अत इस पराजय से मुझे आघात सा नही लगा और यदि मुक्ति की याचना की होती तब इस प्रकार की पराजय मिलती तो भी अब मेरी मन स्थिति ऐसी हो गई थी कि उसका परिणाम उतना भयकर नही होता।

अपनी न्यायालयीन तथा अन्य गतिविधियो के विषय में मैं अपनी पत्नी को सूचित करता रहता था। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बाद पाच दिनो बाद मैं औरंगाबाद पहुँचा था। सर्वोच न्यायालय के निर्णय से घर वालो को सूचित कर दिया था।

अपनी विकलावस्था को भूल कर अपने विवेक को स्थिर रखनेवाली और समय पर मेरा भी विवेक स्थिर रखने में सहायता करनेवाली मेरी पत्नी ने दि० १६-८-६२ को उत्तर में लिखा-

"तुम्हारा पत्र मिला। पत्र पढ कर किंचित् दु ख हुआ। किन्तु उसका आभास किसी अन्य को न हो इस दृष्टि से सावधानी बरती। पिछले दो दिनो से मैं निरन्तर उसी पर विचार करती रही हूँ। "भविष्य मे किस प्रकार लिखा जाय इस सबन्ध में अपनी बुद्धि मे आगे सिन्धु ने लिखा, "इन बातो का विचार करने पर ऐसा लगता है कि एक बार किसी अच्छे वकील से परामर्श किया जाय। दो-तीन सहस्र रुपया उसका देना पड जावेगा। किन्तु कोई हानि नही।

थोडे दिनों तक उतनी राशि एकत्रित कर फिर इस प्रकार का प्रयत्न किया जाय। परन्तु तब तक तुम्हारे प्रयत्न चालू रहें, उन्हें रोकने का कोई कारण नही। पढरपुर की यात्रा मोक्ष मिलने तक करनी ही है यही एक विचार जिस प्रकार उन यात्रियों के मन में स्थिर रहता है उसी प्रकार अपने को भी दृढ सकल्प करना होगा कि जब तक तुम्हारी मुक्ति नही हो जाती हमारे प्रयत्न सतत चालू रहने ही चाहिये। अनेक यातनायें एव कष्ट सहने के बाद भी वे यात्री यात्रा करने से रुकते नही निरन्तर वर्षानुवर्ष उस यात्रा को करते रहते है और कष्ट सहने पर ही वे दर्शन करने पर यात्रा का लाभ मानते है। इसी प्रकार हममें अपने मन में निश्चय कर कार्य को चालू रखना होगा।

"मेरा विश्वास है गोपाल! हम को भी उसी प्रकार एक दिन सुख का, आनन्द भोगने का अवश्य ही प्राप्त होगा। परन्तु उस आनन्द का क्षण प्राप्त करने के लिये अभी तक कष्ट, मानहानि, उपेक्षा, दुख और वियोग इनका घडा नही भर पाया है।

"तुम स्थिर रहो। प्रयत्न निरर्थक सिद्ध हुए, ऐसा विचार आना स्वाभाविक है। परन्तु पत्थर से तेल निकलेगा इस भावना से किये हुए प्रयोग व्यर्थ सिद्ध होने पर भी क्या अनुसन्धानकर्ता निष्क्रिय होकर बैठ गये थे? नही। बिजली के बल्ब में कौन सी तारो का उपयोग किया जाता है इस प्रयत्न में एडिसन के कितने प्रयोग व्यर्थ सिद्ध हुए थे? परन्तु क्या उसने अपना प्रयत्न त्यागा? यदि वह चसका उसने छोड दिया होता तो आज हमें रात को जब चाहे तब प्रकाश, हाथ जोड कर खडा रहा नही दीख पडता।

"सारा ससार भी यदि विमुख हो गया, तो भी मैं तुम्हारे साथ हूँ, इस विश्वास को स्थिर रखो। हम फिर प्रयत्न करें, करते रहे।" "जेथे जातो तेथे तू माझा सांगाती (जहा जाता हूँ वहाँ तू मेरे साथ हो।)"

पिछले दो मास से औरङ्गाबाद बन्दीगृह में मेरा स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। भूख मन्द हो गई थी। जिला रुग्णालय के प्रमुख चिकित्सको ने मेरा परीक्षण किया था। बन्दीगृह के डाक्टर भी अस्थायी उपाय किया करते थे। उसी अवस्था मे विगत अगस्त में मैं दिल्ली भी गया था।

दिल्ली से लौटने के दो सप्ताह बाद स्वास्थ्य और भी बिगड गया। दिन भर मे आधी रोटी भी मेरे पेट मे नही जाती थी। पूरक अन्न के लिए मुझे पाव भर दूध (और डबल रोटी) दिया जाता था। परन्तु उसको लेने की भी इच्छा नही होती था। तरकारी अथवा दाल का रस यही अनाश मे चाहने लगा था।

दि० ३१-७-६२ को मेरा स्वास्थ्य अधिक बिगड गया। दूसरे दिन मुझे बदीगृह के रुग्णालय मे उठाकर ले जाना पडा। रुग्णालय पडोस के ही बैरक में

था। परन्तु वहाँ तक जाने की शक्ति मुझमे नही थी। पिछले ३-४ दिन से पेट में कुछ गया ही नही था।

मुझे पीलिया हो गया था। उससे यकृत बिगड गया था। सिविल सर्जन एक दो बार सप्ताह में आया करते थे। उनका और मेरा परिचय था मेरी चिकित्सा के लिए उनको बुलवाया गया।

रोग का निदान एव चिकित्सा के लिये मुझसे भी कुल पिछली जानकारी ली गई। इसी प्रकरण में कुछ और भी वार्तालाप होने से बोलना पडा। मैं ठीक प्रकार से बोलता हूँ अथवा नही, मस्तिष्क कार्यक्षम है अथवा नही, निरन्तर पराजयो का मन पर कितना परिणाम हुआ है यही सब देखना उनका उद्देश्य था। उन्होने मुझसे पूछा, "पहले पहल आपका भार कितना था ?"

"छ पौण्ड" मैंने कहा।

उन्होने सोचा शायद छ से पूर्व का शब्द छूट गया है, अत उन्होने पुष्टि कराने के लिए पूछा, "क्या एक सौ छ ?"

"नही, केवल छ"

उनके ध्यान में बात आई। वे हँसे, उन्हें मेरी कल्पना का आभास हुआ। मन की विनोदप्रियवृत्ति रोगनिवृत्ति के लिये सहायक होती है यह वे भलीभाँति जानते थे। भले ही मैं दण्डित अपराधी हूँ परन्तु परिचय के बाद अधिकारी मेरे साथ बराबरी का ही व्यवहार करते थे। भले ही मेरा आक्षेप सीधे उन पर ही क्यो न हो। अन्यथा मैं भी किसी के साथ उतनी विनोदप्रियता और मुक्तता से बोल नही पाता था। डाक्टर ने सुधार कर मुझसे पुन प्रश्न पूछा "आप जब औरङ्गाबाद बन्दीगृह में आये तब आपका भार कितना था ?"

"एक सौ पचीस पौंड।"

"बाहर किस प्रकार की आदतें थी।"

प्रश्न सुनकर मैं हँस पडा। वे बोले, 'क्यो हँसे क्यो ?"

मैंने कहा, "डाक्टर आज चौदह वर्ष से मैं निरन्तर बन्द पडा हूँ। मेरी प्रत्येक गतिविधि किसी न किसी नियम से प्रतिबद्ध है। सो बाहर की कौन-सी आदत अब तक बनी रही होगी ? सौभाग्य से अब यदि कभी मुक्त भी हो गया तो यहाँ की आदतें ही बनी रहेंगी, क्योकि मैं इनका इतना अभ्यस्त हो गया हूँ कि अब इस आयु में उनको बदल पाना असम्भव हो जावेगा। बाहर इधर उधर घूमते हुए कभी अचानक ध्यान में आने लगेगा 'अरे! मेरा वार्डर कहाँ गया ? पुलिसमैन कहाँ है ? मैं अकेले इधर कैसे जा रहा हूँ ? मानो मैं भाग कर जा रहा हूँ ऐसा मन को भास होने लगेगा। मैं पलभर रुकूँगा पीछे मुडकर देखूँगा।

"कभी अपनी इच्छानुसार पत्नी ने वढिया भोजन परोसा तो मैं उससे कह बैठूंगा, 'यह क्या तरकारी बनाई है ? इसका रङ्ग यह कैसा है ? इसका तो वैसा रङ्ग होना चाहिये था ? तरकारी मे तेल और मिर्च नही डालना चाहिये ।' तब इस वातावरण मे डाक्टर बाहर की कौन-सी आदत अब तक रह सकी होगी, आप ही बताइए ? हाँ, जिस प्रकार मैं वाहर श्वास-प्रश्वास छोडता था ठीक उसी प्रकार आज बन्द होने पर भी छोडता हूँ, यही एक आदत वाहर की स्थिर है, किन्तु लगता है वह भी अब थोडे दिनो में छूटने वाली है ।"

"आपकी वह आदत उसी प्रकार बनी रहे उसके लिये ही प्रयत्नशील हूँ । मुझे विदित हुआ है कि आप बहुत लिखते रहते हैं । न्यायालय के झगडो से थोडे दिन छुटकारा लीजिए । जब आप स्वस्थ हो जाए तब आप और शासन एक दूसरे से निबट लें ।" 'इस प्रकार कुछ आश्वासन के से शब्द कहकर डाक्टर चले गये ।'

मुझसे न लिखने के लिए कह कर भी ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने अधिकारियो से कहा होगा कि लिखने के साधन मेरे समीप रहने चाहिये, इससे मेरा मन-मस्तिष्क व्यस्त रहेगा और व्यर्थ को बात सोचने के लिए अवकाश नही रहेगा ।

मेरा विश्वास था कि यहाँ के डाक्टर जो भी चिकित्सा करेंगे, जो भी औषधि देंगे, उसमे वे किसी प्रकार की त्रुटि नही करेंगे । किन्तु इतना होने पर भी मृत्यु का भी अपना भाग होता है और वहाँ डाक्टर और उनके उपचार व्यर्थ सिद्ध होते हैं । यह भी मैं जानता था । मुझे लगता था कि मेरा एक आवेदन सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख सदैव ही पडा रहे । उस अवधि मे ही यदि मृत्यु आ भी गई तो कम से उसके वाद सर्वोच्च न्यायालय यह तो देख सके कि मेरी शिकायत व्यर्थ नही थी । शासन ने मेरे साथ अत्याचार किया था, अन्याय किया था, क्रूरता वरती थी । दो आवेदनों के मध्य मैं बहुत ही कम अवधि रखता था । वह अवधि अटल सी थी । क्योकि प्रारूप तैयार करने के लिए दो दिन, टाइप होकर आने के ३-४ दिन और प्रतिज्ञापत्र लिखने के लिये ३-४ दिन लगा करते थे । बीच में ही कही मेरी मृत्यु न हो जाय इस प्रकार कुछ भय-सा प्रतीत होता था । मेरा स्वास्थ्य अच्छा न होने की सूचना घर पर भेजी गई थी । पत्नी और बच्चे दि० ६-९-६२ को मुझसे मिलने के लिये आये ।

उस समय मैंने पत्नी को कहा था, "मुझे लगता है कि मैं स्वस्थ हो जाऊंगा । किन्तु इससे भी महत्व की बात है कि सर्वोच्च न्यायालय में मेरा एक आवेदन विचाराधीन होना चाहिये । ऐसी मेरी इच्छा है । जब भी मैं तुम्हें सूचित करूं तुम तुरन्त यहा आ जाना और यही से मेरा आवेदन टाइप कराकर ले आना, जिससे कि विलम्ब न रहे ।" मैंने उससे यह भी कहा, "जो जीवन हमने एक

साथ बिताया है वही सुख अपने भाग्य में लिखा था । शायद अपना भाग्य अधिक सुख भोगनेलायक नही । यदि इस पर भी सुख मिल ही गया तो उसको हम अस्वीकार तो करनेवाले नही हैं ? मेरा एक आवेदन सर्वोच्च न्यायालय में पडा है, वह कदाचित वापस आनेवाला है, किन्तु मैं समझता हूँ न्यायालय में सदा मेरा एक आवेदन रहना ही चाहिये, इस विचार से मैंने अपना अगला आवेदन तैयार करके रखा हुआ है ।"

उस आवेदन के बारे में सक्षेप में मैंने अपनी पत्नी को बताया । इतने में भेंट का समय हो गया । मैंने उनसे विदाई ली । वे लोग बार-बार स्वास्थ्य के लिये मुझे सावधान करते हुए वापस गये । यद्यपि जाते समय उनकी आखो में अश्रुकण नही दिखाई देते थे किन्तु मैं समझता हू कि उनके अन्त करण अवश्य रो रहे थे । जेल के अधिकारियो ने भी उन लोगो को आश्वस्त करते हुए कहा था कि हम सभी प्रकार का आवश्यक उपचार कर रहे हैं, आप चिन्ता मत कीजियेगा ।

उस रुग्णालय में पीलिया के अन्य भी अनेक वन्दी थे । मुझे मिलनेवाली औषधि उनको नही मिलती थी । मेरे साथ उपचार में तनिक पक्षपात हो रहा है यह मुझे दिखाई दे रहा था । इस बात को मैंने अधीक्षक को बताया तो उन्होने सावधानी बरतने का आदेश दिया । उनको विदित हुआ कि धनाभाव के कारण ऐसा हो रहा है । अत जब मैं अपनी पत्नी को उनके द्वारा दिये गये आश्वासन की बात पर विचार करता हू तो प्रतीत होता है कि उनका आश्वासन सच ही था ।

अधीक्षक इतने भले थे कि अपने अधिकार का प्रयोग कर उन्होने मुझको दी जानेवाली औषध उन वन्दियो को दिलाने का भी प्रबन्ध करवा दिया । उन्होंने मुझसे यह नही कहा कि तुम अपना स्वास्थ्य देखो, दूसरो से तुमको क्या लेना-देना ।

मेरे स्वस्थ होने की प्रगति मन्द थी । रुग्णालय में रहकर ही मैं दवा पानी ले रहा था । १९६२ के अक्टूबर मास के उत्तरार्द्ध में हमारे देश पर विपत्ति के बादल मंडराये । चीन ने हमारे देश की उत्तर-पूर्वी सीमा पर आक्रमण कर दिया । परस्पर के सब मतभेदो को भुला कर एक साथ कन्धे से कंधा मिला कर आक्रमण का उत्तर देने का वह प्रसग उपस्थित हुआ था । १८-१०-६२ को संकट की स्थिति की घोषणा की गई थी ।

दूसरे महायुद्ध के अवसर पर ब्रिटिशर्स ने वन्दियो की भी एक टुकडी तैयार की थी और उनको युद्ध पर भेज कर उनसे युद्धोपयोगी कार्य करवाये थे । इनके लिये वन्दियो को सजा में छूट दी गई थी । जब मैं स्वय उन दिनो मोर्चे पर था तो मैंने स्वय यह देखा था । वन्दीगृह के विशिष्ट वर्ग के वन्दी चुन कर उनका उपयोग किया जाय इस प्रकार की एक योजना भी तैयार कर मैंने शासनाधिकारियो के पास भेजी ।

बन्दीजन मुझे मिलते थे, उनमे अपार उत्साह था। इस अवसर पर उनका क्या कर्तव्य है, क्या किया जा सकता है, इस प्रकार की अनेक बाते वे मुझसे पूछते रहते थे। रक्तदान और द्रव्यदान की सरकार से अनुमति प्राप्त करा ली जाय इस प्रकार की बात भी उनको बताया करता था। सम्भवतया उनके मन मे यह विचार भी हो कि यदि उनको मोर्चे पर भेजा गया तो उनको स्वतन्त्रता मिल जावेगी उनका बन्दीवास समाप्त होगा। परन्तु यहाँ व्यर्थ में सडे रहने की अपेक्षा समुपस्थित प्रसग पर हम प्राणार्पण से यदि देश की सेवा करें ऐसी पवित्र भावना उनके मन मे लक्षित होती थी। किन्तु मैंने शासन के पास जो योजना भेजी थी उसको स्वीकार नही किया गया।

जैसा कि मै पहले लिख चुका हूँ कि मनोरजन के लिये मै कुछ कवितायें लिख लिया करता था। मन में भावनायें उमडने लगी कि वे कागज पर उतरने लगी। अनेक बार मन मे आता था कि गद्य लिखने की अपेक्षा इनको पद्य में लिखा जाय। भारत-चीन युद्ध के समय मै बीमार था। उस प्रसग में मै प्रत्यक्ष कुछ नही कर सकता था। भारतवासी रणभूमि पर उतर रहे हैं और मै बन्दीगृह के रुग्णालय के बिस्तर पर पडा हूँ, मन की यह विपन्नता उससे बाहर निकलने को हुई और 'क्षात्रवृत्त भारत' इस कविता के अन्त में मैंने लिखा—

हवनाची मजला नाही संधि, चित्त अश्रु वाही
रक्त रुग्णशय्या खाई, पाय बाधलेला राही लौह कोंदणाला।
क्षात्रवृत्त भारत अवघा चालला रणाला॥ १-११-१९६२॥

अर्थात् इस रणयज्ञ में हवन करने का मुझे अवसर नही है। रुग्णशय्या मेरा रक्त पी रही है। मेरा पैर लौह शृखलाओ में बँधा पडा है। वहाँ पूरा क्षात्रवृत्त भारत रणक्षेत्र मे प्रवृत्त है।

पण्डित नेहरू के उन दिनो के विचार पढ कर मन को अच्छा लगता था। शस्त्र शक्ति की उपेक्षा नही की जा सकती। जिसको हम अन्धविश्वास मे बहकर "मित्र मित्र" कहते है वह सच्चा मित्र नही होता। हम जागृत नही रहे यह हमारा अपराध है। इस प्रकार के अनुभवपरक शब्द राष्ट्र को "भाई-भाई" के स्वप्निल वातावरण में से निकाल कर वास्तविक धरातल पर पर इन कर खडा कर देंगे ऐसी मुझे आशा होती थी।

थोडे ही दिनो में एक पक्षीय शस्त्र सन्धि हुई थी। उसमें भी मुझे अपनी हार ही प्रतीत हुई। शत्रु जब यह कहता हो कि हम अपनी इच्छा से आक्रमण करना बन्द कर रहे है तो मैं समझता हूँ कि यह हमारे मुँह पर एक करारा थप्पड था। हमारी हार थी। शत्रु ने हमें यहा पर भी पराजित किया था।

पराजय के आघातो को सहते हुए ही हमने यह भी अनुभव किया कि जिन

विश्व शान्ति को रटते हम थके नही, वह विश्वशान्ति बिना सामर्थ्य के व्यर्थ सिद्ध हो रही है।

दि० २०-११-६२ को मुझे रुग्णालय से उन्मुक्त (डिस्चार्ज) किया गया। नाडी का कभी कभी तीव्र हो जाना, हाथ पावो में कभी कभी सहसा कम्पन होना इस प्रकार के विकार अभी शेष थे इसलिये मैं वैद्यकीय नियन्त्रण में और पथ्य पर था। दो मास बाद मैं अपनी कोठरी में आया।

रक्तदान की माग अभी तक भी हो रही थी। जून के मध्य में रक्त पेढी (बैंक) आवेगी ऐसी सूचना मुझे मिली थी। रक्त देने के लिये मैंने भी अपना नाम लिखवा दिया था। और भी ३०-३५ बन्दियों ने अपने नाम लिखाये।

रक्तदान के प्रतिदान स्वरूप बन्दियो में से किसी ने पैसे और किसी ने छूट को पसन्द किया था। मैंने दोनो को ही स्वीकार नही किया। रुग्णालय के कर्मचारियो ने इस कारण से मेरा नाम विशेष रूप में अधिकारियो को दिखाया था।

मेरे लिये विशेप पहरा रखा हुआ था, मैं अभी तक पथ्य आदि के लिये डाक्टरी नियन्त्रण में था, ऐसा व्यक्ति मैं, भी रक्तदान करनेवाला था। अधिकारी जन इससे कुछ शकित हो गये। उन्हें लगा कि कही मैं भविष्य मे इस विषय को ले कर ही किसी प्रकार का विवाद खडा न कर दू। वे इसका उपाय सोच रहे थे।

मुझे उनके भय की कल्पना थी। अपने स्वार्थ के लिये मैं किसी अधिकारी को कठिनाई में डालूं, इस का विचार कभी भी मेरे मन में नही आया। इस सम्बन्ध में जब अधीक्षक मुझसे मिले तो मैंने बताया, "यह रक्तदान बिना किसी प्रकार के प्रतिदान के है। इसके लिये कोई भी प्रतिदान मैं कभी भी नहीं मागूंगा। देश की रक्षा के लिये अनेक लोगो ने बिना प्रतिदान की भावना के ही अपने प्राणार्पण किये हैं। मैंने तो केवल रक्त दान ही किया है और भविष्य में भी करता रहूगा। क्योकि इस स्थिति में इससे अधिक कुछ नही कर सकता। अपने ही देश के लिये किये गये इस छोटे से कर्तव्य के लिये मैं देश से किसी प्रकार की अपेक्षा नही करता। देश के लिये व्यक्ति के जीवन को गौण समझा जाना चाहिये, यही मेरी धारणा है।"

भविष्य में मेरे सम्बन्ध में अधिकारी सजग रहने लगे थे। प्रत्येक चार मास के बाद रक्तदान के लिये मैं अपना नाम दिया करता था। बिना प्रतिदान के मुझे इसकी अनुज्ञा मिलने लगी थी। रक्तदान से पूर्व मेरी वैद्यकीय परीक्षा की जाती थी। त्रिकिल्पक शोणवर्तुली का परिमाण (H. B. परसेंटेज) आदि देखा करते थे। जब तक वैद्यकीय दृष्टि से रक्तदान के लिये मुझे अयोग्य सिद्ध नही किया गया तबतक मैं इस प्रकार निरन्तर रक्तदान करता रहा।

सर्वोच्च न्यायालय में मेरे आवेदन कभी अस्वीकार कर दिये जाते थे और कभी लौटा दिये जाते थे। १९६३ के मध्य तक यह क्रम जारी रहा। ५ अगस्त ६३ को मुझे न्यायालय में बुलाया गया। मैं न्यायालय गया। पराजय की अपनी माला में मैंने एक और फूल गूथा था।

सितम्बर के मध्य हमारे कारावास के अधीक्षक का स्थानान्तर हो गया उनके स्थान पर दूसरे व्यक्ति आ गये थे।

बीमारी से उठने पर मैं काम नही करूंगा, ऐसी सूचना मैंने अधिकारियो को दी थी। कानून कहता था कि कालेपानी के बन्दी को तब तक सश्रम कारावासी समझा जाय जब तक उसको सीमा से बाहर नही भेजा जाता। सन् १९५६ में काला पानी बन्द हुआ था, आजन्म निष्कासन का रूपान्तर आजन्म कारावास में हुआ था। और उसी का स्वरूप आजन्म सश्रम बन्दी बन गया। बाहर जाने का अधिकार ही नही, यह कहने पर फिर काम किया या न किया दोनो एक ही बात थी। काम करने से छूट मिलती है, परन्तु रिपोर्टबुक पर अंकित उस छूट का प्रेतदहन के लिये लगनेवाली सलाई जितना भी जब उपयोग नही तो फिर यह झूठा दिखावा क्यो ?

मैं स्वस्थ हो गया था। चिकित्सको का कहना था कि हलका काम किया जा सकता है। फिर भी कदाचित मुझे किसी ने कोई काम दिया न होता। किन्तु जब दण्डित यह कहे कि "मैं काम नही करूंगा" तो इससे अधिकारियो के अधिकार को आघात पहुँचता है और वे उत्तेजित हो जाते हैं। मुझे शासन के अधिकार का दम्भ तो दिखा देना ही था। दि० १५-३-६३ को मुझसे काम करने के लिये पूछा गया। मैंने कहा कि मैं अपना वक्तव्य दे रहा हूँ। और दि० १९-६-६३ को मैंने ७१ पन्नो का एक वक्तव्य अधिकारियो को दे दिया।

दि० १५-६-६३ को मेरी पत्नी मुझसे मिलने के लिये आई थी। अधिकारियो ने मेरी विचित्र स्थिति की थी। मैंने भेंट करने से इन्कार कर दिया। इन्कार करने का कारण मैंने लिख कर दिया था। अधिकारियो को यह भी हिम्मत नही होती थी कि बिना भेंट किये पत्नी आदि को वापस भेज दिया जाय। मैंने घर पर पत्र भेजना भी बन्द कर दिया था। क्योकि जेल अधिकारी प्रत्येक पत्र में काट छाट करने लग गये थे। पत्र रोक लिये जाते थे किन्तु उसकी सूचना मुझे कभी कभी तो ३०-३५ दिन बाद दी जाती थी।

काम न करने सम्बन्धी मेरे वक्तव्य पर विचार करने में शासन को ५ मास लगे। और उस विचार के परिणामस्वरूप उनका निर्णय था कि जो छूट मुझे दी जाती है वह न दी जाय। यद्यपि निर्णय युक्तियुक्त था किन्तु यदि उस छूट के परिणाम से सजा के कम होने पर कोई प्रभाव पड़ता होता तो।

वन्दी के प्राणो पर टिकटिकी सी लगाये रखना और छूट देकर भी छूट को कार्यान्वित न करना यह जले में नमक छिडकने के समान था। मैंने निश्चय किया कि जो धोखा हो चुका है वह हो चुका है, अब यदि प्राण अवशिष्ट हैं, शासन उन्हें सुख से खीच ले, इस प्रकार मन स्थिति में पहुँच गया था।

छोटी-छोटी बातो में भी मुझपर विचित्र वन्धन आने लगे। नियमो की मर्यादा का भूत खडा कर मेरे पत्रो को रोकने का क्रम भी जारी था। किसी वन्दी के साथ बोलने न देना, नितान्त एकान्त में रहना, वे अन्न देते हैं यही मानो उनका उपकार है इस प्रकार का आभास देना, भीतर ही भीतर मानो मैं वन्दूकें चलाया करता हू इस प्रकार पहरेदारो को सन्नद्ध रखना, नित्य की इस प्रकार की वातो से मेरा मन वहुत विचलित सा हो गया था।

धर्मान्तर स्वीकार न करने के कारण तपे हुए तवे पर रख कर मार डालने के उदाहरण इतिहास में पढने को मिलते है। मेरे मन में विचार आया करता था कि तपे हुए तवे पर छटपटाहट होती होगी और यह भी कि वह तडपन वहुत ही तीव्र होती होगी, किन्तु उसका अन्त तो शीघ्र ही हो जाता होगा। थोडे समय में ही वह वलिदानी मूर्च्छित हो जाता होगा। शेष यातना वह बेहोशी में ही भोग कर मृत्यु का ग्रास वन जाता होगा। किन्तु मेरी यह इतनी सुदीर्घ छटपटाहट अधिकारी गण किस प्रकार सहन कर लेते होंगे ?

फिर मैं विचार करता शासन भी किसी एक व्यक्ति द्वारा अदृश्य शक्ति के रूप में यंत्रित होता है। मनुष्य वदलते रहते है किन्तु शासन स्थिर रहता है। कभी निगाली वदली गई हो और कभी वरतन परन्तु यह हुक्का-चिलम हमारे परदादा के काल से चला आया है, ऐसा लोग कहा करते है। ऐसे ही एक ही अधिकारी सदैव विद्यमान रहता है और उसके सम्मुख वही एक ही वन्दी रहे तो निरन्तर देखते रहने से उसके मन में दया भाव आ सकता है। गांधी वध अभियोग के हम सन्देहास्पद अभियुक्तों से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के लिये साम, दाम, दण्ड, भेद सभी प्रकार के उपाय वरतें। किन्तु कार्य पूर्ण हो जाने के वाद पुलिस का व्यवहार ऐसा कभी नही रहा कि उसके हाथ में शासन है और डण्डा है तो उसका प्रयोग होना ही चाहिये। कोई भी सुसस्कृत व्यक्ति अपने सम्मुख अविरल होने वाली छटपटाहट को सुदीर्घकाल तक सहन नही कर सकता। भले ही फिर वह पुलिस का अधिकारी हो अथवा जेल का, कोई सचिव हो अथवा मिनिस्टर। उचित न्याय नही करना, प्रतिशोध लेना, छूट को निष्क्रिय सिद्ध करना इस प्रकार की नीति जो वरिष्ठ अधिकारियो ने निश्चित की, इसका कारण यही था कि वन्दी उस समय उनके सम्मुख नही रहता था,

बन्दी की छटपटाहट उनके सम्मुख होनेवाली नही थी। जेल अधिकारियो को भी आशा हुआ करती थी कि अपनी तो वदली होती रहेगी निरन्तर अपने सम्मुख यह छटपटाहट रहेगी नही, इस कारण वे अपना समय किसी प्रकार विताया करते थे। व्यक्तिश उनमें सहृदयता का लोप हो गया हो ऐसा प्रतीत नही होता था। मैं जानता हू कि मेरी तडपन अनेक अधिकारियो की निद्रा भग का कारण बन गई थी। परन्तु वे ही अधिकारी जब अधिकारी की हैसियत से आते थे तो वे यन्त्र हैं, वृहत यन्त्र के भाग हैं, मनुष्य नही, इस प्रकार की भावना उनके मन मे आती थी और उनका व्यवहार भी वैसा ही हो जाया करता था।

छूट को गणना में यदि न लिया जाय तो दि० ९-२-६४ को मेरे कारावास के १५ वर्ष पूर्ण हुए थे। इसके ६ मास पूर्व मेरा विषय शासन के पास भिजवा दिया गया था। १५ वर्ष पूर्ण होते ही मुझे छोडा नही जाना था परन्तु तदपि कम से कम उस दिन को मेरी मुक्तता का दिन तो कहना ही चाहिये था। परन्तु इस घोषणा से शासन जो मुझे सदा के लिए बन्दी बना कर मृत्यु के लिये तडपने देने के आनन्द से वचित रह जाता। मैं समझता हूँ कि शासन के वे वरिष्ठ अधिकारी जिन्होने मेरे विषय में इस प्रकार का निश्चय किया था भले ही वे अत्यधिक शिक्षित रहे हो किन्तु वे सुसस्कृत नही थे इतना निश्चित है। यदि उन्होंने मेरे मुक्त होने की अन्तिम तिथि की घोषणा की होती तो उससे कम से कम मेरे घर वालो को ही कुछ तो सान्त्वना प्राप्त होती। शासन ने वह भी नही किया।

मेरे मुक्त होने के बाद अर्थात् नवम्बर १९६४ में सत्यनारायण पूजा के समारोह में भाषण देने के बहाने कई लोगो ने उद्धतापूर्वक कहा 'गोडसे की प्रवृत्ति के हिंसक जन अनिर्बन्ध छूट गये हैं।' मानो इस प्रकार के उद्धत भाषण करनेवाले व्यक्ति न्यायाधीश हो इसलिये उनके कथन के अनुसार उस बहाने से सरकार ने बिना किसी प्रकार की छानबीन किये अनेक लोगो को भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत बन्दी बना लिया था। १७ वर्ष तक कारावास में सडते रहने के बाद फिर निरपराध होकर भी पुन एक वर्ष तक मुझे उन्ही दीवारो के पीछे सडते रहना पडा। मैंने इस अवधि में किस प्रकार सजा भुगती है, कैसी यातनायें सही है, इसका ज्ञान उस समय उन कोलाहलकर्ताओ को नही था जिन्होने हमारे छूटने के विरोध में कोलाहल मचाया था। यदि उनको उसका ज्ञान होता तो कदाचित उन्हें भी मेरे साथ सहानुभूति ही होती। और तब वे शायद बात का बतगड नही बनाते। अब वे अपने बर्ताव की जाच कर सकते है। मेरे प्रत्येक वाक्य की सत्या-सत्यता के विषय में वे शासन से पूछ सकते है। तब उन्हे विदित हो जायगा कि सरकार का व्यवहार साधारण मनुष्यता से भी कितना गिरा हुआ था।

अस्तु, जीवन के सम्बन्ध मे मुझे निराशा आती जाती थी। सघर्ष जारी था।

परन्तु मन का यह सन्तुलन कब तक टिका रहेगा, इस विषय में संदेह होता रहता था। यातनाओं से तंग आ कर एक दिन मैंने सूचना दी, कि दि० १६-४-६४ के बाद मैं स्वय अपने पैरो से कोठरी के अन्दर नही घुमूं गा। यदि किसी प्रकार जुल्म व जबरजस्ती से अधिकारी मुझे कोठरी में बन्द करना चाहें तो वे करें, मैं उनको किसी प्रकार का सहयोग नही दूंगा। वधस्थल पर जो स्वय चल कर नही जाता उसको उठा कर ले जाया जाता है।

मेरे निषेध का प्रकार टेकनिकल होने पर भी उसका कार्यवाहन तो वास्तविक रूप में होनेवाला था, पुस्तक पर नही। बन्द होने के समय मैं कोठरी के बाहर बैठा रहा। बैरकों मैं जो प्रशाल रक्षक अर्थात् वार्डर होते हैं वे बन्दियो में से उनकी उन्नति करके बनाये जाते हैं। उनको अलग टोपी और पट्टा दिया जाता है। मुझ पर जो दो प्रशाल रक्षक थे उनसे कहा गया कि वे मुझे उठा कर कोठरी के अन्दर बन्द कर दें, किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था, "कोई यदि मृत शरीर पडा होगा तो उसे उठा कर हम इधर उधर रख देंगे। यदि एक बन्दो दूसरे बन्दी पर किसी प्रकार का अत्याचार करेगा तो उसका भी हम प्रतीकार करेंगे उसको नियन्त्रित करेंगे। परन्तु जिस बन्दी को प्रेतवत कर दिया गया हो, उसके साथ प्रत्यक्ष प्रेत का सा व्यवहार करने में सहायता करने का कार्य हमसे न कहा जाय। हम अधिकारी होते हुए भी बन्दी है। कल हम पर भी कुछ इसी प्रकार की वारी आ सकती है। इसके अतिरिक्त आपके आरक्षक यहाँ है, उनसे उठाने के लिये कहिये। बन्दी ने यदि किसी प्रकार का विरोध किया और सिपाहियो में अपने बचाव का सामर्थ्य नही हुआ तो फिर हम यहाँ पर है ही।"

उन प्रशाल रक्षकों पर आज्ञा भग की आरोप लगा कर उनका अधिकार छीन लिया गया। न केवल इतना अपितु उन पर यह आरोप भी लगाया गया कि ये न सुधरने वाले बन्दी हैं अत इन्हें रत्नागिरि भेज दिया जाय और तदनुसार उन्हें वहा भेज भी दिया गया। शरारती बन्दियो के लिये रत्नागिरि बन्दीगृह प्रख्यात है।

उन प्रशाल रक्षको से उस प्रकार के कार्य के लिये अधिकारियो का कहना कितना अव्यवहार्य एवं अनियमित था इस का विवरण मैंने ५० पृष्ठ के एक आवेदन में जो मैंने कारागृह विभाग के प्रमुख के नाम भेजा था, उसमें किया था। क्योंकि वह घटना मेरे सम्मुख ही घटी थी, अत मैंने यह आवश्यक समझा था।

तब अधिकारी अन्य बन्दियो को लाये और उनके द्वारा मुझे कोठरी में बन्द करवाया गया। मेरी छूट काटने की विधि चलाई गई। अधिकृत रूप से ही जिसको मृत्यु की सजा हुई हो उसको भी छूट दी जाती है, इस प्रकार

किसी अन्य के विषय मे तो मैंने देखा नही। मान लिया जाय कि उसको छूट दे भी दी गई और उसको उसकी पुस्तक पर अंकित भी कर दिया तो उससे क्या ? मैंने अधिकारियो से कहा, "मैं वाहर निकलना चाहता था, यह आप देख रहे थे इसलिये मेरी मुक्ति की तिथि पर उगली रख कर आप शासन की ओर से मुझे यातना दे रहे थे। अव आप उस स्थान पर उगली नही रख सकेंगे। मैं मृत्यु के वहुत समीप हूँ। आपके द्वारा काटी हुई छूट को देखकर क्या आप समझते है कि मृत्यु चौंककर रुक जावेगी ? यदि आप कर्तव्यपालनशील अधिकारी हैं तो शासन को कहिये कि वह इस विडम्बना को रोके।"

दि० २०–६–६४ को नित्य की भांति अधीक्षक मेरी कोठरी के समीप आये। गले में तौलिया लपेटे मैं द्वार की चौखट के पास खडा था। मेरे निकट ही मेरे नये प्रशाल रक्षक खडे थे। मैंने अधीक्षक के हाथ में एक कागज दिया और गले में लटकने वाली डोरी को चौखट में लगी कुण्डी के काटे में लटका दिया। क्योंकि उस समय सभी का ध्यान लगभग मेरी ही ओर था। अत शीघ्रता से मुझे उठा लिया गया और डोरी निकाल ली।

वास्तव में मैंने एक डोरी का फास वना कर गले में लटका रखा था। पहरेदार सदैव मुझ पर छिपी नजर रखते थे इसलिये शौचस्थान पर मैंने उसको तैयार किया था। और उसको छिपाने के लिये गले में तौलिया लपेट लिया था।

मेरे इस क्रिया से सवको विस्मय हुआ। मुझे नीचे वैठाया गया। अधिकारी भी वही वैठे। मैंने वडी शान्ति से कहा,"यह चहल पहल मेरे पास होते हुए कोई मुझे शान्ति से फासी लेने देगा, ऐसा असम्भव दीखता है। मैं इस स्थिति को पहुँच गया हूँ, यह वात केवल आपके ध्यान में लाने के लिये मैंने यह नाटक किया था। आप लोगो ने यदि अधिक तग करने का निश्चय किया तो मैं इसी किसी प्रकार से अपने को मुक्त कर लूगा। तव केवल मेरी वास्तविक लाश ही आपके हाथ में आवेगी। आपके चाहे कितने ही पहरेदार मेरे चारो ओर घूमते हो, किन्तु वे इसकी आहट भी न पा सकेंगे। यदि आप को सन्देह हो तो आप स्वय ही देख लीजियेगा। मैं सव प्रकार से सिद्ध हूँ।"

मुझ पर लगाये गये वन्धन कुछ ढीले किये गये। कुछ दिन वाद जव मेरा मन शान्त और कार्यक्षम हुआ तो मैंने एक दिन अर्थात् दि० २४–७–६४ को अधीक्षक को एक पत्र लिखा। उसमें लिखा था "अपने मनकी एकात्मता पर अव मेरा विश्वास नही। किसी भी तरह से अव मैं अपना जीवन समाप्त करूगा, ऐसा प्रतीत होता है। उस समय शायद कुछ लिखने के लिये भी मैं रुक नही सकूगा।"

"मैं मृत्यु को सामने देख रहा हूँ। वह मुझे भय नही दिखाती। इस ऊची सतह पर खड़े होते हुए आपके प्रति या किसी अन्य के प्रति मेरे मन में किसी भी

प्रकार की कोई द्वेष भावना नही है ।"

"यदि मेरी अनायास नैसर्गिक मृत्यु हो गई तो आपका किसी प्रकार का अनिष्ट न हो, उसके लिये आप इस पत्र का उपयोग कर सकते हैं । इसके लिये किसी को भी दोषी न ठहराया जाय । मेरी इस स्थिति के लिये ठीक कौन उत्तरदायी है इसका निर्णय करना असम्भव नही तो अत्यन्त कठिन अवश्य है । अत सभी व्यक्ति सशय के लाभ के अधिकारी है।"

"मेरी इन भावनाओ को, कि मैं अपना जीवन समाप्त करना चाहता हू आप सम्मान की दृष्टि से देखेंगे ऐसी मेरी कोई धारणा नही है । हा यदि वैसा न हुआ, जैसा कि मैं लिख रहा हूँ तो आप मुझे असत्यवादी बेशक समझेंगें । तबतक आप मुझे स्पष्टवक्ता समझिये और यदि मृत्यु आ गई तो फिर समझियेगा कि मेरा कथन प्रामाणिक था । मृत्यु के बाद अपने सरक्षण के लिये आप इस पत्र का अवश्य प्रयोग कीजिये ।"

वास्तविक पत्र पर्याप्त लम्बा था परन्तु प्रस्तुत विषय के लिये इतना साराश पर्याप्त होगा । पत्र मिलने पर अधिकारी मुझसे मिले । उन्होने मुझे अपने निश्चय से परावृत्त करने का यत्न किया । मैंने कहा, 'अब परावृत्त करने में कोई स्वारस्य नही । क्योकि तुरत इसी समय मैं अपने हाथ में डोरी लेकर आया नही हू । और यदि अधिकारी के नाते से आप मुझे परावृत्त करना चाहे तो मै यही समझूगा कि मुझे अधिक जीवित रखने पर मुझे यातना देने से आप को आनन्द आता है, इसलिए इस प्रकार मनाने की चेष्टा की जा रही है । यदि आपके हृदय में थोड़ी-सी भी सम्वेदना विद्यमान होगी तो मेरी मृत्यु से आपको यह जानकर समाधान होगा कि इससे मेरी यातना तो समाप्त हो गई है । जिनके हाथ में मेरी मुक्ति थी उनके हाथ में मेरी सजा का कार्यवहन क्यो नही सौप दिया गया ? फसाने का यदि कोई पाप होगा तो वह अब आपको लगनेवाला है । अन्यथा उस प्रकार वह उनके हिस्से गया होता ।

"क्या होनेवाला है, यह तो मैं नही जानता । आपकी कल्पना के अनुसार यदि कुछ अनिष्ट हुआ ही तो मेरा पत्र आपके संरक्षण के लिये है ही । मैं अपना अनिष्ट स्वय करु और इससे दूसरे को कुछ कष्ट होवे यह विचारकर जीवित होते हुए प्रत्येक क्षण मरणतुल्य वेदना सहूँ इसकी मर्यादा कब समाप्त होगी, यह मैं कैसे कह दूँ ?"

अधिकारी समझा-बुझाकर चले गये । भेंट समाप्त हुई । कभी-कभी मुझे घोर अन्याय की प्रतीति होती थी । वह अन्याय किस प्रकार का है, उसको लिपिबद्ध करने का विचार भी आता था किन्तु उसको कागज पर उतारने की शक्ति नही रह गई थी । विवशता के कारण ही मैं वह अपमानित जीवन सहन किया करता था ।

* * *

सोलह

प्रकाश की प्रथम किरण

बहुत ही कठिन एव असुविधाजनक परिस्थिति में रहते हुए और मनस्थिति के अत्यन्त व्यग्र होते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय में मेरे प्रयत्न चालू थे। मुझे लगता है कि मनुष्य में जीवन की इच्छा बहुत ही प्रबल होती है। किसी दुर्घटना में मस्तिष्क के चकनाचूर हो जाने पर भी शरीर के अन्य अवयव छटपटाते रहते हैं, मानो निकलनेवाले प्राणो को रोकने के लिये वे प्रयत्न कर रहे हो ऐसा प्रतीत होता है। मैं समझता हू कि अभी तक मेरा मस्तिष्क व्यवस्थित था।

औरगाबाद बन्दीगृह में दि० २६-५-६४ को मैंने एक प्रारूप टाइप करवाने के लिए दिया। उसके दूसरे ही दिन पण्डित नेहरू का देहान्त हो गया, इसके कारण दो दिन तक हाट-बाजार बन्द रहे। स्वाभाविक ही कागज वापस मिलने में विलम्ब हो गया।

मेरी पत्नी सिन्धु ने सर्वोच्च न्यायालय के एक वकील से विचार विनिमय किया था। उन्होने आवेदन करने से पूर्व उसका प्रारूप दिखाने के लिये कहा था सम्भवतया वे ही उस आवेदन को सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिये उद्यत भी थे।

सर्वोच्च न्यायालय जिस विषय पर एक बार निर्णय दे चुका है यदि उसी प्रश्न को पुन उपस्थित करना हो तो उसको सर्वोच्च न्यायालय के किसी अधिवक्ता द्वारा नियत अवधि अर्थात् ३० दिन के भीतर ही प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि अवधि बीत जाने पर प्रस्तुत करना हो तो उसके लिये विशिष्ट अनुमति प्राप्त करनी आवश्यक है। मेरे पूर्व निर्णय की कालावधि बीत गई थी, और मुझे इसको

पुन प्रस्तुत करने की इच्छा हो रही थी। उसके लिये विशिष्ट अनुमति लेने की आवश्यकता थी। उसके लिये किसी वकील की सहायता चाहिये थी। अपने प्रारूप की टाइप्ड प्रति मैंने सिन्धु के माध्यम से वकील के पास भिजवा दी। उसकी एक प्रति मैंने अपने दिल्ली के वकील मित्र लाला गणपतराय को भी भेज दी।

घर का पत्र व्यवहार मैंने पुन. चालू कर दिया था। साधारणतया एक वर्ष की अवधि के बाद भेंट भी करने लग गया था। कुछ पत्र-व्यवहार के बाद वकील साहब ने मुझे बताया कि प्रारूप में विचार करने योग्य ऐसी कोई बात नहीं है, उस प्रकरण को पुन सर्वोच्च न्यायालय में नहीं ले जाया जा सकता।

प्रत्येक की अपनी अपनी धारणा होती है। मैं यह नहीं मानता कि वकील बात को समझ नहीं पाये थे। वकील और न्यायाधीश में मतभेद हो सकता है। मतभेद तो दो न्यायाधीशों में भी होते हैं। इस स्थिति में एक न्यायाधीश बुद्धिमान और दूसरा मदबुद्धि है ऐसा नहीं कहा जा सकता। किन्तु मुझे इस बात का खेद था कि वकील के पीछे लगे रहने से आवेदन प्रस्तुत करने में विलम्ब हुआ था। यदि वे उस आवेदन को प्रस्तुत नहीं कर सकते थे तो इनकी सूचना मुझे तुरन्त देनी चाहिये थी।

अपने पक्ष एवं विधान पर मुझे विश्वास था। लाला गणपतराय ने उसमें अनेक संशोधन सुझाये थे। उनमें से जो मुझे उचित जँचे उनको मैंने मान लिया और प्रारूप को पुन ठीक किया। और प्रारूप को इस प्रकार का बनाया कि जिसमें सर्वोच्च न्यायालय यह न समझे कि मैं उसी प्रश्न को पुन उठा रहा हूं। टाइप करा कर दि० १४-८-६४ को प्रतिज्ञापत्र के साथ उसको दे दिया।

आवेदन के एक अंश में मैंने यह भी दिखाया था कि सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय कितना दोषपूर्ण है। अपना तर्क मैंने सप्रमाण सिद्ध किया था। केवल उसी प्रश्न पर पुन विचार करने न करने के निर्णय को मैंने सर्वोच्च न्यायालय पर छोड़ दिया था।

आवेदन के दूसरे अंश में मैंने अनेक मूलभूत प्रश्न उपस्थित किये थे। भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत छीने गये नागरिक के अधिकार के लिये न्यायालय में जाने के अधिकार को संकटावस्था के कारण स्थगित किया गया था। वैसे ही सर्वोच्च न्यायालय का स्वयं के ही एक निर्णय को प्रमाण मान कर मेरे लिये न्यायालय के द्वार बन्द करने का अधिकार क्या सर्वोच्च न्यायालय को है? क्या प्राङ्न्याय अर्थात् रैस जुडिकेटा (Res-Judicata) आवेदन के मार्ग में आडे आता है?

आजन्म कारावास के बन्दी की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी जाती है, ऐसा न्यायालय ने भी कहा था। दण्ड संहिता की धारा ४०१ में दया का अधिकार

उल्लिखित हैं। आजन्म कारावास के बन्दी की मुक्ति का आदेश शासन ने कभी नही निकाला। अर्थात् उसे स्वतन्त्रता नही मिली तो उसका जीवन ही छीन लिया। यदि सर्वोच्च न्यायालय ने भी न्यायालय का द्वार बन्द कर दिया तो फिर ऐसे बन्दी को कौन संरक्षण दे सकेगा?

सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार की भावना व्यक्त की थी कि शासन किसी प्रकार का अनुचित बर्ताव करेगा, ऐसा नही प्रतीत होता। अनुचित बर्ताव की न्यायालय के मन में कुछ परिभाषा तो होनी चाहिये। इसी प्रकार मेरा यह वर्त-मान बन्दीवास उचित है अथवा अनुचित यह देखने का उत्तरदायित्व भी सर्वोच्च न्यायालय पर आता है।

अन्य भी अनेक तर्क दे कर मैंने कहा था कि यदि मेरी प्रार्थना मान्य कर लेना न्यायालय की सीमा के अन्तर्गत आता तो मैं फासी की याचना करता। क्योंकि इन दिनो मेरे साथ जो व्यवहार किया जा रहा है फासी ही उसमे छुटकारा दिला सकती है। किन्तु न्यायालय तो सविधान के प्रति उत्तरदायी है, वह मुझे फासी दिला कर किस प्रकार इस विपत्ति से छुडा सकता है? इसी प्रकार मै भी सविधान् की सीमा के अन्तर्गत न्यायालय से मुक्ति की याचना कर सकता हूं, फासी की नही।

मैं उक्त आवेदन तैयार कर रहा था कि उन्ही दिनो अर्थात् अगस्त १९६४ के प्रथम सप्ताह में महाराष्ट्र विधान सभा मे मेरी और करकरे की मुक्ति के लिये अनेक प्रश्नोत्तर हुए थे। प्रश्नकर्त्ताओं को उत्तर दिया गया कि उनकी मुक्ति राज्य शासन नही अपितु केन्द्र शासन ही अपनी दया के अधिकार से कर सकता है। श्री नानावटी को आजन्म कारावास का बन्दी होते हुए भी चार वर्ष वाद ही किस प्रकार मुक्त कर दिया गया इसके उत्तर में सरकार ने कह दिया कि "लोक-हित की दृष्टि से वह तथ्य प्रकाशित नही किया जा सकता।"

प्रश्नकर्त्ताओं को सम्पूर्ण जानकारी नही हुआ करती और मैं यह जानकारी उनको दूं यह भी सम्भव नही था। शासन कई अर्द्धसत्य प्रस्तुत कर सदस्यों को किस प्रकार तुरन्त मौन कर देता है यह जानकर मुझे दुःख होता था।

जुलाई १९५२ मे ही बम्बई शासन ने हमारी मुक्ति का दिन १०-२-६० बताया था। फिर १४ वर्ष के प्रतिवृत्त के समय उसी शासन ने पहले दिया हुआ दिन भुलाकर १५ वर्ष प्रत्यक्ष कारवास भुगतने के वाद अपना अभिमत केन्द्र शासन को सूचित करने की दुष्टता की थी। वह गोपनीय अभिलेख ही न्यायालय ने एक वार मेरे हाथ में दिलवाया था तभी इस शासन के ढोंग का परिचय मुझे प्राप्त हुआ था। नियम का उल्लघन कर दिन रात बन्दी से काम लेना और उसने रक्तदान लेना तथा प्रतिदान में छूट का झूठा आश्वासन देना मात्र ही इस शासन

का अधिकार था। मनुष्यता की प्रगति हो रही थी न ?"

मैं इस प्रकार विचार किया करता था कि मुक्ति का दिन शासन नही बता सकता यह बात सत्य है। मेरी मृत्यु कब होगी यह उनको पहले कैसे ज्ञात हो जावेगा ? मृत्यु आने पर वे अपने दया के अधिकार से पत्नी को तार भेजेंगे ? "तुम्हारे पति की सजा पूर्ण हुई, उसको लेने के लिये औरंगाबाद आओ।" और वह आनन्द से उन्मत्त-सी वन्दीगृह के द्वार पर जब पहुँचेगी उसे उसका "मुक्त" पति सौंप दिया जावगा। दया के विशेष अधिकार का उपयोग कर शासकीय अधिकारी शासन की ओर से आशीर्वाद देंगे। "सदा सौख्य भरे।" (आनंद से ससार करो।)

मेरा आवेदन दि० १८-८-६४ को सर्वोच्च न्यायालय को भिजवाया गया। पंजीकार ने उसको स्वीकार कर लिया। दि० १५-९-६४ को उसे सविधानिक न्यायासन के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। साविधानिक न्यायासन अर्थात् कौंस्टि-ट्यूशन बेंच पाच न्यायाधीशो का होता है। वह विचार करता है कि प्राथमिक श्रवण के लिये आवेदन में कुछ है क्या ? और यदि है तो मुझे बुलवाने के लिये आदेश देने पर विचार किया जाना था। आवेदन स्वीकार कर लिया गया। दि० २८-९-६४ पूर्व श्रवण का दिन निर्धारित किया गया और इसकी सूचना मुझे दि० १८-९-६४ को औरंगाबाद वन्दीगृह में प्राप्त हुई। दि० २३-९-६४ को मैंने औरंगाबाद से दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। तीन दिन दिल्ली वन्दीगृह में रहकर दि० २८-९-६४ को न्यायालय मे उपस्थित हुआ। न्यायाधीश नें आवेदन को पढ लिया था। बीस मिनट तक चर्चा हुई। परन्तु दण्ड सहिता की धारा ४०१ का अस्तित्व अर्थात् दया का अधिकार मन से नही हट रहा था। मैंने कहा कि मुझे दया नही चाहिये, मेरी स्वतन्त्रता छीनी गई है। धारा ४०१ का उलटा उपयोग कर यदि मै मृत्यु का ग्रास बन गया तो क्या फिर मैं न्यायालय में आ सकूगा ? दया के अधिकार का अर्थ क्रूरता का अधिकार नही होता और स्वातन्त्र्यहरण का अर्थ भी जन्महरण नही होता। कानून में जीवन हरण का अन्य विधान है। स्वातन्त्र्य हरण की सजा का उपयोग जीवन हरण के लिये करना नियम विरुद्ध होने के साथ ही क्रूर कृत्य भी कहलायेगा।

कम से कम इस बार न्यायधीश से मेरे द्वारा प्रस्तुत तर्कों के विषय में सहानुभूति परक उद्‌गार प्रकट किये थे। परन्तु धारा ४०१ पुन सामने आ गई। चूं कि मेरी सजा आजन्म कारावास है और वह अधिकार प्रभारी शासन सस्था का है।

मैंने पुन तर्क प्रस्तुत किया कि मेरा स्वातन्त्र्य छिन गया है। उसे प्राप्त करने के लिये मैं जीवित होते हुए ही प्रयत्न कर सकता हूँ, मरने के बाद नही। शासन

द्वारा धारा ४०१ का उपयोग करने पर मैं आपके पास क्यो आऊगा ? शासन उस अधिकार का प्रयोग नही करता और तब तक आप भी न्यायालय का द्वार मेरे लिये वन्द कर दें, क्या यह आपके अधिकार की बात है ?

न्यायाधीशो ने परस्पर विचार विमर्श किया। कभी अनुकूल और प्रतिकूल होते-होते ३-४ मिनट में ही उन्होने सर्वसम्मत निर्णय लिया—'पूर्व श्रवण के लिये शासन को उपस्थित होने का आदेश दिया जाय।' इस प्रकार इस आवेदन ने यह सीढी भी पार कर ली। दि० १९-१०-६४ की तिथि इसके लिये निर्धारित कर दी। तब तक मुझे दिल्ली वन्दीगृह में ही रखने का आदेश दे दिया गया।

दि० २८-९-६४ को जब मेरा आवेदन न्यायालय के सम्मुख आया और मैंने उसके सम्मुख प्रस्तुत किया उससे दो-तीन दिन पहले ससद में श्रीमती शकुन्तला पराजपे ने हमारी मुक्ति के सबध में प्रश्न किया था। छोडना अथवा न छोडना यह हमारी इच्छा पर निर्भर है, इस प्रकार का उनको उत्तर दिया गया था।

मैं सोचता हू, 'हमारा अधिकार, हमारी इच्छा' ऐसा शासन का बार बार कहना क्या न्यायाधीशो पर किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न नही करता होगा। अन्यथा मुझे उनको समझाने के लिये वीस मिनट क्यो झगडना पडता। न्यायालय के अनुकूल निर्णय से मुझ पर भी प्रभाव पडा था। यह मेरा २२ वाँ आवेदन था।

न्यायालय से मुझे दिल्ली कारागार में जो १९५९–६० में लगभग ९० लाख रुपये व्यय करके तिहाड में बनाया गया है, लाया गया है। इस वन्दीगृह को नितान्त आधुनिक माना जाता है। वन्दियो की सुख सुविधा का भी इसमें ध्यान रखा गया है। यहा तक कहा जाता है कि यदि वन्दियो को इस प्रकार की सुविधा प्रदान की गई तो इससे अपराध प्रवृत्ति का निरोध होने की अपेक्षा प्रगति होने की सम्भावना अधिक हो सकती है। क्योकि जो सुविधा मुक्त जीवन में व्यक्ति उपलब्ध नही कर सकता वह उसको कारागार में मिलने लगी है। यहा रगमच है, वाचनालय है, रेडियो सुनने और टेलिविजन देखने की सुविधा भी है। इस सन्दर्भ में अपराधवृत्ति की प्रगति के विषय पर यदि कभी अवसर आया तो अपने विचार मैं पृथक् से व्यक्त करने का यत्न करूगा।

दिल्ली कारागार में मुझे 'ब' श्रेणी में रखा जाता था। मुझे दिल्ली शासन ने ही 'ब' श्रेणी प्रदान की थी। उसको मेरे अधिपत्र पर १९४९ में अकित किया था। अधिपत्र पर काटछाँट करना अपराध माना जाता है। किसी प्रकार का सशोधन भी मूल अधिकारी अथवा उसका वरिष्ठ अधिकारी ही कर सकता है।

बम्बई प्रशासन ने १९५२ में हमारी श्रेणी घटा कर 'सी' श्रेणी कर दी थी। महाराष्ट्र शासन दिल्ली शासन से वरिष्ठ नही था। इसलिए उन्होने अधिपत्र पर सशोधन नही किया। हमारा अधिकार दबा कर हमारे साथ महाराष्ट्र सरकार ने

अत्याचार किया था। अधिपत्र की वास्तविक प्रति स्थलान्तर के समय दिल्ली भेजी गई थी उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया था। उसके अनुसार हमारी 'ब' श्रेणी अबाधित रही। दो व्यक्तियो को दबाने के लिये अपने ही शासन ने कितनी धोखेबाजी को यह जान कर कैसा भी कोई व्यक्ति क्यो न हो उसको भी आघात लगेगा ही।

मेरे प्रतिवेदन में चार प्रतिवादी थे। महाराष्ट्र शासन, केन्द्र शासन, औरंगाबाद कारागृह प्रमुख और दिल्ली के चीफ कमिश्नर। दि० २८-९-६४ का सर्वोच्च न्यायालय का आदेश २९-९-६४ को टाइप होकर मेरे प्रतिवेदन की प्रतियो सहित सम्बन्धित कार्यालयो को ३-४ दिन में पहुँच गया। मैं कल्पना कर सकता हू कि जिस प्रकार रेचक लेने से पेट में विचित्र प्रकार की गचपच होती है उसी प्रकार उन सम्बन्धित कार्यालयो मे भी गचपच हुई होगी। सर्वोच्च न्यायालय कहाँ का न्याय देता है, इस दर्प से शासन का व्यवहार हुआ करता था। चार पाच दिन पूर्व ही शासन द्वारा ससद में कथन 'छोडना या न छोडना यह हमारी इच्छा का प्रश्न है' न्यायालय को भी विचार करने का विषय बन गया। धारा ४०१ को स्थगित कर वन्दी को मृत्यु के समीप पहुँचाने का अपना अधिकार है, इसका विश्वास शासन को हो गया था।

सर्वोच्च न्यायालय का आदेश पाकर शासन जो हिल गया था उसका कारण कुछ अन्य ही था। शासन ने न्यायालय को अब तक अंधेरे में ही रखा था। जो सत्य उनको अवगत था उनमे उन्होने न्यायालय को सूचित नही किया था। प्रतिशोध लिया जा रहा है इस कल्पना से फिर यदि भारत के सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय किसी अधूरी जानकारी के कारण गलत भी हो जाता है तो उसको क्या चिन्ता। यह थी उन सम्बन्धित व्यक्तियो की अर्थात् प्रतिशोध लेनेवाले व्यक्तियो की राष्ट्रीय एकात्मता की भावना।

ससद सदस्यो को गोलमटोल उत्तर दिये जा सकते है क्योकि समय पर "लोकहित" नामक कवच शासन की सुरक्षा में समर्थ है। किन्तु न्यायालय को फुसलाया नही जा सकता।

शासन की अनेक बातें मैंने न्यायालय के विचार के लिये प्रस्तुत की थी। उन बातो की सत्यता यदि न्यायालय को जची और न्यायालय ने शासन को दोषी ठहराया तो असत्यता का आरोप कौन स्वीकार करेगा ? न्यायालय शासन को नही अपितु उसके किसी भी अधिकारी को ही दोषी ठहरायेगा।

भावी घटनाओ के आधार पर यह निश्चय जाना जा सकता है कि सरकार ने अपनी मुट्ठी बन्द ही रखने का निर्णय लिया। जिससे कि मेरे आवेदन में

उपस्थित आरोपो का उत्तर न देना पडे और न्यायालय द्वारा असत्यता का आरोप न लगाया जा सके।

प्रतिवादियो को जो आदेश भेजा गया था उसकी एक प्रति मुझे दिल्ली कारागार मे दि० ४-१०-६४ को प्राप्त हुई। उन दिनो आवेदन के सम्बन्ध में ही और कुछ लिखने में व्यस्त रहा करता था। दि० १०-१०-६४ को शनिवार था। भारत के तत्कालीन गृहमन्त्री गुलजारीलाल नन्दा के कारागृह के निरीक्षण के लिये आने की चर्चा थी। यत्र-तत्र सफाई आरम्भ हुई। गृहमन्त्री से दो बातें करने के लिये सभी वन्दियो को नाट्यगृह में एकत्रित किये जाने की योजना थी।

कई कनिष्ठ अधिकारियो ने मेरे विषय में अनेक धारणायें बना ली थी। गृहमन्त्री की सभा में मुझे उपस्थित किया जाय अथवा नही। भारत के गृहमन्त्री के आने पर कुछ ऐसी वैसी वात हो गई तो ? इस प्रकार उन अधिकारियो में विचार विमर्श हुआ करता था किन्तु किसी प्रकार का निर्णय नही कर पाते थे। मेरे कानो में यह वात आई। मुझे यह जान कर हसी आती थी। तव मुझे ३-४ वर्ष पूर्व का एक प्रसग स्मरण हो आया।

एक आवेदन के लिये मुझे दिल्ली भेजा जा रहा था। एक नायक और तीन सिपाही मेरे साथ थे। सिपाहियो मे से एक दो पहले भी मेरे साथ एक वार आये थे। उनसे परिचय था। और उस परिचय के आधार पर जितना विश्वास निर्माण हो सकता था वह भी हुआ था।

बन्दी को मार्ग मे ले जाते हुए हथकडी डालना अथवा न डालना यह मार्ग रक्षक दल के प्रमुख पर निर्भर करता है। वेडी डालने से मैंने कभी इन्कार भी नही किया। किन्तु प्राय हुआ यही कि एक दो वार छोड़ कर कभी किसी ने वेडी नही पहिनाई। यात्रा में हम वन्दियो को घर के वस्त्र पहना दिया करते थे।

कभी इस प्रकार हुआ कि किसी स्थान पर मार्ग रक्षक दल वदलनेवाला था। किन्तु वह वदला नही गया। यही दल दिल्ली तक आया, नायक नया था। दिल्ली स्टेशन पर यदि वहाँ का मार्गरक्षक दल अथवा वाहन नही आया तो क्या करना होगा, कहाँ रुकना होगा। वन्दीगृह तो वहाँ से वारह मील दूर है, इस प्रकार की चिन्ता उसको हुई। मैंने उससे कहा कि मैं उसका मार्ग दर्शन कर दूँगा उसको कोई अडचन नही होगी। अनेक वार आने जाने से मुझे वहाँ की पद्धति का ज्ञान हो गया था।

हम नई दिल्ली स्टेशन पर उतरे। मार्गरक्षक दल और वाहन नही आया था। हमने सामान उतारा। दो आरक्षक वहाँ ठहरे। दोनों को मैं वाहर आरक्षक कार्यालय में ले गया। मैंने उसको टेलीफोन दिखाया, किन्तु नायक टेलीफोन के विषय में भी पूर्ण अनभिज्ञ था। तव मैं स्वय आगे वढा। वहाँ वैठे भीमकाय

अधिकारी से आज्ञा लेकर मैंने टेलीफोन नम्बर देख कर मैंने नायक की ओर से फोन मिला कर बताया, "मैं अमुक नायक, अमुक क्रमांक नई दिल्ली स्टेशन से बोल रहा हूँ, एक बन्दी को लाया हूँ और मेरे साथ तीन अन्य आरक्षक हैं। बन्दी को तिहाड कारागार में ले जाना है, कृपया कोई वाहन भेज दीजिये।" वहाँ से उत्तर मिला, "सम्प्रति कोई गाडी नही है। कई बन्दियों को लेकर गाड़ी न्यायालय गई है, शाम को वापस आते समय वही गाडी आप लोगों को भी ले आवेगी।"

इस उत्तर के आधार पर तो ६-७ घंटे स्टेशन पर रुकना पडता। मुझे शीघ्र कारागार पहुँच कर कुछ अभ्यास करना था। तब मैंने पुन कहा, "बन्दी नथूराम गोडसे का भाई गोपाल गोडसे है। उसको सर्वोच्च न्यायालय में जाना है, इसलिये यहाँ लाया गया है। क्या इस प्रकार का भयंकर बन्दी ६-७ घंटे यहाँ खुला घूमता रहेगा? कोई विशेष व्यवस्था कर शीघ्र गाड़ी भिजवा दीजिये।"

टेलीफोन पर नथूराम का भाई गोपाल गोडसे का नाम सुनकर सामने बैठे भीमकाय अधिकारी नायक से बोले "चार व्यक्तियों का तुम्हारा आरक्षक दल और उनमें से भी दो तुम यहाँ पर। केवल दो व्यक्तियों के आधीन ऐसे भयानक बन्दी को छोड कर आना ठीक नही। तुम जाओ और ये गाडी की व्यवस्था करेंगे। तुम उसका ध्यान रखो।"

ही नही था। वे शीघ्रता से कही जा रहे थे। पाँच मिनट मे वे वापस आये और बिलकुल हमारे समीप से निकले। उनकी जिज्ञासा जागृत हुई। थोडी दूर खडे रहकर वे उस भयंकर वन्दी को अपनी विकट दृष्टि से खोज रहे थे। परन्तु वह तो उनको कही दिखाई ही नही दिया। वे सोचते हो शायद किसी आरक्षक ने उसे अपने थैले मे तो बन्द नही कर लिया, परन्तु इतना भयंकर व्यक्ति इतना छोटा तो हो नही सकता। उन्होने यो ही घडी की ओर देखा। तब से पौन घण्टा हो चुका था। उन्होने शायद यह भी सोचा होगा कि यहाँ का मार्गरक्षक दल आकर उस वन्दी को ले तो नही गया ?

इतने मे ही मोटर आकर रुकी। हमने अपना सामान चढाया। वह अधिकारी वही रुककर देखते रहे। फिर वे कुछ आगे सरके और प्रश्न भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। उसी दृष्टि से मैंने उनसे पूछा 'क्या ?'

"गोपाल गोडसे कहाँ है ?" उन्होने मुझसे प्रश्न किया।

"आपके सामने खडा है महाराज ! आज्ञा कीजिये।" मैंने बडी विनम्रता से उनसे कहा।

"आप ?" कहने के लिए निकला हुआ उनके मुख से 'आ' लगभग दस सेकण्ड तक खुला ही रह गया था। ऐसा भयंकर वदी इतनी देर तक बिना किसी रक्षक के इस प्रकार अनिर्वन्ध घूमता रहा। मानो उससे उन्हे आघात-सा लगा।

वह बोले, "मैंने तो सोचा था कि आप आवश्यक व्यवस्था एव सुरक्षा की देखभाल के लिए जेल से भेजे गये कोई अधिकारी होगे।"

"मार्ग में मै स्वयं ही अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करता हूँ।" मैंने कहा। मोटर चलने लगी और हम स्टेशन से वन्दीगृह की ओर चले।

आज गृहमन्त्री आवेंगे, उस समय मुझे सभागृह में जाने देना चाहिये अथवा नही, इसकी चर्चा मेरे कानो मे पडी। मैंने उन अधिकारियों को ज्ञापन देते हुए कहा, "यदी सभी वन्दी जानेवाले है तो आप मेरे साथ पक्षपात नहीं कर सकते। यह तो हुई नियम की बात। किन्तु वहाँ जाये बिना मेरा कुछ अटका जावेगा ऐसी बात नही है। यदि चाहें तो यही आ जावेंगे।"

मेरे मुख से यो ही निकले हुए वाक्य सत्य सिद्ध हो गये। इनमें मेरी बड़ाई की बात नही। कुछ भी हो श्री नन्दा भारत के गृह मन्त्री थे। मैं एक दण्डित था। मैं छोटा था और हूँ भी। श्री नन्दा मुझसे मिले। किन्तु उपयुक्त यही होगा कि हम कहे कि वे कारागृह का निरीक्षण करने आये थे और उसी क्रम में मुझसे भी मिले।

वैयक्तिक रूप से श्री नन्दा के प्रति मेरे मन में सहानुभूति है। गांधी जी के मरण से जिनको वास्तविक दुःख हुआ था वे उनमें से थे। गांधी वध अपने में एक कठोर घटना हो सकती है किन्तु गांधी भक्तों की भावनाओं को ठेस पहुंचाने का उद्देश्य उनके घातकों का नहीं था। इसलिये उससे जिनको वास्तविक दुःख हुआ उनके प्रति हमारी सहानुभूति होना स्वाभाविक है।

एक दो विभाग देख लेने के बाद श्री नन्दा ने मेरे विषय में पूछा। मोटर द्वारा ही वे कारागार का निरीक्षण कर रहे थे। अतः मोटर हमारे बैरक की ओर घुमाई गई। उस समय वहां हम १४-१५ बन्दी थे। द्वार पर आते ही श्री नन्दा ने फिर मेरे बारे में पूछा। अधिकारियों ने मुझसे सामने आने के लिये कहा।

परस्पर अभिवादन से भेंट का प्रारम्भ हुआ। उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया। उस समय भी मेरे मन में आया जो कनिष्ठ अधिकारी कुछ क्षण पूर्व घबराए हुए थे उनको यह दृश्य देख कर खलबली मची होगी। मैंने श्री नन्दा को अपने दिल्ली आने का कारण बताया। उन्होंने कहा, "मुझे मालूम है।" मैंने कहा, आजन्म कारावास का विषय मुझ तक ही सीमित नहीं यह एक प्रकार से सामाजिक और कानूनी अर्थात् सोशियो-लीगल पैसा सम्मिश्रण है। केन्द्रीय मन्त्री के नाते आप इस विषय में कुछ रुचि प्रकट करें, यही मेरी आकांक्षा है। इसके सम्बन्ध में यदि कुछ विचार विनिमय करना हो तो मैं उद्यत हूं।" मैंने तुलसी की एक कलमी भेंट की।

हमारे वार्तालाप के समय भी भारतीय फोटोग्राफरों ने स्पष्ट प्रकाश में अनेक चित्र लिये। श्री नन्दा ने अधिकारियों को आदेश दिया कि "सभा समाप्त होने पर इनको मार्टेस्ट्स में ले आना, वहां स्वतन्त्रता से वार्तालाप हो सकेगा।" यह कह कर वे आगे बढ़ गये।

शाम को मैं कार्यालय मे गया। जैसा कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति मिलने के लिये आता है इस प्रकार शिष्टता से श्री नन्दा ने मुझसे बैठने के लिए कहा। वे बोले, "मैने आपका पत्र पढा है।"

कौन सा पत्र, यह मेरे ध्यान मे नही आ रहा था। क्योंकि उनको मैंने कोई पत्र लिखा ही नही था। शायद न्यायालय द्वारा भेजा गया आदेश होगा यह अनुमान लगाकर मैं उनसे वार्तालाप करता रहा। फिर मैंने अपना मुद्रित प्रबन्ध उनको दिया और बोला, "यह एक लौट कर आया हुआ आवेदन है। परन्तु आजन्म कारावास के विषय पर सर्वांगीण विचार हो और किसी भी बन्दी के साथ अन्याय न हो सके इस दृष्टि से आप इसे देखियेगा।" उस पुस्तक मे मेरी एक हिन्दी कविता "उत्तमाग सिंदूर विभूषित" शीर्षक से उस पुस्तक के परिशिष्ट में थी मैंने वह भी उनको दी।

उनके हाव भाव से ऐसा प्रतीत होता था कि उस पुस्तक को वे कदाचित न देख पावें। अत मैंने कहा, "अपने लिये मैं न्यायालय मे प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि न्यायालय ने मुझसे कहा कि इस सजा की वैध परिणति मृत्यु ही है तो मैं उसे वरण कर लूगा, पुन. न्यायालय में मैं नही जाऊगा। परन्तु आप सोचिये मदनलाल और करकरे को क्यो खडा कर रखा हुआ है? उन्हें तो आप मुक्त कीजिये।"

"मुक्त होने के बाद आप क्या करेंगे?" उनका प्रश्न था।

"अभी तक तो इस प्रश्न पर विचार नही किया था। परन्तु यदि मैं मुक्त हो ही गया तो राजनीति लडूँगा। फिर भी प्रथम तो मुझे भरण पोषण के लिये उद्योग ही देखना पडेगा। मेरी पत्नी ने एक उद्योग खडा किया है।

"कई पूर्वग्रह होते है। मैंने वे नही रखे। जेल के अधिकारी आपके वर्ताव के बारे में कहते हैं। यहा के अधिकारियो ने तो आपके वर्ताव के बारे में ठीक ठीक ही कहा है।"

"छूट तो वर्ताव का परिमाण माना जाना चाहिये। वह किसी की सजा मे से कम नही करनी है ऐसा कहने पर बन्दी कैसा वर्ताव करेगा है यह बात का कोई महत्व ही नही रह जाता। क्या छूट का उपयोग आजन्म कारावास के बन्दी के सजा के कम करने में नही करना चाहिये? और यदि ऐसा करना है तो उसकी पहली छूट देते समय, इतना ही क्यो उसके बन्दीगृह मे पैर रखते ही क्या उसकी सजा की अन्तिम अवधि तय नही करनी चाहिये?"

उनका कहना था, "ऐसी अवधि तो निश्चित होती ही है और छूट का उपयोग भी होता है।"

"किन्तु मेरे साथ प्रत्यक्ष क्या हुआ यह भी तो आप देखिये।" मैंने उन्हें एक उदाहरण देते हुए बताया, अभी आपने ४ मास की छूट दी। आपने नाटक नही किया। वह वन्दी उतने दिन पूर्व मुक्त होगा यह आपका प्रमाणिक हेतु मैं अब भी मानता हूँ। उनकी छूट की गणना होकर जो इसके अधिकारी होंगे वे परसो अर्थात् सोमवार से मुक्त होने भी आरम्भ हो जावेंगे। विभिन्न समयो पर विभिन्न अधिकारियों द्वारा प्रदत्त यह पवित्र उद्देश्य मेरे सम्बन्ध में आगे चलकर अडचन क्यो पैदा कर देता है, यह बात देखने की है। यदि मैं अस्वस्थ हुआ तो इसी वचना के कारण हुआ। छूट में से अपना अधिकार प्रस्थापित करने के लिए मैं न्यायालय की शरण लेता रहा हूँ। दया के लिए मैं आपके पास आया होता। आप जानते हैं कि नथूराम ने दया की याचना नही की थी। सजा न्यायोचित है ऐसी उनकी धारणा थी। इतनी छूट होने पर भी मुक्ति मृत्यु के बाद ही हो सकती है यही बात यदि न्याय को मान्य हो तो फिर मैं कुछ नही कह सकता। इसलिये मेने पहले ही आपको कहा था कि उस स्थिति मे मैं मृत्यु को स्वीकार कर लूँगा। करकरे और मदनलाल को तो आप लोग छोड दीजिये।

"आई विश यु वैल" (मैं तुम्हें शुभकामनायें देता हूँ।) श्री नन्दा ने कहा और हमारी भेंट समाप्त हो गई।

वन्दीगृह से बाहर के कई शासकीय कर्मचारी उस समय के वार्त्तालाप के समय वहाँ उपस्थित थे। मैं नही कह सकता कि हमारे वार्त्तालाप को टेप रिकार्ड किया गया होगा। किन्तु मेरी ऐसी कल्पना अवश्य है।

श्री नन्दा से मेरी कार्यालय में भेंट होनेवाली है यह जान कर दिल्ली के अनेक सहवन्दियो को सन्तोष हुआ। उनमें से कुछ ने मुझसे कहा कि नन्दा जी यहाँ पर आपसे सहानुभूति से ही मिले थे और आप फिर उनसे मिलनेवाले है तो उनसे कहिये कि भले ही बाहर किसी प्रकार के भी काम के लिए कहें, कोई ग्रामोद्योग, कोई खादी भण्डार, वह सब आप कर लेंगे किन्तु वे आपको छोड दें। श्री नन्दा आपको विनती अवश्य मानेंगे। उनके इस सहानुभूतिक वर्ताव के लिए मैंने उन लोगो को धन्यवाद किया। वे मेरा विषय समझ नही सकते थे और मुझे भी उनको समझाने में कोई लाभ नही था। यदि मुझे याचना ही करनी होती तो फिर सर्वोच्च न्यायालय में चक्कर काटने की आवश्यकता न होती। मुझमे किसी प्रकार की अकड नही थी किन्तु वन्दियो द्वारा सुझाई गई विनती करने से केवल एक ही गलत बात होती कि उसके द्वारा मैं स्वत की और शासन की वचना करता। मुझे ऐसा करना नही था। भले ही इतनी देर से सही किन्तु शासन को अपना अपराध तो समझ लेने देना चाहिये।

मैंने अपने न्यायालय में दिये आवेदन को अपनी दृष्टि से ओझल नही किया

था। शासन को किसी प्रकार का बहाना बनाने को न रहे इसलिये दि० १०-१०-६४ को न्यायालय को पूरक विधान भेज दिया था।

श्री नन्दा की बन्दीगृह की भेंट केवल मेरे लिये ही थी यदि ऐसा मैं भी कहूँ तो भी एक बात स्पष्ट है कि मेरा आवेदन और पूरक विधान यदि शासकीय वकीलो ने पढकर अध्ययन किया होगा तो उत्तर देने के प्रपच में न पडे ऐसा परामर्श उन्होने शासन को दिया होगा। तब शासन के सन्मुख दो मार्ग थे, एक तो मेरे आवेदन का विरोध न करना और दूसरा आवेदन के लिये नियत किया हुआ दिन निकलने से पूर्व ही मुझे मुक्त कर देना। श्री नन्दा की भेंट उस दृष्टि से हुई थी यह स्पष्ट है।

सोमवार अर्थात् १२-१०-६४ को श्री नन्दा के आगमन के अवसर पर घोषित छूट के आधार पर परिपक्व बन्दियो के छूटने की गतिविधि जारी थी। ऐसी छूट के अवसर पर बन्दीगृह में एक प्रकार का समारोह सा हो जाता है। मुरझाये हुए मन लहलहाते है, सूखे मनो मे कोपल फूटती है। मुझे १९५० के जनवरी में इसी विभाग के बन्दियो के इसी प्रकार मुक्त होने की घटना स्मरण हो आई। शीघ्र छूटने का विश्वास दिलानेवाली ४० मास की छूट की हमारी घोषणा हुई थी। क्योकि ऐसी छूट किसी भी कारण से काटी नही जा सकती, शुद्ध दया ही उस छूट का भाव होता है।

छूट की यथार्थता के लिये किये गये अनर्थक परिश्रम और उसमें प्राप्त पराजय से मेरा मन कुंठित हो गया था, भावनायें मर गई थी, इसी कारण आज जो मुझे चार मास की छूट घोषित हुई थी उसका मेरे मन पर किसी प्रकार का भी उत्साहजनक परिणाम नही हुआ था। अपने मन की इस बात को यदि अलग रख दे तो बन्दी मुक्त हो रहे थे, अपने अपने परिजनो मे जा रहे थे, इससे उनको जो आनन्द होता था उसे देख कर अपने मन में भी सन्तोष ही होता था। बात पर विश्वास होना कठिन है, परन्तु फासी की सजा प्राप्त बन्दी भी अपनी बात भूलकर किसी नये आने वाले बन्दी को सान्त्वना देता ही है कि घबराना नही, शीघ्र ही ये दुर्दिन बीत जावेंगे। उदास मत होना। "बन्दी दूसरे बन्दी के दुःख में दुःखी होता है उससे सहानुभूति प्रकट करता है। उसके आनन्द मे सहयोगी बनता है।

मगलवार दि० १३-१०-६४ का दिन। थोडे समय पहले ही हमारी कोठरियाँ खोली गई थी कि एक बन्दीपाल महाशय आकर खडे हो गये। मैंने कहा "आज इतने सवेरे ही?"

"आपकी मुक्तता का आदेश आया है। अपना सामान समेटिये, साढे सात बजे के लगभग आपको बाहर निकलना है। "उन्होने कहा।"

उस समय सात बज रहे थे। मन ही क्या शरीर भी कूदे ऐसे वे शब्द थे। परन्तु मेरे साथ किये गये छल के कारण मन इतना कुठित हो गया था, चेतनाहीन हो गया था कि उन तथाकथित दया के टुकडो का आनन्द मुझे मन से भी उपभोग करने की बात नही आई। जैसे किसी चित्रपट में प्रारम्भ से अन्त तक करुणाजनक दृश्यो का चित्रण होते रहने से प्रेक्षको के मन अत्यन्त द्रवित हो जाने के कारण चित्र के अन्त में सुखान्त दृश्य दिखाने पर भी उनका आर्दव समाप्त नही हो जाता वही स्थिति मेरी भी था। जब तक दया की आशा की गई तब तक वह प्राप्त नही हुई। न केवल इतना, सुदीर्घ अवधि तक उसकी आशा की किरण भी कही दिखाई नही दी उससे मन इतना खिन्न हो गया कि अब उस दया की रुचि ही नष्ट हो गई थी। इस अवसर पर मुझे एक शेर का स्मरण आया, सम्भवतया वह गालिब का हो—

कर गये बेवक्त कुर्बानी तो फिर क्या फायदा।
सर से ऊंचा हो गया पानी तो फिर क्या फायदा?

दया सारहीन न हो इसलिये काले पानी अथवा आजन्म निष्कासन के वन्दी की सजा परिवर्तन वन्दीवास में करना होगा तो दण्ड सहिता की धारा ४०२ के आधार पर या भारतीय दण्ड विधान की धारा ५५ के आधार पर वह वन्दीवास १४ वर्ष का ही रहना चाहिये। ऐसे शासन पर बन्धन है। ऐसा परिवर्तन वन्दी की बिना मान्यता के करने का उनका अधिकार है। अर्थात् ऐसी प्राप्त दया से इन्कार करने का अधिकार वन्दी को नही रहता।

इस प्रकार मेरी सजा को वन्दीवास में तो परिवर्तन कर दिया था, क्योकि कार्यवहन वैसा ही जारी था। हा वन्दीवास की अवधि किसी प्रकार निर्धारित नही की थी। १४ वर्ष कभी के पूर्ण हो गये थे।

मेरी मुक्ति का आदेश धारा ४०१ के आधार पर अर्थात् दया के अधिकार का उपयोग करके। इतने विलम्ब से यह आदेश प्रसारित करने से, और सरकार की भावना का विचार करते करते उसमें मेरी रुचि नष्ट हो गई थी। क्या केवल मैं जीवित हू इतना ही लक्षण यह 'दया' समझी जाने के लिये पर्याप्त था?

सरकार की इस दया का स्वीकार कर ही लेना चाहिये, ऐसा कोई बन्धन मुझ पर नहीं था। क्यो कि आज्ञा धारा ४०१ की थी। न्यायालय में इसकी चर्चा होने दो इस विचार से इस दया को स्वीकार कर लूं ऐसा मुझे नही लगता था।

किसी भी प्रकार से विचलित न होते हुए मैंने वन्दीपाल से कहा, "मुझे अधीक्षक से मिलना है।"

"क्यो?"

"मेरा आवेदन विचाराधीन है, तब तक मैं बन्दीवास में ही रहना चाहता हू। यही विनती मैं उनसे करना चाहता हूं।"

बन्दीपाल को यह अनुभव नितान्त नया था। अनेक बार अनेक धक्के खाकर और इतने वर्षों के परिश्रम के बाद इस बन्दी को मुक्ति मिली है किन्तु तब भी यह बाहर जाना नही चाहता, इसका तात्पर्य समझने में वह बेचारा असमर्थ था। आनन्दातिरेक से भी मनुष्य उद्विग्न हो जाता है, पागल भी हो जाता है। किन्तु मुझ में इस प्रकार का कोई विकार भी उस बेचारे को दिखाई नही देता था।

बन्दीपाल पर और क्या प्रतिक्रिया होती है यह देखने के लिये मेरे पास समय नही था। मुझे आशंका थी कि यदि मैंने आदेश का सीधी तरह पालन न किया तो ये मुझे उठा कर जेल से बाहरं कर देंगे। अत. मैंने दो कागज लिये और तुरन्त अधीक्षक को लिखा—

"महोदय,

मेरा आवेदन क्रमाक १०६, १९६४ का सर्वोच्च न्यायालय में विचाराधीन है। १९-१०-६४ को उसका श्रवण होगा। दया करना शासन का विशेषाधिकार है अर्थात् उस विशेषाधिकार द्वारा प्रदत्त दया को अस्वीकार करने का मुझे अधिकार है ऐसा एक विधेय मैंने आवेदन में लिखा है। आवेदन का श्रवण होने तक कृपया दया की आज्ञा का कार्यवहन रोक कर रखिये यही मेरी आपसे विनती है। इससे मेरा दया की आज्ञा देनेवाले किसी सम्बन्धित अधिकारी का अपमान करने का हेतु नही है।

साभार ...."

अधीक्षक को मिलने के लिये मैं कार्यालय के पास गया। वहा दस पन्द्रह मिनट तक रुकना पडा। तब तक मेरा सामान चौपाल में आ कर पडा था। विनती नही मानी जावेगी यह स्पष्ट था। किन्तु यदि मानी जाती तो मेरी लिखित विनती ही मानी जाती मौखिक नही। इसलिये लिखने में समय लगा था। अधीक्षक महोदय से भेंट हुई। मेरी विनंती मान्य करना उनके लिये सम्भव नही था। हमारा कुछ वार्तालाप हुआ, उसके बाद उन्होने मेरा आवेदन रख लिया और मै बाहर आ गया।

मुझे विदित हुआ कि करकरे और मदनलाल को भी मुक्त करने का आदेश हुआ है। मुझे इससे समाधान हुआ।

जहाँ जहा हस्ताक्षर करने आवश्यक थे, वह मैंने किये। मुझे यात्रा का अधिपत्र (वारट) दिया गया। समान की जाच हुई, उसे बन्दीगृह के बाहर रखा गया।

असमय में आये वृद्धत्व को कंधो पर लेकर मैंने बन्दीगृह के बाहर पाव रखा और स्वतन्त्रता की प्रथम सास ग्रहण की।

क्या यह सच है ? हा, मैं मुक्त हो गया हू। बन्दीगृह का कोई भी अधिकारी मेरे पीछे नही था। न कोई आरक्षक ही। "अकेले कहा जा रहे हो ?" यह कह कर कोई धमकाने वाला दण्डधारी मेरे समीप नही था।"तुम्हारी टोपी कहा है ? तुम्हारा पदक कहा है ?" ऐसा पूछनेवाला भी कोई नही था। "काम क्यो नही करते ? तुम पर अभियोग लगाया जावेगा।" इस प्रकार धमकानेवाला भी कोई नही था। छूट का झूठा आश्वासन देनेवाला खाकी परिवेशधारी कोई अधिकारी भी कही दिखाई नही देता था। मैं मुक्त हो गया था यह बात वास्तव में सत्य थी।

जैसे कोई भारी और कठिन मछली प्रयत्न करने पर भी जब गले में उतारी न जा सके और जिसके गले में उतारने से अपना ही गला बन्द होकर प्राण जाने के भय से मगरमच्छ उसे मुक्त कर दे और फिर अपने मन को यह कहकर सान्त्वना दे कि चलो "तुम पर दया करके मैं तुम्हें जीवन दान देता हू।" ठीक उसी प्रकार की मेरी मुक्ति थी। मुझे सुरक्षित रख कर मेरी सजा का कार्यवहन करने के लिये उस द्वार ने जबडा खोला था। न्यायालय को उसने वैसी सुरक्षा का आश्वासन दिया था। फिर उसके मन में पाप आया। उसको लगा कि न्यायालय सोया हुआ है। बाढ ही जिस प्रकार खेत को खाना चाहे उसी प्रकार मुझे पचाने की भूख शासन को लगी थी। मुझमें भारीपन अथवा कठोरता नाम की कोई चीज नही थी। न्यायालय मेरे चिल्लाने से जागृतावस्था में थे। यह क्या शोरगुल हो रहा है यह देखने के लिये दीवार तोड कर भीतर आने की स्थिति में वह था तब मुझ में गुरुत्व एव कठिनत्व आया था। इस कारण शासन का द्वार रूपी मुख अवरुद्ध हो गया था, मैं उसके गले में उतर नही सकता था। मगरमच्छ के मछली को उगलने के समान ही शासन के लिये भी यही हितकर था कि वह मुझे मुक्त करे। और मुझे उसी कारागार के द्वार से बाहर किया।

शासन का दात मेरे शरीर में बहुत गहरा चला गया था किन्तु फिर भी मैं जीवित था। मेरे हृदय को पार करके जाने के पहले ही शासन को दात उठाना पडा था। अपने पूर्वजो ने न्यायालय की यह कुव्यवस्था क्यो करके रखी है, ऐसा खेद सम्भवतया उन सम्बन्धित व्यक्तियो को हुआ होगा।

बाहर आने पर एक वाहन द्वारा मैं श्री गणपत राय जी के घर पर आया। देहली में जहा मैं सर्व प्रथम कृतज्ञता व्यक्त कर सकू यह वह स्थान था। बिलकुल अन्त तक अर्थात् मेरे अन्तिम आवेदन के लिये पूरक विधान भिजवाने थे उसकी प्रतियाँ भी उन्होने शीघ्रता में टाइप करवा दी थी।

जब मैं वहा पहुँचा तो वे घर पर नही थे। मैं मुक्त वातावरण में घूम फिर

सकता हूं अथवा नही, यह देखने के लिये मैं बाहर निकला। देहली के गुप्तचर मेरे पीछे थे। उनकी गाड़ी भी थी। परन्तु वे मेरे मार्ग में बाधक बनने के लिये नही थे। वे दो हो अथवा दो सौ हो तब भी जबतक वे मुझे किसी प्रकार का भी कष्ट नही देते तबतक उनके विषय में शिकायत करने का मुझे कोई कारण नही था। आज भी वैसे ही गुप्तचर रहते हैं, किन्तु मेरे व्यवहार मे रुकावट डालने के लिये नही। और मैं उनसे डरूं इस प्रकार की कोई सामग्री मेरे पास न होने से उनसे कभी जवाब पूछने का भी मैं कोई कारण नही समझता।

मैं थोडा इधर उधर भटकता था तो मुझे कुछ ऐसे अनोखे अपरिचित व्यक्ति पकडकर राह बताते कि जिनको मैंने कभी देखा नही था। उन्होने मुझे कैसे पहचाना? मेरी मुक्ति की सूचना उनको किस प्रकार लगी? इस प्रकार के प्रश्न मेरे मन में उठते थे। क्योकि वे लोग स्वय मेरे पास आये थे। वार्ता किसी प्रकार भी फैल जाती है, ऐसा मैं सोचता। परन्तु मेरा अनुमान है कि मैं कही भी रहू मेरा पथप्रदर्शन शासकीय व्यवस्था के गुप्तचर विभाग से होना ही सम्भव था। शायद मैं किससे क्या बोलता हू इसका अनुमान लगाने के लिये वह व्यवस्था होगी। मिलनेवाले लोगो में गुप्तचर भी होगे तो होवें।

मुझे वे लोग प्रेम से मिले। उन्होने अपना परिचय दिया। उनमें से दो तीन व्यक्तियो ने मुझे अपने घर भी बुलवाया। समय मिला तो मैं आऊंगा ऐसा ही मैं उनको कहा करता था। दो तीन व्यक्तियो ने मुझे भोजनालय मे भोजन भी करवाया।

बीच में मैं श्री गणपत राय के यहा जाकर उनसे मिला था। एक नये परिचित के साथ मैं उनके पास गया था। मेरी मुक्ति यह अपमानित मुक्ति है यह बात मन को चुभती थी। निष्पक्षता से मुझे लगता था कि शासन ने स्वत. के दया के अधिकार का उपयोग इस प्रकार दुर्दशा करके करना उसके लिये भी उचित नही था। शासन स्वय ही भूल करता है। मूल प्रश्न का समाधान मेरी इस मुक्ति से नही हुआ था। क्या करू, मैं यही सोच रहा था।

मैंने सर्वोच्च न्यायालय को एक आवेदन दिया। आवेदन क्रमांक १०६ का सन्दर्भ दे कर मैंने कहा, "दि० १३-१०-६४ को मुझे दिल्ली बन्दीगृह से मुक्त कर दिया गया है। दि० १९-१०-६४ को उपरिलिखित आवेदन श्रवण के लिये आयेगा तब तक मुझे अन्दर ही रखा जाय ऐसी विनती मैंने अधीक्षक को की थी। परन्तु मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे मुक्त किया गया।

"मुझ पर लादी गई इस दया मे इन्कार करने का मुझे अधिकार है या नहीं इसका विचार मेरा आवेदन श्रवण के लिये जब आवे तो किया जाय। अन्यथा

सविधान के १४ वें परिच्छेद के अनुसार "न्याय की समानता" के अनुसार मुझे कब मुक्त होना चाहिये था इस पर विचार किया जाय।

"मैं दि० १९-१०-६४ को न्यायालय में उपस्थित रहूँगा।" आवेदनपत्र लेकर मैं न्यायालय गया। दशहरे के अवकाश के कारण न्यायालय बन्द था। वहाँ रखी पेटी में मैं अपना आवेदन डालकर आ गया।

यदि मेरी मुक्ति की आज्ञा स्थगित हो जाती अथवा कारागार के अधीक्षक द्वारा मेरी प्रार्थना मान ली जाती तो जो बन्दीवास प्राप्त हुआ होता वह मेरी अपनी इच्छा से होता। एक कठिन प्रश्न सुलझाने के लिए थोडा सा कष्ट भुगतना पडा तो वह कोई बहुत बडा मूल्य नही था। उस अवधि में शासन ने मुझे बन्द किया है ऐसा अकुश न रहा होता। न्यायालय वैसी आज्ञा दे सकता है या नही यह एक चर्चा का विषय था। मेरे पास मेरे विधान थे।

श्री नन्दा को मिलने का मैंने प्रयत्न किया। उन्होने सदिच्छा व्यक्त की थी। मैं आज मुक्त था। उस सदिच्छा के लिए आभार प्रकट करना चाहिये था परन्तु वे किसी सभा में थे। मैं उनके कार्यवाहक से मिला। मैं उनको पत्र दे आया। "सर्वोच्च न्यायालय में मेरा प्रयत्न—दया को अस्वीकार करना मेरा अधिकार है एतद्विषयक मेरा आवेदन—एक प्रश्न को सुलझाने के लिये है। किसी का अपमान करने के लिए नही। आपने मेरे प्रति जो सदिच्छा व्यक्त की उसके लिए मैं आभारी हूँ।

आजतक मुझपर हुए अन्याय के लिए समझ लिया जाय कि श्री नन्दा उत्तरदायी थे, किन्तु पूर्णतया वे ही उत्तरदायी थे ऐसा नही समझा जा सकता। किसी भी व्यक्ति विशेष पर इस प्रकार का दोषारोपण किया जा सकेगा ऐसी स्थिति नही है। पिछले ८ वर्षों से कितने ही व्यक्ति बदल गये थे और कितने ही दिवगत हो गये थे।

हिन्दू महासभा भवन में मुझे नथूरामजी के मित्र मिले। नथूराम हिन्दू महासभा के कार्यकर्ता थे। अनेक प्रान्तो में उन्होंने दौरा किया था। सभी प्रान्तो में उनके मित्र थे। हिन्दू महासभा ने गांधी वधकाण्ड का निषेध किया था परन्तु नथूराम हमारा नही है ऐसा हिन्दू महासभा ने नहीं कहा। नथूराम के किसी मित्रगण ने भी ऐसा नहीं कहा था। नथूराम के कृत्य की पृष्ठभूमि का राजनैतिक मूल्यांकन जैसे सरदार पटेल अथवा किसी अन्य कांग्रेसी नेताओं ने किया था उसी प्रकार नथूराम के मित्रजनो ने भी किया था। परन्तु इस प्रकार मूल्यांकन किया इसलिये सरदार पटेल आदि ने गांधी हत्या का आदेश दिया ऐसा हम जिस प्रकार नहीं कह सकते वैसे ही हिन्दू महासभा ने यह आदेश दिया था ऐसा कहना भी अन्याय होगा।

मैं मुक्त हुआ था इसलिये उनके मित्रों को भी इसका समाधान था। मुझसे देहली मे रहने के विषय में पूछताछ की गई। मैंने उन्हें बताया कि मैं रात को ही जानेवाला हूँ।

अपनी मुक्ति के सम्बन्ध मे मैंने घर पर भी तार द्वारा सूचना दी थी। घर पहुँचने की अपनी तिथि से भी उनको सूचित किया था। दि० १५-१०-६४ को अर्थात् दशहरे के दिन मैं घर पहुँचनेवाला था।

दि० १४-१०-६४ को मेरी मुक्ति का समाचार चारो ओर फैल गया। गाडी गुजरात से गुजर रही थी। कई स्टेशनो पर लोग अनुमान से मुझे देखने के लिये आते थे। मैं जिस किसी को बताता वही मुझे पहचानता था, अन्यथा कोई मुझे पहचानता नही था। एक स्टेशन पर मैंने झुण्ड देखा, उत्सुकतावश मैंने भी दृष्टि डाली। बिलकुल सयोग की बात थी कि मुझे पहचाननेवाले एक सज्जन वहाँ थे। उनसे मेरा परिचय बन्दीगृह का ही था। मैंने उनको कुछ छूट दिलवाई थी। उसने जब मुझे देखा तो अपने साथियो को सकेत किया और सारे मेरे समीप आकर खड़े हो गये। उन्होंने मुझे पुष्पमाला पहनाई, मेरा जयजयकार किया।

क्या मैं नेता बन गया हू ? मैं अपना ही स्वयं निरीक्षण करने लगा। नेता सा कोई भी गुण मुझमें दिखाई नही देता था। उस पुष्पमाला से मैं भारी हो गया था। परन्तु प्रश्न थोडे समय का ही था, गाडी चलने ही वाली थी। मैंने उनसे पूछा कि "मैं इसी गाडी से आऊँगा, इसका ज्ञान आपको कैसे हुआ ?"

"हम एक दो गाडियाँ देखनेवाले थे। ये लोग मेरे पीछे लग गये कि इनको भी साथ लेकर चलूँ। हमारा विचार था कि यदि भेंट हो गई तो अच्छा ही है कुछ घण्टे ही तो व्यर्थ जानेवाले थे।"

इस पर भी मुझे विश्वास नही हो रहा था। कही ऐसा तो नही, कि दिल्ली से किसी ने अथवा गुप्तचर विभाग ने ही निश्चित गाड़ी का तार भिजवाया हो, जो कुछ भी हुआ होगा उसका ज्ञान मुझे नही हो पाया।

गाडी छूटने से एक मिनट पूर्व मिठाई की एक टोकरी मेरे डिब्बे में रखी गई। एक व्यक्ति ने मुझे मेरे परिवार के नाम पत्र दिया। मेरे प्रति उन लोगों ने शुभ कामना व्यक्त की और गाडी चल पडी।

दादर से कल्याण स्थानक पर आया। घर के लोगो के वहाँ आने की सम्भावना थी। मैं उतरा, इधर उधर देखा, कुछ परिचित मुह दिखाई दिये। कितने लोग होंगे, तीस, चालीस, पचास। सभी सम्बन्धी नाते के थे। मित्र बहुत थोडे से। बडे भाई दत्तात्रय, छोटा भाई गोविन्द और परिवार के लोग सब लोगो ने मुझे प्रथम बार ही यहाँ पर मुक्त रूप में देखा था। मैं अब उनमें ही

हू ऐसा अनुभव हुआ। अरे! यह आनन्द से उमड पडनेवाली लडकी कौन? अरे यह तो असिलता है। मेरी छोटी कन्या। कितनी बडी हो गई थी। इसको मैं बच्चे के बिछावन में छोडकर गया था। मानसपुत्र नाना को भी अपना आनन्द व्यक्त करने में किसी प्रकार का संकोच नही होता था। बडी कन्या विद्युल्लता वर्धा में थी।

मेरी दृष्टि पत्नी को खोज रही थी। आँखें चार हुई। उसका समझना उसने समझा और मेरा मैंने। असम्भव दीखनेवाला दिन ऐसा उसको लगा था। मन में उमड पडनेवाले आनन्द को उसने दबा कर रखा था। हम सभी स्थानक के प्रतीक्षालय मे बैठे। मैंने स्नान किया। सभी ने चाय पी। मैंने उनको बताया कि दो दिन बाद मुझे फिर न्यायालय में जाना है।

मेरा यह कथन सुन "अब क्या बाकी रह गया है" इस प्रकार की कुछ चिन्ता उनके मुख पर व्यक्त हुई। मैंने समाधान कर दिया।

कल्याण से हम पूना की गाडी में बैठे। पूना स्टेशन पर अनेक लोग एकत्रित थे। पूना में जिन व्यक्तियो के प्रति मैं कृतज्ञता व्यक्त करूं उनमें से श्री न० वि० केतकर थे। किसी भी प्रकार का भय न रखते हुए हमारी मुक्तता का प्रश्न उन्होने सर्वसाधारण के सम्मुख प्रस्तुत किया था। उससे भेंट की।

१७ वर्ष बाद मेरे घर में दशहरा मनाया जा रहा था। शहनाई नगाडा बज रहा था। द्वारो पर तोरण था। आगन में रगावली काढी गई थी। पचारती लेकर सुवासिनी खडी थी।

श्री भाऊराव अभ्यंकर दम्पति मेरी पत्नी को अपनी कन्या के समान मानते है। और उसी प्रकार उससे व्यावहार भी करते है। यह मैं पहले भी एक स्थान पर लिख चुका हूँ। उनके जामाता का आगमन हुआ, कन्या को सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनका दोहरा आनन्द उन्मुक्त प्रकट हुआ था।

पचारती उतरवाते समय मेरी आखें छलछला आई। मैंने उन्हें रोका नही। जो आसू बहना चाहते थे मैंने उन्हें बहने दिया। इतने वर्ष तक मैं उन्हें रोके हुए था। अब रोकने का कोई कारण नही था।

लगभग एक पीढी का अन्तर पड गया था। अपने कन्धो पर जिन गुडियाओ को मैंने खेलाया था उनको मैं आज उनकी गोद में उनके बच्चो के साथ देख रहा था।

मेरी स्मृति धुंधली हो गई थी। उसमें कई मिलजुल कर रहनेवाले परिचित आते थे और मुझे आदर से बुलाते। मेरे 'गोपाल' नाम के आगे अब 'राव' लगने लग गया था। मैं सोचता था कि मैं कब बडा हुआ। मैं सोचता कि जिस

प्रकार फ्रिज मे रखी वस्तु वैसी ही रहती है उसी प्रकार वन्दीगृह में रहने से मुझ पर भी काल का कोई प्रभाव नही पडा होगा। क्या मुझे, तू-तू, रे-रे कहने वाला अब कोई नही है।

मुझे अधिकार से अरे, जारे कहनेवाले तीन व्यक्ति स्वर्गस्थ हो चुके थे। मां, पिताजी और नथूराम। याद आते ही मैं घर के भीतर गया। उनके चित्र थे, उन्हे मैंने वन्दन किया। सारा दिन लोगो का ताता लगा रहा। आगे के कुछ दिनो तक भी यही क्रम जारी रहा।

और वह हमारी प्रथम रात्रि थी, आसुओ से भीगी भीगी।

दि० १९-१०-६४ को मैं सर्वोच्च न्यायालय में पहुँचा। आवेदन सामने आया। मैं खडा रहा। मेरा नया परिशिष्ट भी न्यायमूर्ति ने पढा था।

मूल आवेदन के अन्तर्गत ही अन्य आवेदन थे। मूल आवेदन को अब विचाराधीन करने का प्रश्न नही उठता था। क्यो कि मैं मुक्त हो गया था। आवेदन को अफलित (इनफ्रैक्चुअस) कर दिया गया। जिस प्रकार जड तोड़ देने से शाखायें स्वयमेव गिर जाती है उसी प्रकार मेरे प्रमुख आवेदन के अफलित सिद्ध होने से तदनन्तर्गत लिखित सभी आवेदन भी गिर गये।

न्यायालय से इस प्रश्न को सुलझा लेने में मैं असमर्थ ही रहा। मेरी यह अन्तिम पराजय थी।

गाधी वध काण्ड के एक चिरपराजित दण्डित की ऐसी यह गाथा है।

* * *

सत्रह

· और अंत में

मेरे जीवन में एक छोटा सा समय ऐसा था कि कही से कोई तीव्र स्वर सुनने पर मैं सतर्क हो जाया करता था। मैं सदैव यह देखता रहता था कि कही ऐसी आवाज आती है क्या ? किसी अनोखे व्यक्ति ने मुझे थोडे समय अधिक देख लिया तो तो मैं समझता कि यह ऐसा क्यो करता है। हो न हो यह आरक्षक विभाग का गुप्तचर होगा। प्लेटफार्म पर घूमते हुए, मोटर पर जाते हुए रेल गाडी में यात्रा करते हुए, मैं मन ही मन कुछ तो भी छिपा कर रखा करता था। इसकी सदैव मुझे चिन्ता रहा करती थी। उस चिन्ता का चिन्ह् बाहर प्रकट न हो इसके लिये मैं सदा प्रयत्नशील रहा करता था। परन्तु जो मन में था वह मन से तो छिपाया नहो जा सकता था।

वह समय अल्प ही रहा। अर्थात् गांधी हत्या के दिन के पहले और बाद के थोडे से दिन। मुझे सशयित समझकर पकडा गया था। आरोपी के नाते न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया था। आशंका को स्थान न रहे इतने समाधानकारक ढग से मेरे भीतर का आरोप सिद्ध किया गया। न्यायालय ने मुझे दण्ड दिया, शासन ने उस दण्ड का कार्यान्वियन किया। अपनी स्वतन्त्रता के लिये सघर्ष करते हुए ही दि०-१३-१०-६४ को दिल्ली कारागार से मुझे मुक्त किया गया।

मुक्ति के बाद मेरी स्थिति में एक विशिष्ट अन्तर आया। जिस का भय रहे ऐसा कोई भी दबाव मन पर नहीं रहा। मुझे विना शर्त मुक्त किया था। इसका अभिप्राय यह कि मुझे नागरिक के सभी अधिकार प्राप्त हो गये। मतदान का अधिकार भी। समाज के लिये आवश्यक ऐसे सभी नियमो और निबन्धनों के साथ मैं अपने अन्य सहनागरिकों की भांति ही बंधा हुआ हू। उसके साथ ही दूसरो के

अधिकार पर अतिक्रमण न करके किसी नागरिक के उपभोग्य अधिकारो का उपयोग करने की जो स्वतन्त्रता होती है वह स्वतन्त्रता मुझे भी प्राप्त हुई।

जिज्ञासा मनुष्य का स्थायीभाव होता है। थोडे समय के लिये भी यदि आप किसी अन्य स्थान पर रहकर आवें तो लौटने पर लोग वहा के समाचार जानने की उत्सकुता प्रकट करते हैं। अधूरी और अज्ञात बातों को जानने की भी जिज्ञासा होती है।

गाधी जी का जीवन जितना देशव्यापी था उतनी ही उनकी मृत्यु भी देश-व्यापी ही सिद्ध हुई थी। उनका देहान्त वध से हुआ यह दैवदुर्विपाक था और ऊपर ऊपर देखने पर उनकी मृत्यु की घटना उनके स्वयं के तत्वो के विपरीत थी। इसलिये वह विषेश ध्यान में लानेलायक थी। अहिंसक की मृत्यु हिंसा से हुई थी। -

इतिहास ने गाधी वध इस घटना का अंकन किया इससे इतिहास पढनेवाले की जिज्ञासा जागृत हुई। अर्थात् यह वध करनेवाले कौन थे ? क्या वे क्रूर कर्मी हत्यारे थे ? क्या गाधी जी के साथ उनका कोई व्यक्तिगत द्वेषभाव था ? क्या उनके चरित्र में कुछ हीनता थी ? उनका भविष्य क्या रहा ? क्या उनका कुछ कथन था ? यदि ऐसी घटना न हुई होती तो ? उस समय की राजनीतिक परिस्थिति कैसी थी ? जनता की मनोदशा उस समय कैसी थी ? जन-जीवन किस स्थिति में था ?

गाधी वध से सम्बन्ध रखनेवाले इस प्रकार के अनेक प्रश्न उनके मन मे उठा करते थे और आज भी उसी प्रकार उठते रहते होगे।

मैं गांधी वध से काण्ड का एक दण्डित व्यक्ति हू। अपनी मुक्ति के लिये मैं न्यायालय द्वारा सघर्ष किया करता था। समाचार पत्रो में वह विवरण प्रकाशित होता था और कभी कभी आकाशवाणी पर भी समाचार प्रसारित हो जाया करता था। मेरे विषय में यथारूप से गाधी वध अभियोग का दण्डित कहकर किया जाता था। मेरी मुक्ति का समाचार भी सर्वत्र प्रकाशित हुआ था।

इस समाचार से परिचित तथा अपरिचित सभी व्यक्ति अपनी जिज्ञासा की मुझसे पूर्ति कराने के लिये आतुर हो, यह स्वाभाविक ही था।

वन्दीवास भुगतनेवालो के चरित्र भी अनेको ने पढे होगे। किन्तु उनमें से अधिकाश अग्रेजो के शासनकाल के है। मैंने अपना वन्दीवास स्वराज्य काल में भोगा था। उस पर भी गाधी जी के तत्वज्ञान के संस्कार यदि नित्य नही तो सप्ताह में एक बार तो प्रसारित करके लोगो में भरने का यत्न हो ही रहा था, और वह यत्न आज भी जारी है। आज भी प्रति शुक्रवार को प्रात. आकाशवाणी

द्वारा गाधी की प्रार्थना सभा के टेपरिकार्ड जनता के कानों में ठूसे जा रहे हैं।

मैंने जो बन्दीवास भुगता वह किस प्रकार का था ? गाधी जी का तत्वज्ञान और उन तत्वज्ञान को प्रसारित करनेवाला और उसके द्वारा भारतीय जनता को सस्कारित करनेवाला शासन और उसके प्रत्यक्ष व्यवहार में कितनी विसगति थी ? क्या किसी प्रकार के हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया की गई थी ? अथवा क्या सस्कारो द्वारा स्वयं ही हृदय में कुछ परिवर्तन हुआ ? क्या सजा की भयकरता ने मन को विचलित किया ? जिन को सजा हुई थी उन सभी पर गाधी के तत्वज्ञान का या शासन के व्यवहार का क्या परिणाम हुआ ? वन्दी वास मे किस प्रकार का भोजन मिलता था ? क्या मारपीट भी होती थी ? क्या परिजनो से भेंट करने की सुविधा थी ? छूट मिला करती थी अथवा नही ? बन्दीजनो को मिलनेवाली फलों हमें भी मिलती थी अथवा नही ? इस प्रकार के मेरे कारावास से सम्बन्धित प्रश्न भी मुझसे निरन्तर पूछे जाते थे। वास्तव में प्रश्न तो गाधी के तत्वज्ञान और उसकी व्यावहारिकता में तुलना के लिये ही अभी भी पूछे जाते हैं।

गाधी वध की घटना को राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व प्राप्त होने के कारण उसमें "क्या हुआ था' यह जानने की उत्कण्ठा गाधी पर श्रद्धा रखने और न रखनेवालो को अर्थात् सभी को हो सकती है। इसी प्रकार इतिहास पढने और पढानेवालो को भी हो सकती है। मुक्त होने के कुछ दिन बाद मैंने इस तथ्य को समझा।

एक उत्तरदायी नागरिक के नाते अपनी मर्यादा का ध्यान रख कर और सभ्य नागरिक को प्राप्त भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता का उपयोग करके जिज्ञासुओ की उत्कण्ठा की पूर्ति की जाय, ऐसा मैं सोचने लगा। परन्तु इसके लिये मैं अपना मुह खोलू अथवा लेखनी उठाऊ उससे पहले ही मुझे पुन. अपेक्षित रूप से पकड लिया गया। एक वर्ष का कारावास का जीवन मुझे पुन भुगतना पडा।

कारागृह से पुनः मुक्त होने पर इस दिशा में मेरे विचार फिर चलने लगे और मैंने लेखनी उठाई। अनेक लेख लिखे। श्री अ०ज० करंदीकर के अनेक विवादग्रस्त लेखो के कारण "पैंजण" मासिक पत्र के सम्पादक श्री ग०वा० बेहरे से मेरा परिचय हुआ। श्री बेहरे को मैंने अपने लेख दिखाये।

सपादकीय दृष्टिकोण से उन्होंने उन लेखों को देखा। क्योकि उनको अपना मासिक-पत्र चलाना था, बन्द करना नहीं। जब उनको यह प्रत्यक्ष हो गया कि उन लेखों में ऐसी कोई बात नही है कि जो आपत्तिजनक कही जाय, अथवा किसी को चिढाने का प्रयोजन हो। न्यायोचित सजा के सम्बन्ध में कुछ अनुपयुक्त उद्‌गारों का

प्रकटीकरण तो नही किया गया है, कही इतिहास की प्रतारणा तो नही हुई इत्यादि तथ्यो की पडताल करने के बाद उन्हें प्रकाशित करना उन्होंने स्वीकार कर लिया।

अनेक वार तो केवल नाम के कारण ही कुछ पूर्वाग्रह हुआ करते है। उनकी पार्श्वभूमि कुछ तो अधूरी होती है और कुछ विकृत भी। मैं कैसा हूं यह लोगो की समझ मे किस प्रकार आ सकता है? मेरे विचारो को लोग समझें ऐसी मेरी इच्छा थी। जिस प्रकार मैं यह चाहता था कि कोई मुझे भयभीत न करे, उसी प्रकार मैं यह भी चाहता था कि कोई मुझसे भयभीत न हो। मेरे लेखो को प्रकाशित कर, मैं कैसा हू, यह श्री वेहरे ने लोगो को दिखा दिया। उन्होने मुझे समाज मे स्थान दिलाया, मुझे समाज में खड़ा किया, वह बिलकुल शान्तिपूर्वक धीरे से। शासन ने मुझे मुक्त किया तो इसी समाज में मेरे पुनर्वसन के लिये उन्होने यह सब प्रयत्न किये। शासन का एक विभाग विमुक्त बन्दियो के समाज में पुनर्स्थापन तथा पुनर्वसन के लिये होता है। मेरे विषय में वह कार्य श्री वेहेरे ने किया।

इन लेखो को मैंने लिखा वहाँ तक तो मैं इनका लेखक हू। परन्तु "लेखक" की एक परिभाषा है। गाते समय गायक, स्वर-लय-ताल-चढाव-उतार आदि का समन्वयन और बन्धन नियमित करे, उनके श्रोता और उनसे ऐसी अपेक्षा रखते है। इसी प्रकार पाठक भी लेखक से अपेक्षा रखते है कि वह सुन्दरता एवं वास्तविकता के आवरण में ही अपने मन की बात उनको समझावे।

केले के पौधे का जब एक पत्ता निकलता है तो उसके भीतर दूसरे पत्ते का आभास भी तुरन्त ही होने लगता है। वह निकलते ही उसमें से तीसरा पत्ता निकल आता है। उसी प्रकार एक विचार में से दूसरा विचार इतनी सहजता से रचाया जाय कि अपना मानसिक स्थलान्तरण कब हुआ यह बात पाठक समझ न सके इसी में लेखक की चातुरी और कुशलता है। पाठको की अपेक्षा पूर्ण करना उसका कर्तव्य है।

किसी सुरक्षित उद्यान में अर्थात् पेड पौधो की सीधी पंक्तियाँ, वर्गानुसार फूलो की क्यारियाँ, सजी हुई वीथियाँ, तृणाच्छादित भूमि के आकार के हरित गलीचे हुआ करते हैं और यह सब देखकर वह मनुष्य मोहित हो जाता है। उसी प्रकार लेखक ऐसे प्रेक्षणीय उद्यान पाठको के समक्ष प्रस्तुत करे यही उनकी अपेक्षा होती है।

'लेखक' की परिभाषा में अथवा लेखको की पंक्ति में मैं कहाँ पर खडा हूँ यह मैं नहीं जानता। इतना मैं जानता हूँ कि मैं ऐसा लेखक नही हूँ जिसका कि लेखक नाम से वर्गीकरण किया जा सके। इससे मुझे संरक्षण मिला है और पाठक भी मुझे उसी प्रकार समझ कर मेरी कृति को पढ़ेंगे ऐसी मुझे उनसे अपेक्षा है।

उद्यान की भाँति योजनाबद्ध नही अपितु वन की भांति वायु के झोंके से उड़ाये गये बीज कहीं पर भी पड़ें, प्रकृति ने उसे मिट्टी में दबाया, आकाश ने उस पर जल सींचा, किसी भी स्थान पर वह बीज अंकुरित हो गया, कभी उसका पौधा और कभी वृक्ष हो जाय और कौन सा वृक्ष कहाँ उग जाय इसका कोई नियम नही। प्रकृति जो देगी वह स्थान और जिस प्रकार सुरक्षा देगी उसे ग्रहणकर ऐसे अनिश्चित प्रकृति के नियमो से जो बढ़ता रहता है, उसे वन कहा जाता है।

सुलझे हुए विचारो को सुरक्षित उद्यान की भांति सजाने का प्रयत्न मैंने नहीं किया है। जैसे विचार मन में उठे मैंने उनको उठने दिया है। जहां पर वे उठे उसी स्थान पर मैंने उन्हें लिपिबद्ध कर दिया। इस प्रकार इस अनियोजित एवं अनियमित वन से भी पाठको की जिज्ञासा की पूर्ति हो सकेगी ऐसा विश्वास जब मन में जगा तो मैंने इसे पाठको के सम्मुख रखना उपयुक्त समझकर ही यह कार्य किया है। भले ही नगर में रहने के कारण सदा नल का पानी पीते रहने से कभी जंगल में जाने पर यदि झरने का पानी पीने को मिल जाय तो उससे प्यास नहीं बुझ सकती, ऐसा नही होता।

१९–२० वर्ष का कालखण्ड कोई छोटी अवधि नही होती। इस अवधि में मेरी स्मृतियाँ यदि धुंधली और अस्पष्ट हुई अथवा बिलकुल मिट भी गई तो वे बाहर की स्मृतियाँ ही थी। जिस प्रकरण में मैं लगभग १८ वर्ष बन्दीवास में रहा हूँ उस सम्बन्ध की स्मृतियाँ और १८-२० वर्ष पूर्व का सुरक्षित रखा हुआ छायाचित्र तब जितना स्पष्ट था आज भी वह उतना ही स्पष्ट है। क्योंकि बन्दीवास में भी प्रत्येक क्षण मेरे मन में रहता था कि मैं बन्दीवास क्यों भुगत रहा हूँ। मन को सदा उसकी स्मृति रहती थी। मन पर और कोई चित्र अंकित हो इसका न अवसर मिलता था और न उसके लिये कोई स्थान ही था। जो चित्र एक बार अंकित हुआ उसे पोंछा नहीं जा सका। उस पर भी शासन बीच बीच में मुझे स्मरण कराता रहता था, "तुम गांधी वधकांड के दण्डित हो।" फिर वह चित्र पोंछा भी किस प्रकार जाता?

एक दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ। इतिहास सुरक्षित रह सका। जो जैसा का वैसा ही देखते हुए पाठको को, विशेषतया इतिहास के पाठको को इसमें से नये विश्लेषणात्मक सूत्र एव विचार प्राप्त होंगे। गांधी जी के जीवन से ही उनकी मृत्यु भी सम्बन्धित थी। और उस मृत्यु रूपी दुर्दैवी घटना से मैं सम्बन्धित था। इसलिए गाधी जी के जीवन के अन्तिम अध्याय का ही यह पृष्ठ है। नियति ने उससे मेरा सम्बन्ध जोड़ा इसलिये इस इतिहास-स्वरूप पृष्ठ का नाम है "गांधी वध और मैं।"

* * *

अठारह

दुबारा भेंट

[मूल मराठी पुस्तक पर लगाया गया प्रतिबन्ध हटने के पश्चात् छपे संस्करण के लिए लिखे गये प्रास्ताविक का अनुवाद]

लेखन स्वातन्त्र्य के मच से आज 'गाधीहत्या आणि मी' (गाधीवध और मैं) ग्रथ दुबारा पाठको को प्रस्तुत हो रहा है। पहला सस्करण दिनाक १२-१०-१९६७ को प्रकाशित हुआ। लगभग दो मासो के पश्चात् दिल्ली प्रशासन ने पुस्तक पर प्रतिबध लगाया। एक राज्य के बंदीकरण आदेश का क्षेत्र पूरे भारत भर में होने के कारण उस समय पुस्तक के पुनर्मुद्रण की योजना कुण्ठित हुई।

दिनाक २५-१-६८ को प्रस्तुत लेखक के घर पर (दौड झडती) तलाशी आयी और आरक्षियो ने एक प्रति स्वाधीन कर ली। दिनाक २७-१-१९६८ को श्री वेहेरे—जो अस्मिता प्रकाशन के सचालक हैं और जिन्होने अपनी प्रकाशन सस्था द्वारा पुस्तक का प्रकाशन किया था—के कार्यालय से दो प्रतियाँ समपहृत अर्थात् जब्त की गयी।

आजन्म कारावास से मेरी मुक्तता करने के विषय में शासन ने मुझसे अतीव प्रतिशोधात्मक अर्थात् बदला लेने की भावना से भरा क्रूर वर्ताव किया जिसका वृत्तान्त मेरी इस पुस्तक में आया ही है। मैं गाधीवध से सबद्ध दंडित था इसलिये मुझे प्रावकाशसे (पैरोल अथवा फर्लो की छुट्टी से जो दण्डितो को दी जाती है) वंचित रखना, मैं गाधीवध से संवद्ध दंडित था इसलिए मुझसे रक्तदान प्रत्यक्ष रूप में जराखरा लेना और मेरे पल्ले छूट-रेमिशन झूठी बांधना और तिस पर शुभ्र टोपियाँ सिर पर पहनकर दंडितों को सचाई के और सद्वर्तन के

घूंट पिलाते फिरना, ऐसा दंभपूर्ण प्रयोग शासनाधिष्ठित महाभागो ने मुझ पर किया। मेरी भावनायें कटु की गयी थी। उसी वस्तुस्थिति से त्रस्त हो यदि मैं गाधीवध की मीमासा के समेत सभी विषय चिढकर लिखता तो वह समर्थनीय ही होता। किंतु सब मनस्ताप के घूंट पीकर मैंने बडे सयम से विषय लिखे थे।

गाधी वध के विषय में एक ही एक पक्ष आज बीस बाईस वर्ष लोगो को आग्रह पूर्वक बताई जाती है। जिनका सबध उस षडयंत्र से था उनका क्या कहना था इस तथ्य को इतिहास के रूप में लोगो को प्रस्तुत करने से मैं कोई अपराध नही करता था। षडयन्त्र के सब दडितो ने अपने अपने देहदण्ड भुगते है। न केवल एक अपितु दो व्यक्तियो को फांसी दी गयी। जो आजन्म कारावास भुगतने गये वे भी विना किसी प्रमाण के अधिकृत रूप से दडित बधमुक्त हुवे। इसलिए ऐसे इतिहास कथन से लोगो में सहानुभूति निर्माण कर शिक्षा में शिथिलता लाने का प्रश्न ही नही था। इच्छा इतनी ही थी कि दडितो को तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखना सिखाया गया है, अतएव लोग उन दिनो की राजनीतिक परिस्थिति को सम्मुख रखकर सब घटनाओ को परखें। उसके उपरान्त किसी को यदि तिरस्कार स्थिर रखने की इच्छा हो तो भले ही वह वैसा रखें।

पुस्तक पढने के पश्चात् अनेक सज्जनो ने एक ही घटना का दूसरा पक्ष प्रकाश में आने के इस प्रयास की सराहना की और वैसे पत्र लिखे। आज तक जो एक ही एक अग दृष्टि के सामने लाया जाता था उससे शासन ने वस्तुस्थितिको कैसे छिपायें रखा था यही प्रतीत होता है, ऐसा भी उल्लेख अनेको ने किया है।

यह मानना पडेगा कि शासन इस स्थितिको जानता था। इसलिये निष्कर्ष यही निकलता है कि गाधीजी में जो गुण नही थे वे उन्हें चिपकाकर उनके नाम का ढिंढोरा पीटकर अपना आसन स्थिर रखने का धंधा करनेवालों का व्यवसाय स्वातत्र्य (?) अबाधित रहे, उसको थोडा भी धक्का न लगे, ऐसे बनियागिरी हेतु से ही यह बदीकरण लगाया गया था। वैसे ही गाधीवध अभियोग के दडितो से सीखचो के भीतर किया गया शासन का दुर्व्यवहार उन दंडितो के मुक्त होने के पश्चात् लोगो के सामने न आवे ऐसा दुवारे दडितो में पाया जानेवाला उद्दण्ड हेतु भी इस बदीकरण की आज्ञा के पीछे था।

बदीकरण की आज्ञा को कारण दिखाया गया कि पुस्तक हिंदुस्थान के हिंदुओ और मुसलमानो के बीच वैमनस्य निर्माण करता है।

पुस्तक की नैर्बधिकता के बारे में मुझे भरोसा था कि पुस्तक निर्बन्धबाह्य नही हो सकती ? उसी प्रकार का विश्वास श्री बेहेरे को भी था। हम इस प्रयास में थे कि न्यायालय द्वारा वह निर्दोषिता सिद्ध हो।

उस न्यायालयीन कार्य में सर्वश्री माधवराव पाठक, मोहनराव जोशी, माधव-राव पराजपे तथा उनके सहायक श्री कामथ, श्री टिपणीस आदि विधितज्ञोंने हमें अनमोल सहायता की। श्री माधवराव पराजपे ने अभिवक्तव्य (आरग्युमेंट) किया।

उन सबके अविश्रान्त परिश्रम का फल था दिनाक ६-९-१९६९ का बम्बई उच्चन्यायालयका निर्णयपत्र। सविधान द्वारा व्यक्तिको दिया गया भाषण स्वातंत्र्य-का अधिकार स्थिर रखने की दृष्टि से यह निर्णय बडा महत्व रखता है। न्याय-मूर्ति श्री मोदी, न्या श्री देसाई और न्या. श्री चंद्रचूड का न्यायासन था। न्यायमूर्ति श्री चद्रचूड ने निर्णय लेखापित (डिक्टेट) किया। न्यायप्रक्रिया के इतिहास में भी इस निर्णयका लेखाङ्कन होगा। लेखन स्वातंत्र्यका यह प्रश्न इतना महत्व रखता है।

शासनका आक्षेप और पुस्तक की अनाक्षिप्तता आमने सामने परखने के लिये पाठक श्री वि. श्री जोशी द्वारा किया गया निर्णयपत्रका साराश रूप अनुवाद देखें जो आगामी शीर्षक में दिया है। (मराठी से हिंदी अनुवाद लेखक ने स्वयं किया है)

नागरिकको दिया गया मुद्रण स्वातंत्र्य, भाषण स्वातंत्र्य, लेखन स्वातंत्र्य का अधिकार न्यायालय ने समोदित किया है। सविधान निर्मित उन मूलभूत अधिकारो के मचपर खडे रहकर यहाँ यह कहना भी स्थलोचित होगा कि शासन अब सत्तान्ध बनकर और पूर्वग्रहो से पीडित बनकर ऐसी अपनी क्षुद्र कृतियाँ न करे।

पुस्तक में कोई परिवर्तन नही किया है। पाठको से कुछ सूचनाएँ आयी थी जो अवश्यमेव विचारणीय थी। किंतु अनिवार्यतासे उन्हें दूर रखना पडा। नथूराम-का मृत्युपत्र मूलरूप में देखने की अनेक पाठको की इच्छा छायाचित्र के माध्यम से पूरी की जा रही है।

शासन ने मुझे इस बंदीकारण सघर्ष में खीचा जिसके फलस्वरूप मुझपर पाठकों के ऋण के भार के अतिरिक्त अधिवक्ताओ का तथा और साहाय्यभूत व्यक्तियो के ऋण का भार भी पडा और बढा, जो मैं विनम्रतापूर्वक ढो रहा हूँ।

२४-९-१९६९

लेखक

* * *

उन्नीस

निर्णयपत्र का सारांश

महाराष्ट्र राज्यके बम्बई स्थित उच्च न्यायालय के तीन न्यायमूर्तियों के विशेष न्यायपीठने (बेंचने) जो निर्णयपत्र दिया उसके २१७ टंकलिखित पृष्ठ है। उसमें विधि विषयक (अर्थात् कानूनी) चर्चा, आक्षिप्त भागो के समेत पुस्तक के प्रकरणों का साराश, शासन के लिये आक्षेपो का निराकरण तथा खंडन, अभिवक्तव्य में (ऑर्ग्युमेंट में) लिये गये आक्षेपों के उत्तर ऐसे स्थूल भाग है। महत्व का भाग इस प्रकार है—

पुस्तक का मुख्य विषय, पुस्तक में लेखक ने सर्वसाधारणतया प्रयोग की हुई भाषा का स्वरूप उस भाषाका रुख तथा उसका प्रभाव, ऐतिहासिक घटनाओ का, हिंदु तत्वज्ञान के शाश्वत सिद्धान्तो का और पौराणिक कथाओ का लेखक ने लिया हुआ भरकम संदर्भ, भाषा में पायीजानेवाली उपमायें, उत्प्रेक्षायें, उससे गर्भित अर्थ, ऐसे और इसके साथ ही अन्य प्रकार की कहावतों का (भाषालंकारो का) उसने किया हुआ अनिर्बंध प्रयोग इससे लेखक की भाषा में निर्माण हुआ सामर्थ्य ही नही अपितु उनकी शैली की सुन्दरता और अपने ग्रंथ से पाठको को जो बोध लेना चाहिये, ऐसा उसका अभिप्राय है वह अभिप्राय अथवा पुस्तक के ध्यानपूर्वक पढने से लिया जा सके वह अर्थबोध समझ में आवे इसलिये हमने पुस्तक के लेखन का अभीतक विश्लेषण किया है।

हमने उस पुस्तक का सब अंगो से विचार किया है। किन्तु हमारी राय में हिंदुओं और मुसल्मानो के बीच द्वेषभाव फैलानेवाला लेखन उसमें है इस शासकीय अभिप्राय से सहमत होने में हम असमर्थ है। हमारा स्पष्ट अभिप्राय यह है कि पुस्तक में ऐसा कोई लेखन नही है। भारतीय दण्ड विधान (इंडियन पीनल कोड) धारा १५३ (अ) के अंतर्गत जो प्रकाशन दण्डपात्र हो, ऐसा लेखन भी पुस्तक

में निश्चय ही नही है। वैसे कहा जाय तो हिन्दु और मुस्लीम इनके बीच शत्रुता अथवा द्वेष निर्माण हो इस हेतु से लिखा गया कोई भी लेखन उसमें नही पाया जाता। हमारा इस प्रश्न पर समाधान हुवा है। पुस्तक यदि सीधे अर्थ से पढी जाय तो लेखक का भी वैसा हेतु नही दीखता अर्थात् लेखक का वैसा हेतु भले ही हो, यदि वह धारा १४३ (अ) का न उल्लघन हो तो वह भी बात विचारने योग्य नही है यह भी यहाँ बताना आवश्यक है।

राजहुती (जब्तीकी) आज्ञा के लिए पुस्तकपर जो आक्षेप लिये गये है क्या वे साधारण है? इस प्रश्न के उत्तर के लिये प्रारभ में पुस्तक का विषय क्या है यह देखना पडेगा। स्थूलरूप से पुस्तक का विषय गाधी जी का वध है। किन्तु उसकी ऐसी व्याख्या करना भी वहुत ही स्थूल होगा। क्योकि षडयन्त्र कहाँ और क्यो हुआ, प्रार्थनास्थलपर की घटना जिसका पर्यवसान अत में गांधीजी के देहान्त में हुआ, अपराधान्वेषण की दिशा न्यायालयके निर्णय; फांसीके दंडका प्रत्यक्ष शब्दांकन, तीन दण्डितोका वदीवास और उनकी मुक्तता, इनका पुस्तक मे निर्विकारता से वर्णन है यह बात नही है। इन घटनाओं के धागेको पकड लेखक ने अपना पतिपादन विषय गूँथा है।

पुस्तक का मुख्य विषय

लेखन को प्रेरणा देनेवाला ही नही अपितु पाठक को सबसे अधिक प्रभावित करनेवाला मध्यवर्ती प्रतिपादन पुस्तक में यह है कि 'गाधीजी का वध यह किसी भ्रमिष्ट मनुष्यका कृत्य नही था, वह एक राजनीतिक वध था, और उसका कारण यह था कि गाधीजी भारत के एक अल्पसख्यक वर्गविशेष के पक्ष में भारत का अहित होवे तो भी झुकते थे। देश का विभाजन हुआ उससे लोगो पर जो आपत्तियाँ बीती, उस अवस्था में गाधीजी ने मुस्लीम तुष्टीकरण नीति वैसे ही प्रवाहित रखी। भारतीय शासन ने पाकिस्तान को पैसो का प्रदान करने से इनकार किया किन्तु अतत. शासन को वह राशि देने के लिये वाध्य करने के हेतु गाधीजीने १३ जनवरी १९४८ को अनशन आरम्भ किया। शासन ने जैसे ही घोषित किया कि पचपन करोड रुपयो का प्रदान पाकिस्तानको किया जायगा, गाधीजी ने अनशन तोडा।' पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय यह है कि गाधीजी का वध देश विभाजन करने के निर्णय का तथा उपरिलिखित पचपन करोड रुपये पाकिस्तानको देने का मूल्य हुआ।

पुस्तक का बहुतसा भाग अन्य विषयों से भी भरा है। 'दूरत्व के दिन' इस नौवे अध्याय में लेखक ने अपनी अनुपस्थिति में धर्मपत्नी सिधूको जो कष्ट सहने पडे उसका वर्णन किया है जो हृदय को सद्गदित करनेवाला है। उसका प्रतिपादन है कि गांधीवध जैसे राष्ट्रव्यापक अपराध में फँसे हुए दण्डित के परिवार को भी एक प्रकार का अप्रत्यक्ष देहदण्ड भुगतना पडा है।

--दंडित का कारावासी जीवन, अधिकारियो का सहानुभूतिपूर्ण बर्ताव और बंदियो के एक विशिष्ट वर्ग के प्रति शासनकी क्रूर, प्रतिशोधपूर्ण नीति यह एक प्रतिपाद्य विषय पुस्तक में है।

इस पुस्तक का रुख हिंदुस्थान के हिंदू और मुस्लीमोके राजनीतिक संबंध की ओर नही है। प्रचलित समय के साम्प्रदायिक संबंध की समस्या का तो वह तनिक भी विचार नही करता। अविवाद्य ऐतिहासिक घटनाओ का उसमें विवरण है। हमारा समाधान हुवा है कि लेखक ने इतिहास को विकृत रूप नही दिया है।

प्रकाशक का कहना है कि गांधीवध अब एक इतिहास है, उस आपत्ति के सत्य कारण कौन थे यह दिखाने का उसमें प्रयास है। और यह प्रकाशक का कहना बहुतसा यथार्थ है। शासकीय अभिवक्ताने (अॅडव्होकेट जनरल ने) कहा है कि मुसलमान वस्तुत परदेश के हैं और उनकी अन्याय्य मागे ठुकराने के लिये हिंदुओ को सिद्ध रहना चाहिये। हम इससे सहमत नही हो सकते।

यहा तक छानबीन हुई पुस्तक के प्रतिपाद्य विषय की। किंतु उपमा, उत्प्रेक्षा, गर्भित अर्थ आदि के बारे में कहना हो तो वह अनगिनत है। इतनी कि उनकी गिनती करना ही हमने छोड दिया। किंतु उनका प्रयोग भी, गाधीजी की अनुनय नीति से पाकिस्तान की निर्मिति हुई और उस अनुनय की वेदीपर वे बलि चढे इस कथन के संदर्भ में किया गया है।

लेखक की भाषा

पुस्तक की भाषा, उपमा, उत्प्रेक्षा और अन्य अलकारो से परिपूर्ण है। उससे लेखक की भाषा मनोवेधक और प्रौढ हुई है। लेफ्टनंट गव्हर्नर कहते है कि उनके संस्कृत के ज्ञान से सस्कृत प्रचुर मराठी पढना और उसका तथ्य समझने में उन्हे सुविधा हुई। अब मराठी भाषा हम भी भली भाति जानते है। किंतु फिर भी पुस्तक के कई उद्धरण आक्षेपार्ह है ऐसा शासन द्वारा क्यो कहा गया है यह समझने के लिये हमें वे उद्धरण विशेष ध्यान से पढने पडे। साधारण पाठक को पुस्तक की शब्द संपदाका आकलन करने के लिये न इतना समय होता है, न इतना ज्ञान। पुस्तक के एकाध स्थान पर आया हुआ प्रक्षुब्ध उद्धरण ढूंढ निकालने के लिये तो हमें उसमें बहुत ही गहराई में जाना पडा।

पुस्तक का बोध ऐसा कुछ नही कहा जा सकता। हा, अनुनय से देश का कभी लाभ नही होता यह बोध अभिप्रेत हो तो बात और है। लेखक कोई तात्पर्य नहीं देता।

महत्वपूर्ण, उद्धरणो में से 'शोध' अर्थात 'अन्वेषण' इस प्रस्तावना का एक आक्षेपार्ह उद्धरण है। वह सब हमने दिया ही है। उससे प्रकाशक, पाठक के मन

पर यह अंकित करना चाहता है कि वधक ने गाधीजी का वध व्यक्तिगत हेतु से नही किया है किंतु गाधीजी की नीति से देश का विभाजन हुआ इसलिये। 'सावरकर स्मरण में आयेंगे' इस कथन से उसका कहना है कि हिंदुस्तान एक ओर अखंड रखने पर सावरकर तुले हुवे थे। इसलिये जिनके घरवार विभाजन के समय रक्तपात से लथपथ हुए उन्हें सावरकर स्मरण आयेंगे और नथुराम की याद आयेंगी वह भी उसी कारण से। अर्थात हमे यह स्पष्ट करना होगा कि हम प्रकाशक के और लेखक के इस प्रतिपादन से सहमत है ऐसा कोई न समझे। उसके विपरीत हमारा मत है कि गाधीजी ने सैंकडो हिंदुओ के और मुसलमानो के प्राण वचाये थे। इस वस्तुस्थिति की ओर किसी भी इतिहासकार को आनाकानी नही करनी चाहिये। किंतु पुस्तक के वारे में जो आक्षेप है वह यह है कि हिंदू और मुसलमानो के वीच शत्रुता फैलानेवाला लेख उसमें है। हमें इतना ही देखना है कि पुस्तक पर लगाया गया आरोप सिद्ध हुआ है या असिद्ध।

विद्वान शासकीय अधिवक्ताने यह भी कहा कि पुस्तक 'सत्यका अन्वेषण' है। किंतु लेखक और प्रकाशक का यह इतिहास कथन निरा असत्य है। अधिवक्ता का यह विधान मानना हमारे लिये कठिन है। पुस्तक का उद्देश्य यह नही है कि इतिहास को विकृत ढग से लिखकर नथुराम का उदात्तीकरण करना और उस माध्यम से हिंदु मुसलमानो में द्वेषभाव फैलाना।

इतिहासविकृति नहीं की गयी

अव इस विधेय पर हम आये ही है तो गाधीजी का अनशन और पाकिस्तान को देने का देन इसके वीच कार्यकारण भाव दिखाने में लेखक को कोई प्रमाण है या नहीं यह हम देखें। शासकीय अधिवक्ता कहते है कि गाधीजी ने यह अनशन अन्य कारणो से किया था और लेखक ने अपनी सुविधा के लिए इतिहास ही विकृत किया है। किंतु लेखक ने इंडियन इनफर्मेशन, २ फरवरी १९४८ के अंक के उद्धरण दिये है। उससे सरदार पटेल और षण्मुखम् चेट्टी ने काश्मीर प्रश्न का समाधान होने तक पाकिस्तान को पैसे न दिये जायें यह कहा है और वाद में वह निर्णय पीछे लिया गया यह भी कहा है। वह पीछे लेना गाधीजी की विनति के अनुसार लिया गया यह भी स्पष्ट है। इसलिये गाधीजी ही इन पैसो के प्रदान के लिए शासन को विवश करने के उत्तरदायी है ऐसा लेखक ने अनुपयोक्ति आधार पर लिखा है। अतएव हम नही मानते कि अपनी सुविधा के लिये लेखक ने इतिहास विकृत किया है।

श्री प्यारेलाल की 'महात्मा गाधी दि लास्ट फेज' पुस्तक की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट किया गया था। अपने ग्रंथ के पृष्ठ ७११ पर प्यारेलालजी कहते है कि अनशन प्रारभ होने के चौवीस घंटो के अदर अदर हिंदुस्थान गणतन्त्र का

मन्त्रिमंडल बिर्लाभवन के घास पर गाधीजी के इर्दगिर्द बैठा। पचपन करोड रुपये देने के प्रश्न पर विचारविमर्श हुआ। दि० १५ को शासन ने पचपन करोड रुपये तुरन्त देने का निश्चय घोषित किया। गाधीजी ने कहा उस निर्णय के पीछे मेरा अनशन ही था।

प्यारेलालजी का वृत्तान्त हमने इतने विस्तार से दिया है। क्योकि हमारे सामने बार बार यह कहा गया कि लेखक ने इतिहास विकृत किया है। हमारी राय में प्यारेलाल की उसी पुस्तक से आवेदक का कहना बहुत अश से प्रमाणित होता है। इसलिये अनशन और अगभूत घटनाओ के बारे मे उसने इतिहास का विकृतीकरण किया है यह आरोप सिद्ध नही माना जा सकता।

अब नथूराम के विषय में जो उद्धरण आये है उनका विचार करें। वे दिखाते है कि नथूराम से जिनका सबंध आया उनको नथूराम एक व्यक्ति इस मर्यादा में उसके प्रति आदर भावना थी। लेखक कहता है कि बदिशाला के अधिकारियो ने उसके साथ अच्छा बर्ताव किया, न्यायमूर्तियो ने उसकी सराहना की। न्यायालय में बैठी उच्चभ्रू स्त्रियो ने सिसकियाँ दी और आँसू बहाये। उन्होने उसके लिये स्वेटर बुने। दूसरे कुछ उद्धरणो में लेखक ने सरदार पटेल के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है क्योकि उन्होने दण्डितो को 'ब' श्रेणी दी। इन उद्धरणो के बारे में आक्षेप यह है कि यह उद्धरण दिखाते है कि सरदार पटेल जैसे कट्टर काग्रेसी लोगों को भी नथूराम के कार्य के प्रति सहानुभूति थी।

पहले उद्धरणो के बारे में हमें यह नही दिखाया गया है कि वे निर्देश मनगढन्त है। ठीक ठीक कहा जाय तो पजाब उच्च न्यायालय के एक न्यायमूर्ति जी. डी. खोसला ने जिनके सामने इस अभियोग का पुनरावेदन प्रस्तुत हुआ था, अपने 'दि मर्डर ऑफ दि महात्मा' ग्रथ में जो लिखा है उससे नथूराम के संबंध मे लोगो की क्या भावनाये थी, इस विषय पर पुस्तक में आये हुए सदर्भ सत्य ही प्रतीत होते है।

सरदार पटेल के बारे में दिए उद्धरण के सबध में कहना हो तो, प्यारेलालजी के पुस्तक से, तथा मौलाना आजाद के 'इडिया विन्स फ्रीडम' ग्रथ से यह प्रतीत होता है कि पाकिस्तान को ५५ करोड राशि देने को सरदार पटेल का विरोध था और गाधीजी और पटेल के बीच देश-विभाजन के प्रश्न पर मतभेद हुये थे यह भी स्पष्ट है। अर्थात् हम नही कह सकते कि सरदार पटेल की सहानुभूति के कारण ही दण्डितो को 'ब' श्रेणी दी गयी यह विधान कहाँ तक सच है। किंतु वह असत्य है यह कहने के लिए भी हमारे पास स्पष्ट कारण नही है। दूसरी बात, इन विधानो से यह अर्थ नही निकल सकता है कि सरदार पटेल के अभिप्राय में नथूराम का कृत्य स्तुत्य था।

शासकीय अधिवक्ताका कहना है कि नथूराम का गुणगान करने में लेखक का हेतु यह कहना है कि वह और गाधीजी एक ही स्तर पर है, किंबहुना नथु-राम का स्थान ऊँचा है। हम मानते है कि पुस्तक का मध्यवर्ति सूत्र यह है कि नथूराम का कृत्य उसके पीछे के हेतुसे अलग निकालना चाहिये। किसी व्यक्ति का कृत्य धिक्कार करने योग्य हो तो भी उसका हेतु स्तुत्य हो सकता है। किंतु शासकीय अधिवक्ता ने जो अर्थ लगाया है, बहुत ही खीचातानी का है जो साधारण पाठक की मानसिक कक्षा के परे है।

पुस्तक के ७६,११७ और १२९ पृष्टों पर के उद्धरणो का और एक समूह है जिसके आधार पर हमें कहा गया है कि लेखक के प्रतिपादन का हेतु है कि मुसलमान सबसे क्रूर लोग है वे हिन्दुस्तान की एकता के विरोधक है और स्वतंत्रता आंदोलन का भी उन्होने विरोध किया था। अब यह सच है कि मुसलमानो ने स्वतन्त्रता आदोलन का विरोध किया ऐसा लेखक ने कहा है। किन्तु वीर सावरकर ने सूत्र कहा है कि यदि आप साथ आयें तो आपके साथ, साथ न आयें तो बिना आपके और विरोध करें तो उस विरोध को काटकर हम स्वतत्रता की ओर बढेंगे, यह भी लेखक ने कहा है। और रा. स्व. संघ को स्वतत्रता की रुकावटें दूर करनेवाला समर्थ हिंदू समाज बनाना था यह भी लेखक ने कहा है। हम इस बात से सहमत होने में असमर्थ है कि इस प्रकार के छुटपुट उद्धरणो से हिंदू मुसलमानो के बीच वैमनस्य निर्माण होगा। क्या यह सच नहीं है कि एक धारणा ऐसी है कि मुस्लीम लीग के कुछ सदस्य इस मत के थे कि—अग्रेज यहाँ से न चले जायें ?

चौथे अध्याय में लेखक ने कहा कि आप्टे और नथूराम ने कहा कि उनकी अंतिम इच्छा यह है कि उनके फूल सिन्धु नदी में प्रवाहित किये जायें। किन्तु उससे यदि कोई तात्पर्य हो तो यही है जो किसी समय हिन्दुस्तान का भूभाग था और जो पाकिस्तान को गया है वह हिन्दुस्तान फिर से प्राप्त करे। हमारी दृष्टि से, जो मुसलमान हिन्दुस्तान के नागरिक है उनको इस विधान से ठेस पहुँचने की सभावना नही है। क्योकि जो भूभाग खोया है उसको जीतने का प्रश्न राजनीतिक है न कि साम्प्रदायिक।

आक्षेपार्ह कुछ नहीं है

अंत में, कुछ उद्धरणो के आधार पर हमें बताया गया कि राजनीतिक हत्या न्यायोचित रहती है और स्तुत्य भी तथा पाकिस्तान के विरुद्ध, और पाकिस्तानी प्रवृत्ति के मुसलमानो के विरुद्ध यदि प्रतिशोध की और रक्त पिपासु धारणा हो तो वह भी स्तुत्य है। हमने ये उद्धरण बार बार पढे किन्तु हम जिस बात को

पुष्टि नही दे सकते कि वदी आज्ञा में जो कारण दिये है उन कारणो से वे आक्षिप्त हैं। उसमें एक उद्धरण है नथूराम ने १५ नवंबर १९४९ को फांसी जाने के पूर्व अपने माता पिता को लिखे पत्र में पत्र नथूराम ने कहा है कि भगवान श्रीकृष्ण ने युद्ध में और अन्य स्थानो में बहुत ही दुरभिमानी और महत्व के व्यक्तियो को विश्व कल्याण के कारण मारा था। अर्जुन को तो उन्होने अपने सबंधियो का वध करने का भी उपदेश दिया था। इन उद्धरणो का अर्थ इतना ही है कि ववक के कृत्य में अपराधीपन होता है। किन्तु उसका मूल्याकन उसके पीछे के लक्ष्य के हेतु का विचार और उस व्यक्ति के अन्य गुणो से वह घटना अलग ही करना चाहिये। गाधीजी के वध की उसमें प्रशंसा है यह सत्य है किन्तु मुसलमान प्रश्न से यह सव संवद्ध नही है। एकाध वाक्य अथवा परिच्छेद सदर्भ से अलग किया गया तो भावक्षम मन के लिये वैसा साहित्य ज्वालाग्राही भी हो सकता है। किन्तु यह प्रक्रिया वास्तविक नही समझी जानी चाहिये। पुस्तक साकल्य से पढना चाहिये और वैसा पढे तो वैसे आक्षेपो से वह मुक्त ही करना होगा।

पुस्तक का संकुल परिणाम

शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा है कि पुस्तक की भावनाओ को कई अंत.-करणो में गहरा स्थान मिलेगा, मुसलमानो को शासन आत्मीयता दिखाती है इस लिये पुस्तक को भावनाएं हिन्दुओ को मुसलमानो के विरुद्ध उचकायेगी, और पाठको पर परिणाम यह रेंगता रहेगा कि गाधीजी एक पाषाण हृदय और केवल मुसलमानो का हित देखनेवाले राक्षस थे। वात यह है कि पुस्तक की भावनाओ को कवियो के अत करण में गहन स्थान मिलेगा अवश्य। क्योकि उसकी भाषा प्रभावी है और रचना हेतुपूर्ण है। किन्तु स्पष्ट रूप में कहा जाय तो उसका परिणाम साप्रदायिक द्वेषभाव फैलानेवाला नही होगा। उसमें ऐसी भावनाओको आवाहन नही है। पाठक के मन में पुस्तक पढने के वाद बहुत देर तक रहनेवाली भावनाएँ जो रेंगती रहेंगी वे ये हैं कि देश की अखंडता का भग नही होना चाहिये। गाधीजी की अनुनय की नीति से देश विभाजन अपने साथ लोगो के लिये अनत आपदायें ले आया। पाठक सिहर उठेगा इन भावनाओ से, वह कपित होगा लेखक के माता-पिता की स्थिति से उसकी पत्नी और वच्चो की दयनीय अवस्था से।

वीर सावरकर के राजनीतिक तत्वज्ञान का विवरण देनेवाले आठवें अध्याय की ओर हमारा ध्यान खीचा गया है। उसमें जो परिच्छेद हैं मानो, 'हिन्दुराष्ट्र और मुस्लीमराष्ट्र के बीच युद्ध छिडा है। मुस्लीम राष्ट्र ने हिन्दुराष्ट्र के सेनानी को घेरने की प्रतिज्ञा की है इस प्रकार की अयथार्थ अभिनिवेश से शासन ने ज्वलंत राष्ट्रभक्त सावरकर को घेरने को सोची।' इसका रूख शासन की ओर है। उसमें साप्रदायिक भावनाओ को आवाहन है यह हम नही मानते। उसमें जिस

पर जोर है वह शासन की पक्षपात-भरी प्रवृत्तिपर। इसलिये कदाचित शासन के अनादर की भावना पनप सकती है। किंतु वह विषय भिन्न है।

न्यायालय ने पुस्तक पर प्रतिबंध लगानेवाली आज्ञा को आवेदकों को मूलभूत अधिकारों से वंचित करनेवाली अतएव संविधानबाह्य ठहरायी। न्यायालय ने आदेश दिया कि शासन लेखक को ३०००) और प्रकाशक को १०००) रुपये क्षतिपूर्ति स्वरूप दे।

उक्त रुपये क्षतिपूर्ति स्वरूप शासन से लेखक को ३०००) तथा प्रकाशक को १०००) अब तक प्राप्त हो चुके हैं।

* * *

दूरध्वनि :
पूना ५३५४६

वितस्ता प्रकाशन
१२०६/१ व शिवाजीनगर
पूना ४ : (महाराष्ट्र)
अप्रैल १९७३

प्रिय पाठक !

सप्रेम नमस्कार !

'गांधीवध और मैं' और 'गांधीवध क्यो' ? इन ग्रन्थो का गुजराती और अन्य भाषाओ मे अनुवाद प्रकाशित करने के हेतु 'वितस्ता प्रकाशन आपसे ऋण अर्थात् सुरक्षा निधि चाहता है। दो वर्ष अवधि के लिए प्रतिवर्ष प्रतिशत रु० ६) व्याज से ऋण की प्रार्थना है। सौ अथवा सौ से अधिक राशि उपयुक्त होगी।

'वितस्ता प्रकाशन' के नाम विकर्ण (ड्राफ्ट) अथवा धनादेश (चेक) भेजे। धनादेश भँजाने मे रु० १-५० वर्तन (कमीशन) लगता है। अत, धनादेश के साथ वह राशि अधिक भेजें।

विश्वास है कि आपसे और आपके इष्ट-मित्रो से त्वरित सहयोग मिलेगा। धन्यवाद।

भवदीय

नव वर्ष
वि० स० २०३०

गोपाळ विनायक गोडसे
सौ. सिन्धू गोपाळ गोडसे